रूपान्तरण

Rupantaran

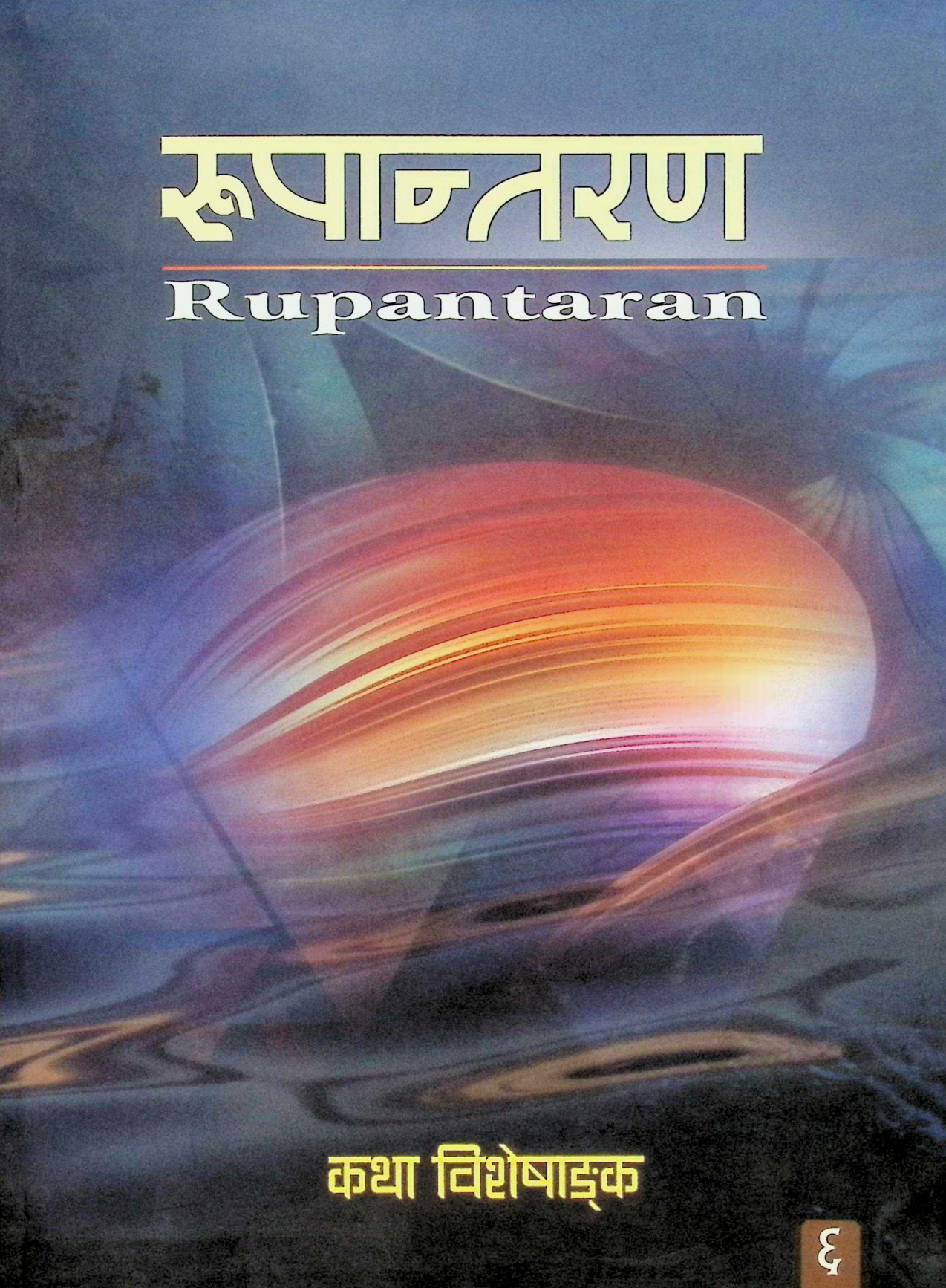

कथा विशेषाङ्क

६

अनुवादप्रधान हिन्दी, नेपाली, अङ्ग्रेजी वार्षिकी

रूपान्तरण

(अङ्क ६, वि.सं. २०७५, कथा विशेषाङ्क)

Rupantaran

An Annual Literary Translation Magazine (Hindi, Nepali, English)

(Vol . 6, A. D. 2018)

प्रधान सम्पादक
प्रा.डा. उषा ठाकुर
(मोबाइल : ९८४९४६७८७०)

सम्पादक मण्डल
डा. रामदयाल राकेश
माया ठकुरी
विक्रममणि त्रिपाठी
केशव सिग्देल
वीणा सिन्हा

कार्यकारी सम्पादक
महेश पौड्याल

प्रकाशक
नेपाल प्रज्ञा-प्रतिष्ठान
कमलादी, काठमाडौँ

मुद्रक
प्रज्ञा छापाखाना, कमलादी

आवरण सज्जा
वसन्तराज अज्ञात

कम्प्युटर सेटिङ
रञ्जन घिमिरे

मूल्य : रु. १००/-

email
office@nepalacademy.org.np
वेब साइट
www. nepalacademy.org.np
फोन : ०१-४२३१७९१
फ्याक्स : ०१-४२२११७५
प्रधान सम्पादक (सम्पर्कका लागि)
इमेल : ushathakur51@gmail.com
फोन : ४२४१३०५

यस अङ्कमा

नेपाली साहित्य से हिंदी भाषा में अनुवाद

समालोचना

समकालीन नेपाली कथा	डा. नेत्र एटम	७

कहानी

रुम नं. ३२५	अर्जुन थापा	१९
मेरा नया नाम नं. २१५	इल्या भट्टराई	२१
आग की लपटें	जलेश्वरी श्रेष्ठ	२५
दिलमाया	टंक भट्टराई	२८
काल्पनिक	ध्रुवचन्द्र गौतम	३२
विलय	ध्रुव सापकोटा	३६
अंतरदृष्टि	पद्मावती सिंह	४०
घर नं. ६	परशु प्रधान	४४
काजोल खातुन	फूलमान बल	४७
हजाम और बूढा	भाउपंथी	५३
रूपांतरण	भागीरथी श्रेष्ठ	५८
मुझे भी नींद नहीं आई	मातृका पोखरेल	६१
प्रियंवदा	माया ठकुरी	६४
छल का दूसरा रूप	राधा कार्की	६७
एक सच्ची कहानी	राधेश्याम लेकाली	७०
रनियाँ की पंचायती	राप्रउ पोखरेल	७२
सलीम	डा. रामभक्त ठाकुर	८१
ब्रेक अप	लक्ष्मी उप्रेती	८४
यह मन	विन्दु सुवेदी	८८
पुस्तक	विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला	९३
संझली भाभी	शशी चालिसे	९५
सोलह साल बाद	संध्या पहाडी	९७
गली की खिडकी	सुषमा मानंधर	१०१
चतुरे बन गया नेता !	हिरण्य कुमारी पाठक	१०५
दुःस्वप्न	ज्ञानू पाण्डे	१०७

संस्कृत साहित्य से हिंदी भाषा में अनुवाद

कहानी

इतरा का पुत्र ऐतरेय — माधवप्रसाद लामिछाने — १११

नेपाल के अन्य भाषाओं से हिंदी भाषा में अनुवाद

भोजपुरी साहित्य से हिंदी भाषा में अनुवाद

कहानी

दो गज जमीन के नीचे — शिव शंकर प्रसाद रौनियार — ११३

मैथिली साहित्य से हिंदी भाषा में अनुवाद

कहानी

जाल — विनीत ठाकुर — ११७

नेपालभाषा (नेवारी) साहित्य से हिंदी भाषा में अनुवाद

कहानी

मशीन हैं क्या । — डा. रीना तुलाधर — १२०

यांचा का घर — राजा शाक्य — १२३

मगर भाषा साहित्य से हिंदी भाषा में अनुवाद

कहानी

घर — संजोग 'लाफा' मगर — १२६

तामाङ भाषा साहित्य से हिंदी भाषा में अनुवाद

कहानी

उसके बाद मुझे नींद आ गई — रमेश कुमार तामाङ — १२९

विदेशी साहित्यबाट नेपाली भाषामा अनुवाद

कथा/भारत (India)

सत्ताको खोजीमा — डा. सुधा पाण्डे — १३४

कथा/जापान (Japan)

माकुराको धागो — न्युनोसुके अकुतागावा — १३७

कथा/अजरबैजान (Azerbaijan)

बम — अब्दुराजिम बेक अख्भरदोभ — १३९

कथा/भारत (India)

पेट : एक सिँढी — अविनाश शास्त्री — १४१

कथा/अस्ट्रिया (Austria)

परफर्मेन्स — हरबर्ट कुनर — १४५

कथा/जर्मनी (Germany)

अनुहार — हेनरिख बोल — १४७

कथा/अमेरिका (America)

म जस्तो कालेका तर्फबाट — जोन होवार्ड ग्रिफिन — १५०

कथा/इजिप्ट (Egypt)

पीडित — युसुफ इद्रिस — १५३

कथा/पोल्यान्ड (Poland)

ढुङ्गाको संसार — ताद्युश बोरोव्स्की — १५५

English Translations from Nepali Literature

Interview

Story as a Genre Faces Strong ... — Prof.Dr. Abhi Sudedi — 157

Criticism

Primary Survey of Postmodern Traits ... — Prof.Dr. Govindaraj Bhattarai — 162

Story

Awaiting Doomsday — Dev Kumari Thapa — 168
The Soldier — BP Koirala — 171
Will He Ever Return?? — Bhavani Bhikshu — 174
A POT — Govinda Bahadur Malla Gothale — 179
Engineer's Head — Vijay Malla — 182
A Sweater for Brother-In-Law — Poshan Pandey — 185
The Husband — Prema Shah — 189
Annapurna's Feast — Manu Brajaki — 193
Rice Pudding — Indra Bahadur Rai — 198
The Stranger's Bag — Krishna Dharabasi — 201
With a Character One Evening — Roshan Thapa 'Neerav' — 211
What a Coincidence! What a Tragedy! — Bharati Gautam — 218

Book Review

Review of "The Rebel Morning" Willa Schneberg (USA) 221

विभिन्न मितिमा ने.प्र.प्र.द्वारा आयोजित अनुवाद गोष्ठीमा प्रस्तुत कार्यपत्रहरु

नयाँ ज्ञान सल्काउने पुरानो बत्ती अनुवाद ...	प्रा.डा. गोविन्दराज भट्टराई	२२३
अनुवाद साहित्यमा लक्ष्मीप्रसाद देवकोटाको ...	प्रा.डा. कृष्णचन्द्र शर्मा	२३०
वी.पी. कोइरालाका अनूदित कृतिहरू	डा. तुलसी भट्टराई	२३६
नेपालीमा अनूदित हिन्दी साहित्य	डा. रामदयाल राकेश	२४३
नेपालीमा अनूदित रुसी साहित्य	प्रा.डा. जङ्गब चौहान	२५०
नेपालीमा अनूदित अङ्ग्रेजी साहित्य	बलराम अधिकारी	२५५
अनुवादका क्षेत्रमा प्रयुक्त नवीन सिद्धान्तहरू ...	डा. नवराज न्यौपाने	२६४
अवधी तथा थारु भाषाका अनूदित कृतिहरू ...	विक्रममणि त्रिपाठी	२७०
नेपालीय मैथिली र भोजपुरी अनुवाद ...	आनन्द अस्तित्व	२७७
Translating Poetry: The Art of Preserving Essence	Willa Schneberg (U.S.A.)	281
A Survey of Nepali Literature in English: Translated ...	Mahesh Paudyal	284

सम्पादकीय

आज का युग अनुवाद का युग है। ज्ञान-विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ विश्व-भूमंडलीकरण और विश्वव्यापीकरण ने अनुवाद के महत्व और आवश्यता को और भी अनिवार्य बना दिया है। आज के वैश्विक युग में भाषा, साहित्य, धर्म, संस्कृति को जोड़ने और विश्व एकता को सुदृढ करके 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना का प्रसार करने की दिशा में अनुवाद की महत्ता सर्वोपरि और अक्षुण्ण है।

अनुवाद ही वह माध्यम है जो किसी देश के साहित्य को पूर्णता प्रदान करता है। रवींद्रनाथ टैगोर, प्रेमचंद, गोर्की, शेक्सपीयर, मिल्टन, कीट्स, टॉल्सटॉय, वड्र्सवर्थ, शेली, देवकोटा आदि अनगिनत साहित्यकारों ने अपनी सशक्त लेखनी के द्वारा विश्व एकता को मजबूत बनाया, मानव एकता को सुदृढ किया और विश्व-साहित्य की अवधारणा को मजबूत बनाया लेकिन इन प्रसिद्ध साहित्यकारों के बहुमूल्य साहित्यिक योगदान को विश्वव्यापी बनाने का श्रेय अनुवादकों को है जिन्होंने अनुवाद के द्वारा मूल रचना के आशय, उद्देश्य और संदेश की कुशलता के साथ विश्व पाठकों के समक्ष रखकर साहित्यकार और साहित्यिक कृति को विश्वव्यापी बनाकर अमरता प्रदान की। नोबेल पुरस्कार प्रदान करने की प्रक्रिया में भी अनुवादक की ही प्रमुख भूमिका रहती है। वास्तव में किसी भी भाषा-साहित्य को विश्वव्यापी और कालजयी बनाने की अद्भुत क्षमता अनुवाद में ही है। विश्व की श्रेष्ठ रचनाओं का अनुवाद आज युग की आवश्यकता है, समय की माँग है। अनुवादक के योगदान के बिना साहित्यकार का महत्व अधूरा है। एक सफल अनुवादक ही रातोंरात किसी साहित्यकार को प्रसिद्धि के चरम शिखर पर पहुँचा देता है।

विश्व-साहित्य की अवधारणा को और भी व्यापक बनाने के महान उद्देश्य को लेकर नेपाल प्रज्ञा प्रतिष्ठान का अनुवाद विभाग तथा विभाग से प्रकाशित अनुवाद पत्रिका 'रूपांतरण' विश्व की भाषिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक भावनाओं को जोड़कर मानवीय एकता को सुदृढ़ करने के लिए तथा नेपाली साहित्य और नेपाल की मातृभाषा साहित्य को विश्व साहित्यिक मंच पर प्रतिष्ठित करने के लिए कटिबद्ध हैं। साथ ही विश्व-साहित्य को नेपाली साहित्यिक जगत के समक्ष अनुवाद द्वारा प्रस्तुत करने और परस्पर परिचित और प्रकाशवान बनाने का उद्देश्य लेकर आगे बढ़ने के लिए प्रयत्नशील हैं तथा तदनुसार अपने कार्य में समर्पित हैं।

'रूपांतरण' का छठा अंक 'कथा विशेषांक' के रूप में प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है। कथा साहित्य एक महत्वपूर्ण और लोकप्रिय विधा के रूप में न केवल हिंदी और नेपाली साहित्य में, अपितु विश्व-साहित्य में ही एक सशक्त और प्रभावशाली विधा के रूप में स्थापित है।

नेपाली साहित्य की कथाएँ गुणात्मकता की दृष्टि से बेजोड़ हैं साथ ही अपने समय और समाज को मुखरित करने में पूर्णतया समर्थ भी। इस अंक में संग्रहित कथाओं में भावगत, शैलीगत, विचारगत विविधताएँ हैं किंतु इन कथाओं का मूल स्वर युग की समस्याओं को चित्रित करना है तथा समाज को दिशानिर्देशन देना है, प्रेरणादायी संदेश देना है। ये कथाएँ राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोविश्लेषणात्मक तथा प्रविधि चेतना के पृष्ठाधार में लिखी गई हैं और अपने समय का सही प्रतिनिधित्व करती हैं। मानवीय संवेदना और समाज के विविध पक्षों का वर्णन करते हुए इन कथाकारों ने युगीन यथार्थ, समाज में फैली हुई विकृतियाँ, देश की रुग्णता, जर्जरता, आर्थिक विषमता एवं भ्रष्टाचार जैसे विषय संदर्भों की सशक्त अभिव्यक्ति दी है। इन कथाओं में नारी अस्तित्व, नारी अधिकार और नारी स्वतंत्रता को अभिव्यक्ति देते हुए कथाकारों ने नारी जीवन के विविध पक्षों को उजागर किया है, मार्गप्रदर्शन किया है। कुछ कथाएँ उत्तर आधुनिकतावादी प्रवृत्ति को प्रश्रय देते हुए लिखी गई हैं जिसमें वैश्विक परिवेश का सफल चित्रण है, डायस्पोरा जीवन की अनुभूति और पीड़ा का मार्मिक चित्रण है। कुछ कथाओं में देश में व्याप्त द्वंद्वजन्य परिवेश और संत्रासमय परिस्थिति का सजीव चित्रण है, मनोद्वंद्व का सूक्ष्म चित्रण है, वर्गीय चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति है। कुछ कथाएँ तराई संस्कृति, नेवारी संस्कृति तथा आंचलिकता के चित्रण द्वारा लोक जीवन और लोक संस्कृति के संरक्षण में सहायक हैं। अशिक्षा, अंधविश्वास तथा समाज की विकृतियों के वर्णन के साथ ही इन कहानियों में सुधारवादी चेतना भी दिखाई देती है। इस अंक की कुछ कथाएँ संस्मरणात्मक हैं, कुछ वर्णनात्मक, कुछ घटना प्रधान और परिवेश प्रधान, कुछ प्रतीकात्मक।

कथाओं के विभिन्न भावों, शैलियों, प्रवृत्तियों, विचार दर्शनों से आप्लावित प्रस्तुत अंक विश्व कथा साहित्य के समक्ष नेपाली कथा साहित्य का सही, प्रभावशाली और सक्षम रूप प्रस्तुत कर सकेगा, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।

इस अंक के अनुवादक साहित्यकारों ने अनुवाद कर्म का दायित्व ईमानदारी के साथ निर्वाह करने की कोशिश की है। उनके प्रयास सराहनीय हैं। स्रोत भाषा के साथ ही लक्ष्य भाषा का भी समुचित ज्ञान प्राप्त ये अनुवादक साहित्यकार मूल कथाकारों की भाषा, संस्कृति, दर्शन और संदर्भ के प्रति भी सजग और जागरूक दिखाई पड़ते हैं। इन अनूदित कथाओं में बोधगम्यता है, प्रवाहमयता है, सजीवता है, अनुवाद कार्य के प्रति ईमानदारी की भावना है जो सराहनीय है। अनुवाद की भाषा भावानुकूल है।

मुझे पूर्ण आशा है कि पूरी लगन और परिश्रम से पूरी की गई ये अनूदित कथाएँ सफल बन पड़ी हैं और पाठकों को कथा रस में आनंदविभोर करने में सक्षम हैं।

नेपाली साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए अनुवाद की प्रमुख स्रोत भाषा हमें अंग्रेज़ी दिखाई पड़ती है। अंग्रेज़ी के बाद प्रभावशाली और विस्तृत क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा हिंदी ही है। इसलिए नेपाली कथा साहित्य का अनुवाद हमने अंग्रेज़ी और हिंदी भाषाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत अंक में नेपाली कथा साहित्य के सैद्धांतिक पक्ष को भी हिंदी भाषा और अंग्रेज़ी भाषा में अनूदित करके प्रकाशित किया गया है। साथ ही विश्व की प्रतिनिधि कहानियों को भी नेपाली अनुवादकों द्वारा हमने नेपाली साहित्यकारों के समक्ष रखने की कोशिश की है ताकि नेपाली साहित्यकार विश्व-साहित्य से लाभान्वित हो सकें।

अनुवाद विभाग एक ओर अपने अनुवाद कार्यों के द्वारा अंतरराष्ट्रीय साहित्यिक एकता के लिए प्रयत्नशील है, नेपाली साहित्य के विश्वव्यापीकरण के लिए कटिबद्ध है तो दूसरी ओर अनुवाद साहित्य के विकास और अनुवादक साहित्यकारों के संरक्षण और संवर्द्धन के लिए भी पूर्णतः समर्पित है। हमें यह जानकारी देते हुए अत्यंत संतोष का अनुभव हो रहा है कि अनुवाद विभाग द्वारा 'अनुवादक परिचय कोश (A dictionary of Translators)' तैयार हो चुका है और अब शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है।

अनुवाद साहित्य के विकास के लिए अनुवाद विभाग द्वारा समय-समय पर अनुवाद विचार गोष्ठी का आयोजन होता रहा है। इस अंक में कुछ चुने हुए अनुवाद संबंधी कार्यपत्र भी प्रस्तुत किए जा रहे हैं ताकि अनुवाद के प्रति चेतना और जागरूकता व्याप्त हो।

इस पत्रिका के तीन खंडों के भाषा परीक्षण, भाषा संपादन का कार्य क्रमशः डॉ. रामदयाल राकेश जी (हिंदी भाषा खंड), श्री रोशन थापा 'नीरव' जी (नेपाली भाषा खंड), तथा श्री महेश पौड्याल जी (अंग्रेज़ी भाषा खंड) के सत्प्रयासों से संपन्न हुआ है। इन विद्वानों के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ। अत्यंत सहयोगी श्री संध्या पहाड़ी जी के प्रति भी हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ। भाई मुकेश कुमार मिश्र के विशेष सहयोग के लिए उन्हें हार्दिक धन्यवाद देती हूँ। श्री शशि चालिसे जी से मुझे सहयोग प्राप्त हुआ है, उन्हें हार्दिक धन्यवाद देती हूँ। साथ ही रंजन घिमिरे, श्री वसंतराज अज्ञात, प्रेस के सहयोगी भाई-बहनों तथा श्री विजय महर्जन जी को हार्दिक धन्यवाद देती हूँ।

नेपाली कथाओं को विश्व रंगमंच पर प्रतिष्ठित करने के लिए और विश्व-साहित्य से नेपाली पाठकों को परिचित कराने के महान उद्देश्य में प्रस्तुत 'कथा-विशेषांक' सहायक होगा, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

मेरे सपनों और विश्वासों को साकार रूप देने में महत्वपूर्ण सहयोग देने वाले आदरणीय कथाकारों तथा अनुवाद साहित्यकारों के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ, विशेष धन्यवाद देती हूँ।

प्रा. डॉ. अभि सुवेदी जी तथा प्रा. डॉ. गोविंदराज भट्टराई जी के प्रति मैं सदैव आभारी रहूँगी। इन दोनों विशिष्ट विद्वानों ने मुझे हमेशा आवश्यक सुझाव और प्रोत्साहन देकर मेरे अनुवाद संबंधी कार्यों को सहज बनाया है। उनकी सद्भावनाएँ मेरे जीवन के लिए बहुमूल्य निधि हैं।

रूपांतरण अपने कार्यों में स्तरीयता और गुणात्मकता की अभिवृद्धि कर सके, संपूर्ण विश्व-साहित्य को एकता के सूत्र में बाँध सके, नेपाली साहित्य को विश्व रंगमंच पर प्रतिष्ठित कर सके, इसके लिए अनुवाद विभाग पूरी तरह प्रयत्नशील है, साधनारत है।

विदुषी माया ठकुरी, विद्वान श्री नवीन चित्रकार जी, अंत में संपादक मंडल के सदस्यों एवं सहयोगी सबों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए विद्वज्जनों से आवश्यक सुझाव के लिए हार्दिक अनुरोध करती हूँ। नव वर्ष २०७५ साल के लिए मंगलमय शुभकामनाओं के साथ–

प्रा. डॉ. उषा ठाकुर
प्रधान संपादक

समालोचना

समकालीन नेपाली कथा : प्रवेश और प्रकृति

डा. नेत्र एटम

१. कथा : परिचय और स्थापना

आजकल स्वतंत्र साहित्यिक रचना को समझाने के लिए प्रयोग किया जानें वाला शब्द 'कथा' अंग्रेज़ी भाषा के 'Short story' का नेपाली अनुवाद है। इसका अर्थ 'गद्य में लिखा जाने वाला छोटा आख्यान' (A short prose fiction) होता है। कथा होने के लिए आधारभूत रूप में 'कही जाने वाली बात या कथन' (Narration) और कहने वाला व्यक्ति या कथयिता' (Narrator) आवश्यक माने जाते हैं।

कथा कहने और सुनने की परंपरा मानव सभ्यता का बहुत ही पुराना प्रचलन होते हुए भी इस तरह प्रयुक्त होने वाली रचनाओं को अभी के अर्थ में कथा का दर्जा नहीं दिया जा सकता। उन कथात्मक रचनाओं को 'किस्सा' (Tale) कहा जा सकता है। पूर्वीय कथात्मक रचनाओं विशेष कर **पंचतंत्र** का पश्चिमी भाषाओं में अनुवाद शुरू होने के बाद ही विश्व में प्राचीन किस्सों का विस्तार शुरू हुआ है परंतु वैसी कथाएँ सामान्यतया पद्यात्मक होती थीं। गद्य में किस्सों की रचना करने वाले प्रथम महत्वपूर्ण रचनाकार के रूप में इतालवी भाषा के पुनर्जागरण काल की प्रतिभा जियोवानी बोकासियो (सन् १३१३–१३७५) का नाम अग्र स्थान में आता है। उनके सौ किस्सों के संकलन के रूप में आई **Decameron** कृति अत्यंत प्रसिद्ध है। इतालवी भाषा में वैसी कथात्मक रचनाओं को 'नोवेला' (novella) कहा जाता था। वे novellas ही विश्व में उपन्यास और कथा के समीपवर्ती पूर्वज हैं। डेकामेराँ के किस्सों में गद्य का शुद्ध रूप मिलता है और उन्हें पुनर्जागरणकालीन साहित्यिक नमूने के रूप में स्वीकार किया जाता है। विश्व साहित्य को ही प्रभावशाली प्रेरणा देने वाली इस कृति में इतालवी भाषा की शाश्वत स्वच्छता तो मिलती है लेकिन कथात्मक एकत्व, प्रभाव की केंद्रीयता और चरित्र का विकास स्वाभाविक न होने के कारण डेकामेराँ के किस्सों को कथा नहीं कहा जा सकता।

आधुनिक कथा के इतिहास को बारीकी से देखने पर संयुक्त राज्य अमेरिका और रूस की साहित्यिक परंपरा में प्रवेश होता है। इस संदर्भ में अमेरिकी कथाकार इर्विंग वॉशिंगटन के The sketch Book (१८१९–२०) और Tales of a traveller (१८२४) जैसे कथात्मक संकलन प्रकाशित प्रतीत होते हैं। जर्मन किंवदंती से प्रभावित इर्विंग की Rip Van Winkle नाम की कथात्मक रचना को अत्यंत लोकप्रियता मिलने के बावजूद उनकी रचनाओं में निबंधात्मकता मिलती है। वे अधिकांशतः किंवदंती (legend) से उधार लिए गए और रचनात्मक दृष्टि से कमज़ोर हैं। इसी क्रम में अंग्रेज़ी साहित्य के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार वाल्टर स्कट ने सन् १८२७ में The Two Drovers कथात्मक कृति प्रकाशित की और अंग्रेज़ी साहित्य के कतिपय इतिहास लेखकों ने इसका उल्लेख आधुनिक कथा का पहला नमूना के रूप में भी किया। परंतु उन रचनाओं की वर्णनात्मकता, तितर-बितर कथानक और आत्मपरक निबंधात्मक शैली के कारण उन्हें आधुनिक कथा नहीं माना जा सकता। उसके बाद रूसी साहित्यकार निकोलाई गोगोल (सन् १८०९–१८५२) अपनी कथात्मक रचना के साथ दिखाई पड़े। उनके Evening on a Farm Never Dikanka (सन् १८३१–३२) शीर्षक के कथासंग्रह की दो ठेलियाँ प्रकाशित हैं। उनकी रचनाओं में कथात्मक एकता, प्रभाव की केंद्रीयता और चरित्र तथा परिवेश का संतुलित विकास देखने को मिलता है। उनकी Overcoat (१८४०) कथा तो विश्व की सर्वश्रेष्ठ और सुसंयोजित कथाओं में से एक है। आलोचनात्मक

यथार्थवाद का प्रारंभ करने वाली इस कथा को समकालीन रूसी व्यवस्था, समाज और जनता के यथार्थ तक एक हद तक पहुँचकर चित्रित की गई रचना माना जाता है। गोगोल का प्रबल प्रभाव लियो टॉल्सटॉय, इवान तुर्गनेव, फ्योदोर दोस्तोयव्स्की और मैक्सिम गोर्की पर भी पड़ा है। गोर्की ने कहा भी है– "हम सभी गोगोल की Overcoat की संतति ही हैं।" वास्तव में गोगोल ही विश्व साहित्य के क्षेत्र में आधुनिक कथा के प्रारंभिक सर्जक हैं।

इतना होते हुए भी उस समय कथा (Short story) को अलग स्वतंत्र साहित्यिक विधा की मान्यता प्राप्त नहीं थी। उसी क्रम में अमेरिकी लेखक गण नाथेनल हथर्न (सन् १८०४–१८६४) और एडगर एलेन पो (सन् १८०९–१८४८) महत्वपूर्ण रूप में प्रकट हुए। पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाली भूतकथा, भारतीय दंत्य कथा और ऐतिहासिक चमत्कार युक्त किंवदंती कथाएँ लिखकर छपवाते थे। उनकी रचनाएँ आदर्शवादी होते हुए भी उनमें कथानक को विकसित करने और चरित्रोद्घाटन के क्रम में नाटकीय रूप दिया गया होता था। उनका The Twice–Told Tales (१८३७, second edition १८४२) प्रकाशित भी हुआ। सन् १८४२ में एडगर एलेन पो ने Graham's Magazine नाम की पत्रिका में हथर्न के कथासंग्रह का विश्लेषण करते हुए The Importance of the Single Effect in a Prose Tale शीर्षक का आलेख छपवाया। इसमें उन्होंने हथर्न की कथात्मक मौलिकता को दर्शाते हुए कथा सिद्धांत का प्रवर्तन किया। इस आलेख ने कथा को स्वतंत्र साहित्यिक विधा के रूप में पहचान दिलाई। पो के अनुसार कथा के चार आधारभूत तत्व निम्नलिखित हैं :

क) कथा एक बैठक में पढ़ी जा सकने वाली लंबाई की होनी चाहिए।

ख) कथा से एक मात्र प्रभाव उत्पन्न होना चाहिए।

ग) कथा के केंद्रीय प्रभाव और उसके लहजे (tone) को बिगाड़ने वाला या कम करने वाला कोई भी शब्द उसमें नहीं होना चाहिए।

घ) कथा पूर्ण रचना के कलात्मक सौंदर्य से युक्त होनी चाहिए।

पो के लिखे हुए इसी आलेख ने कथा को किस्सा के धरातल से उठाकर एक सम्मानित विधा के रूप में स्वीकार्य बनाया। पो स्वयं भी एक प्रख्यात कथाकार हैं और उनके The Tell–Tell Heart (१८४३) और The Cask of Amontillado (१८४६) जैसे कथा संग्रह प्रकाशित हैं। उनकी कथाएँ प्राणयिक प्रवृत्तिपरक हैं, जबकि एकल प्रभाव मोह से युक्त होने के कारण उनकी कथाओं में भाव की रंगीन आकांक्षा होने के बावजूद उनमें चरित्र का स्वाभाविक विकास और परिवेश का स्पष्ट छाप नहीं पड़ सका है। स्थानीयता के पक्ष उपेक्षित होने के कारण उनकी कथाओं में अमेरिकी जीवन नहीं है। इन सभी दृष्टिकोणों से वॉशिंगटन इर्विंग, वाल्टर स्कट, निकोलाई गोगोल, नाथेनल हथर्न और एडगर एलेन पो में से गोगोल ही कथात्मक प्रभाव और यथार्थ चित्रण की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ दिखते हैं। इसलिए गोगोल ही आधुनिक कथा के प्रतिष्ठापक और पो सैद्धांतिक प्रवर्तक माने जा सकते हैं।

पो की कथाओं में शैली की अनूठी मोहकता है। जब चार्ल्स बोल्देअर ने पो की कथाओं का फ्रेंच भाषा में अनुवाद किया, तब गे डे मोपासाँ इससे अत्यंत प्रभावित हुए और उन्होंने सुसंगठित कथाएँ लिखीं। उनकी The Diamond Necklace भाग्य के प्रति किए गए व्यंग्य का चरम नमूना दिखाने वाली प्रसिद्ध कथा है। ठोस कथात्मकता और सुसंगठित कथा लेखन में फ्रांस के मोपासाँ गोगोल के बाद के महत्वपूर्ण कथाकार हैं।

कथा की दुनिया में नई शैली और कथ्य को प्रविष्ट कराने में रूसी कथाकार एंटोन चेखव का नाम अमर है। चरित्र के बारे में प्रभाववादी चित्रण करते हुए अतीत और वर्तमान के अवयवों और अत्यावश्यक संवाद संयोजन से उनकी कथाएँ निर्मित होती हैं। प्रभावकारी क्षण की तसवीर उतारने के समान दृश्य को शब्दों में उतारकर पाठक को समष्टि सार वस्तु में केंद्रित करने वाले कथा निर्माण का कौशल उनका योगदान है। उनके बाद कथा को नया संसार दिखाने वाले कथाकार आयरिश प्रतिभा जेम्स जॉयस हैं। औपचारिक कथानक और शृंखलाविहीन लिखी गई उनकी कथाओं में मस्तिष्क का संसार मात्र चित्रित होता है। चेतना प्रवाह (**Stream of consciousness**) का आविष्कार कर उन्होंने कथा के लिए नए मार्ग खोल दिए हैं। भले ही उनका एक मात्र कथा संग्रह Cubliners (१९१४) है परंतु कथा

का प्रभाव आज भी ज्यों का त्यों है।

इस प्रकार देखने पर यह प्रतीत होता है कि समूचे विश्व की कथा की इंद्रियों में गोगोल, मोपासाँ, चेखव और जॉयस अभी भी जीवित हैं, चाहे कथा लेखन कितना ही आगे क्यों न हो। **The story and its Writer : An Introduction to Short Fiction** के लेखक एन चार्टर्स के अनुसार इस समय लिखी जाने वाली कथाओं की समष्टि दो शाखाओं में विभक्त है :

क) गोगोल और मोपासाँ द्वारा प्रवर्तित व्यवस्थित और बंद (plotted and closed) कथा धार,

ख) चेखव और जॉयस द्वारा प्रवर्तित अकथात्मक और मुक्त (less plotted and open) कथा धार।

उपर्युक्त चर्चाओं से कथा की स्थापना की झलक प्राप्त हो सकती है। विश्व में प्रचलित कथा के सभी प्रयोगों और भिन्नताओं को भले ही समेटा न जा सके किंतु इसके परिचय की मूलभूत बिंदुओं को इस प्रकार रखा जा सकता है।

अ) कथा आख्यान (**Fiction**) है अर्थात् इसमें कथाकार की कल्पना द्वारा सृजित घटनाओं की शृंखला या कथानक (plot), उसमें सहभागी पात्र (characters) तथा निर्मित परिवेश (setting) उपस्थित होते हैं और ये तत्व श्रोता/पाठक के लिए भावोत्पादक और भ्रम सृजन में सक्षम होते हैं।

आ) कथा गद्य में लिखी होती है अर्थात् इसके माध्यम के रूप में प्रयुक्त शैली छंद या नियमित लय पर आधारित न होकर बोलचाल की भाषा में होती है।

इ) कथा संक्षिप्त होती है अर्थात् उपन्यास की तुलना में छोटी रचना होने के कारण इसे सामान्यतया एक बैठक में ही पढ़ा जा सकता है।

ई) कथा कलात्मक दृष्टि से पूर्ण होती है अर्थात् कथा द्वारा कथाकार के भाव या विचार संप्रेषित होते समय जीवन और जगत का सजीव चित्रण होता है।

उ) कथा साहित्यिक रचना है अर्थात् यह सौंदर्य का निश्चित मूल्य (value) सृजित करती है।

कथा भाषिक रूप में सृजित होने वाली निश्चित मूल्य से युक्त कलात्मक रचना होने के कारण इसके निर्माण के लिए संरचक तत्व होते हैं। ऐसे तत्वों में कथानक, चरित्र, परिवेश, दृष्टिबिंदु, शैली एवं स्वर, प्रतीक और बिंब तथा सारवस्तु शामिल हैं।

क) कथानक (plot) : कथा में उपस्थित घटनाओं की तार्किक और रहस्यपूर्ण शृंखला ही कथानक है। यह क्रिया (action) को सृजित करता है तथा इसके चरित्र आंतरिक या वाह्य द्वंद्व का सामना करते हैं। यही वह तत्व है, जो कथा को हाँककर चरम तथा निश्चित निर्णय की स्थिति में पहुँचाता है।

ख) चरित्र (character) : कथा में किसी प्रकार की भूमिका निर्वाह करने वाले चरित्र या पात्र कहलाते हैं। चरित्र कथा को आगे बढ़ाने, घटना की प्रक्रिया के प्रति लेखकीय प्रभाव उत्पन्न करने में सहयोग देने और संवाद प्रस्तुत करने का कार्य करता है।

ग) परिवेश (setting) : कथा की घटनाओं के घटित होने या चरित्रों के खेलने वाले स्थान और समय को परिवेश कहा जाता है। इसमें चरित्रों के जीने की प्रक्रिया, विश्वास, समाज की संस्कृति और इस क्रम में आने वाले संपूर्ण आंतरिक और वाह्य तत्व भी इसमें पड़ते हैं।

घ) दृष्टिबिंदु (point of view) : कथा में कथयिता के चयन को दृष्टिबिंदु कहते हैं। कथा कथन के समय लेखक द्वारा पाठक के प्रति अपनाया जाने वाला दृष्टिकोण भी दृष्टिबिंदु ही है। इसमें कथयिता द्वारा कथा का पात्र बनकर सीमित बातें और अनुभव साझा किया जाए, या कथा के बाहर रहकर सभी या किसी पात्र विशेष के प्रति समर्पित होकर पाठक का ध्यान खींचा जाए, इस विषय का निराकरण होता है।

ङ) शैली और स्वर (style and voice) : कथाकार द्वारा अभिव्यक्ति के प्रयत्न में दिखाया जाने वाला ढंग शैली है। इसमें भाषा एवं कथा तत्व का संयोजन और इसकी गति तथा सार वस्तु के प्रति होने वाली लेखकीय अभिवृत्ति अर्थात् कथा की रणनीति (strategy) शामिल हैं। स्वर का तात्पर्य कथा कथन में अपनाई जाने वाली विशिष्ट और कलात्मक भंगिमा से है जो शैली, शब्दचयन, अर्थतत्व आदि के द्वारा लेखक प्रस्तुत करता है।

च) प्रतीक और बिंब (symbol and image) : शाब्दिक अर्थ में भिन्न और विस्तृत अर्थ प्रदान करने के लिए आने वाले व्यक्ति, घटना और वस्तु को प्रतीक कहते हैं। यह विचार, धारणा जैसे अमूर्त तत्वों को

प्रकट करता है । वहीं शाब्दिक या आलंकारिक शैली में प्रयुक्त होने वाले एक शब्द या शब्दसमूह को बिंब कहते हैं । यह इंद्रिय द्वारा ज्ञात होने वाली अनुभूति का सबल प्रतिनिधित्व करता है ।

छ) सार वस्तु (theme) : कथा में विकसित कर प्राप्तिपूर्ण स्थिति में पहुँचाई गई केंद्रीय एकीकृत बिंदु या धारणा सार वस्तु कहलाती है । इसका अन्वेषण कथा के भीतर क्रिया और बिंब विधान (imagery) में होता है ।

कथा जीवन की समष्टि न होकर आंशिक प्रभाव है । इस संदर्भ को स्पष्ट करते हुए चेखव ने लिखा है, जब उनसे यह पूछा गया कि वे उपन्यास न लिखकर केवल कथा ही क्यों लिखते हैं– 'चिकित्सा शास्त्र के विद्यार्थी की भाँति एक भिन्न क्षेत्र में अपना अधिकांश समय देने के कारण मैं सुस्पष्ट जीवन दर्शन विकसित नहीं कर सका । क्योंकि सुस्पष्ट जीवन दर्शन के बिना केवल कथा ही लिखी जा सकती है, उपन्यास नहीं ।

कथा की इन्हीं स्थापनाओं के आधार पर ही यहाँ आधुनिक नेपाली कथा की चर्चा के साथ-साथ समकालीन नेपाली कथा का रेखांकन और विश्लेषण किया जाएगा ।

२. समकालीन नेपाली कथा : रेखांकन

नेपाली कथा में आधुनिकता समाविष्ट करने का श्रेय कथाकारद्वय गुरुप्रसाद मैनाली और विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला को जाता है । वि. सं. १९९२ साल में 'शारदा' पत्रिका में प्रकाशित मैनाली की *नासो* और कोइराला की *चंद्रवदन* कथाओं ने पाश्चात्य यथार्थवाद से प्रभावित होकर विधागत सचेतना वाली नेपाली कथाओं में नए मूल्य को स्थापित किया । मैनाली ने कथा को सबल समाजशास्त्रीय आधार प्रदान किया, जबकि कोइराला ने मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि । इससे आगे बढ़ी नेपाली कथाओं ने 'किस्सा' के समान मनोरंजन देने की बजाए सामाजिक-सांस्कृतिक यथार्थ का गंभीर पर्यवेक्षण करके कथा पात्र के विकास की स्थिति को उजागर करने का कार्य किया ।

वि. सं. १९९२ से शुरू हुई आधुनिक नेपाली कथा आज (२०५९) तक की यात्रा में विभिन्न कालखंडों की नवीन प्रवृत्तियों को समेटे हुए आगे बढ़ी है । इसे संक्षेप में इस प्रकार दर्शाया जा सकता है ।

यथार्थवादी कथा लेखन (वि. सं. १९९२-२०१९)
प्रयोगवादी कथा लेखन (वि. सं. २०२०-२०३५)
समकालीन कथा लेखन (वि. सं. २०३६-अब तक)

२.१. यथार्थवादी कथा लेखन (वि. सं. १९९२-२०१९)

गुरुप्रसाद मैनाली और विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला से प्रारंभ हुए आधुनिक कथा के यथार्थवादी लेखन द्वारा आदर्श और स्वच्छंदता के साथ-साथ सामाजिक (बाह्य) और मनोवैज्ञानिक (आंतरिक) यथार्थ के प्रकटीकरण में सक्रियता स्थापित की गई प्रतीत होती है । कथा के निर्धारित और स्वीकृत ढाँचे की परिधि में रहकर लिखी गई ऐसी कथाओं ने वि. सं. २००७ साल की क्रांति के बाद प्रगतिशील चेतना को सम्यक् रूप में अभिव्यक्त किया है । यथार्थवादी कथा लेखन में मैनाली और कोइराला सहित बालकृष्ण सम, लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा, पुष्कर शमशेर, रूप नारायण सिंह, हृदयचंद्र सिंह प्रधान, भवानी भिक्षु, गोविंद बहादुर मल्ल 'गोठाले' शिव कुमार राई, देव कुमारी थापा, दौलत विक्रम विष्ट, रमेश विकल, पोषण पांडे, बालकृष्ण पोखरेल, तारानाथ शर्मा, लीलाबहादुर क्षेत्री, कुमार ज्ञवाली आदि ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है । सरल संरचना द्वारा समाज के यथार्थ को इंगित करना, वैचारिक प्रभाव देना और पात्र की मानसिकता का उत्खनन करना इन कथाओं की विशेषता है ।

२.२. प्रयोगवादी कथा लेखन (वि. सं. २०२०-२०३५)

नेपाल में पंचायती व्यवस्था का प्रारंभ होने के कारण निरंकुशता के प्रभाव और दार्जिलिंग से आयामी आंदोलन की शुरूआत (२०२०) के कारण इस चरण की कथाएँ सरल की अपेक्षा जटिल संरचना में दिखती हैं । विद्रोह के वेग को न झेल सकने के कारण ऐसी कथाएँ प्रतीकात्मक, अकथात्मक होने के साथ-साथ यौनमूलकता की बाढ़ से ग्रस्त प्रतीत होती हैं । परंपरागत संगठित लेखन को तिरष्कृत करते हुए नई प्रविधि युक्त कथाओं की प्रविष्टि होने के इस चरण में पाश्चात्य वादों (अतियथार्थवाद, अस्तित्ववाद, घनत्ववाद, प्रतीकवाद, विसंगतिवाद आदि) की बाढ़-सी आ गई । साथ ही राल्फा आंदोलन (२०२६), अमलेख आंदोलन (२०२६), हंग्री जेनरेशन, यंग राइटर्स फ्रंट और बूट पॉलिश (२०३३) का भरपूर प्रभाव इन पर पड़ा । पाश्चात्य लेखन में प्रचलित 'बिट जेनरेशन' और

हिप्पी संस्कृति का भी प्रभाव है। इसने प्रयोजनहीन और नग्न लेखन को प्रोत्साहित किया, जबकि स्वतंत्रताहीन स्थिति के कारण लेखक गण अंतर्मुखी और यौन कथा की ओर आकृष्ट हुए। आयामियों के संपूर्णता लेखन का प्रभाव होने के कारण इस चरण में क्लिष्ट, प्रतीकात्मक और विसंगतिपूर्ण कथाओं का बोलवाला रहा। इस प्रकार की मूल धार के अतिरिक्त प्रगतिशील कथाएँ भी इस चरण में सक्रिय रहीं। द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर काल में व्याप्त निराशा की स्थिति का इस चरण ने प्रतिनिधित्व किया है। इंद्र बहादुर राई, ध्रुवचंद्र गौतम, मोहनराज शर्मा, प्रेमा शाह, मनु ब्राजाकी, पारिजात, परशु प्रधान, शैलेंद्र साकार, पुष्कर लोहनी, कविताराम, गोपाल पराजुली, किशोर पहाड़ी, संतोष भट्टराई आदि ने वर्तमान विसंगति के विरुद्ध सचेत परंतु उग्र प्रतीकात्मक, यौन कथा और अकथाओं का सृजन किया। इसी प्रकार विकृति के विरुद्ध प्रगतिशील चेतना प्रकटीकरण में खगेंद्र संग्रौला, नारायण ढकाल, जगदीश घिमिरे, राजव, रमेश विकल आदि सक्रिय प्रतीत होते हैं। कथा को विचार और जीवन दर्शन में ढाले गए होने के कारण वे कथाएँ आत्मपरक, भाषा का मनमाना प्रयोग युक्त और जटिल (यदा-कदा मलिन भी) प्रतीत हुई हैं। प्रयोग के नमूने के रूप में रही इन कथाओं के द्वारा राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय जीवन मूल्य प्रस्तुत किया गया प्रतीत होता है।

२.३. समकालीन कथा लेखन (वि. सं. २०३६-अब तक)

पंचायती व्यवस्था के विरोध में विद्यार्थी आंदोलन (२०३५) के बाद नेपाल में जनमत संग्रह की घोषणा (२०३६) होना स्वतंत्रता की दिशा में एक पड़ाव था। इसी समय से नेपाली कथा के क्षेत्र में समकालीन कथा लेखन के नए चरण का प्रारंभ हुआ। प्रयोगवादी कथा की अपेक्षा प्रायः सरलता से स्वतंत्रता के प्रति उद्घोष व्यक्त करने की दिशा में इस चरण की कथाएँ सक्रिय दिखती हैं। समकालीन कथा लेखन के मध्य आए जन आंदोलन (२०४६) और इसके बाद प्रादुर्भूत कुछ भिन्न प्रवृत्तियों के कारण इस चरण को दो खंडों में विभक्त कर अध्ययन किया जाएगा। इस चरण में भी मुख्यतः प्रयोगवादी कथाकारों ने लेखनी चलाई है। परंतु कुछ अपवादों को छोड़कर अधिकांश लेखन प्रवृत्ति परिवर्तित दिखती हैं।

३. समकालीन नेपाली कथा के परिवेश और प्रकृति

साहित्य समाज से सर्वथा मुक्त नहीं हो सकता और यह किसी न किसी रूप में समाज, युग और संस्कारों से ग्रहण करने और नए विचार देने की द्वंद्वात्मक क्रिया को चलायमान बना रहा होता है। समकालीन नेपाली कथा ने भी तत्कालीन परिवेश के साथ विमति रखते हुए या समायोजित होते हुए सौंदर्य चेतना को स्थापित किया है। २०३६ साल से २०४६ साल के जन आंदोलन और प्रजातंत्र की पुनर्स्थापना होते हुए वर्तमान तक की यात्रा में जन आंदोलन पूर्व और जन आंदोलन पश्चात् की कथा की प्रवृत्तियाँ स्पष्टतया भिन्न होते जाने के आधार प्राप्त हो चुके हैं। अतः समकालीन कथा लेखन को इस प्रकार दो खंडों में विभक्त किया जा सकता है :

जन आंदोलन पूर्व (२०३६-२०४६) : स्वतंत्रता, आकांक्षा और व्यंग्यात्मक।

जन आंदोलन पश्चात् (२०४७ से अब तक) : स्वतंत्रता-पीड़ा और विद्रोहात्मक।

इन दोनों ही चरणों की परिवेशगत विशिष्टता और प्रकृतिगत अंतर का यहाँ विश्लेषण कर उनकी विंदुओं को स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है।

३.१ जन आंदोलन पूर्व (वि. सं. २०३६-२०४६)

२०३६ साल की जनमत संग्रह की घोषणा से लेकर २०४६ साल के जन आंदोलन तक की अवधि समाविष्ट इस चरण में देश के भीतर के घुटन भरे परिवेश और कथा में दिखने वाली प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष स्वतंत्रता आकांक्षा तथा विभिन्न प्रकार की विसंगतियों के प्रति व्यंग्य मुख्य रूप में मुखरित हुआ है। तत्कालीन परिवेश का सामान्य रेखांकन इस प्रकार किया जा सकता है–

(क) देशव्यापी विद्यार्थी आंदोलन का प्रारंभ (२०३५) और जनमत संग्रह की घोषणा (२०३६),
(ख) सड़क कविता-क्रांति (२०३६) और साहित्यकारों द्वारा खुले रूप में बहुदलीयता के पक्ष में आह्वान,
(ग) जनमत संग्रह में बहुदल पक्ष की हार (२०३७),
(घ) आम चुनाव (२०३८),
(ङ) देशव्यापी विद्यार्थी आंदोलन और व्यापक दमन (२०४१-४२),
(च) पंचायत रजत जयंती (२०४२-४३),

(छ) सत्याग्रह की शुरूआत और बम कांड (२०४२),
(ज) जनपक्षीय उम्मीदार के रूप में वामपंथी की चुनावी संलग्नता (२०४३),
(झ) रूपचंद्र विष्ट (थाहा) और पद्मरत्न तुलाधर द्वारा संसद में ही पंचायती व्यवस्था का विरोध (२०४३-४५),
(ञ) भारत द्वारा नेपाल के साथ आर्थिक संधि नवीकरण अस्वीकार और नाकाबंदी (२०४५) के कारण अभावग्रस्तता,
(ट) कांग्रेस और कम्यूनिस्ट के संयुक्त आंदोलन का प्रारंभ (२०४६) और समझौता में आंदोलन स्थगित,
(ठ) ईरान-इराक युद्ध, आणविक हथियार प्रयोग की चिंता, रूस की गिरती अवस्था और चीन की विश्व समुदाय में शक्तिशाली उपस्थिति,
(ड) सत्ता के लिए संकीर्ण राष्ट्रवाद की वैचारिकता का अवलंबन आदि ।

इनकी और ऐसे ही परिवेश की जटिलता के कारण समकालीन कथाओं में पहले की अपेक्षा भिन्न प्रकृति दिखाई पड़ी, जिसे यहाँ बिंदुगत रूप में प्रस्तुत किया गया है–

३.१.१. स्वतंत्रता आकांक्षा का प्रकटीकरण

पंचायती शासन के विरोध की एक चरम अभिव्यक्ति के रूप में विद्यार्थी आंदोलन और जनमत संग्रह की घोषणा पश्चात् कुछ समय स्वतंत्र परिवेश सृजित हुआ । परंतु यह स्थिति बहुदलीयता की हार की घोषणा के साथ कुंठित हो गई और कथा में विभिन्न प्रकार से स्वतंत्रता के प्रति आकांक्षा प्रकट करने का क्रम चलता रहा । प्रगतिशील कथाकारों ने इस आकांक्षा को अधिक महत्व के साथ आगे बढ़ाया । २०४६ साल चैत ३ को साहित्यकारों की प्रत्यक्ष सहभागिता और दमन का विरोध उसी की मूर्त अभिव्यक्ति थी । जीवन के लिए स्वतंत्रता प्रथम शर्त है, इस तथ्य का उद्घाटन इसी चरण की कथाओं ने किया, जो कि प्रयोगवादी कथा से मूल भिन्नता है । कविता राम की *मुक्ति प्रसंग*, मोहनराज शर्मा की *वर्जित झोड़ा*, रामहरि पौडेल की *राक्षस*, पूर्णविराम की *रामकुमार अर्को एउटा रामकुमार*, ऋषिराज बराल की *पाँचौं दिन*, नारायण ढकाल की *प्रेत-प्रसंग*, सनत रेग्मी की *मूल्य र मान्यता*, भुवन ढुंगाना की *काकाकुलको कथा नेपालीको व्यथा*, गोविंद गिरी 'प्रेरणा' की *मुक्त* जैसी अनेकों कथाओं ने स्वतंत्रता के प्रति दृढ आकांक्षा को प्रतिकूल अवस्था में भी अभिव्यक्त किया है ।

३.१.२ व्यंग्यात्मकता

अपने भीतर की शक्ति को भीतर ही दबाकर विकृति प्रदर्शन करने वाली प्रयोगवादी कथा की तुलना में सब प्रकार की विकृति, विसंगति, अन्याय, भेदभाव के प्रति तीव्र आलोचनात्मक दृष्टि के साथ गंभीर चिंता व्यक्त करना और इनके कारक राजनीतिक-सामाजिक संदर्भ के प्रति कठोर व्यंग्य करना इस चरण की कथा की मूल प्रवृत्ति है । जीवन में व्याप्त असामंजस्य, असंतुलन और विषमता की धज्जी उड़ाने वाली इस प्रकार की कथाओं ने यथार्थ के प्रति अपनी असहमति दिखाई है । शासकों की अकर्मण्यता, शहरी सभ्यता से उत्पन्न प्रदूषण, पड़ोसी देश से प्राप्त अविश्वास और घात-प्रतिघात, लोगों की प्रवंचना आदि के प्रति किए गए व्यंग्य की कथा में संवेदना और संप्रेषण की मिठास की भी अत्यधिक समाविष्टि दिखती है । इसी क्रम में ध्रुवचंद्र गौतम ने असित व्यंग्य (black humour) का भी प्रयोग कर शासकीय और सामाजिक पाखंड को प्रकट करने की प्रभावकारी पद्धति का अन्वेषण किया है । मनु ब्राजाकी, मोहनराज शर्मा, विजय चालिसे, विनय कुमार कसजू, हरिहर खनाल, इस्माली, संतोष भट्टराई, राजव, नारायण ढकाल आदि ने व्यंग्य को कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है ।

३.१.३. प्रतीकीकरण

प्रतीकीकरण के माध्यम से विचार को कलात्मक बनाकर प्रस्तुत करने का प्रचलन प्रयोगवादी काल में अधिक दृष्टिगोचर हुआ । तथापि इस चरण में प्रतीक का सरल और प्रभावकारी रूप में उपयोग किया गया प्रतीत होता है । कोरी कल्पना न होकर यथार्थ परिप्रेक्ष्य को दीर्घ प्रभावयुक्त बनाकर अनूठी बातों से जोड़ने की स्वैरकल्पना का उपयोग भी इस चरण में हुआ है । नारी स्वतंत्रता के लिए उद्घोष करने वाले मोहनराज शर्मा की *पंखावती* इस संदर्भ में उत्कृष्ट कथा है । जैनेंद्र जीवन ने *एउटा आधुनिक राजा मिदास* में हर वस्तु को सोना बनाना चाहने वाले मिदास के मिथक को अन्योक्तिमूलक बनाकर समाकालीन कर्मचारीतंत्र

की चरम दुष्प्रवृत्ति का सफलतापूर्वक उद्घाटन किया है। ध्रुवचंद्र गौतम ने *ढुङ्गा* को प्रतीक बनाकर गरीबी के प्रक्षेपण को दीर्घकालीन बनाया है। इंद्र बहादुर राई, शैलेंद्र साकार, धुप सापकोटा, अविनाश श्रेष्ठ, पद्मावती सिंह, इंदिरा प्रसाईं, अविरल स्थापित, किशोर पहाड़ी आदि ने भी सहज प्रतीक, मिथक या प्राक्संदर्भ का प्रयोग कर कथा को रोचक और गंभीर बनाया है।

३.१.४. आंचलिकता

प्रयोगवादी कथाओं द्वारा शहरी परिवेश और पाश्चात्य से उधार लिए गए विचार का महत्व दिया गया प्रतीत होता है, वहीं इस चरण में ग्रामीण जीवन के दुखों को उकेरने और उनकी आकांक्षाओं को समेटने वाली कथाएँ आई हैं। धूर्त-चतुरों के जाल में फँसकर अत्यंत सस्ता जीवन जीने को वाध्य सुदूर गाँवों की कथा और व्यथा दिखाकर ऐसी कथाओं ने शासकों की प्रचारवाज़ी और यथार्थ के विपर्यास (paradox) का रहस्योद्घाटन किया है। सनत रेग्मी पश्चिमी तराई के नेपालगंज में पले बढ़े पात्र और स्थानीय समस्या के उत्खनन में सशक्त हैं। उनकी *रामभरोसेले नागरिकता पाएन, फूलमतिया, लक्ष्मनियाको गौना* जैसी कथाओं ने राजनीतिक-सामाजिक संस्कार की विसंगतियों का अन्वेषण किया है। मनु ब्राजाकी, हरि अधिकारी, विनय कुमार कसजू, रत्न कोजू, रमेश गोर्खाली, ऋषिराज बराल, खगेंद्र संग्रौला, इस्माली, नयनराज पांडे आदि ने विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित गरीबी और चेतना के द्वंद्व में जी रहे नेपाली जीवन की वास्तविकताओं का यथार्थ धरातल से चित्रण किया है और आंचलिकता का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है।

३.१.५. बहिर्मुखिता

प्रयोगवादी कथाएँ व्यक्ति उन्मुख होने के कारण ये अधिकांश अंतर्मुखी दिखती हैं। परंतु इस चरण की कथाएँ सामाजिक सरोकार से बंधी होने से अधिक अंतर्मुखी हैं। व्यक्तिगत अनुभवों को भी कथा में रखने से सार्वजनीकरण की प्रवृत्ति ऐसी कथाओं में पाई जाती है। शोषण, अन्याय, चरम गरीबी, स्वतंत्रता पर बंधेज, भेदभाव आदि के प्रकटीकरण में बहिर्मुखिता अभिव्यक्त होने से इनका आसान और प्रभावकारी होना स्वाभाविक ही है। मानवीय सूझ-बूझ से रहित अनुभव निम्न कोटि का खोखलापन है। कथाकार में तो जीवन की संवेदना को सार्वजनिक करने की क्षमता होती है। राजव की *भैंसी अङ्कल* कथा प्रथम पुरुष में लिखित होते हुए भी बहिर्मुखी कथा है, जिसमें धन से उन्मत्त लोगों की मानवीय भावशून्यता को बड़ी ही मार्मिकता के साथ प्रदर्शित किया गया है। भागीरथी श्रेष्ठ की *मातृत्व*, माया ठकुरी की *चौतारो साक्षी छ*, मीरा प्रधान 'रेम' की *एउटा महानगरमा*, अमर शाह की *आदि युग*, नकुल सिलवाल की *मानहानी*, मनु ब्राजाकी की *आमालाई बेच्नु हुँदैन लाटा !*, मोहनराज शर्मा की *दसमुख र सीता* जैसी कथाओं में व्यक्तिगत अनुभव सार्वजनीकरण किया गया है और कथा को सामाजिकतामुखी और संप्रेषणमुखी बनाया गया है।

३.१.६ ठोस कथा का बाहुल्य

प्रयोगवादी कथाएँ व्यक्तिगत अनुभव में अधिक उलझे होने के कारण उनमें अकथा का अंश अधिक था परंतु इस चरण की कथाओं में कथानक प्रधानता उपस्थित है। वैसे तो उनमें रैखिकता का अभाव भी दिखता है और चरित्र या सारवस्तु में केंद्रित न होकर शैली का ही अनुसरण करने की प्रवृत्ति भी है किंतु मूल बहाव को दृष्टिगत करने पर कथा में ठोसपन (concreatness) प्राप्त होता है। निर्मित होते हुए भी इंद्रबहादुर राई के साथ ही प्रगतिशील चेतनायुक्त कथाकार इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं। पारिजात, नारयण ढकाल, सनत रेग्मी, विश्वंभर चंचल, खगेंद्र संग्रौला, राजव, जगदीश घिमिरे, इस्माली, हरिहर खनाल, गोरख बहादुर सिंह आदि की कथाओं में विचार की प्रबलता को स्पष्ट करने के लिए कथानकीय संरचना ठोस रखी गई है और इन्होंने विशेष कलात्मक व्यंग्य को भी कथा में समाहित किया है। कतिपय प्रयोगवादकालीन कथाकार और परंपरागत शैली के कथाकारों का सपाटपन (over simplicity) ठोस होते हुए उतना प्रभावकारी नहीं दिखता।

३.१.७. यौनमूलकता

समकालीन विसंगति का एक मुख्य क्षेत्र यौन भी है। पंचायती शासन के ठेकेदारों के ही बलात्कार और महिला की बिक्री जैसे अपराधों में सहभागी होने के संदर्भ में एवं यौन व्यापार के प्रकटीकरण के सिलसिले

में कथा यौनमूलकता अपनाती है। दूसरी तरफ़ हिप्पीपन के अवशेष के अनुसरण और विसंगति के विरुद्ध संघर्ष क्षमता युक्त विचार का पलायन होने से पाठक में यौन उत्तेजना बढ़ाने के उद्देश्य से यौनमूलक कथा लिखी जाती है। पूँजीवादी विकृति और क्षयोन्मुखी मनोवृत्ति के वशीभूत होकर भी कतिपय कथाकार सस्तेपन की ओर उन्मुख दिखते हैं। प्रेमा शाह, मनु ब्राजाकी, पुष्कर लोहनी, शैलेंद्र साकार, परशु प्रधान, हरि अधिकारी, अविनाश श्रेष्ठ, गोविंद गिरी 'प्रेरणा', सीता पांडे आदि ने यौनमूलक कथाएँ लिखी हैं। सामाजिक विसंगति के विरुद्ध कदम उठाने की अपेक्षा यौन को बाज़ारू क्रियाकलाप के मनोरंजन में आकृष्ट करने के उद्देश्य से ऐसी कथाएँ लिखी गई हैं, जो कि भद्दी, अश्लील और कलात्मकताहीन अधिक हैं। यथार्थ की आलोचना करने वाले मनु ब्राजाकी और नारीवादी चेतना प्रस्तुत करने वाली मीरा प्रधान 'रेम', सीता पांडे जैसे कथाकार इस संदर्भ में अधिक मूल्यवान प्रतीत होते हैं।

३.१.८. आशावादी दृष्टिकोण

प्रयोगवादी कथाओं में अस्तित्ववादी-विसंगतिवादी दृष्टि को प्रधानता प्राप्त तथा गोलमाल (विट जेनरेशन, दादावाद) की स्थिति के कारण अधिकांश कथाओं में निराशावादी दृष्टिकोण दृष्टिगोचर होता था और चूँकि इस चरण की कथाओं में सामाजिक पुनर्निर्माण के प्रति आस्था प्रदर्शित करनी थी इसलिए कथाकारों ने आशावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। स्वतंत्रता, जनतंत्र जैसे विषयों में दिखने वाले दृढ विश्वास और मानवीय सत्ता के लिए विकृति का विरोध करने वाली कथाएँ आशावादी स्वर (voice) में लिखी गई हैं। प्रगतिशील कथाओं में ऐसी जीवन दृष्टि प्रबल और तीव्र दिखती है, जबकि अन्य सचेत कथाकारों ने भी सार वस्तु में आशा का संचार किया है। मोहनराज शर्मा, ध्रुव मधिकर्मी, सनत रेग्मी, गोपाल पराजुली, नगेंद्रराज शर्मा आदि ने अधिकांश कथाओं के द्वारा आशा की किरणों का संचार किया है।

३.१.९. भाषा में संवेदनशीलता और संप्रेषणीयता

प्रयोगवादी कथाएँ भाषिक दुरूहता और शिल्पगत मिश्रण के कारण क्लिष्ट थीं, जबकि इस चरण में आकर कथा ने अपेक्षाकृत सरलता के कारण संप्रेषणीयता प्राप्त की है। सरलता का तात्पर्य भाषा की नीरसता नहीं, वरन् यह पाठक के मन में संवेदना उत्पन्न करने में सक्षम उपयुक्त भाषिक प्रयोग को इंगित करती है। व्यक्तिगत प्रतीक और विदेशी भाषा के शब्दों के मनमाने प्रयोग की अपेक्षा सार्वभौम प्रतीक और नेपाली भाषिका के संतुलित प्रयोग से सौंदर्य चेतना का उद्घाटन करने में इस चरण की कथाएँ सफल हैं। इन कथाओं की अभिव्यक्ति प्रक्रिया में जटिलता न होने से भी संप्रेषण में सहजता हुई है। युगीन स्वर को लेकर चलने और इसे चारों ओर प्रसारित करने के दायित्व बोध के कारण भी सरलतामुखी पाठकीय संवेदना युक्त कथाएँ इस चरण में लिखी गईं। कथा अयथार्थ रचना होते हुए भी समकालीन कथा ने अंततोगत्वा वर्तमान जीवन को संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करने की क्षमता प्राप्त करके छोड़ा है।

जन आंदोलन पूर्व के परिवेश अनुरूप अवलोकित समकालीन कथा की प्रकृतियों का उल्लेख यहाँ प्रयोगवादी कथा की सापेक्षता में, रेखांकन की स्पष्टता के लिए किया गया है। ये प्रसंग जन आंदोलन पश्चात् के परिवेश और प्रकृति की भिन्नता को दिखाने में उतने ही सहयोगी हैं।

३.२. जन आंदोलन पश्चात्

वि. सं. २०४६ चैत २६ को नेपाल में बहुदलीय व्यवस्था की घोषणा पश्चात् राजनीतिक स्थिति में ही नहीं, वरन् आर्थिक, सांस्कृतिक क्षेत्र में भी बड़े परिवर्तन हुए हैं। ऐसे बहुत-से परिवर्तनों ने जनता को और भी जर्जर और निकम्मा बना दिया है और यह प्रक्रिया जारी है। आज की कथा राष्ट्रीय ही नहीं, वरन् अंतरराष्ट्रीय सन्दर्भों से भी प्रभावित हो रही है। वहीं देश में व्याप्त बाज़ार मुखी अर्थतंत्र और संचार साम्राज्य की चपेट में पड़कर उत्तर आधुनिक नेपाली कथा आगे बढ़ रही है। इस चरण में दृष्टिगत हुई परिवेशगत बिंदुओं को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है :

(क) बहुदलीयता की स्थापना और सरकार में पार्टी प्रतिनिधित्व का प्रारंभ (२०४७)

(ख) नया संविधान लागू (२०४७)

(ग) राष्ट्रीयता के ऊपर घात-प्रतिघात की स्थिति का सृजन (२०५०)

(घ) प्रत्येक विषय का दलीकरण एवं राजनीति में

उत्तरदायित्व का अभाव और अनुशासनहीनता का सृजन (२०५०)

(ङ) मध्यावधि चुनाव (२०५१)

(च) सत्ताभोग और शक्ति दुरुपयोग के लिए सत्ता परिवर्तन के खेल (२०५१)

(छ) प्रतिगामी तत्वों का पुनरुत्थान (२०५२)

(ज) दीर्घकालीन प्रभावयुक्त संधि (२०५२)

(झ) माओवादी जनयुद्ध का प्रारंभ (२०५२)

(ञ) युद्ध से भीषण क्षति, वार्ता असफलता और माओवादी को आतंककारी एवं देश में संकटकालीन स्थिति की घोषणा (२०५८)

इस राजनीतिक परिवेश के अतिरिक्त आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश का आभास निम्नलिखित विंदुओं से पाया जा सकता है :

क) विश्व वाज़ार की तरफ़ झुकाव की स्थिति, गरीवी और मूल्यवृद्धि

ख) संस्थानों का निजीकरण, वैदेशिक ऋण एवं औपनिवेशिकता में तीव्रता

ग) सांस्कृतिक विघटन, विकृति और अंधानुकरण

घ) कंप्यूटर संजाल पर आधारित शहरी समाज की सार्वजनिक क्षेत्र में तटस्थता

ङ) राजनीतिक नैतिकता का विलय और चम्चागीरी प्रथा की अतिव्याप्ति

च) न्याय व्यवस्था कमज़ोर और महँगी

छ) वेरोज़गारी में वृद्धि और देश से पलायन को प्रतिष्ठा की मान्यता

ज) वहुलवादी समाजशास्त्र के नाम पर जातीय, भाषिक और धार्मिक फूट का व्यापक सृजन और राष्ट्रीयता का कमज़ोर होना

झ) एनजीओ संस्कृति, डॉलर की खेती और व्यक्तिवाद का चरम विकास

ये और इसी प्रकार की राजनीतिक तथा इससे उद्भूत अन्य विकृतिपूर्ण सामाजिक व्यवस्था में सृजित आज की कथा अनूठे संस्कार के साथ विकसित हो रही है। आज की कथा भौगोलिक आधार की अपेक्षा कथाकार द्वारा प्रदर्शनीय यथार्थ के प्रति संवेदना और जीवन के प्रति अभिवृत्ति से भिन्न होती है। वास्तव में इस चरण की कथा ने चेतना की पीड़ा झेलकर अनुभवीकरण की ओर आकृष्ट होकर शुतुरमुर्ग के वालू में सर छिपाने के समान स्वयं की ओर लौटते हुए सर को छिपाए रखा है। ऐसी कुछ कथागत प्रवृत्ति को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है :

३.२.१. स्वतंत्रता पीडा

जन आंदोलन के वाद देश में स्वतंत्रता तो आई लेकिन उससे आर्थिक, सामाजिक क्षेत्र में संतुष्ट हो पाने का स्थान न रहा। सभी क्षेत्रों का राजनीतीकरण किया गया और जीवन मूल्य में और ह्रास आ गई। स्वतंत्रता के नाम पर अनेक षड्यंत्र और देश हित विपरीत बड़ी डकैतियाँ हुईं और राष्ट्रीयता की विक्री को खुला कर दिया गया। इससे न केवल क्रांति की अपूर्णता महसूस हुई, वरन् स्वतंत्रता तो एक रोग में परिणत होने लगी। यही अनुभूति इस चरण की कथाओं में उँडेली गई है। नयनराज पांडे की *रोग* को इसी संदर्भ की सुंदर अभिव्यक्ति माना जा सकता है। मनु ब्राजाकी की *भविष्य यात्रा*, देवी प्रसाद सुवेदी की *लालवीर को शहादत*, खगेंद्र संग्रौला की *विवेक खरीदविक्री डिपोपरिपरि*, नारायण ढकाल की *गद्दार-९६*, किशन थापा 'अधीर' की *स्थिति* आदि ने भी स्वतंत्रता-पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। स्वयं को प्राप्त वरदान स्वयं के लिए ही अभिशाप होने वाले भस्मासुर के समान यथार्थ वोध कथा में व्यक्त होना पूर्ण आकांक्षा का विलोम था। पूँजीवादी विचार ग्रहण करते हुए भी उसी के विपरीत स्थिति का समर्थन करने की वाध्यता और प्रजातांत्रिक आस्था होते हुए भी उसी के विरुद्ध लिखने की लाचारी समकालीन कथाकारों में दिखाई देती है, जो कि युगीन आवश्यकता और परिस्थिति के प्रति आत्मसमर्पण भी है।

३.२.२. विकृति के प्रति आक्रोश

राजनीतिक परिवर्तन पश्चात् समाज में प्रत्येक क्षेत्र में विकृति का भंडार दिखने लगा है। पहले की वैचारिक रूप से सवल शक्तियाँ पंगु वन गई हैं और नैतिकता के प्रश्न पर केवल हाथी के दिखाने वाले दाँत। व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए माँ तक को दाँव पर लगाने को तैयार अति पूँजीवादी प्रवृत्ति बढ़ते जाने से और विदेशी हस्तक्षेप के खुले आमंत्रण में सत्ता नियंत्रकों के ही केंद्रित होने का विसंगत परिवेश झेलने को बाध्य होने के कारण कथा की भूमिका सवल प्रतिपक्ष की सी हो गई है। पूँजीवादी समाज में पूर्ण मानवीय जीवन की सम्मानपूर्ण आस्था सुरक्षित न होने का निष्कर्ष निकालने

में इस परिस्थिति ने कथाकारों को सहयोग दिया है। यह समकालीन विकृति के प्रति आक्रोश की परिणति है। इसी सार वस्तु में इस चरण की कथा की मूल धारा प्रवाहित हुई है। आक्रोश के भँवर में पड़कर कतिपय कथाकारों ने पलायन का मार्ग अपनाया है, जबकि कई उग्र रूप से नारेबाज़ी पर उतर आए हैं। गोरख बहादुर सिंह की *भाषण की तैयारी* कर्मचारी तंत्र का पर्दाफाश करने को उद्यत है तो ध्रुवचंद्र गौतम की *अनुसंधान*, भाउपंथी की *तंत्र*, ध्रुव सापकोटा की *बिजुली बजार* आदि कथाएँ देश के अर्थतंत्र की जर्जर अवस्था के प्रति आक्रोशपूर्ण प्रतिक्रिया के रूप में उभरी हैं। जहाँ मानवीय संबंध स्वार्थ और षड्यंत्र पर आधारित हो, जहाँ संस्कृति को लात मारते हुए नग्न नृत्य प्रस्तुत किया गया हो, वहाँ विकृति का प्रादुर्भूत होना और उसके प्रति कथाकारों का आक्रोशित होना स्वाभाविक ही है।

३.२.३. शैली में खरापन

आज के शहरी नेपाली स्वयं को विश्व गाँव (Global village) के निवासी मानते हैं परंतु ढहते जा रहे अपने आर्थिक, सांस्कृतिक आधारों का पता उन्हें नहीं चलता या पता पाकर भी दंत्यकथा का पात्र समझकर वे आनंदित होते हैं। भरसक नया बनने की आकांक्षा, समय की बचत, त्वरित् स्थापित होने की ललक इनके मस्तिष्क में है, जिसके कारण सीधे रूप में अपनी बातें व्यक्त करके दायित्व से मुक्त होना चाहते हैं। इस कारण कथा खरी शैली अंगीकार करने लगी है। भूमंडलीकरण का दूसरा प्रभाव यह है कि इसने कथा के रूप को ही कम्प्यूटर के स्क्रीन की तरह तथ्य आधारित (data based) बनाने की शैली आयात कर ली है। एक ओर जहाँ बाह्य की अपेक्षा आंतरिक मनोवाद को कथा में प्रधानता मिल रही है, वहीं दूसरी ओर कथाएँ घटना का संयोजन न होकर टुकड़े-टुकड़े में विभक्त हो रही हैं। नयनराज पांडे की *अन्तर* ऐसे ही टुकड़ों का एकीकृत रूप है तो कुमार नगरकोटी की *माउसुली* अपने आप में विसंगत रचना है। रोशन थापा 'नीरव' की *इन्डिगो ग्यालरीमा एक साँझ* कथा को पढ़ते हुए किसी वेबसाइट को देखने जैसा प्रतीत होता है, जिसमें सांख्यकीय तथ्य संकलित होते हैं। इस प्रकार की कथा शैली 'व्यस्त' सभ्यता के प्रभाव से उत्पन्न विविध भाषिक ढाँचा (verbal pattern) में अनूदित दिखती है।

३.२.४. मार्क्सवादी ध्रुवीयता

वर्गीय अंतर्द्वंद्व के रूप में नेपाल में माओवादी जनयुद्ध शुरू होने के साथ ही समाज को देखने के दृष्टिकोण में ध्रुवीयता आई हुई दिखती है। शांत स्थिति में होने पर पक्ष-विपक्ष का तर्क देते हुए भी निराकरण की स्थिति में एक तरफ़ आने या उससे अनभिज्ञ की भाँति भागने की अवस्था समकालीन नेपाली कथा में भी सृजित प्रतीत होती है। वि. सं. २००७ साल के आसपास आरब्ध कथा की मार्क्सवादी परंपरा सभी परिस्थितियों में दृढ रहती आई है और वर्तमान परिस्थिति में वह और भी सबल बनती गई प्रतीत होती है। युद्ध के समर्थन और विरोध के विपरीत ध्रुव भी कहीं-कहीं दिखता है किंतु वैसी कथाओं को नगण्य ही माना जा सकता है। महेश विक्रम शाह की *खुमा* जैसी कथाओं को विपरीत ध्रुव से देखा जा सकता है परंतु वैसी कथाओं की सबलता दृष्टिगोचर नहीं होती। मार्क्सवादी प्रतिबद्धता के साथ ऋषिराज बराल की *वनमान्छेको कथा*, *सैन्यउपहार*, खगेंद्र संग्रौला की *हृदयराम की डायरी*, रुद्र ज्ञवाली की *शहरभित्र*, विवश वस्ती की *टोलभित्र* जैसी कथाएँ आगे आ रही हैं तो नवीन विभास, देविका तिमल्सिना, इस्माली, पूर्णविराम आदि की कथाएँ भी इस संदर्भ में खरी दिखती हैं। सामाजिक अंतर्विरोध की नई परिस्थिति के कारण पलायित होने, प्रेम के प्रति मोह और यौन की सरित् में डुबकी मारने वाले इंद्र कुमार 'सरित्', रत्न प्रजापति, मीरा प्रधान 'रेम', सीता पांडे, कुमार नगरकोटी जैसे कथाकार अधिक दिखने लगे हैं किंतु इनके वैचारिक आधार क्षीण हैं। विद्यमान संकटकालीन स्थिति में तो दूसरी बाध्यता है– तर्क, विवेक और यथार्थ को परदे में रखने की बाध्यता। जिसके विरुद्ध कथा लिखी जाती है, उन्हीं की दृष्टि में राजनीतिनिरपेक्ष या विशुद्ध साहित्यकार बनने के मोह में कतिपय कथाकार अज्ञात रूप में कुएँ के पानी की तरह स्थिर बने बैठे हैं और समाज की गतिशीलता को सम्यक रूप से भाँप नहीं पा रहे हैं।

३.२.५. अंतर्मुखिता

आज की कथा में समकालीन यथार्थ अनुभव को व्यक्त किया जाने लगा है। ऐसी कथाएँ वास्तविकता

को अनुभूति में ढालकर प्रस्तुत होती हैं। मार्क्सवादी इतर अधिकांश कथाकार समाज की अपेक्षा स्वयं की ओर मुड़े हुए हैं, यद्यपि उनमें समाज चित्रण न हो, ऐसा भी नहीं है। नादिन गोर्डिमिर कहती हैं– "मनुष्य के संबंध की जटिल और अंधकार परिस्थिति में कथाकार अपने ही अनुभव के प्रकाश के आधार पर देखते हैं और उनकी कला वहाँ मुखरित होती है, जहाँ वर्तमान क्षण की अभिव्यक्ति होती है।" यद्यपि बालकृष्ण पोखरेल की *मिस डेबोराह*, महेश विक्रम शाह की *चम्पी* वा *यात्राहरू जुन कहिल्यै टुङ्गिदैनन्*, नारयण ढकाल की *बहिर्गमन* आदि बहुत-सी कथाएँ भी अनुभूति के प्रकाश में ही समाज को देखने में सक्षम हैं। मोहनराज शर्मा की *महाशून्य*, गोविंद प्रसाद कुसुम की *शहरी अक्टोपस र जिन्दगी*, रमेश क्षितिज की *अनुत्तरित*, रोशन थापा 'नीरव' की *अन्तहीन युद्ध*, राजेंद्र पराजुली की *विकल्प यात्रा* जैसी कथाएँ अंतर्मुखिता के उदाहरण ही नहीं, वरन् यथार्थ अनुभव (blood and flesh) के उत्कृष्ट पहलू भी हैं। कथा में आत्मकथ्य की प्रधानता का हावी होना मध्यमवर्गीय ह्रासोन्मुख मानसिकता की उपज है। ऐसी कथाओं में गरीबी, अभाव और उदासी का गहरा दुख बोध होते हुए भी ये कथाएँ निम्नवर्गीय नहीं हो सकी हैं।

३.२.६. तरल कथा की पुनर्स्थापना

कथानक, चरित्र, परिवेश आदि को महत्व न देकर लिखी जाने वाली अकथात्मक कथाओं को इस चरण में पुनः प्रवेश मिलने लगा है। सामान्य रूप में रचित होते हुए भी क्रमशः जटिल बनते जाने के कारण ऐसी कथाएँ कतिपय स्थिति में क्लिष्ट बन जाती हैं। अंतर्मुखिता और अनुभव की प्रधानता से तरल कथाएँ जनमती हैं। मोहनराज शर्मा की *माछोकथा*, धुवचंद्र गौतम की *लाश पाइयो/लाश चाहियो*, मीरा प्रधान 'रेम' की *आत्ममंथन*, तुलसी कश्यप की *कतै नभन्दिने कथा*, कविताराम की *सकारात्मक आँखाले हेर्नू* जैसी कथाओं में अकथात्मकता की स्थापना मिलती है। स्पष्ट संरचना न होने से ऐसी कथाएँ जहाँ भी बह सकती हैं और कई बार तो आख्यानात्मकता को त्यागकर निबंधात्मक बन जाती हैं।

३.२.७. अर्थबहुलता का प्रवेश

समकालीन कथा में उत्तर आधुनिकता की छवि प्रविष्ट हो चुकी है। बहुलवादी समाज की स्थिति में प्रत्येक संरचना में बहुअर्थकता की खोज हो रही है। और कथा भी सामाजिक व्यक्ति का ही सृजन होने के नाते उसकी बहुअर्थकता की संभावना और अधिक है। इंद्रबहादुर राई द्वारा आरंभ किए गए लीला लेखन के 'ब्लैक होल' में नेपाली कथाएँ भी प्रविष्ट हो रही हैं परंतु वे रुग्ण जीवन दर्शन और जर्जर आर्थिक परिवेश के कारण 'भूख' का एक ही अर्थ दे सकते हैं। इस विडंबना के साथ-साथ इंद्र बहादुर राई की *भ्याल*, कुमार नगरकोटी की *मेटाफिज़िक्स* आदि कथाओं को विपर्यास के रूप में ही देखा जा सकता है। सौंदर्य चेतना की दृष्टि से बहुअर्थकता उतनी त्याज्य नहीं है किंतु सामाजिक यथार्थ से, संघर्षशीलता से पलयान होने वाले और विचार को मत-मतांतर की अनिराकरणीय श्रृंखला मानने वाले राई जैसे लेखक गण हिंदू पुनरुत्थानवाद का सपना देखते हुए मनुष्य को असहाय और कैरम की गोटी साबित करने की पूँजीवादी वैचारिकता प्रदर्शन कर रहे हैं और वे उदंग भी हो रहे हैं। दूसरी तरफ़ अमर शाह की *जालो*, अविनाश श्रेष्ठ की *दन्त्यकथाभित्रको दन्त्यकथा*, शिव प्रणत की उर्वशीको विरालो जैसी कतिपय कथाओं में अर्थबहुलता के माध्यम से अर्थगत तहों का अन्वेषण कर कलात्मक आनंद भी प्रदान किया गया है।

३.२.८. निराशावादी जीवन दृष्टि

इस चरण की कथाएँ एक तरफ़ उद्देश्यपूर्ण प्रगतिशीलता और दूसरी तरफ़ विकृति की आलोचना करते हुए निराशापूर्ण विचार में गिरने की दृष्टि से दो प्रकारों में विभक्त हैं। यथार्थ की आलोचना करने वाली कथा की भी रणनीति (strategy) जब असहायता प्रदर्शित करती है, तब उसमें पराजय का आक्रोश उत्पन्न होता है। यदा-कदा अति उग्र विचार देने वाले कथाकार जल्द ही निराशा के मार्ग पर आ पहुँचते हैं। आज के पूँजीवादी जाल के बीच जीवन की निरीहता प्रदर्शित करते हुए कथा लिखने वाले कथाकारों सूची बढ़ती जा रही है। विकृति का सामना करने में असमर्थ या सही मार्ग चुनने की क्षमताहीनता के कारण समाज की आलोचना भी व्यक्तिगत असंतुष्टि में ही सीमित हो जाती है, जबकि कदाचित् वह विकृति को ही बढ़ावा दे रही होती है। समाज के द्वंद्व को न

पहचान पाने और मूल समस्या से दूर भागकर अपनी कायरता के पक्ष में तर्क देने की प्रवृत्ति के कारण इस प्रकार की कथाएँ अधिक स्थान अधिगृहीत करती हैं ।

३.२.९. भाषा में नीरसता

आज के युग को संचार साम्राज्य धीरे-धीरे अपने नियंत्रण में ले रहा है और इसी सूचना प्रविधि (information technology) के अत्यधिक विकास के कारण समाज के विज्ञापन में सीमित होने के लक्षण दिखाई देते हैं । इस कारण भी इस चरण की कथाओं में संवेदनशीलता में ह्रास आकर सीधापन बढ़ता जा रहा है । इसी वैज्ञानिक प्रभाव के कारण कथा की भाषा भी नीरस होती जा रही है । नवीन शैली के मोह में भाषा को तोड़-मरोड़ करने की प्रविधि एक तरफ़ है तो दूसरी तरफ़ कलात्मकता की कमी के कारण 'यांत्रिक लेखन' किए जाने से भी खड़ी भाषा का प्रयोग होता है । युगानुकूल कथ्य भाषा के प्रयोग के कारण भी व्यंग्य उत्पन्न करने के लिए कतिपय कथाओं में नीरस भाषा का उपयोग सही प्रमाणित हो सकता है । सरुभक्त द्वारा *यामागल* जैसी विज्ञान कथा में प्रयुक्त भाषा वैज्ञानिक सूचना के कारण नीरस होते हुए भी उपयुक्त है, जबकि रोशन थापा 'नीरव' की *प्रत्यय* कथा की भाषा ने यंत्रवत् सामाजिकता पर व्यंग्य के माध्यम से कठोर प्रभाव उत्पन्न करना चाहा है, जो कि स्वाभाविक दिखता है । इसी तरह नयनराज पांडे की *उँचाई*, कणाद महर्षि की *भाग्यको परिभाषा*, संजय विष्ट की *भविष्यवाणी*, मोहनराज शर्मा की *वैखरी* जैसी कथाओं में भी कथ्य के साथ खड़ी भाषा ने सामंजस्य ही स्थापित किया है । पुष्कर लोहनी की *उत्तेजित घेरा* में भाषा की नीरसता ने अश्लीलता की खेती कर नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न किया है तो कविताराम की *सकारात्मक आँखाले हेर्नू* कथा ने भाषा की अर्थपूर्ण शृंखला को ही तोड़कर संप्रेषण में ही नहीं, स्वयं को ही विकृत बना दिया है । ऐसा प्रयोग भाषा का चरम दुरुपयोग है और कथा के नाम पर आडंबर का निकृष्ट प्रदर्शन है । विकृति, विसंगति की चिंता से रोगी बनी कथाओं में भाषा की संवेदना का ह्रास होता जाना अब की स्थिति में सामान्य बनता गया है । इसने पाठक की मानसिकता की अवहेलना की है क्योंकि भाषा के उचित प्रयोग से पाठक का कौतूहल भी कथा में संलग्न होता है और काल्पनिकता को उद्दीप्त बनाकर कथा को और आगे बढ़ाता है परंतु आज की कथा को देखकर यह आभास होने लगा है कि नीरस भाषा में कथा लिखना पाठक के साथ संबंध विस्थापित करना है ।

४. निष्कर्ष

जीवन दर्शन की संपूर्णता का चित्रण न कर सकने वाली होते हुए भी आज की कथा आज की परिस्थिति, अनुभव और प्रतिक्रिया अभिव्यक्त कर कलात्मक सौंदर्य देने वाली प्रभावकारी और उपयुक्त साहित्यिक विधा है । कथा की गतिशीलता उसमें अंतर्भुक्त काल चेतना पर निर्भर करती है और काल चेतना सामाजिक अंतर्द्वंद्व बोध और सौंदर्यानुभूति पर आधारित होती है । कथा के काल की धारणा भी इतिहास, सामाजिक चेतना और कलात्मक रूपांतरण पर आधारित रहती है । परिवर्तन अनिवार्य भवितव्य होते हुए भी उत्कर्ष का मापन स्पष्ट मूल्य की स्थापना के माध्यम से की जाने वाली प्रक्रिया होने के कारण उसके लिए सैद्धांतिक मानक आवश्यक होता है । अतः इस लेख में समकालीन नेपाली कथा के सर्वेक्षण से पूर्व कथा की सैद्धांतिक और ऐतिहासिक स्थापना और साहित्यिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवेश का पर्यवलोकन किया गया है । इससे प्रयोगवादी कथा की सापेक्षता में समकालीन कथा का परिवर्तन स्पष्ट हुआ है किंतु प्रगतिशील कथा की उपस्थिति और भूमिका प्रत्येक खंड में उतना ही महत्वपूर्ण और दायित्वपूर्ण दिखा है । समाजसचेतना और कथा की क्रांतिकारिता के लिए यह एक सुखद संकेत और संदेश भी है । इसके अलावा जन आंदोलन पूर्व और पश्चात् की कथाओं में दिखने वाले परिवर्तन की बिंदुएँ प्रदर्शित होते हुए भी उत्कर्ष की तुलनात्मक अवस्था का तुरंत ही निराकरण कर लेना उपयुक्त नहीं होगा । इन बिंदुओं के अपेक्षाकृत स्थिर होने के लिए समय लगेगा, इसलिए इनके संपूर्ण पक्षों का विश्लेषण कर स्पष्ट करने का कार्य भविष्य में मात्र पूरा हो सकता है ।

अनुवादक : मुकेश कुमार मिश्र

रूम नं. ३२५

अर्जुन थापा

"रूम नं ३२५ ! सीधे आना बिना किसी से पूछे," मैं उत्तर देती हूँ।

वह फोन रखता है।

मैं नहाने के लिए बाथरूम जाती हूँ। करीब पौने घंटे के बाद रूम का बेल बजता है। दरवाजे के छोटे से छेद से मैं निहारती हूँ। शायद जिससे मैंने फोन में बात की थी वही आदमी होना चाहिए। दरवाज़ा खोलकर उसे भीतर आने को आग्रह करती हूँ। वह थोड़ा हिचकिचाते हुए अंदर आता है और बेड के साथ रखे चेयर पर धम्म से बैठता है।

मैं सिगरेट का पैकेट दिखाते हुए "पीजिएगा ? " पूछती हूँ।

एक सिगरेट लेता है वह। लाइटर जलाते हुए उसे सिगरेट जलाने देती हूँ और खुद भी एक लेती हूँ। .....गोरे दो उँगलियों के बीच में सफेद लम्बी सिगरेट। वह धीरे से सिगरेट को होंठ की ओर ले जाता है। धुआँ ऊपर की ओर जाता है।" कुछ लीजिएगा ? "

"नहीं" छोटा सा उत्तर देता है वह।

"मैं फ्रेस होकर आता हूँ" कहते हुए वह बाथरूम की ओर जाता है।

मैं खिडकी का पर्दा थोड़ा हटाते हुए बाहर की ओर देखने लगती हूँ। स्विमिङ पुल में कुछ विदेशी लोग तैर रहे हैं, कुछ पुल के पास ही रखे लम्बे सफेल मेच पर लेटे हुए सनबाथ ले रहे है। सड़क पर अन्धाधुन्द गाड़ी सब एक दूसरे से आगे बढ़ते हुए दौड़ रही है। सड़क पर बस का इन्तजार करते हुए एक युवा जोडी से नजर हटाते हुए मैं अपनी आँख दूसरी ओर ले जाती हूँ।

वह अभी भी नहा रहा है। सड़क के लैम्पपोष्ट के प्रकाश में सड़क की रात धीरे से आगे बढ़ रही है। अंधेरे का कोई अर्थ नहीं। मैं बहुत देर तक सिगरेट का कश लेते हुए वही बैठी रही। आसपास के बार और रैस्टुराँ बुला रही थी अपनी ग्राहकों को।

वह सफेद तौलिया लपेटे बाहर निकला। बलिष्ट हाथ पैर, गेहुँवा गोरा बदन, कोई चेतनाशिलता न छिपायी आँखे, छोटे बाल, छाती पर छोटे छोटे बाल वाला एक लड़का मेरे आगे खड़ा होता है। छाती के बाल के हिसाब से वह बीस इक्कीस का होना चाहिए। पुरुष के उम्र का पता लगाना मेरे लिए कोई बड़ी बात नहीं।

मैंने बहुत से आदमी को नजदीक से नग्न रूप में देखा है। वह अपने छरहरे बदन को सहज और खुली मुद्रा में रखकर बिस्तर पर बैठा था। उसका चेहरे उसकी आँखे साफ बयां कर रही थी कि विकृति कहीं है ही नहीं। जो औरों में हुआ करती थी।

उसको उस अवस्था में देखते ही मेरे बदन में एक झनझनाहट हुई। पता नहीं क्यों आज मुझे सब काम फटाफट करने का मन नहीं कर रहा था। इसलिए कोई जल्दीबाजी नहीं की, न ही देखने की चेष्टा। यह कह सकती हूँ कि मैं वैसा कर नहीं सकी। लड़का मेरा इन्तजार कर रहा था, मेरे कपड़े उतारने और सेक्स के लिए।

लेकिन मुझे आज जल्दी नहीं करनी है। उसके मुताबिक उसका ये समय मैंने खरीदा है। आँख का स्वाद जैसे एक साधारण सुख से अपने को वंचित क्यों रखूँ। इसलिए अब मैं उसे निर्वस्त्र हालत में नीचे से ऊपर देखने लगी। मेरे आगे का नग्न पुरुष और ऐसे नग्न पुरुष जिसे मैं नग्न देख चुकी थी उससे मिलाया। नहीं दोनों में कोई सामंजस्य नहीं।

अब मैं ऐसे ही रह न सकी। मैं अपना नियन्त्रण खो बैठी थी, मेरा सर्वांग काँप रहा था। मेरी इस

हालत को देखते हुए, वह मेरे नजदीक आया और मेरे कपड़े उतारने में मदद करने लगा। आवेश में आकर मैंने उसकी गर्दन को जकड़ लिया और उसके लाल होठ पर इतनी ज़ोर से कि खुन निकल जाए, चुम्बन ले लिया। मैं पसीने से भीग गई थी, दिल धड़क रहा था। अब उसके साथ स्पष्ट खेलने के लिए मैं तैयार हो चुकी थी। उसकी आँखो को पढ़ने का सामर्थ्य मुझमें आ चुका था । मेरी तरफ़ देखने का उसका अंदाज़ एकदम नया था। मैं उस क्षण का पूर्ण आनन्द लेना चाहती थी। आसन परिवर्तन के समय उसके मुँह से निकली हुई आवाज़ वातवरण में और कामुकता ला रहा था।

वह उठा, धीरे से अपने कपड़े से अपने शरीर को ढ़क लिया। जिन्स और टी शर्ट में वह बहुत सुन्दर दिखा। आगे रखे सिगरेट जलाकर कश लेने लगा। सिगरेट के धुआँ में उत्सुकता घूम रही थी मेरे और उसके बीच।

"अब मैं जाऊँ ? " उसके प्रश्न को सुनकर मैंने बैग से हजार के दस नोट निकालकर उसे दिए।

वह लजाते हुए पैसे पकड़ता है। मैं उसको देखती रहती हूँ। वह रूम से निकल चुका होता है।

इधर मुझे झट से अपना घर और पति का चेहरा याद आता है। लगातार एक ही बात दुबारा तिबारा सोचकर मुझे गुस्सा आने लगता है। आदमी के लिए सबसे असहनीय अवस्था होती है अपने से गुस्सा होना।

फोन की घंटी बजती है, उठाती हूँ, ए नखरे वाली अभी तक घर नहीं आई हो- पति फोन पर चिल्ला रहा होता है।

अनुवादक : कंचना झा

कहानी

मेरा नया नाम नं. २१५

इल्या भट्टराई

वह दिन मेरे लिए खुशी का था या दुख का, तय कर पाना अब मेरे लिए मुश्किल है। चैत महीने का ऊसठ दिन था वह। वही तो वो दिन था, जब मेरे व्यक्तित्व को एक नया आयाम मिला था। और वही तो वो दिन था, जब मुझे नया नाम मिला था।

ज़िंदगी खुद के सोचने की तरह कहाँ होती है! सोच तो मेरी पता नहीं क्या-क्या थी। इच्छाओं की अनंत गहराई में गोते लगाता हुआ अपनी मुट्ठी में चाँद को बंद कर लेना चाहता था मैं। आकाश की ऊँचाई पर पहुँचना चाहता था। उड़कर सूर्य को छूने का लक्ष्य रखा था मैंने, इसीलिए तो खुद टिके हुए ज़मीन से ऊपर उठने के लिए ही, अपने गंतव्य के क्षितिज पर पहुँचने के लिए ही मैंने बाबा के आगे काठमांडू जाने का प्रस्ताव रखा था।

निर्मल, नीलाभ आकाश में आनंद के साथ गोल-गोल उड़ान भरती निर्बंध उड़ती हुई कबूतर की एक जोड़ी को देखकर उस दिन बाबा से 'कहूँ या नहीं' की दुविधा के साथ मैंने यह बात कही थी। हेमंत ऋतु समाप्त हो चली थी। ठंड के साम्राज्य को पराजित कर गर्मी अपना प्रभुत्व जता चुकी थी। लेकिन फ़िर भी मेरी बात सुनकर बाबा-माँ के मन ही नहीं, शरीर भी काँपते हुए साफ़ दिख रहे थे। शायद मेरी ही बातों से, आँगन में खिली बेली की शाखाओं में उठे कंपन को भी मैंने महसूस किया था।

मेरी बातें सुनकर उस समय बाबा ही नहीं, माँ भी अवाक् रह गई थी। "बेटा, कॉलेज पढ़ने के लिए काठमांडू ही क्यों जाना है? अब हमारे इलाके में भी कॉलेज तो है ही। क्या यहीं रहकर पढ़ा नहीं जा सकता?" सवाल तो उनके काफ़ी सारे थे मगर तुक के जवाब मेरे पास थे या नहीं, मैं यकीन के साथ नहीं कह सकता। आखिर मेरे सुनहरे भविष्य की डगर काठमांडू से ही शुरू होगी, यह सोच मेरे जेहन में पत्थर की लकीर-सी बन गई थी।

मेरी खातिर मेरे बाबा ने जब धान का खेत बेचा तो मन उदास ज़रूर हुआ था। अपने पुरखों की संपत्ति पराए की होने के तथ्य बोध से तकलीफ़ तो होती ही है। फ़िर भी बहुत दुखी मैं नहीं हुआ था, ऐसा मुझे लग रहा है। वैसे भी उस खेत का प्रयोजन भी आखिर मेरे ही भविष्य के लिए था। बाप-दादा के उपार्जन को दाँव पर लगाकर भी उस वक्त मैंने अपने भविष्य को सँवारने की कोशिश की। मैंने क्या बुरा किया था! जुआ खेलकर खेत गँवाया जाता तो दुखी भी होता। उसी खेत के निवेश से भविष्य में वैसे बहुत सारे खेत जोड़ने का सपना बुना था मैंने।

लेकिन बाबा-माँ की बात अलग थी। वह खेत उनका अतीत था, वर्तमान था और भविष्य का सहारा भी वही एक टुकड़ा खेत था। इसीलिए उस खेत को बेचने से आने वाली असुरक्षा के भय से वे काफ़ी डरे हुए थे। उस खेत के साथ पिछली सुखद यादों की वजह से वे बिलख पड़े थे।

और मैं? काठमांडू, अपने सपने की नगरी में आने से मेरा मन तो सप्तरंगी इंद्रधनुष हो रहा था। जेब की गर्माहट उस दौरान मुझे हवा में उड़ा रही थी। जीवन की डगर में बहुत सारे काँटे बिछे हुए हैं, इस बात की कल्पना भी मैं कहाँ कर सका था।

लेकिन जीवन खोजे जितना आसान कहाँ होता है! सोचे जितना मज़ेदार कहाँ होता है! रोटी, कपड़ा और मकान के अवयवों को खींच-तानकर जीवन के कैनवस पर एक सुंदर चित्र बनाना आसान भी कहाँ होता है! टुकड़े-टुकड़े सपनों को पिरोते-पिरोते जीवन का गड्ढा इतना विशाल हो जाता है, जिसे भर पाना दुभर हो जाता है। अभाव ही अभाव के बीच रंगीन

सपनों का चँदोवा लगाना हम जैसों के लिए आसान कहाँ होता है ! लेकिन क्या किया जाए, मन तो आखिर मन है, संपन्नता का मीठा स्वप्न देखना यह कहाँ छोड़ता है !

गाँव में महासागर-सी लगने वाली अपनी श्री-संपत्ति काठमांडू में आकर ऊँट के मुँह में जीरा हो जाएगी, यह बात अगर समझ जाता तो शायद मैं खेत बेचता ही नहीं। अपना सर्वस्व समाप्त करके गाँव से लाए हुए पैसे काठमांडू की मेरी रिहाइश को अनाकर्षक और बेरंग बना देंगे, यह अगर मुझे पता होता तो शायद मैं खेत बेचकर यहाँ पढ़ने ही नहीं आता।

महज किफ़ायती तौर पर खर्च किए जा सकने वाले उस थोड़े से पैसे ने मेरे अंदर गहरा अवसाद भर दिया था। सिर्फ़ किराए का कमरा और कॉलेज की इकहरी नीरस दैनिकी ने मेरे जीवन के बचे-खुचे रंग को भी उड़ाकर बदरंग कर दिया था। खाने, पीने और सोने के अलावा जीवन में और था ही क्या ! दिन-रात की हड़ताल तो मानो जीवन की आशा की बुनियाद को ही दबा देना चाह रही थी।

इसी तरह समय साल-दर-साल के पायदानों को पार कर रहा था। पर मेरा समय अनिश्चित भविष्य और अनिश्चित मनस्थिति के बीच गोते खा रहा था।

आसन्न लोकतंत्र हमारी दिनचर्या के आशय को ही अलग करता जा रहा था। हमारा समय पढ़ाई की बजाए राजनीतिक तर्क-वितर्क करने में ही बीत रहा था। साथ के दोस्त लोग लोकतंत्र को जल्द लाने के उतावलेपन में सड़क पर ही उतरते रहते थे। उनके खाने-पीने का इंतज़ाम सड़क ही कर रही थी मगर किताब के ज़रिए भविष्य बनाने के लिए काठमांडू आया हुआ मैं अपने खाने-पीने के जुगाड़ के लिए सड़क को माध्यम नहीं बना सका।

बाकी साथी गद्‌गद् होते थे। देश में लोकतंत्र लाने की बात पर उत्साहित होते, पर मैं कसमसा रहा होता। मुझे सड़क पर जाकर आंदोलन करने की बजाए कक्षा में बैठकर पढ़ पाने पर खुशी मिलती। और अपने माँ-बाबा को जो त्याग करने को मजबूर किया था, उसका प्रतिफल पाने पर मुझे खुशी मिलती। मुझे सड़क पर मिलने वाला मुफ़्त का खाना खाने में कोई दिलचस्पी नहीं थी। उसके बदले वही भोजन सामग्री कमाने की खातिर योग्यता हासिल करने के लिए पढ़ने में दिलचस्पी थी।

इसीलिए उन दिनों का आंदोलन मेरे अंदर कोई उत्साह नहीं भर सका था। बल्कि माँ-बाबा ने अपने कलेजे पर पत्थर रखकर अपनी मिट्टी को पराया बनाकर मेरा जीवन बनाने के लिए जो प्रयास किया था, वह ऐसे ही जाया तो नहीं जाएगा, इस चिंता से मेरे मन के आकाश में हमेशा काला बादल छाया रहता।

उस दिन कमरे में ही बैठकर मैं किताब के पन्ने-पन्ने का मुआयना कर रहा था। अपने भविष्य की चिंता को पुश्तैनी संपत्ति के बदले उपलब्ध हुए चावल के दाने के साथ निगल रहा था। ये दाने यों ही समाप्त होने की आशंका मुझे मायूस कर रही थी।

"यार, कितना किताब में ही सर गड़ाए रहोगे ? चलो कहीं घूमकर आते हैं। सुदिन कमरे में ही आ पहुँचा था। काफ़ी पैसे होते थे उसके पास, शायद इसीलिए वह अक्सर मुझे बाहर ले जाकर मोमो वगैरह खिलाता और बीयर पिलाता। वैसे तो वह भी अपने घर में तंगी की ही बात करता लेकिन फ़िर भी पता नहीं कैसे, उसके पास पैसों की कमी नहीं होती थी। पता नहीं कहाँ से लाता था वह उतने सारे पैसे ! उसे मैं ट्यूशन पढ़ाते भी नहीं देखता था। खुद को कुछ आता-जाता तभी तो वह ट्यूशन पढ़ाने की सोचता भी। और फ़िर कुछ न आने वाले से ट्यूशन भी भला कौन पढ़ता ? फ़िर भी उसके रहन-सहन, ठाट-बाट दिन प्रतिदिन बढ़ते ही जा रहे थे।

कक्षा में पढ़ाई नहीं हो रही थी। सभी दोस्त लोकतंत्र लाने के लिए आंदोलन करने रत्नपार्क गए हुए थे। अनिश्चित अपने भविष्य को लेकर असमंजस के कारण विरक्त होकर मैं कमरे में ही बैठा था। सुदिन उसी वक्त आ पहुँचा था।

"क्या यार, इस तरह अकेले कमरे में गुमसकर तू बैठ कैसे पाता है ? मुझे इस तरह बैठना पड़ जाए तो मैं शायद पागल हो जाऊँगा यार। चल, आज तुझे एक मज़ेदार जगह पर ले चलता हूँ। गज़ब की जगह है। बढ़िया-बढ़िया खाने को भी मिलेगा और मौज-मस्ती भी होगी।"

कॉलेज में पढ़ाई न होने से दिन यों ही बीतने के कारण मन लग नहीं रहा था। कमरे में बैठकर किताब में आँखें गड़ाकर भी दिमाग में कुछ घुस नहीं रहा था। वैसे में मुफ़्त का मनोरंजन पाने के लिए मेरा मन भी उत्सुक हुआ होगा, सो मैं भी उसके साथ बाहर जाने के लिए उठ खड़ा हुआ।

उस दिन सुदिन मुझे एक ऐसे आलीशान घर में ले गया, जहाँ घुसने की हमारी हिम्मत तक न होती। गाँव के एक साधारण लड़के का वैसे उच्च परिवार के साथ संपर्क होने की जानकारी पाकर मैं हैरान था।

मनमोहक बगीचे से सुसज्जित उस घर के वैभव और सौंदर्य को विस्फारित नज़रों से देखते हुए मैं लल्लू-सा उस घर के बैठके में घुसा था।

'बाप रे! ऐसे घर में रहने वाले लोगों को भला सुदिन ने कैसे पहचाना होगा?' मेरे जेहन में बार-बार यही सवाल कौंध रहा था।

इंसान जीवन में कितने विलासितापूर्वक रह सकता है, कैसी-कैसी चीज़ें खाता है, कैसी-कैसी चीज़ें पीता है, उस दिन मैंने अपनी आँखों से देखा। हैरान हो-होकर वहाँ के वैभव को निहारता रहा।

उम्र में वह मेरी माँ के जैसी ही रही होंगी। लेकिन श्रृंगार-पटार और पहनावे-ओढ़ावे से अभी भी नौजवान दिखने वाली उस नारी ने मुझे तरह-तरह की महँगी शराबें पीने का न्योता दिया। सिर्फ़ न्योता ही नहीं दिया, बल्कि पीने के लिए काफ़ी मनुहार भी की। लेकिन जीवन में मैंने कभी भी शराब नहीं पी थी, सो उस वक्त पीने का कोई सवाल ही नहीं था। वह भी उसके साथ, जिसके साथ बैठने की भी मैं सोच नहीं सकता था। वैसे तो कोक भी मेरे लिए अलभ्य वस्तु हुआ करता था। सो उस दिन उनके घर में मुझे तृष्णा मिटने तक कोक पीने में ही स्वर्ग पहुँचने का आभास हो रहा था।

उसके बाद उसी शाम सुदिन मुझे एक ऐसे रेस्तराँ में ले गया, जिसे मेरी औकात सपने में भी नहीं सोच सकती थी। वह तो क्या लेकर जाता, शायद वही संभ्रांत नारी हमें ले गई थीं।

रेस्तराँ के नाम पर मैंने वे ही सड़क के किनारे वाले रेस्तराँ देखे थे। वैसे रेस्तराँओं में ही मैं गया था। उस शाम को जिस रेस्तराँ में मैं गया, वह काठमांडू के धनाढ्य लोगों के खास मकसद के साथ जाने की जगह थी। वह वही जगह थी, जहाँ पैसे की बदौलत कच्चे मांस का मोल-भाव हुआ करता है। जिस्म की बोली लगती है। वहाँ सिर्फ़ युवतियाँ ही बिकाऊ नहीं थीं। मेरे जैसे नौजवान भी अपनी नीलामी के लिए बाज़ार में खड़े थे। और उन्हें खरीदने वाले दोनों तरह के लोग होते हैं। मैं भी वहाँ एक बिकाऊ चीज़ बन गया था।

मुझे भी उस शाम के लिए किसी ने खरीदा था। शुरू में तो मुझे पता ही नहीं था कि मैं उस रात के लिए बिक चुका था। रात ढलती जाने पर सुदिन पता नहीं कहाँ चला गया। टेबल भर फैली खाने की चीज़ों की कीमत सोचकर मेरे होश उड़ गए थे। ये चीज़े आते वक्त सुदिन थोड़ी देर के लिए कहकर उठा था, लौटकर आया ही नहीं। भूख से पेट की आँतें हिल गई थीं। फ़िर भी प्लेट में रखी चीज़ों को मुँह तक ले जाने की हिम्मत नहीं जुट पा रही थी। पैसे खुद चुकाने पड़े तो क्या होगा!

भूख और भय की उलझनों में पड़ा हुआ देख एक बहुत ही अमीर दिखने वाली अधेड़ महिला ने हिम्मत दी थी।

परी की तरह मेरी बगल में आ पहुँची वह महिला शायद मेरी उलझनों को ताड़ गईं। इसीलिए– "लो, अभी तक कुछ खा क्यों नहीं रहे हो? यह सब तो मैंने ऑर्डर किए हैं। चलो खाओ, सुदिन भी थोड़ी देर में आ जाएगा।"– उसने कहा।

मुफ़्त में मिली उन्हीं खाने की चीज़ों के कारण आज मैं कुछ और ही हो गया हूँ। मेरा व्यक्तित्व ही कुछ और हो गया है। मैं सामान्य गाँव के लड़के से शहर के जिग्लो में परिणत हो गया हूँ। मैं बिक चुका हूँ।

मेरे गँवार होने की बात कोई समझ न जाए, इसलिए मैं खाली पेट में ही दो ग्लास वाइन खाली कर चुका था। शायद मैं वाइन नहीं पिऊँगा सोचकर वह महिला मेरे सर पर ही खड़ी थी। बाकी चीज़ें खाने से पहले वाइन पीनी चाहिए कहकर उसीने मुझे शहर का गुर सिखाया था। इसीलिए अच्छा न लगने पर भी ज़बरदस्ती मुझे दो ग्लास वाइन पीनी पड़ी थी। सुदिन पता नहीं, कहाँ चला गया। लेकिन सुदिन की कुर्सी पर बैठी उस महिला ने बाद तक उठने का नाम

नहीं लिया। थोड़ी देर में ही मैं टुन्न हो गया।

किसीके मुझे सहारा देते हुए कमरे में बिस्तर पर सुलाने ले जाने का आभास ज़रूर हुआ था। उसके बाद आनंद के सरोवर में डूबते जाने तक की याद मुझे है। लेकिन उसके बाद क्या हुआ, मैं नहीं जान पाया।

आधी रात को पता नहीं कैसे मेरी निद्रा भंग हुई। तब तक सोच से परे लचकदार बिस्तर की लचक से मुझे गुदगुदी-सी हो रही थी। साथ ही मधुर सुगंधित कोमलोष्ण शरीर की भाप मेरे समूचे शरीर में अजस्र आनंद प्रवाहित कर रही थी।

मैं कहाँ हूँ ? कहीं स्वर्ग में तो नहीं ? वाइन के नशे में वास्तविकता को सपना समझकर मैं फ़िर सो गया।

कहते हैं, भग्नावशेष को देखकर ही पता चल जाता है कि वह अतीत में भव्य महल रहा होगा। मुझे उस रात के लिए खरीदने वाली वह अमीरज़ादी वैसी ही थी। अपने ज़माने में वह सौंदर्य की प्रतिमा ही रही होगी। लेकिन संभवतः मेरी माँ से भी उम्रदराज उस महिला से जो नहीं मिलना चाहिए था, वह पाने के अहसास से मैं लाज और ग्लानि से तरबतर हो उठा था। 'ऐसी महिला भी वैसी ?' मुझे बड़ी शर्म आई थी। मगर यह कहने में कि पात्र जो भी हो, वह अनुभव बहुत ही रोमांचक और मज़ेदार था, मुझे ज़रा भी संकोच नहीं। ऊपर से सुबह निकलते वक्त उसके दिए लिफाफ़ के भीतर के पाँच कड़े-कड़े हाथियों (हज़ार-हज़ार के नोटों) को हाथ पर फैलाने पर मन में तृप्ति के भाव नहीं आए, नहीं कह सकता।

इसी तरह शुरू हुआ था मेरा नया जीवन। इसी तरह कुछ लोगों को पता चला था मेरा नया नाम 'जिगलो'। यानी पुरुष वेश्या। और मेरा नया परिचय 'नं. २१५'।

अनुवादक : मुकेश कुमार मिश्र

कहानी

आग की लपटें

जलेश्वरी श्रेष्ठ

आज प्रकाशित लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में सुप्रीम कोर्ट में अरुणिमा के केस पर सुनवाई होने की खबर छपी है। एक हफ़्ता पहले पाँच लोगों ने जानवरों से भी बदतर और वीभत्स तरीके से क्षतविक्षत बनाकर अधिवक्ता अरुणिमा को बलात्कार का शिकार बनाया था। वे बलात्कारी समाज के पहुँची हुई शख्सियतों के बेटे थे।

सुप्रीम कोर्ट में पत्रकारों समेत काफ़ी लोग जमा थे। अदालत में आरोपी लड़कों और बलात्कृत अरुणिमा को पेश किया गया। अपनी ओर से खुद अधिवक्ता अरुणिमा ने वकालत शुरू की।

हाथ के इशारे से उन्होंने कहना शुरू किया– "मिलॉड ! इन कुकर्मियों के विरुद्ध मैं एक नाबालिग लड़की पर बलात्कार का मुकदमा लड़ी थी। इन्होंने केस वापस लेने में मुझसे मदद माँगी, जिसके बदले मुझे मोटी रकम देने की पेशकश की। लेकिन मैंने इनकी बात मानने से इनकार कर दिया था। उसके बाद पैसों की बदौलत गवाहों को चुप करा दिया। पैसे के बल पर ही इन्होंने पीड़िता के माँ-बाप को खरीद लिया और उसके गरीब माँ-बाप अपनी बेटी की अस्मिता को पैसे से बेचकर फैसला होने से पहले ही केस वापस लेना चाहते थे। इसी वजह से मैं इनकी क्रूरता का मकसद बन गई।"

ये लोग मुझे फोन पर अश्लील गालियाँ देते थे, धम्की देते थे। हमेशा ये लोग अपनी काली पजेरो से मेरा पीछा किया करते थे। बीच रास्ते में भी गंदी गालियों के साथ ये मुझे बेइज़्ज़त किया करते थे।

मुझे इनकी धम्की और गालियों से कोई फ़र्क नहीं पड़ा। मैंने सदा सत्य के पक्ष में जीने की प्रतीज्ञा की थी।

अक्सर ऑफ़िस जाते-आते वक्त ये लोग मेरा पीछा कर रहे होते थे। शायद कुछ करने की ताक में रहते थे। इसी तरह एक साल बीत गया।

एक दिन आसमान में बादल छाए थे, हल्की बारिश भी होने के कारण शाम हुए बिना ही अंधेरा होने लगा था। उस दिन ऑफिस में चपरासी भी नहीं आया था। ऑफिस टाइम पूरा होने पर खुद दरवाज़े पर ताला लगाकर जब मैं बाहर निकलने लगी तो दरवाज़े के सामने काली पजेरो को देखा। उसमें चार-पाँच लड़के छुपकर बैठे हुए थे। उन्हें देखकर मैं घबरा गई। इतने में ही उनमें से एक ने मेरे मुँह और नाक पर एक खास गंध वाला रुमाल रख दिया। इतना मुझे पता है। उसके बाद मैं बेहोश हो गई।

जब मैं होश में आई, निर्वस्त्र थी। मेरे हाथ-पैर बँधे हुए थे और मुँह पर पट्टी थी। आसपास बस कीड़ों की आवाज़ें ही सुनाई दे रही थीं। वैसी वीरान जहग पर मैं थी।

"हम तुम्हारे होश में आने का इंतज़ार कर रहे थे।"– यह कहते हुए उनमें से एक ने मेरे बदन पर हाथ डाला। उसके बाद गाड़ी में बैठे हुए सभी ने बारी-बारी करके मेरे बदन को वहशी जानवरों की तरह नोचते खसोटते हुए मेरा बलात्कार करते रहे। असह्य पीड़ा से जितना मैं छटपटाती थी, उतना वे लोग क्रूर हँसी हँसते थे।

"नामुद घमंडी अधिवक्ता अरुणिमा ! हमें भला-बुरा कहने का, बेइज़्ज़त करने का फल इसी तरह भोग।" इसी तरह ज़लील होने पर ही तेरा मुँह बंद होगा और कोई भी हमारे ऊपर दोष लगाने की हिम्मत ही नहीं करेगा।" मुझे सताते हुए वे लोग शब्द भी खर्च किए जा रहे थे। उनके कहे हुए कई गंदे शब्द तो कोर्ट में बताए भी नहीं जा सकते।

जब वे लोग थक गए, मेरे मुँह में ज़बरदस्ती

शराव डाल दी। कभी भी शराब न पीने वाली मैं अचेत हो गई। शायद मुझे मरा हुआ सोचकर ही उन लोगों ने मुझे छोड़ दिया होगा। जब मुझे होश आया, मैं जंगल के पास थी। शायद बेहोशी में ही मैंने उल्टी की होगी। उल्टी से शराब की बदबू आ रही थी। मेरे कपड़े इधर-उधर विखरे पड़े थे। मेरे नग्न शरीर को किसी ने चादर ओढ़ा दिया था। बाद में मुझे पुलिस वैन में हॉस्पिटल पहुँचा दिया गया। मैं ठीक से बोल पाने की हालत में भी नहीं थी। अपना नाम और पता भी मैं बता न सकी।

मेरे भीतर अब इस समाज के प्रति विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी है। मैंने अपनी दोस्त अधिवक्ता सरिता का नाम और फोन नंबर किसी तरह लिखकर एक सिस्टर को दिया। उन्होंने सरिता को फोन करके बुला दिया।

जब सरिता मेरे बेड के नज़दीक आाई, उसकी मुखमुद्रा अजीब थी। एक ही बार इतनी घबराहट मैंने सरिता की आँखों में पहली बार देखी। लहूलुहान मेरे होठ और जहाँ-तहाँ काटे हुए ज़ख्म से सूजे हुए मेरे चेहरे को देखकर वह त्रस्त हुई होगी।

पहले तो उसने मुझे पहचाना ही नहीं। अच्छी तरह देखने पर पहचान पाई और करुणा व स्नेह से भरे आँसू उसकी आँखों से छलकने लगे। स्तब्धता के कारण कितनी देर तक तो वह बोल ही न सकी।

वहुत देर बाद उसने एक ही साँस में पूछा– "किसने तुम्हारे साथ इतनी घिनौनी और वहशी करतूत करके इस हाल में पहुँचाया है ? कल से तुम्हें बेखबर पाकर हम सभी अंदेसा में थे कि तुम्हें क्या हुआ पर मैंने सोचा भी नहीं था कि तुम मुझे इस हालात में मिलोगी।"

कुछ देर बाद उसने कहा– "मैं तुम्हारे परिवार वालों और दोस्तों को खबर करती हूँ।"

मैंने इशारे से ऐसा न करने को कहा। मैंने अपना परिचय भी किसी को न देने को कहा। वह मेरा इशारा समझ गई।

कुछ दिनों के बाद मैं अच्छी तरह बोलने लायक हो गई। मेरी सेहत में सुधार आया। पुलिस वाले भी मेरा वयान लेने आए। मैंने कुछ पत्रकारों और अपने दोस्तों के सामने ही बयान दूँगी कहकर अनुरोध किया। पुलिस वालों ने भी मेरे अनुरोध को मान लिया।

मेरे अनुरोध के मुताबिक मेरे दोस्तों और पत्रकारों को बुलाया गया। मैंने देखी हुई और भुगती हुई बातों का सबके सामने बयान दिया। मैंने कहा– "मुझे इस दुर्दशा में पहुँचाने वाले गणमान्य व्यक्तित्वों के साथ-साथ अन्य क्षेत्रों के बड़े लोगों के बेटे हैं। धर्मविक्रम, गजाधर, कर्णप्रसाद के बेटे और उनके दोस्तों ने मेरे साथ इतनी घिनौनी हरकत की है।"

अरुणिमा के साथियों और पत्रकारों के सहयोग में उन लड़कों को अदालत में खड़ा किया गया था।

अरुणिमा उँगली उठाते हुए कह रही थी– "ये ही हैं, सभ्य और बड़ा कहलाने वाले अत्याचारी कुकर्मी। समाज के कीड़े हैं ये, पाखंडी दुराचारी।"

अरुणिमा आक्रोश और आवेग में मुँह में जो आया, वही शब्द प्रहार करती हुई क्रोध की ज्वाला उगलने लगी। न्यायाधीश के शांत रहने का आदेश देने के बाद ही वह चुप हुई।

अब बारी थी आरोपियों के वकील के बोलने की।

उनके वकील ने कहा– "मिलॉड, ये महिला प्रतिशोध की भावना से बौखलाई हुई हैं। इन्होंने एक साल पहले एक नाबालिक लड़की पर बलात्कार के झूठे इल्ज़ाम में मेरे मुवक्किलों को फँसाने की कोशिश की थी, जिसमें ये कामयाब न हो सकीं। असल में समाज के इन प्रतिष्ठित व्यक्तित्वों के विरुद्ध इनका पूर्वाग्रह था। इसीलिए फ़िर से कैसे इन्हें ज़लील किया जाए, इस ताक में रहने लगीं ये।

इन्होंने खुद कुछ गुंडों का प्रयोग कर बलात्कार का अभिनय करने को कहा। लेकिन वे गुंडे जितना करने को कहा गया था, उससे ज़्यादा ही कर बैठे। यह इनकी अपनी ही दुर्योजना का फल है। अगर वाकई इन शरीफ़ लोगों ने ही बलात्कार किया है तो शरीर पर दिखे दाँत और नाखून के निशान और कपड़ों पर लगे वीर्य की जाँच रिपोर्ट क्यों मैच नहीं हुए ?"

ये वाक्य सुनकर अरुणिमा ने अदालत को ही थर्राते हुए चिल्लाने लगी– "झूठ ! झूठ !! बिल्कुल झूठ !!! यह जाँच की रिपोर्ट भी नकली है, साज़िश की गई है, या तो डॉक्टर को खरीदा गया है या फ़िर बंदूक की नोक कनपटी पर रखी गई है। मेरे गुंडों से अभिनय करवाने की बात कितनी झूठी है, यह मैं आपको दिखाती हूँ। लीजिए सब लोग देखिए, मैं

सुबूत का छोटा-सा नमूना दिखाती हूँ।"

सब लोग गौर से उसे देखने लगे। वह अपनी चोली खोलने लगी। उसने नारी अस्मिता के चीरहरण का एक चित्र सार्वजनिक कर दिया। चोली के खुले हुए दृश्य को देखकर सभी पुरुष जिज्ञासु और कामी नज़र से अरुणिमा की छाती देखने लगे, वहीं महिलाओं ने शर्म से लाल होकर आँखें झुका लीं। उसके चोली खोलने पर अचानक सन्नाटा छा गया। लज्जा से झुके पुरुष नेत्र उस कारुणिक और बर्बरतापूर्ण अत्याचारी कुकृत्य का सुबूत देखकर अपने आपमें मर्माहत दिख रहे थे। उन्हें कल्पना तक नहीं थी कि अपना ही पुरुषत्व ममतामयी नारी अस्तित्व के ऊपर इतनी बर्बरतापूर्ण निर्मम अपराध कर सकता है।

अदालत का वह कक्ष इस दरमियान बिलकुल शांत था। ऐसा लगता था यहाँ का वातावरण अलग मोड़ लेगा। अरुणिमा के क्षत-विक्षत शरीर को देखकर सबकी आँखों से आँसू छलक रहे थे। अविवाहिता नारी की सुंदरता के अवयव, एक माँ की अमृतमय धारा बहने वाले घड़े और सृजन को निरंतरता देने वाले कलश की जगह किसी क्रोधी चित्रकार के फेंके हुए रंग के छींटे की तरह काले, नीले, लाल, काटे और नोचे-खसोटे हुए वीभत्स ज़ख्म थे। सुंदर नहीं, बल्कि एक वीभत्स चित्र वाले दृश्य से सबकी आँखों में क्षोभ और पीड़ा की आग की लपटें धधक-धधकर जलने लगीं।

वहाँ अत्याचार को मौन इतिहास घूर रहा था। सहकर ही जीने का सामंती संस्कार था इंसानों का। ज़ख्मों के दृश्यों के आगे कानून की सारी दफ़ाएँ अधूरी लगती थीं पर वह बस उनके लिए था, जिनके पास विवेक है, संवेदना है।

व्याप्त स्तब्धता को चीरते हुए नारी अस्मिता की रक्षा के लिए अरुणिमा आक्रोशित भाव मुद्रा में अंतर्मन से चीख रही थी– "मिलॉड, अगर यह सुबूत काफ़ी न हो तो मनुष्य सृष्टि के उर्वर उद्‌गमस्थल पर क्रूरता की ज्वाला में भष्मीभूत इससे भी वीभत्स चित्र सबके सामने प्रस्तुत करने का साहस भी मैं रखती हूँ। बलात्कारी के वीर्य दाँत और नाखून तक की जाँच की रिपोर्ट की फ़िर से निष्पक्ष जाँच कराकर अपराधी को उचित दंड नहीं दिया गया तो न्याय के कठघरे को इतिहास कभी माफ़ नहीं करेगा।"

ये वाक्य सुनने के बाद आरोपियों की आँखों में भी ग्लानि दिखने लगी। अब फँस जाने भय से वे लोग सिकुड़े हुए-से दिख रहे थे। वकीलों की न्यायदर्शी नज़रें भी सत्य का अन्वेषण करने की कोशिश करती हुई-सी दिखने लगीं। वहीं न्यायाधीश के चेहरे पर आया हुआ परिवर्तन एक निष्पक्ष निर्णय का संकेत कर रहा था।

अनुवादक : हिना झा

कहानी

दिलमाया

टंक भट्टराई

"एक ग्लास पानी देना तो बेटी !"

"पानी या दारू ?"– उसने मेरी ओर देखते हुए पूछा ।

"पानी ही दो न ।"– मैंने रुमाल से पसीना पोंछते हुए कहा ।

उसने सफ़ेद सिल्वर के लोटे में एक लोटा पानी लाकर दिया । मैंने एक ही साँस में लोटे को खाली कर दिया ।

वहाँ कोई शराब पी रहा था, कोई बीड़ी फूँक रहा था तो कोई नाश्ता कर रहा था । थोड़ी दूरी पर गाय, भैंस चराते हुए बच्चे खेल रहे थे और कुछ बुजुर्ग बगल में छड़ी रखे पेड़ के नीचे गप्पे मार रहे थे ।

उस जगह को आलडाँडा कहते हैं । बारिश का पानी जमा करके मवेशियों को पिलाने या दूसरे कामों के लिए उस डाँडा यानी पहाड़ी पर एक बड़ा-सा आहाल यानी कि कुआँ खोदा गया था, इसीलिए बहुत पहले से उस जगह को आलडाँडा कहा जाता रहा है । वहीं बरगद, पीपल के छाँव में आसपास बाँस की टट्टी और पत्थर-मिट्टी से बनी हुई चार-पाँच दुकानें हैं । पहले तो एक ही दुकान हुआ करती थी । मवेशीघरों की गाय, भैंस, भेड़, बकरियाँ बगैरह को दिनभर जंगल में भेज दिया जाता । सूरज डूबते समय गोधूलि के रंग के साथ वे कहाँ-कहाँ से पेट भरकर खुद ही वापस मवेशीखाने में लौट जाते और ज़बरदस्त जुगाली करने लगते ।

आलडाँडा ऐसी जगह है, जहाँ अकसर किसी भी समय लोगों का उठना-बैठना लगा रहता । वह स्थान कभी भी लोगों खाली नहीं होता । चार-पाँच जोड़े बड़े-बड़े वर-पीपल के पेड़, जगह-जगह लोगों के बैठने के लिए लकड़ी के तख्ते से बेंच की तरह बनाए हुए बैठके मौजूद थे । आते-जाते राहगीर थोड़ी देर ही सही, वहाँ आकर सुस्ता लें, इस धार्मिक उद्देश्य के साथ आसपास और अन्य स्थानों में भी बरगद, पीपल के पेड़ लगाए गए थे । वे वर-पीपल भी राहगीरों को शीतलता प्रदान करने के लिए लालायित दिखते । सिहिर-सिहिर पत्तों को हिलाते हुए शीतल हवा छोड़ते रहते ।

कोई भारी का बोझ लादे हुए, कोई झोला मात्र लिए हुए आते-जाते राहगीरों में से कई वहाँ आकर थोड़ी देर वहाँ सुस्ताकर जाते तो कई सरासर अपना रास्ता नापते । सुस्ताने वाले कई लोग थोड़ी देर थकान उतारकर चल देते तो कई दारू, पानी और नाश्ता बगैरह भी लेते । कुछ बाँके जवान दारू पीने के बहाने उस युवती के साथ हँसी-ठिठोली, छेड़छाड़ भी करने लगते । कई तो उसके मोहक यौवन को देखकर लार भी टपकाते । वह युवती भी उनकी तरफ़ देखकर कभी-कभी अदाएँ बिखेर देती । आखिर व्यापार है, किसी तरह चलाना ही पड़ता है । ये सारे नज़ारे मैं वहाँ बैठकर देख रहा था ।

सच में बेहद मज़ेदार और मोहक जगह है वह । पूरब की तरफ़ याम्खा, डाँडागाँव, पश्चिम की तरफ़ बसेरी, राजापानी, बुइपा उत्तर में गैरी-चौतारा, खानीगाँव, लफ्यांग, उत्तर-पश्चिम में सोया हुआ नूनथला- ये सारी जगहें वहाँ से दृष्टिगोचर होती हैं । उस पार चारकिला के ऊपर का पंक्तिबद्ध वह पैंयुडाँडा भी मानो इधर ही मुँह करके खड़ा हो । इसी तरह आलडाँडा के पूरब में साप्सु नदी बहती है तो पश्चिम में दिखुवा नदी । पूरब-पश्चिम से बहती हुई ये नदियाँ थोड़ा-सा नीचे बीस-पचीस मिनट की उतराई के बाद एक जगह मिलती हैं, जिसे दोभान कहते हैं ।

अधिकांश खोटांग वासियों के मधेश-पहाड़ आने-जाने वाला और पुश्त दर पुश्त से दुखों के बोझ को

लादकर पूर्वजों का चला हुआ वह रास्ता मेरे ही जितना सभी को प्रिय है। उस आलडाँडा के साथ हमारा भावनात्मक संबंध है। मन की गहराइयों में उस मिट्टी की खुशबू है और उन वर-पीपल के छाँव हर एक के हृदय में स्मृतिबिंब बने हुए हैं और हमेशा बने रहेंगे।

उन स्थानों के, जहाँ मैं घूमता-फ़िरता रहा था, दृश्यों को देखकर मैं मुग्ध हो रहा था। साप्सु नदी के वे सपाट खेत, हवा की सुस्त गति में सिसकारियाँ भर रहे वे साल के पेड़, वे वादियाँ, चढ़ाई-उतराई, इन नज़ारों को इतने सालों बाद देखकर भला मेरा मन कैसे भरता !

दिखुवा दोभान के पास खाना खाकर ऊँचाई पर चढ़ा था मैं, दोपहर की गर्म धूप और खड़ी चढ़ाई की वजह से वहाँ पहुँचने में काफ़ी मुश्किल हुई। धूप उस पार के जुरे थुम्का पर पहुँच चुकी थी। इधर-उधर के नज़ारों को देखते-देखते और सोच में मग्न होते हुए समय गुज़रने का पता ही न चला।

लंबे समय के बाद एक खास काम से मैं अपने जन्मस्थान खोटांग आया था। थोड़ा आगे ट्याम्केको फेदी बाँझे च्यानडाँडा है मेरा गाँव। लामीडाँडा तक प्लेन की सुविधा तो थी लेकिन उतनी अनुकूल नहीं थी। इसीलिए मैंने दूधकोसी, साप्सु किनारे और आलडाँडा होते हुए पैदल रास्ते को ही चुना, जिस रास्ते के साथ किसी समय मेरा अभिन्न संबंध हुआ करता था। गाईघाट से तेज़ गति में चलने वालों को दो दिन और मेरे जैसे धीमी गति में चलने वालों को तीन दिन लगते थे दिक्तेल ज़िलामुख्यालय होते हुए बाँझे-च्यानडाँडा पहुँचने में। गाईघाट से खाँबु होते हुए उतराई पार करने के बाद नीचे अंधेरी से कोसी के किनारे-किनारे चलना पड़ता था। गाईघाट से जब तक रास्ता नहीं खुला था, तब तक ढुंग्रे धाप्लांग्टार से गुज़रते हुए बेल्टार के रास्ते आवाजाही होती थी।

मुझसे पहले पीढ़ियों से बेल्टार से ढाकर में नून लादकर कोसी के किनारे से गुज़रकर चले हुए पूर्वजों के पदचिह्न मानो अभी भी मौजूद हैं जैसा लगता है। जवानी में कई बार मधेश जाते-आते मैं भी कोसी होते हुए इस रास्ते से बहुत बार गुज़रा। अब तो इस रास्ते से चले हुए पंद्रह-सोलह साल गुज़र चुके हैं। अन्य वैकल्पिक उपाय मौजूद होते हुए भी इस रास्ते के साथ जुड़े अपने पुराने अतीत को ताज़ा करने के लिए अकेले ही सही, मैंने इसी रास्ते आने का मन बनाया।

एक दिन पहले रेग्मीटार में वास करने के बाद दूसरे दिन उस समय मैं आलडाँडा आ पहुँचा था। अन्य राहगीरों के आने-जाने का क्रम जारी था। यह क्रम भला भला कहाँ टूटने वाला था। मैं काफ़ी देर से उस दुकान में बैठा था। उस युवती को अपने काम से बिलकुल भी फुर्सत नहीं हुई। कब फुर्सत होगी और मैं कुछ बातें उससे पूछूँ सोचकर इंतज़ार करता रहा मगर मौका ही नहीं मिला था। दिन काफ़ी ढल चुका था। लेकिन मैं भावनाओं के उतार-चढ़ाव में खोकर वह जगह छोड़ न सका था।

युवती काफ़ी व्यस्त दिख रही थी। चैत का वह बसाती दिन। कहाँ-कहाँ से थपेड़े खाते हुए आए हुए लोगों को अलग-अलग चीज़ें उपलब्ध कराती हुई वह हमेशा चलायमान होती।

"बहन, एक ग्लास पानी दो न !"

"बहन, एक पैमाना बढ़िया दारू छान दो।"

"कैसी हो ? सब कुशलमंगल ?"

ऐसी ही बातों में मशगूल होकर उसे दिन गुज़रने का पता ही नहीं चलता।

अब तो दिन पूरा ढल चुका था। धूप रक्तिम होकर कोसी उस पार के क्षितिज से उतर चुकी थी। धूप बूढ़ी होकर उस पार जुरेथुम्का से बेशक उतर चुकी थी पर मेरी भावनाओं की तरंगें और जवान होकर एक अलग ही रूमानी यात्रा में आरोहण कर रही थी। करीब पाँच-छह घंटे बैठकर भी मैं वह जगह नहीं छोड़ सका। मगर क्यों नहीं छोड़ सका, मुझे खुद पता नहीं। बाहरी दुनिया में वह लाल मिट्टी, प्वालाँ (एक वृक्ष), पहाड़ियाँ, पक्खे, हरे भरे पेड़-पौधे, वे वर-पीपल के छाँव, लोगों के बैठने के वे तख्ते, आने-जाने वाले राहगीरों की वे कतारें, गोजमोज दिखने वाली वे छोटी-बड़ी दुकानें अपनी-अपनी दुनिया में मग्न थे। वहीं मैं बाहरी संसार से पृथक था। मीठा कहें या कड़वा, चाहकर भी न भूलने वाला एक अतीत जो मेरे जीवन से अभिन्न होने वाला नहीं था, उसी की यात्रा में मैं मशगूल था।

"बहन, आज यहीं रहना पड़ेगा, जगह मिलेगी क्या ? काफ़ी थक गया हूँ, इसलिए आगे जा नहीं

सकूँगा।"

"जगह तो नहीं है, लेकिन अगर उतनी ही मुश्किल में हैं तो रह जाइए।"

मैंने यही सोचा था। अब आश्वस्त हो गया। उससे मुझे बहुत कुछ पूछना था। दिन भर लोगों की भीड़ की वजह से वह व्यस्त थी। और मैं आंतरिक दुनिया में ही मस्त था।

"क्या खाएँगे ?"– उसने पूछा।

"भात ही खाऊँगा, और मांस बगैरह मिल जाए तो और भी बेहतर।

"शराब भी लेंगे ?"

"थोड़ी-सी लेनी पड़ेगी।"

मैं मांस के चखने के साथ थोड़ा पीने लगा।

"तुम्हारा नाम क्या है ?– मैंने पूछा

"दिलमाया।"– उसने बताया।

"घर में और कौन-कौन हैं ?"

"कोई नहीं है।"

"माता-पिता ?"

"नहीं हैं।"– वह उदास होकर बोली

"तो फ़िर तुम यहाँ कैसे रहने लगी ?"– मैंने फ़िर पूछा। वह झिझक गई।

"बोलो न, संकोच करने की कोई बात नहीं है।"– मैंने आग्रह किया।

"जब मैं छोटी-सी थी, तो माँ बुखार की चपेट में चल बसी। पिता से मैं बेखबर ही रही। माँ कहती थी कि मेरे पिताजी परदेस गए हैं, अभी तक नहीं आए हैं। 'तो फ़िर कब आएँगे पिताजी ?'– मैं पूछती तो वह बताती कि एक दिन ज़रूर आएँगे। मैं पिताजी के आने की आस में रमने लगती।"– वह कहती जा रही थी। इधर मैं द्रवित हो रहा था।

"तो फ़िर माँ के गुज़र जाने के बाद तुम किसके साथ रही ?"

"नानी थीं, उस दुकान में। उन्होंने ही मुझे पाला पोसा। उनके गुज़रे हुए भी तीन-चार साल हो गए। बाद में नानी के कहने से पता चला कि मेरी माँ की शादी किसी से नहीं हुई थी। इस रास्ते से गुज़रने वाला एक आदमी अकसर यहीं रुका करता था। मेरी माँ को बहुत पसंद करता था। मेरी माँ भी उसे प्यार करती थी। बाद में उसी का गर्भ मेरी माँ के पेट में पलने लगा। उसके बाद वह आदमी कभी लौटकर नहीं आया। अब तो इस संसार में मेरा कौन है ?"

उसकी आँखों से आँसू छलकने लगे। उसने दूसरी तरफ़ मुँह घुमाकर अपने आँसू पोंछे। मेरे आँसू भी थमने की स्थिति में नहीं थे। मन मोम की तरह पिघल रहा था मगर उसके सामने आँसू बहाना भी ठीक नहीं लगा इसलिए अपने आँसुओं को ज़बरदस्ती रोकने की कोशिश कर रहा था।

यहाँ तरह-तरह के लोग आते हैं। कोई भलादमी होता है तो कोई अकेली पाकर अंटशंट बोलने लगता है, छेड़ने लगता है। अब तो यहाँ रहना भी मुश्किल होने लगा है। क्या करूँ, ज़िंदा रहने के लिए कोई न कोई इल्म अपनाना ही पड़ता है। और फ़िर माँ के कदम रखे हुए इस स्थान को छोड़कर जाने का बिलकुल भी मन नहीं होता।"– वह कहती गई– "मुझ अकेली को देखकर कई लोग यहाँ वास माँगने आ जाते हैं। पर मैं अनेक बहाने से उन्हें टाल देती हूँ। लेकिन आप मुझे भलादमी-से लगे। पता नहीं क्यों आप मुझे पिताजी की तरह लगते हैं। दिन भर तो आपसे बात नहीं कर पाई। आप रह गए, अच्छा हुआ। आज तक मैं जिन बातों को किसी को नहीं बताया पता नहीं आज क्यों अनायास मुँह से निकल गईं, मैं भी नहीं समझ पाई।"

उसने खाना परोसकर दिया।

"बातचीत की धुन में खाना पता नहीं कैसा बन पाया, संतोष मानकर खा लीजिएगा।"

"बहुत स्वादिष्ट है, तुम भी खाओ।"

वह भी खाने बैठी।

बातचीत करते और खाते-पीते रात काफ़ी गुज़र चुकी थी। तकरीबन दस साढ़े दस बज चुके होंगे। उसने मेरे लिए बिस्तर लगा दिए– चटाई के ऊपर पुराना कंबल एक भूसे से बना तकिया और एक शॉल।

"अब आप सो जाइएगा। रात काफ़ी हो चुकी है। सुबह जल्दी उठना पड़ेगा, बहुत काम पड़े हैं करने को। मैं भी सोने जा रही हूँ।" वह दरवाज़ा बंद करके दूसरी जगह जाने को तैयार हुई।

"मैंने तुम्हें तकलीफ़ ही दे दी, है न ? तुम रात में कहाँ जाओगी ?"– मैंने जिज्ञासा रखी।

"पास में ही एक ताई हैं, मैं हमेशा सोने के लिए उन्हीं के पास जाती हूँ, अकेले यहाँ डर लगता है।

आप आराम से सो जाइए।" वह चली गई।

मुझे देर रात तक नींद नहीं आई। अतीत का यथार्थ मुझे चुभता रहा। दिलमाया का हर एक शब्द मुझे भावुक करता रहा। बाँस की टट्टी के छेद से आती हुई सिरसिर हवा भी इस जलते हुए मन को शीतल नही कर पाई।

रात के समय बरगद पीपल की वह सिरसिर हवा किसी समय मेरे लिए कितनी सुखद हुआ करती थी लेकिन उस रात उतना ही दुखी बना रही थी।

थोड़ी-बहुत भी नींद आई या नहीं पता नहीं, अचानक 'कुक्कुडू कूँ' की आवाज़ से चौंक गया मैं। मुर्गे की बाँग के साथ ही दिलमाया दरवाज़ा खोलकर अंदर मुखातिब हुई।

मैं भी अब प्रस्थान करने का विचार कर झट से उठा और कहा– "अच्छा बेटी, अब मैं भी चलता हूँ।"

"चाय पीकर चले जाइएगा। अब कब लौटना है ?"– उसने अगीठी की तरफ़ देखकर पूछा।

"पता नहीं मैं कब लौटूँगा, किस रास्ते लौटूँगा, शायद प्लेन से लौटूँ।"– मैंने कहा। "पैसे कितने हुए ?"– मैंने पूछा।

"आप पैसे रहने दीजिए, हो गया।"– उसने जवाब दिया।

"क्यों बेटी, इसी तरह तुम राहगीरों को मुफ़्त में खिलाती फिरोगी ?"

"ऐसा तो नहीं है, लेकिन आपसे पैसे लेने का मन नहीं होता।"

मैं उसे देखता रह गया। अनायास उसने मेरी ओर देखा और फ़िर दूसरी तरफ़ पलट गई। यह कैसा संबंध है ? मैं सोचमग्न हो गया। आँखों से आँसू निकलना चाह रहे थे। जबरदस्ती आँसुओं को रोके रहा। पैसे मैं जबरदस्ती दे दूँ या छोड़ दूँ, ऐसा करने में उसकी भावना को ठेस पहुँचती। मैं मुश्किल में पड़ गया।

यह कैसी लड़की है ? उसकी भद्रता और व्यवहार की गहराई को मैं नाप न सका। नीचे बहने वाली वह निर्मल और निश्छल साप्सु (नदी), उससे बिलकुल भी अलग नहीं थी वह।

उसकी माँ भी ऐसी ही रही होगी।

सच में कितने पवित्र और ईमानदार होते हैं कुछ लोग !

इस बेईमान ज़माने में उस महानता के तो पास तक मैं नहीं पहुँच सका।

दिलमाया मेरी ओर देख रही थी। मैं उसकी नज़र से नज़र मिला नहीं पाया। 'मैं अपराधी हूँ, अधर्मी हूँ।' मुझे अपराधबोध ने अपने आगोश में भर लिया। छोटे-से टेबल पर ढिबरी जल रही थी। बाहर का झिलमिल उजाला सवेरे को पुकार रहा था।

"मैं चलता हूँ बेटी अब।"

"ठीक है।"– उसने मेरी तरफ़ स्निग्ध नज़रों से देखा।

मैने झोला और छड़ी उठाई और भारी मन लेकर प्रस्थान किया।

ऊपर गैरी चौतारा के नीचे के टीले से पीछे मुड़कर देखा तो पंक्तिबद्ध खड़े उन बरगद-पीपल के समान ही शांत, सौम्य, अविचल और उदार हृदय वाली दिल की अमीर दिलमाया मेरी तरफ़ ही देख रही थी।

अनुवादक : मुकेश कुमार मिश्र

कहानी

काल्पनिक

ध्रुवचन्द्र गौतम

इस कहानी में कुछ नहीं है। केवल एक पात्र है और वह भी काल्पनिक है, इसलिए वह क्या करता है अगर नहीं पता हो तो भी कुछ नहीं। कहानी की शुरूआत कैसे करें ? इतने वर्ष लिखने के बाद मैं एक लेखक जो न जाने कितने कार्यक्रमों में प्रमुख आतिथ्य और सभापतित्व की भूमिका निभा चुका था, कम से कम उसे ऐसी समस्या नहीं आनी चाहिए।

वैसे तो मैं उन लेखकों में आता हूँ, जो लिखने के लिए बहुत लिखता है लेकिन कुछ पैसों को छोड़कर अभी तक कुछ प्राप्त नहींकर सका। जब भी कोई पत्रिका अपनी लिखी कुछ मांगता है तो इस गरीब लेखक का उत्त्साह बढ़ जाता है। जैसे भी हो मैं अपने को ठोकठाक करता हूँ और लेखक के लायक बनाता हूँ। इतने दिन लिखने के बाद जो मूल्य मुझे दिया है इन समालोचकों ने, सुनकर आपको हँसी आती होगी। अगर पहले की बात की जाए तो पता नहीं और क्या क्या कहते होंगे। मैं अपने आपको सांत्वना देता हूँ यह कहते हुए कि जो बेवकूफ इतना भी नहीं लिख सकते हैं, इसलिए ऐसा बोलते हैं। इससे मेरे परम दरिद्रता में कुछ कमी आती है इसलिए उन लोगों की बात को मैं ईर्ष्या ही मानता हूँ।

लिखकर ही मुझे चावल और दारू मिला है। यहाँ तीसरी बात की भी उत्सुकता होगी। तीसरी चीज भी मुझे लिखकर ही प्राप्त हुई। लेखन से प्रभावित होकर नहीं, लेखन से प्राप्त पैसों से प्रभावित होकर। काठमांडू में खाना का जुगाड़ करना मुश्किल है। बल्कि तीसरी बात उपलब्ध करना आसान है, तुलनात्मक रूप से। कभी कभी पेट भर खिला दिया, वह भी तृप्त और भूख भी। भूख के बाद की भूख खत्म होती है फोकट में।

वैसे तो बहुत से लोग मुझे लेखक के रूप में स्वीकार भी नहीं करना चाहते। कहते हैं- चारखाल का नौसिन्दा भी लेखक है यह बात लोग क्यों नहीं मानते। इसका उत्तर क्या दिया जाए ? बोलने वाले भी ऐसी रूखी बातें मदमस्त होने के बाद ही बोलते हैं। ऐसे में मैं भी मदमस्त होकर उत्तर दूँ इसका क्या अर्थ ?

किसी दिन ऐसे लेखकों के मुँह पर कालिख पोतकर गाँव से निकाल देना चाहिए यह कहते हुए भी सुना। यह लेखक नहीं, लिखने की सिर्फ इच्छा है इसमें, ऐसी अलोचना भी मैंने इन्हीं कानों से सुनी है। अपमान के सारे विश्लेषणों को मैंने प्रोटिन की तरह आत्मसातकर लिया है। इतना हो जाने के बाद अब पीछे क्यों हटना ? मैंने भी उनलोगों को ईर्ष्यावान् बनाने के लिए दृढता के साथ प्रतिबद्धताकर लिया है। ऐसे बात करते हैं जैसे कि इस देश में मुझसे खराब कोई लेखक है ही नहीं। क्या यह संभव है ? लड़की कितनी भी सुन्दर हो उससे ज़्यादा सुन्दर मिलने की सम्भावना नहीं होती है क्या ? जितना भी कुरूप हो उससे ज़्यादा कुरूप मिलने की सम्भावना भी उतनी ही रहती है। लेखक भी ठीक उसी तरह होता है। मैं कितना भी खराब लेखक हूँ लेकिन मुझसे भी ज़्यादा खराब लिखने वाले लेखक मिल सकते हैं। कोई पैसा दे तो लाकर दिखा दूँगा। कोई नहीं मिला तो, अंत में मैं अपने आपको ही लाकर खड़ाकर दूँगा। उन लोगों को मुझसे खराब लेखक नहीं चाहिए। मैं स्वयं अपने आपको सबसे ज़्यादा खराब लेखक के रूप में प्रस्तुत करूँगा तो वे लोग हर्षविभोर हो जाएँगे, लेकिन ये सभी बातें निर्भर करती हैं इसपर कि वे लोग मुझे कितने पैसे देते हैं।

मेरा कहना सिर्फ इतना ही है कि पैसे के लिए अगर लिखता हूँ तो अच्छे पैसे मिल जाएँगे तो लिखना

छोड़ भी सकता हूँ। इसमें क्या है ?

अभी तो मुझे अपने लेखकीय व्यक्तित्व को कायम रखने के लिए सारे पत्र-पत्रिकाओं में आना रहता है, और आ भी रहा हूँ। कोई कुछ कहे। मुझे लेखक माने या न माने, जब तक पत्र-पत्रिका सब छपेंगे, मुझे देना ही पड़ेगा। हर पत्रिक में देंगे। प्रतिभा-सतिभा की बात छोड़ो। मांगने के समय में नहीं दिया तो पीछे पड़ने का डर है मुझे। और कुछ हो या न हो मैं पत्रिका में प्रकट होने वाले लेखक के रूप में चर्चित हूँ। यह भी तो एक उपलब्धि ही है।

यहाँ तक तो ठीक था लेकिन इस बार की बात करूँ तो मुझे दूसरी बार दरिद्रता प्रकट होने का डर लगा । अच्छे-बुरे की बात छोड़ दी जाए तो मैंने इतने विषयों पर लिखा है कि अब मेरे पास लिखने को विषय ही नहीं है। दोबारा-तिबारा लिखकर सब खत्मकर चुका हूँ। संबंध के सभी स्वरूप लिख चुका। राजनीतिक व्यंग्य लिख चुका सभी तरह के। समाज में जितनी भी खराबी है, सब समेट चुका। आज का विज्ञान प्रविधि, पर्यावरण, प्रकृति सब पर लिख चुका। अब क्या लिखूँ ?

बस अब एक ही पात्र बाकी है जो मैंने अभी तक नहीं लिखा। नहीं लिखने के कारण भी हैं। यह पात्र नितांत काल्पनिक है फ़िर भी उसकी कुछ बातों को मैंने बहुत मेहनत से ढूँढ़ा है। यह एक बेकार का पात्र है, नहीं ? बिल्कुल सड़क छाप नहीं वरन निम्न मध्यम वर्गीय अव्यवस्थित। वैसे सड़क छाप किसे कहते हैं ? तो कहने के लिए कह दूँ, यह पात्र एक निम्न मध्यमवर्गीय सड़क छाप है। दो प्रकार का मोजा लगाना इसके लिए मामूली सी बात है। इसकी घड़ी दिन में दो बार सही समय देती है। दो बजकर पच्चीस मिनट पर। कारण इसकी घड़ी कितने दिनों से दो बजकर पच्चीस मिनट पर रुकी है। दिन में तो क्या है, यह पात्र देख लेता है। खुश भी होता है यह सोचकर की चलो अभी तो समय ठीक दिया लेकिन रात के दो बजकर पच्चीस मिनट में देख नहीं पाता। तभी तो वह मदिरा सेवनकर मस्त सो रहा होता है। इस तरह देखा जाए तो घड़ी के सही समय का वह पचास प्रतिशत ही उपयोगकर पाता है। पक्का घड़ी की बैट्री खत्म हो गई है। बदलने के लिए पैसे लगेंगे। इसलिए नहीं बदलता। लेकिन घड़ी हर रोज पहनता है। संयोग ही कहें कि किसी ने उससे टाइम नहीं पूछा। एकबार के अलावे। एक बार एक खूबसुरत लड़की ने जल्दबाजी के भाव में उससे पूछा- भाई साहब, कितने बज गए ?

उसने सही में घड़ी देखी। और सही में उसके घड़ी में सदियों से जो टाइम चल रहा था, उसने बता दिया। कोई और परिस्थिति होती तो ऐसा नहीं होता। लड़की बहुत सुन्दर थी। शायद उसके रूप से प्रभावित मेरा यह पात्र हड़बड़ा गया और सत्य बोलने से सत्य और असत्य बोलने से असत्य होगा भूल गया। लड़की मिलनसार थी। हँसी। हँसते हुए बोली- मैंने तो १२ बज गया क्या, यह जानने के लिए पूछा था। उसके बाद वह नहीं रुकी।

मेरा पात्र सत्य बोलकर भी जैसे जुर्माना दिया हो, शान्त खड़ा रहा। सोचा कि तत्काल घड़ी निकालकर फेंक दी जाए। फ़िर सोचा किसी दिन तो कोई दो बजकर पच्चीस मिनट पर टाइम पूछेगा ? और यह प्रश्न किसी लड़की नेकर दिया तो अपनी गलती ठीक करने का अवसर मिल जाएगा। फिलहाल अभी के लिए एक सुन्दर लड़की को मानवीय संतुष्टि नहीं दे सका इसके लिए उसे कुछ देर के लिए घोर पश्चताप रहा। उसके बाद वह किसी ओर निकल गया।

घड़ी के बाद उसके जीवन में जूतों का नम्बर आता था। अभी जो जूता वह पहनता है, वह उसका नहीं है, किसी और का है। अक्सर दारू पीने के बाद जब निकलता था तो दूसरे का जूता पहनकर चल देता था। यह लगभग उसकी आदत सी बन गई है। बाद में जूता वाला किसी तरह पताकर उससे अपना जूता ले जाता था, खुश हो जाता था। उसके जूते के तुलना में वह जूता अच्छा होता था। इस बार गोलमाल में भी गोलमाल हो गया। पन्द्रह दिन में तीन जोड़ी जूते बदल गए। अब वह तीन जोड़ी जूतों में अच्छा और खराब ढूंढने लगा। यद्यपि तीनो जोड़ी जूते दूसरों के ही थे। लेकिन फ़िर भी उसे अफसोस इस बात के लिए था कि दूसरा जूता अच्छा था, वह जूता छोड़कर तीसरा जूता पहनना पड़ा जिसके लिए उसे अच्छा नहीं लग रहा था। उसका अपना जूता कहाँ होगा कहाँ ? आज तक किसी ने दावा भी नहीं किया। अब तो जूता फटने का समय भी आ गया। उसकी सोच है। अब तो उसका अपना जूता भी सुबूत देने का

समय आ गया।

एक दिन भूख लगी था। सुबह का समय था। एक मित्र के घर के पास था। चला गया। नहीं समझता। दस महीने हो चुके थे वह उसके घर नहीं गया था। इतने में तो एक बच्चे का गर्भाधान, जन्म और थोड़ा बहुत पालन पोषण भी हो जाता है।

वहाँ गया। जाने के बाद उसे मालूम हुआ कि उसका वह मित्र योगा सीखने लगा था और योगा गुरु की प्रतीक्षा कर रहा था पूरा परिवार।

मित्र ने कहा- तुम भी करो आज।

गुरु आए। गुरु ने अपने आपको गुरु दिखाने का प्रयत्न बड़े हिसाब से किया था। लम्बे बाल। पीला वस्त्र और पीला उपर्ना।

समझदार तो समझदार ही लगता है। योग के साथ बोलने वाला भी। योग सिखाने के बाद गुरु अन्यत्र निकला अगला प्रशिक्षण के लिए। उसके बाद मेरे पात्र के काम की बात आई। टोष्ट और आमलेट के बाद कॉफी पीकर चला। उसके घर के पास एक बड़ा सा गड्ढा था। बिना कोई कारण ज़मीन धँसकर बना हुआ गड्ढा। और कोई समय तो नहीं, लेकिन जब वह रात को दारू पीकर आता था तो हमेशा उस गड्ढे में गिरने का डर रहता था। संकरी रास्ता मात्र बाकी रह गया था। हर दिन वह ठीक से देखकर निकलता था, रात में किस रास्ते से आना है ताकी गड्ढे में न गिरे। गड्ढा पार करने के बाद उसे गर्व सा महसूस होता था। एक छोटी-मोटी जीत सी। ये बातें बहुत समय से चलती आ रही थी । कभी कभी तो गड्ढे से बचते बचते वह हैरान महसूस करता था और सोचता कि एक बार गिरकर देखूँ तो पता चल जाएगा कि लोगों में कितनी मानवता बाकी है। लेकिन ऐसा उसेने कभी किया नहीं। हमेशा जीतना और वीर होने का भाव ही उसे सुखद लगता था। भले ही और तरफ वह हारा हो, अगर एक गड्ढा मुझे जीत का अहसास देता है तो मैं अपने नियम का क्यों उल्लंघन करूँ ?

यह पात्र प्रेम भी नहीं करता था। प्रेम में उसे विश्वास ही नहीं था। उसे रोमांच में भी विश्वास नहीं थी। उसके स्वभाव में ऐसा कुछ नहीं दिखता था, जिससे द्वन्द, झगड़ा या नेतृत्व में से कुछ उत्पन्न हो, और कुछ हो या ना मगर वह अपने जीवन बड़े आराम के साथ जी रहा था। ऐसे पात्र में क्या मिलेगा लिखने को ? बलात्कार या शारिरिक अन्य क्रिया कलाप या किसी तरह का तरंग, कुछ भी नहीं था। शांत सरोवर की तरह वह अपनी जिन्दगी में ही खुश था। उसे अपने जीवन के प्रति कोई शिकायत भी नहीं थी। आठ बजे खाना खाने के लिए बैठता था। साढ़े आठ बजे घर से निकलता था। बस में ज़्यादातर लटककर ही जाता था। वापसी में पैसा है तो टैक्सी नहीं तो चलकर ही घर आने की हिम्मत रखता था। ऐसे जीवन में क्या खोजें और क्या लिखें ?

ऐसे में मैंने सोचा-पात्र को काल्पनिक बना दिया जाए। उसके बाद कुछ भी कराया जा सकता था पात्र के द्वारा।

एक दिन पात्र आ रहा था। पीछे से आवाज़ आई - सर। उसने देखा पड़ोसी था। पड़ोसी ने आकर कहा- सर अब वह गड्ढा भरने के लिए पैसा निकासा होने को है।

उसने कहा- ए... ।

उसने इतनी धीमी आवाज़ में ए इसलिए कहा क्योंकि ४- ५ वर्ष में वह उस गड्ढे के बारे में कितनी बार कह चुका था। वह अपने आपको समाजसेवी कहता था। कभी नहीं भरा वह गड्ढा। अभी इधर आकर उसने कहना छोड़ दिया। एक यही तो गड्ढा था जो उसे जीत का अहसास दिलाता था। ये जीत खोकर वह हर रात पराजित नहीं होना चाहता था।

रुखे स्वभाव का वह आदमी आज इतने विनम्र भाव में कैसे बोला। उसमें भी गड्ढा भरने का विषय क्यों लाया ? पात्र को यह आश्चर्य हो रहा है।

कुछ देर बातचीत करने के बाद समझ में आया, चुनाव का समय था और वह उम्मीदवार बना था।

मोहल्ले में ऐसा होता रहता था।

इसलिए मैंने सोचा, पात्र को काल्पनिक बना दिया जाए तो कुछ भी लिख देने से हो जाएगा। एक बार मन में आया कि इसे भी उम्मीदवार बना दिया जाए और लिखूँ। लेकिन चुनावी दाँवपेंच मुझे नहीं आते, यह कहना अवास्तविक होगा। एक तो मेरी कहानी वैसे भी मान्यता प्राप्त नहीं, ऊपर से अपने को ही अवास्तविक लगे तो कैसे लिखे ?

लिखना तो जैसे भी पड़ेगा। क्योंकि यह मेरी

कमज़ोरी हो चुकी है। मुझे पता है कि इससे मुझे कुछ पैसे तो मिल जाते हैं । फ़िर ऐसी कहानी जिसमें कुछ न हो, ऐसे पात्र लेकर कैसे आगे बढ़ूँ जिसमें कुछ नहीं है। पेनाल्टी मिली है और रोकने के लिए गोलकीपर भी नहीं। ऐसी परिस्थिति है अभी मेरी। और क्या होगा ? इससे पाठक से भी ज़्यादा दूसरे लेखक के ही खफा होने का डर है लेकिन यह अवसर भी तो नहीं छोड़ सकता। दरिद्रता बहुत शक्तिशाली होती है। वह कितने असफल कार्य में हाथ लगाने को मजबूरकर देती है। पहले के ज्ञान और सफलता में भी।

अब जो होगा सो होगा। ऐसे भी कमज़ोर वैसे भी कमज़ोर। एक बेकार, नालायक और जीवन में लिखने लायक कुछ भी नहीं हो ऐसे पात्र को लेकर मैं लिखने लगता हूँ।

शुरू करने से पहले एक ज़रूरी सूचना अवश्य देना चाहता हूँ। जिस पात्र को मैंने काल्पनिक कहाँ, वह वास्तव में मैं ही हूँ। अब तो स्पष्ट हो गया होगा, यही एक पात्र मेरे लिए बाकी क्यो रहा ?

मैं स्वयं भी जीवन में काल्पनिक से क्या कम हूँ ?

अनुवादक : कंचना झा

कहानी

विलय

ध्रुव सापकोटा

उनके मन पर शून्य का कब्ज़ा है। उनके मस्तिष्क में गूँजता रहता है– मैं शून्य में शून्य की तरह विलीन हो गई। उन्हें शून्यता का बोध क्यों हुआ ? मेरे मन में प्रश्न उठा है। यह शून्यता स्वयं आकर यों ही बैठा तो अवश्य नहीं होगा। वह कहती हैं– मैं शून्य में हूँ। उन्होंने महाकवि देवकोटा की याद दिलाई है। उन्होंने 'विलीन हो गई' कहा।

इस समय मैं उनकी चाय दुकान में हूँ। वह मुस्कुरा उठती हैं। वह गोरी हैं। उन्होंने सफ़ेद कमीज लगाई है। उन्होंने काजल लगाया है। पुरुष शैली वाले बाल हैं। उन्होंने काला पैंट लगाया हुआ है। उनकी छाती पुष्ट दिखती है। इतनी सुबह ही वह सजधजकर आ पहुँची हैं। वह मोहक दिख रही हैं। पुरुष मन मोहित हो जाता है।

उनकी चाय दुकान में मेरे आने-जाने का दौर बहुत पुराना नहीं है। मैं कौन हूँ, कहाँ का हूँ, क्या हूँ, यह उन्हें पता नहीं है। इतना भर उन्हें पता है– मैं उनकी चाय दुकान का नियमित ग्राहक हूँ, हफ़्ते में एक बार पहुँचने वाला। वह भी सुबह-सुबह। पहली बार मैंने उनसे कहा था– "चीनी कम, रंग कड़ा। उसके बाद से मुझे कहना नहीं पड़ा। मेरी पसंद की चाय मेरे सामने आ जाया करती है। इस समय मैं अकेला ग्राहक हूँ।

"आज आप आई हैं।" मैं कहता हूँ।

"उसकी तबीयत ठीक नहीं है।" वह कहती हैं।

"इस शहरी वातावरण का असर तो होगा न ?"

"इसकी तो हमें आदत पड़ चुकी है।" मेरी इस चाय दुकान की दोनों तरफ़ के रास्ते धूल भरे हैं। गाड़ियाँ लगातार धूल उड़ाती हैं। शाम तक तो इस दुकान में जगह-जगह धूल ही धूल हो जाती है।"

"वैसे उसे हुआ क्या है ?"

"कल उसने कुछ ज़्यादा ही पी ली थी।"

"क्या उसे ज़्यादा पीने की आदत है ?"

"दबाकर ही पीता है।"

"डरता नहीं है ?"

"डर वर कुछ नहीं है।"

"मेरा एक दोस्त है। बहत्तर साल का है। हर दिन आठ पैग पीता है।"

"अब वह कितना पीता है, मुझे पता नहीं।"

"मेरा दोस्त तो सुबह से ही पीने लगता है।"

"नहीं, वह सुबह से तो नहीं पीता।"

"इस नाश्ते की दुकान के बोझ से तो नहीं ?"

"पता नहीं।"

"आपकी ज़िम्मेदारी के बोझ से हो शायद।"

"हो सकता है।"

"मेरे दोस्त के ऊपर तो कोई ज़िम्मेदारी ही नहीं है।"

"आपके दोस्त सामाजिक अनुशासन शायद भूल चुके हैं।"

"आपको पीने वाले लोग पसंद नहीं हैं ?"

"बिलकुल नहीं।"

"जीवन में जो चीज़ अच्छी नहीं लगती, वही झेलना पड़ता है।"

"अजीब लगता है। देर से आने पर तो झुलस जाती हूँ। नींद भी पूरी तरह खराब हो जाती है। उसके मुँह की बदबू से मितली-सी होने लगती है।"

"क्या वह रोज़ पीता है ?"

"अक्सर पिए हुए ही देखती हूँ।"

"घर में पीता है या बाहर ?"

"अक्सर बाहर ही, दोस्तों के साथ।"

"क्या उसके दोस्त बहुत हैं ?"

"हैं। बेसिर-पैर के। बेताल बेसुरी बातें करने वाले। मुझे तो बिलकुल भी पसंद नहीं हैं।"

मेरे दोस्त लोग आ चुके हैं। यह चाय दुकान हमारी भेंटघाट की जगह है। यहीं से हमारी सहयात्रा शुरू होती है। हम सेहत बनाने निकले हैं। एक के दूसरे से फ़ायदा लेने की संभावना नहीं है। सभी दोस्त साठ से उपर के हैं।

"आप लोग झुंड में ही क्यों निकलते हैं ?" वह कहती हैं।

"हम डरपोक हैं।" मेरा दोस्त कहता है।

"मैं नहीं मानती। आप मज़ाक कर रहे हैं। मेरे दोस्त का जवाब उन्हें दुरुस्त नहीं लगता।"

"कभी भी हादसा हो सकता है।" मेरा दोस्त कहता है।

"आतंकवादी के मारने का डर ? या गुंडों के मारने का डर ?"

"गाड़ियों का डर। एक को टक्कर दी तो दूसरा अस्पताल पहुँचा सकता है। अगर मार ही दिया तो समय पर ही परिवार वालों को खबर मिल सकती है।"

इस बूढ़ी उम्र में भी काफ़ी सजग और सतर्क हैं।" वह कहती हैं।

"वक्त का तकाज़ा है।" दोस्त कहता है।

"इस उम्र में भी बड़े हिसाब-किताब से जीते हैं।" वह कहती हैं।

"आप भी तो यह चाय दुकान हिसाब-किताब से ही चला रही हैं।"

"यह मेरा चुनाव नहीं है। मैं बस शामिल हुई हूँ। यह चाय दुकान तो मेरे आने के पहले से चल रही है। वह कहती हैं।

मेरे दोस्त चाय पी चुके हैं। वे लोग मुझसे अलग रुचि के हैं। वे लोग लाल चाय, वह भी बिना चीनी के पीते हैं। अगले हफ़्ते जब मैं पहुँचा तो वह अकेली थीं, चूल्हे पर दूध उबालती हुई। टेबल पोंछने लगी थीं। आज भी पूरी तरह सजी सँवरी।

"आज भी मैं ही पहला हुआ।" मैं कहता हूँ।

"जब भी पहले होने की आदत है क्या ?" वह कहती हैं।

"नहीं नहीं, इम्तिहान में जब भी दूसरा ही हुआ। बस पास हुआ। नौकरी में जब भी पिछड़ता रहा। अभी उपलब्धिहीन स्थान में ही पहला हुआ हूँ।"

"आपके साथ बात करने में बड़ा अच्छा लगता है।"

"इतनी प्रशंसा करने वाला इंसान आजकल नहीं मिलता।" मैं कहता हूँ।

"यह कोई प्रशंसा नहीं है। बस मन में जो आया, वही कह दिया।" वह कहती हैं।

"वो कहाँ है ? आज भी आप ही की बारी है ?" मैं प्रसंग बदलता हूँ।

"आज तो वह नेता के घर गया है।"

"ठेका-पट्टे की पैरवी करने गया है क्या ?"

"ठेका-पट्टा भी सभी नेता के हाथ में होता है भला ?"

"नेता ही तो हैं देश के सर्वेसर्वा।"

"वह ठेका-पट्टा को लेकर नहीं गया है।"

"कहीं नौकरी करने की सोच तो नहीं बनाई है ?"

"नौकरी भी नेता ही बाँटते हैं क्या ?"

"बड़े-बड़े महत्वपूर्ण पद तो उन्हीं लोगों के हाथ होता है।"

"इतनी बढ़िया सोच बनाता तो बात ही अलग होगी।"

"यों ही तो नेता के घर चाकरी में वह गया नहीं होगा। वह भी आपको तकलीफ़ देकर।"

"उस पर चुनाव की सरगर्मी सवार है।"

मेरे लिए यह अनपेक्षित बात थी। यह आदमी हमारे साथ विदेशों से आने वाली नेपाली लाशों की बातें करता था। बेची गई लाखों नेपाली बेटियों की बातें करता था। झोपड़ियों में कष्टकर जीवन गुज़ार रहे भूकंप पीड़ितों की बातें करता था। भूखे नेपालियों की बातें करता था। चम्चों के विरुद्ध लंबी-चौड़ी व्याख्या करता था। उसे तो हम आम नेपाली को लेकर जिज्ञासु समझते थे। वह तो चुनाव में भाषण करने के लिए अभ्यास किए जा रहा था।

"यह तो बड़ा ही काम है। इस आदमी के व्यक्तित्व का यह आयाम तो हमें पता ही नहीं था।" मैं कहता हूँ।

"मुझे भी कहाँ पता था।" वह कहती है।

"इंसान का भीतरी उद्देश्य पता ही नहीं चलता।"

मैं कहता हूँ।

"एक ही बिस्तर पर सोने वाले को तो पता ही नहीं चलता, औरों को कैसे चले ?" वह कहती हैं।

"अब आपको उसके चुनाव क्षेत्र में जाना नहीं पड़ेगा ?"

"नहीं पड़ेगा।"

"उसे चुनाव क्षेत्र में साथ देने वाला कौन है ?"

"सारा इंतज़ाम नेताओं ने किया है।"

"पर्चा, घोषणा पत्र कई सारी चीज़ें होंगी।"

"सब नेता लोग करते हैं।"

"आप तो अब गाड़ी, क्वार्टर, विदेश यात्रा सारे सपने देखने लगी होंगी।"

"नहीं, बिलकुल नहीं।"

"जीतने की संभावना कितनी है ?"

"वह जीतने के लिए खड़ा ही नहीं हुआ है।"

"तो फ़िर क्यों खड़ा हुआ है ?"

"खड़ा हुआ नहीं है, खड़ा किया गया है। दूसरे उम्मीदवार को हराने के लिए खड़ा किया गया है।"

"दूसरे के लिए प्रयोग किया गया है ?"

"कह सकते हैं।"

"परदे के पीछे कौन किसे प्रयोग करता है, हमें तो कुछ पता ही नहीं चलता। जनता के साथ धोखा नहीं हुआ ?"

"जनता को तो हमेशा धोखा ही मिला है। यह कौन-सी बड़ी बात हो गई ?"

"उस पर विश्वास करके दिए हुए जनता के मत बेकार होने वाले हैं, नहीं ?"

"दूसरे को हराने में काम आने वाले हैं। बेकार तो कह ही नहीं सकते।"

"आपके पति में धोखा देने की क्षमता है।"

"वही क्षमता देखकर तो नेता ने चुना होगा। वरना क्यों पैसे लगाता ? ज़्यादा चल्ती अभी धोखा देने वालों की ही है।"

अगले हफ़्ते पहुँचने पर उस चाय दुकान में वही थीं। दूसरे ग्राहक नहीं आए थे। वह कड़ाही में चने की सब्ज़ी पका रही थीं। अभी-अभी उबले अंडों को टेबल पर सजाकर रखी हुई थी।

"वह अब भी नहीं आया ?" मैं कहता हूँ।

"आ चुका है।" वह कहती है।

"अपने मिशन में कामयाब हो गया ?"

"यही कह रहा था।"

"गड्डी तो मोटी आई होगी ?"

"हो सकता है।"

"आपको नहीं बताया ?"

"उसने बताया नहीं, मैंने पूछा भी नहीं।"

"दोनों के रास्ते अलग-अलग हैं।"

"पता नहीं।"

"कम नहीं है आपका पति भी। हारने वाला युद्ध लड़कर खुश होने वाला है।"

मित्र लोग आ चुके थे। सब ने चाय पी। चुनाव की चर्चा करने की फुर्सत नहीं मिली। हम अपनी सहयात्रा में शामिल हुए।

अगले हफ़्ते उनकी चाय दुकान में पहुँचने पर पहला ग्राहक मैं ही था। उस दुकान के सामने एक कोना था। दीवार से सटाकर में गणेश जी की मूर्ति हाल ही में स्थापित की गई थी। सड़क पर चलने वालों ने गंदा करके उस स्थान को दुर्गंधित बना रखा था। गणेश की स्थापना ने गंदगी फैलाने वालों को सतर्क कर दिया था। उन्हें भगवान के सामने गंदगी करने की हिम्मत नहीं हुई थी। इस जगह परंपरावादी सोच ने काम किया था।

"ये तरकीब आपकी है क्या ?" मेरा प्रश्न था।

"मेरी भी कह सकते हैं।" वह कहती हैं।

"काम तो किया है।" मैं कहता हूँ।

"पहले भाषा काम करेगी, सोचा था। सूचना चिपकाई, काम नहीं किया। सूचना का अर्थ ही नहीं हुआ। अब ये दूसरी योजना है। कामयाब हुई। वह कहती हैं।

"वह अब भी नहीं आया ?" मैं प्रसंग बदलता हूँ।

"आ चुका है। घर में ही है। वह कहती हैं।

"चुनाव में थकान की वजह से सुस्ता रहा होगा।"

"नहीं, ऐसा कुछ नहीं है। अब से मैं हमेशा सुबह में आऊँगी।"

"आप लोगों के बीच यह क्या नया समझौता है ?"

"जी हाँ, हमने आपस में समझौता किया है।"

"यह नया समझौता करने को लेकर कैसे प्रेरित हुईं ?"

"यह मेरी ही योजना है। मैंने ही उसे मनाया है।"

"अच्छा ही किया। अब हमारे आने पर आपसे बातचीत होगी।"

"आजकल मुझे दोपहर को फुर्सत नहीं होती, इसलिए सुबह ही आने लगी हूँ। उसको दूसरी बारी दी है।"

"दोपहर को कहीं और काम करना शुरू किया है?"

"काम नहीं कर रही हूँ, पढ़ना शुरू किया है, हिब्रू भाषा सीख रही हूँ।"

"अब आपका अवतार बदल जाएगा।"

"आशा तो यही है।"

"आपकी उड़ान का अनुमान करना हमारे वश की बात नहीं है।"

"यह तो परिस्थिति की दी हुई सीख है।"

"अब आप इस चाय दुकान को कभी भी नमस्कार कर सकती हैं।"

"इस चाय दुकान का मोह ही क्या?"

"ऐसा मत कहिए। बिना मोह के कोई नहीं जुड़ता।"

"अपने माता-पिता का एक बार स्वागत करने की इच्छा तो पूरी नहीं कर सकी। ऐसे से भला क्या मोह?"

"यह तो मैंने कल्पना भी नहीं की।"

"सच कह रही हूँ। कुछ गलत नहीं कह रही। मैं अपने माँ-बाप को दूसरी बार चकित करना चाहती थी। उनसे शाबाशी पाना चाहती थी। उनसे आशीर्वाद चाहती थी। ये सब मेरे मन में ही सिमटकर रह गई।"

"माता-पिता को पहली बार कब चकित किया था?"

"तीन साल पहले।"

"कैसे?"

"इसके साथ शादी करके।"

"क्या आपने माँ-बाप की मर्जी से शादी नहीं की थी?"

"नहीं, इसके साथ शादी करने बाद ही उन्हें बताया था।"

"क्या यह आपका सहपाठी है?"

"सहपाठी भी नहीं है, हमउम्र भी नहीं।"

"संपर्क सूत्र क्या है तो?"

"यह तो मेरा फेसबुक फ्रेंड है। फेसबुक फ्रेंड ही पति बना।"

"आपमें चकित करने की कला मौजूद है। मुझे तो लगता है कि आपने माता-पिता को ही नहीं, पास-पड़ोस को भी चकित कर दिया।"

"क्या करें? वह कला मुझे किसी निष्कर्ष पर पहुँचा ही नहीं सकी। कोई ठिकाना ही नहीं बन पाया।"

"अब यह हिब्रु नया नक्शा खींचेगी।"

"यही सोचकर तो मेहनत कर रही हूँ।"

"और यह फेसबुक फ्रेंड?"

"तीन साल तो साथ रही न?"

"क्या यह जीवन भर का फ्रेंड नहीं है?"

"फल न देने वाला वृक्ष है।"

"आप भी अपने फ्रेंड को विचित्र विशेषण देती हैं।"

"मैं तो अभी शून्य में हूँ।"

"क्या कह रही हैं?"

"सच कह रही हूँ।"

मैंने उनके चेहरे को देखा। मैंने उनकी आँखों में देखा। वहाँ माँ-बाप नहीं थे। वहाँ पति नहीं था। वहाँ यह चाय की दुकान भी नहीं थी। सबसे आखिर में वहाँ देश ही नहीं था।

"देश काम आएगा। बाद तक काम आएगा। बचाइए।" मैं कहता हूँ। शून्य की अनुभूति की हुई महिला को इससे ज़्यादा क्या कहा जा सकता है?

तीसरे हफ़्ते मैं उनकी चाय दुकान में था। वहाँ दो अपरिचित लड़कियाँ थीं, अभी-अभी यौवन की दहलीज पर खड़ी हुई।

"वे लोग कहाँ हैं?"

"उन्होंने यह होटल हमें बेच दिया।" एक युवती जवाब देती है। वे लोग कहाँ गए, पूछने की आवश्यकता ही नहीं थी।

अनुवादक : मुकेश कुमार मिश्र

कहानी

अंतरदृष्टि

पद्मावती सिंह

आँख खुली, घड़ी देखी तो सुबह के तीन बज रहे थे। सुबह होने को है अब क्या सोना ? फ़िर भी एक दो घंटे और सो लेती, मन ही मन सोचा। नींद न आए तो मन में अनेक बातों का आना स्वभाविक है। मन में बहुत सी बातें आ रही थीं। इतने में ही कल शाम असन की भीड़ में दिखी एक महिला की आकृति मन में आ गई। वह मुझसे बात करना चाह रही थी लेकिन असन की भीड़भाड़ और धक्काधुक्की के कारण मैंने उससे बात करने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई।

"अंतरदृष्टि में वह दिखाई दी। आपने ऐसा किया जैसे मुझे जानती तक नहीं।" मुस्कुराते हुए उसने कहा।

"कौन हो तुम ? " उसे पहचानने की कोशिश करते हुए मैं बोली।

"मैं फूलमती...।" उसके परिचय देने के बाद मैंने उसे पहचाना। लम्बे अंतराल के कारण मैं उसे भूल चुकी थी। उसके बाद मेरे मन-मस्तिष्क में फूलमती फैलती चली गई। अतीत में उसके साथ घटित एक घटना के साथ मेरा गहरा संबंध था जिसके कारण मेरी सोच शृंखलाबद्ध रूप में दस वर्ष पीछे दौड़ने लगी। वह घटना भूलने लायक नहीं थी। समय के गर्भ में इतने दिन खो जाने के बाद भी फूलमती जब अंतरदृष्टि में दिखाई दी तो मेरे मानस पटल में वह घटना पुनरावृत्त होने लगी। मैंने याद किया- झमाझम बारिश हो रही उस शाम को।

सावन की झड़ी लगातार बरस रही थी। कीचड़ के कारण बाहर निकलने की स्थिति नहीं थी इसलिए मैं घर में ही थी। खिड़की के पास बैठे मैं बारिश का आनंद ले रही थी कि उसी समय फोन की घंटी बजी। फोन उठाया। सुधा का विचलित स्वर कान में तरंगित हुआ। शुभेच्छा, ज़रूरी काम है। जैसे भी हो, कुछ देर के लिए मेरे घर आओ।

"क्यों, ऐसा क्या हुआ ? " एक ही साँस में मैं बोल गई। "मेरा तो जहाज ही डूब गया।" वह रुग्ण स्वर में बोली। ठीक है मैं अभी आती हूँ । कहते हुए मैं उसी वक्त उसके घर पहुँची। गर्भवती होने के कारण सुधा कुछ दिन पहले ही अपनी माँ के पास आई थी।

घर में प्रवेश करते ही उसने ज़ोर से मुझे पकड़ लिया और विषादपूर्ण स्वर में बोली-

'देखो शुभेच्छा, फूलमती सुधाकर के बच्चे की माँ बनने वाली है। अब क्या किया जाए ? मेरो तो जहाज ही डूबने लगा।

उसकी बात सुनकर मैं अवाक् रह गई। वह कहती गई-

कल दीदी मेरा कुछ सामान लेकर घर पर गई थी। उन्होंने ज्योंही फूलमती को देखा समझ गई कि वह पेट से है। जब उन्होंने मुझे यह बात बताया मुझे तो लगा जैसे मैं आसमान से गिर गई। तत्काल मैं दीदी से साथ घर गई। घर में फूलमती अकेली थी। उसे कठघरा में खड़ा कर हम दोनों उससे पूछताछ करने लगे। पहले तो वह कुछ नहीं बोली। फ़िर दीदी ने उसे सत्य बात बिना डरे बताओ। तब जाकर उसने स्वीकार किया कि वह पेट से है। मैं भी कितनी मूर्ख ? सोच रही थी कि वह मोटी हो गई है।

जिस समय उसकी स्वीकृति आई, वह हाँ बोली मुझे ऐसा लगा जैसे आसमान से गिर गई हूँ, बिल्कुल मुर्दा समान हो गई मैं। अपने नवजात शिशु का भविष्य संकट में पडा देख रही हूँ मैं। इतना गुस्सा कि आगे कुछ दिखाइ न दे। ज़ोर से गाल पर एक चाटा मारा, वह थर थर कांपती हुई रोने लगी। रोते हुए

बोली- मालकिन साहेब, मालिक ने मुझसे जबरदस्ती किया। मैं आपको कहना चाहती थी लेकिन डर गई। कहते हुए वह फ़िर रोने लगी।

उसके बाद हम दोनों एक दूसरे का चेहरा देखते रहें।

उसकी बाँहों को पकड़कर मैं चिल्लाई-तुम मेरी सौतन बनना चाहती हो ? जिस थाली में खाया उसी में छेद ? पातकी कहीं की...। जाओ अभी घर से निकलो। मैं उसके बाल को पकड़ घसीट के बाहर निकालना चाहती थी लेकिन दीदी ने मुझे रोक लिया। और कहा-"ऐसे समय में क्रोध नहीं, विवेक से काम लेना चाहिए ...।"

दीदी के समझाने के बाद मैं कुछ शान्त हुई। उसके बाद सुधाकर को बिना बताये हुए फूलमती को लेकर हम लोग यहाँ आए है। वह कल से बिना कुछ खाये बैठी है। "मुझे विष दे दीजिए मैं मरना चाहती हूँ " कह रही है।

सुधा की बात सुनकर मैंने शान्त स्वर में कहा- देखो सुधा, हम लोग पत्रिका में पढ़ते थे कि घर में काम करने वाली लड़कियाँ अपने मालिक द्वारा बलात्कार का शिकार होती है। फूलमती बहुत सीधी है इसलिए ऐसी घटना हुई। उसे दोष देकर या सजा देकर कोई फायदा नहीं है। बेइमान तो सुधाकर है। अब फूलमती को बली का बकरा बनाने से अच्छा उसका उद्धार कराना चाहिए हमें। ऐसा तरकीब निकलना चाहिए कि साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे।

"कैसै ? " सुधा मेरे चेहरे के तरफ देखते हुए बोली। मेरा एक दोस्त स्त्री रोग विशेषज्ञ है। चुपचाप गर्भपतन करवा देते हैं, सुधाकर को बिना जानकारी दिए फलमती को उसके गाँव भेज देतें है और जितनी जल्दी हो सके उसकी शादी करा देतें है। इस काम की जिम्मेदारी मैं लेती हूँ। मेरे इतना कहने के बाद दीदी मेरी बातों से सहमत हुई । उसी योजना के तहत मैंने फूलमती के गर्भपतन में सक्रिय भूमिका निभाई। गर्भ दो महीने का ही था इसलिए ज़्यादा खतरे की बात नहीं थी। कुछ दिन घर में रखकर उसे पौष्टिक आहार दिया और फ़िर मैंने उसे उसके गाँव पहुँचा दिया। सुधा ने उसको तन्खाह में कुछ बढ़ाकर दस हजार रूपया भी दिया था। वह पैसा मैंने फूलमती के पिताजी के हाथ में रख दिया और जल्दी ही मैं उसको गाँव से वापस आ गई। उसके बाद जैसा कि हमने सल्लाह दिया था ठीक उसी तरह एक लाहुरे के साथ उसकी शादी हुई और वह मलाया के तरफ चली गई। यह बात फूलमती के पिताजी ने मुझे बताया।

बात अगर इतने में ही खत्म हो जाती तो ठीक थी लेकिन घटनाक्रम कुछ इस तरह आगे बढ़ा कि फूलमती के घर से गायब होने के बाद सुधाकर ने उसकी बहुत तलाश की। घर में काफी समस्या खडा किया। सुधा के साथ बहुत पूछताछ की। सुधा कहती थी उसे क्या पता वह तो माँ के घर गई थी, ऐसा व्यवहार दिखाया मानो उसको कुछ पता ही नहीं। फ़िर वह पुलिस के शरण में भी गया। लेकिन फूलमती का गाँव और पता कुछ भी मालूम नहीं होने के कारण वह चुप तो हो गया लेकिन सुधा को वह शंका की नजर से देखने लगा। इतना ही नहीं इसके बाद उसके व्यवहार में एकाएक बहुत बड़ा परिवर्तन आया। अब उसने सुधा और अपने नवजात शिशु से वास्ता करना भी छोड़ दिया। हमेशा आफिस से लौटने के बाद घर नहीं आकर इधर-उधर भटकता था, रात को देर से घर आता था और झगड़ा करने लगता था। वह एकाएक कठोर पति में परिणित हो गया। सुधा के शरीर पर वह जहाँ तहाँ आक्रमण करता था और अप्राकृतिक यौन सम्पर्क रखने लगा। इस तरह सुधा के जीवन को उसने नर्क बना दिया।

जब यह सब बात सुधा ने मुझे बताई तो मुझे बहुत दुःख हुआ।

एक दिन मैं घुमते हुए सुधा के घर गई थी। सुधाकर भी घर में ही था। प्रसंगवश फूलमती की बात निकली। "फूलमती को किसी ने गायबकर दिया, नहीं तो इतनी सिधी लड़की ऐसे ही गायब हो जाएगी ? " सुधारकर ने अपनी शंकालु दृष्टि सुधा की ओर देखकर गुस्साते हुए कहा।

"बच्ची थोड़े ही है, जो कोई गुमकर दे और लापता हो जाए। जवान थी, मन में उमंग था किसी के साथ चली गई होगी।" सुधा ने इतना कहा ही था कि सुधाकर चिल्लाकर बोला-

"वो इतनी आसनी से बहकने वाली लड़की नहीं ... समझी। ऐसे ही किसी को बिना कुछ कहे वह जाने वाली नहीं थी। किसी ने घात किया है। जिस दिन मुझे पता चलेगा देखना मैं क्या करता हूँ।"

हाँ, अब किसी के साथ जाने वाली लड़की भी सबको पूछकर जाएगी। पक्का वह किसी के साथ चली गई। नहीं तो चुपचाप क्यों भागती ? सुधा सरासर झूठ बोली।

"कैसे जाएगी किसी के साथ ? किसी के साथ जाने की अवस्था में ही नहीं थी वह" सुधाकर ठोककर बोला।

"कैसी अवस्था ? किसी के साथ भागने वाले को कोई रोक सकता है। अपनी बेटी किसी के साथ चली जाए तो चुप रहना पड़ता है, एक काम करने वाली लड़की के लिए इतना महाभारत क्यों मचा रहें है ? " अब सुधा भी गुस्से से बोली।

वह किसी के साथ नहीं गई । या तो कोई बहलाकर ले गया या फ़िर किसी दुर्घटना का शिकार हुई फूलमती। सुधाकर थोड़ा विचलित होते हुए बोला।

मैंने सुधा को बात आगे नहीं बढ़ाने का संकेत किया और फ़िर वह चुप हो गई।

उन दोनों के वाकयुद्ध का मैं चुपचाप प्रत्यक्षदर्शी बन वहाँ बैठी रही । डरते हुए धीरे से मैंने मुँह खोला-

"जिस बात को कुरेदकर किसी को फायदा होने वाला नहीं है उसे कुरेदकर क्यों लड़ाई झगड़ा कर रहे है आपलोग ? ठीक है किसी के साथ भागी नहीं होगी, हो सकता है अपनी स्वेच्छा से ही घर से चली गई हो। किसी के बहकावे में आकर तो निश्चित ही नहीं गई होगी। फूलमती की उम्र हो गई थी, गई होगी कहीं।"

मेरे इतने कहने पर एक बार मेरे तरफ क्रोधित नजरों से देखा और बिना कुछ कहे सुधाकर वहाँ से चला गया।

उसके बाद सुधा चिन्तित होते हुए बोली- "मुझे लगता है सुधाकर ने फूलमती को सिर्फ अपनी यौनतृष्णा मिटाने के लिए प्रयोग नहीं किया था, वह उसे घर वाली बनाकर रखना चाहता था। नहीं तो इतनी खोजखबर इतना क्रोधाग्नि क्यो ..? "

शायद हमने समय में ही बुद्धि प्रयोग किया। मैंने इतना कहा ही था कि सुधा बोली- "समय में बुद्धि प्रयोग नहीं किया होता तो मैं तो न घर की न घाट की हो कर रह जाती।" वैसे तो मैं उसके घर में पत्नी की तरह रह रही हूँ लेकिन पत्नी का सम्मान मुझे सुधाकर ने नहीं दिया। न तो उसकी पत्नी हो कर रहने में मुझे सन्तोष है। विश्वासघात का चोट अपने दिल में लिए जबरदस्ती उसके साथ रह रही हूँ। इस नवजात शिशु के भविष्य की चिन्ता न होती तो मैं कब के घर से निकल चुकी होती।

काश कि अपने पैरों पर मैं खड़ी हो सकती तो, कही नौकरीकर बेटे को पाल लेती लेकिन अच्छा लड़का कहकर मौसी की बातों में आकर माँ पिताजी ने कम उम्र में ही शादीकर दी। उस समय मैं कक्षा दस में पढ़ रही थी।"सुधा जब अपनी वेदना सुना रही थी तो पहली बार मुझे पता चला कि आर्थिक निर्भरता महिला को विवश और कमज़ोर ही नहीं बनाती उसे आँसू पीने को बाध्य भीकर देती है। मुझे लगा- ये कहानी सिर्फ सुधा की नहीं, आम नेपाली महिला की है।

सब अपनी भुगताई की बात है। मन छोटा मत करो। परिस्थिति का डटकर सामना करो। सुधा को शांत्वना देकर मैं घर लौटी। उसके बाद सुधा और सुधाकर के बीच का संबंध बस औपचारिकता में सीमित हो कर रह गया। सुधाकर सुधा के ऊपर मनमानी करता था, सुधा चुप हो कर रह जाती थी। जब वह बहुत विचलित हो जाती थी मेरे यहाँ आती मेरे कंधो पर सर रखकर रोती थी।

ये सब बात अब सामान्य सी हो चुकी है। उसने अपने जीवन को अपने बच्चे के स्वास्थ्य और विकास में बंधक रखकर, वह जीवन रूपी नाव को मझधार में रखकर बह रही थी। अचानक फूलमती को जब मैंने कल देखा तो मेरा मन अपराध बोध से भर गया।

मैंने अपने दोस्त के गृहस्थी को बचाने के लिए कही फूलमती के साथ घात तो नहीं किया। उसके मातृत्व और स्त्रीत्व को उपहास करने में मैंने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह किया था। उसने गर्भपतन से पहले कितनी मानसिक पीड़ा सही होगी, गर्भपतन के बाद अपने कोख को कितनी बार धिक्कारा होगा, ये तो उसी को पता होगा ..। मगर उसके लिए दोषी तो मैं भी हूँ। मुझसे एक अवमाननीय काम तो हुआ ही है। दूसरे को ठगा जा सकता है लेकिन अपनी आत्मा को नहीं। मन में अपराध बोध घर कर रहा था, लेकिन दूसरे मन ने कहा-

हो सकता है, मैंने जो किया उसने फूलमती को संकट से उबार दिया हो ? सुधाकर की रखौटी होने से

अच्छा किसी की अर्धांगिनी बनकर सम्मानपूर्वक जीवन बिता रही हो..। अगर ऐसा हुआ होगा तो मेरे से उपकार और उद्धार का कार्य हुआ है, मानना ही पड़ेगा।

मुझे एक बार फूलमती के वर्तमान के बारे में जानने की जिज्ञासा हुई। कल जब मैंने उसे देखा तो वह तो अच्छी लग रही थी, ऐसा लग रहा था जैसे खाते पीते परिवार से ताल्लुक रखती हो। पहनावा भी अच्छा ही था। दुख हुआ होता और मेरे से ईर्ष्या होती तो मुझसे बोलने को उत्सुक क्यों होती ? जब मन में यह बात आई तो थोड़ी शान्ति की अनुभूति हुई।

सुबह होते ही मैंने सुधा को फोन किया और उसे बताया कि फूलमती को मैंने असन में देखा था। वह फोन पर धीरे से बोली-" ए धीरे से बोलो, सुधाकर उठ चुका है। वह सुनेगा तो तमाशा खड़ा करने लगेगा।"यह कह उसने झट से फोन रख दिया।

दस वर्ष बीत जाने के बाद भी सुधा अभी भी अपने आपको फूलमती से असुरक्षित अनुभव कर रही है। उसके फोन वार्तालाप से यह स्पष्ट था।

दिन में जब सुधाकर आफिस गया तो सुधा मेरे घर आई।वह फूलमती के साथ कैसे और कहाँ मुलाकात हुई, विस्तार से बताने को कहा।

जब मैंने उसको सब बातें बताई तो वह चिन्तित हो गई और बोली- "अगर सुधाकर और फूलमती की मुलाकात फ़िर से हो जाती है तो मुझे बड़ी दिक्कत होगी। मुझे मारने में भी देर नहीं लगायेगा सुधाकर। एक बार उसके साथ मिलकर बात करनी ही होगी।"

"इसका मतलब मुझे फ़िर से एक बार उसके गाँव जाना होगा ? " उसकी मनसा समझकर मैंने बोला।

"हाँ, एक बार फ़िर मेरे लिए जाओ।" सुधा के बात को मैं टाल न सकी और कहा "ठीक है।"

हमारे बीच बातें हो ही रही थी कि दरवाजे का डोरबेल बजा।दरवाज़ा खोलते ही फूलमती को अपने आगे देखकर जिन खोजा तिन पाइया जैसे लगा।

फूलमती बड़े प्रसन्न मुद्रा में घर भीतर आई।। हम दोनों को एक ही साथ देखकर दोनों हाथ जोड़कर अभिवादन किया। ऊपर से निचे तक गहनों से लदी हुई थी। उसको इस हालत में देखकर हमारे चेहरे पर खुशी छा गई।

फूलमती तुम खुश तो हो ना ? उसने होठों पर मुस्कान लाते हुए कहा - "मैं आप दोनों की बहुत अभारी हूँ।अगर उस समय गर्भपतन में आप लोगों ने सहयोग नहीं किया होता और मेरे पिताजी के हाथ में शादी का खर्च नहीं दिया होता तो मेरा जीवन कितना भयावह होता मैं कल्पना भी नहींकर सकती। खासकर शुभेच्छा मेडम की तो मैं ऋणी हूँ । उनकी अंतरदृष्टि ने मेरे जीवन को नरक होने से बचा लिया । फ़िर एक माँ की तरह मेरी सेवा की और मुझे घर भेजा। "उसकी आँखों से आँसू निकलने लगे।

"वह एक दुर्घटना थी तुम्हारे जीवन की। पुरानी बातो को यादकर अपना मन छोटा मत करो, वरन यह बताओ कि तुम्हारी जिन्दगी कैसी चल रही है ?"

"बहुत सुख के साथ जिंदगी चल रही है। पति तो ऐसा व्यवहार करते हैं कि आँख में रख ले। फूल जैसे दो बेटे हैं। कुछ दिन के लिए माँ के घर आई थी कल मलाया वापस चली जाउगी । कल आप को यहाँ देखा तो अपने आप को रोक न सकी और मिलने के लिए आ गई।"

फूलमती की बातों को सुनने के बाद हम दोनों ने चैन की साँस ली। फूलमती की बातों से कभी कभी जब उसके गर्भपतन की बात मन में आती थी तो अपराध बोध होता था । वह अपराध बोध मन से निकल गया। मैं अपने आप को बहुत हल्का महसूस कर रही थी।

चाय और नाश्ता करने के बाद सुधा और फूलमती दोनों अपने अपने घर के लिए चल दिए, और मैं मन में अनेको ताना बाना बुनने लगी।

"जीवन कितना रहस्यमय ? किस क्षण क्या हो जाए कोई नहीं कह सकता ...? जैसा भी घटना या दुर्घटना हो जाए जीवन बिना रोक टोक के आगे बढ़ता रहता है। जीवन में आने वाली घटना जिन्दगी भर पीछा नहीं छोड़ती। फूलमती और सुधा के जीवन में मैं कैसे जुड़ गई। सोचते हुए भी आश्चर्य लगता है।

सुधा और फूलमती के जीवन में मेरी भूमिका सकारात्मक या नकारात्मक जो भी हो लेकिन मेरी भूमिका दोनों के जीवन में महत्वपूर्ण है। इस बात में मैं विश्वस्त हूँ।

अनुवादक : कंचना झा

कहानी

घर नं. ६

परशु प्रधान

अब आकर मुझे समझ में आया कि हमारे संबंध की नींव बहुत ही कमज़ोर और विरोधाभाषपूर्ण था। तकरीबन बीस वर्ष का सस्ता संबंध, पीड़ादायी और भयानक समय मैंने कैसे बिताया ?

मैं हमेशा आगे बढ़ना चाहती थी एक दृढ संकल्प था मुझमें कि अपने कदम कभी भी पीछे नहीं हटाना चाहिए, अपने जीवन में अर्धविराम और पूर्णविराम का चिह्न मैंने कभी नहीं चाहा या कहें कि मुझे अच्छा ही नहीं लगा। जिसे आजकल अग्रगामी सोच या परिवर्तनकारी दृष्टिकोण कहके परिभाषित किया जाता है, उसका पूर्ण परिभाषा जाने बगैर मेरे भीतर बचपन से ही विद्रोह की ज्वालामुखी थी जो समय समय पर फटता है और हम विभाजित होते हैं।

किसी विपन्न और गरीब राष्ट्र के सुन्दर पहाड़ की कुरूप बस्ती में, हमेशा जंगली आग के चपेट में रहे गाँव के एक विपन्न परिवार में जन्म लेना ही मेरा अपराध था। अपनी बाल्यावस्था में ही मेरे मन के किसी कोने में स्पष्ट निशान लगा था तुम्हारा परिवार इस गाँव के गरीब परिवार में से एक है। तुम्हारे पास धान के लिए एक टुकडा ज़मीन नहीं। तुम्हारे पहाडी बारी में मकई के अलावा और कुछ नहीं उपजता। पूर्व जन्म के किसी पाप के कारण तुम्हें इस नरक में छोड़ दिया गया है। जब कभी किताब और कापी की ज़रूरत होती - मैं सिर्फ रोती थी। मैं घर में नहीं कह सकती थी कि - माँ मुझे किताब खरीद दो कापी खरीद दो। कई महीने फी नहीं देने के कारण नाम कटने की सूचना जब सर देते थे तो मैं मुर्दातुल्य हो जाती थी। मैं प्रत्येक दिन सर से आग्रह करती थी - सर मैं कल ज़रूर फी दे दूँगी। मेरा नाम मत काटिए और वह कल कभी नहीं आता था । तीन चार महीने के बाद माँ गाँव से बोहनी करके पैसा लाती थी जिससे मुश्किल से एक महीना का फी दे पाती थी। लेकिन फ़िर तीन महिना का फी बाकी रह जाता था। सुबह शाम पहाड के नीचे पहुँचकर घास काटना, गाई चराना और तरकारी के लिए टाँकी का पत्ता खोजना मेरी दैनिकी होती थी। पढ़ाई के लिए समय कम होता था फ़िर भी देर रात तक रट्टा लगाती थी। कभी कभी रेडियो में आई क्रान्तिकारी गीत मुझे आकर्षित करती थी और मैं स्कूल में अपने साथी सबको सुनाकर ताली और शाबाशी बटोरती थी। जंगल किनार जाकर सोचती थी- घास काटने वाले इस हसिया को विद्रोह और क्रान्ति के प्रतीक में अनुवाद करना होगा।

इसी बीच एक शाम माँ मुझे एकान्त में बुलाकर बहुत देर रोई। भाई बहन सब सो चुके थे। पिताजी शायद कहीं दूर गए थे। अत्यन्त ठंड की उस रात में मैंने माँ को पूछा- क्या बात है माँ, आप क्यों रो रही हैं ? कहिये कोई संकट तो नहीं आया है ?

"मैं नहीं कह सकती मीना ! कैसे कहुँ....." थोड़ी देर वह रोती रही। घर पर या तो कोई बड़ा संकट आया है या हम किसी षडयन्त्र के शिकार हो गए हैं, इसी तरह की बात मैं सोचने लगी।

"हम लोग तुम्हें छोटी बच्ची सोच रहे थे। लेकिन और लोग तुम्हें बड़ा समझने लगे हैं। तुम्हें बड़े घर से मांगने के लिए आए हैं....." माँ धीरे से बोली।

"आया तो क्या ? मुझे अभी शादी नहीं करनी है। मुझे बहुत पढ़ना है। उन्हें मनाकर दीजिए" मैंने सामान्य रूप से कह दिया।

तुम्हें दे दिया जाए तो हमारे भाग्य ही बदल जाएँगे। बहुत धनी घर से रिश्ता आया है। हमें पहाड की इस दुख कष्ट भरे जीवन से मुक्ति मिल जाएगी। वे लोग झापा में चार पाँच विघा ज़मीन भी देने वाले हैं। वहाँ हम लोग जा सकते हैं और रह भी सकते हैं।

"तो इसमें चिन्ता की क्या बात है, माँ। यदि आपका कहना सच है तो माँ बाप, भाई बहन के लिए

मैं अपना सर्वस्व त्याग करने को तैयार हूँ। आपने और पिताजी ने मुझे कितने दुख से पाला है ? मुझे पता है। मैं इतनी स्वार्थी नहीं हो सकती।"- मैं भावुक हुई - "जैसा करने से आप लोगों का अच्छा होगा वैसा कीजिए। मेरे लिए कोई चिन्ता नहीं करें "

इस तरह मेरी शादी हुई कुलीन घर के धनी लड़के के साथ। संगी साथी, भाई बहन सभी कहते थे बड़े घर में शादी हुई, तुम तो बहुत भाग्यशाली हो। बधाईयाँ दे रहे थे और मैं भी हँस के उन बधाइयों का स्वागत कर रही थी। लेकिन मेरे अन्दर की बाध्यता, विवशता, दुःख और पीडा समाज को क्या पता ? लेकिन मैंने अपने दुख और पीड़ा को शक्ति में बदलकर जिन्दगी में संघर्ष करने का प्रण अपने अन्दर ले लिया था।

नया घर, नया परिवार, नए परिवेश और वातावरण को समझने में निश्चित ही कुछ महीने लग गए। बड़ा और भव्य महल, सौ विघा ज़मीन और विशाल खेती पाती, हमेशा लेनदेन और पैसा का कारोवार देखकर कोई भी कह सकता था कि ये मुखिया या सामन्त का घर है। मुझे भी यह बात समझने में समय नहीं लगा। घर परिवार के एक अभिन्न सदस्य से भी घर धन्दा के सहयोगी या ईमानदार नोकरानी के लिए मुझे दुल्हन बनाकर यहाँ लाया गया इस बात को समझने में मुझे बहुत समय लगा। बाल्यकाल से परम्परागत समाज, रुढीवादी संस्कार, शोषण और गरीबी के दुष्चक्र के कारण मेरे अंदर अंकुरित विद्रोह का कली अब धीरे धीरे फूल बनने लगा था। पति सास, ससुर और अन्य संबन्धियों की आँखों को मैंने खुब ठीक से पढ़ा - तुम गरीब की बेटी हो, माँगचाँग करने वाली। तुम्हें इस घर में दुल्हन बनाकर हम लोगों ने तुम पर उपकार किया है या हमने तुम्हारा उद्धार किया है ये सोच सबमे थी।

मैं किसी के दया, कृपा या हेय का पात्र बनना नहीं चाहती थी। अपने को जंगल में उपजा नोकिला काँटा समझती थी- जो परम्परा के चेहरे पर बड़ा घावकर दे लेकिन परम्परा और विश्वास को टूटने न दे लेकिन इन दोनों के बीच में मैं पिसती चली गई। चाहकर या न चाहते हुए तीन बच्चें की माँ बनी और गुफा में कैद हो कर रह गई। सोचा - इसी का नाम है - जिन्दगी।

एक दिन की बात है। मध्यरात को मेरी नींद खुली। मैंने देखा कि मेरे पति मोबाइल पर किसी के साथ लम्बी बातचीत कर रहे थे, एक महिला की स्पष्ट आवाज़- स्पष्ट आवाज़ लगा जैसे मैं कोई स्वप्न देख रही हूँ। रोने की स्पष्ट आवाज़ के साथ अचानक एक छोटा सा वाक्य मेरे कानो में सुनाई दिया- आपने मुझे न घर का रखा न घाट का, मुझे आपने बर्बादकर दिया।

दूसरे दिन डर डर के मैंने उनसे पूछा-रात में किससे बात कर रहे थे ? किसी महिला के रोने की आवाज़ आ रही थी।

"किसी के साथ नहीं। तुमने सपना देखा होगा।" वह ऐसे बोले जैसे उनको कुछ भी पता नहीं।

"मैं जगी हुई थी और पूरे होशो हवाश में थी। आप मुझे सच क्यों नहीं बता रहें हैं ? " मैंने पूरे आक्रोस में स्वर निकला।

"तुम कौन हो जिसे मुझे जवाब देना होगा ? इस तरह की बात पूछने की हिम्मत कैसे हुई ? " और गुस्साते हुए वह बाहर निकल गए।

उसी सुबह मैंने निर्णय लिया कि इस तरह की उपेक्षा और अन्याय सहना किसीको प्रोत्साहन देना है। इसके विरुद्ध जैसे भी हो मुझे लड़ना होगा और मैं अपनी लड़ाई घर-परिवार से ही शुरू करूँगी। अन्याय सहन करना और भी बड़ा अन्याय है। कुछ दिन के बाद गाँव में ही जैसे शहर में स्थित बोर्डिङ स्कूल होता है उसी तरह गाँव के उस बोर्डिग सकूल में अभिभावक दिवस का एक कार्यक्रम था जहाँ से हम दोनों को भी निमन्त्रण आया था। जहाँ बहुत बड़े बड़े भाषण और बातें भी हुए। सच कहूँ तो खयाली पुलाव पकाया गया । इन्होंने भी कुछ बाते रखी। मुझे भी महिला की और से कुछ कहने का आग्रह किया गया। विद्यार्थी काल में गाँव के स्कूल में कुछ कविता और गीत मैंने गाया था। मेरे स्वर की सभी प्रशंसा किया करते थे लेकिन किसी के सामने मैंने कभी कुछ बोला नहीं था। न बोलूं तो प्रतिष्ठा का विषय था। पता नहीं भीतर का सोया हुआ ज्वालामुखी अचानक से कैसे फट गया। मैंने धारा प्रवाह बोलना शुरू कर दिया कि महिला सब बहुत उत्पीडित और शोषित हैं। इसी स्कूल की बात करें तो बालिकाओं की संख्या कम है। कारण वे चुल्हा चक्की और घर के अन्दर सीमित है। आज २१ वीं शताब्दी में पुरुष समाज के शोषण के विरुद्ध हमें लड़ना होगा -आदि आदि।

सभा में ताली की गड़गड़ाहट गूँजने लगी। मेरा उत्साह और बढ़ गया। उसके बाद भी परिवर्तन,

क्रान्ति, महिला मुक्ति और आन्दोलन की बातें ही मेरे मूँह से निकली। मेरे पति को मेरी बातें अच्छी नहीं लगी और वह सभास्थल से निकल गए। मुझे मालूम हो गया था कि घर पहुँचते ही मुझे किसी अप्रत्यासित दुर्घटना का सामना करना पड़ेगा।

जो सोचा था वही हुआ- जिसके लिए मैं तैयार थी। इतने लम्बे अरसे से दबकर ज़मीन के नीचे गड़े हुए मेरे नारी मन की भावना आज बाहर आने के लिए आतुर थी। मेरा लहु उबल रहा था। आज आकाश से ठंका अवश्य गिरेगा यह आशंका मुझे पहले ही हो गया था। सभी आक्षेप, गाली और धमकी की संभावना मेरे अन्दर खलबला रहे थे।

रात के घोर अंधकार के बीच वह आए। मैं खाना खाकर बच्चों के साथ सो गई थी। पूरे बेहोश थे। हाथ में बेंत की लाठी लिए घर के भीतर घुसते ही मेरे ऊपर अन्धाधुन्ध प्रहार करना शुरूकर दिया। थोड़ी देर तो मैं कुछ समझी नहीं- ये स्वप्न है या हकीकत ? .लेकिन मेरे ऊपर बहुत प्रहार होने के बाद सहने की शक्ति खो गई। मैंने उनके हाथ से लाठी छीन लिया और जितना हो सकता है उतना प्रहार किया उनके ऊपर। कुछ ही देर में वह गिर गए। कुछ ही क्षणों में ये सभी धटनाएँ हुई। घर के और लोग आए। स्थिति स्पष्ट थी। उनके मुँह और मेरे माथे से लहू टपक रहा था। सभी उन्हें लेकर गए, पता नहीं क्या-क्या किया ? मैंने कोई परवाह नहीं की।

जब सुबह हुई मैंने देखा आँगन में पड़ोसी जमा हुए थे। मेरे सास ससुर उनके स्वागत सत्कार में लगे हुए थे। मैं अपने कमरे में ही थी। सास का स्पष्ट आदेश आया- तुरंत नीचे आ। उनकी आवाज़ सुन मैं भी आँगन में निकली। पड़ोसी, कुछ बुजुर्ग और तथाकथित भले लोग भी उपस्थित थे।

"आप लोग क्यों आए हैं और मुझे क्यों बुलाया गया है ? " पहले मैंने ही पूछा।

दुल्हन, हमने सुना है कि तुमने अपने पति को मारा है। क्या यह बात सही है ....किसी वृद्धा का स्वर था।

मैंने स्पष्ट जवाब दिया- "एकदम सत्य है। वह रात को कोठली में आकर मुझे अन्धाधुन्द पीटने लगे। आप देखिये मेरे पूरे शरीर में निशान है। मैंने उसका प्रतीकार किया। हमसे भी जितना हो सका उतना पीटा - बात यही है।"

"पति कुछ करे इसका मतलब ये तो नहीं पत्नी भी हाथ उठाए । तुम्हें पाप का डर थोड़ा सा भी नहीं।" दूसरे किसी वृद्ध की आवाज़ आई-रामराम।

"मैं धर्म और पाप नहीं जानती। जो मुझे मारेगा उसे मैं भी मारुंगी। असहाय, गरीब और विपन्न के प्रति हेय भाव रखना मेरे हिसाब से पाप है।" किसी पहाड़ी झरना की तरह मैंने अपनी बात को रखा।

मैं ऐसी बात को नहीं मानता। ऐसा शहर इस घर को नहीं चाहिए। तुम अपने रास्ते जा सकती हो। आज के बाद तुम्हार रास्ता अलग....ये मेरे ससुर की आज्ञा थी।

सासु ने जोडा- ऐसी नेता महिला का हमारे घर में क्या काम ? तुम्हें इस घर में रहने का अधिकार नहीं- तुम जा सकती हो।

"मुझे पूरा अधिकार है इस घर में रहने का। यहाँ की सम्पति भोग करने का। पति का अंश लेने का। दबने और दबाने का जमाना अब चला गया"- मैं कठोर बन गई।

बाहर कौआ कांव कांव कर रहा था बड़े उँचे स्वर में। मैं बिना किसी को पूछे उस भीड से निकलकर अपने कोठली में आई। मन में नए पुराने बहुत से दृश्य आए। बहुत तरह की बातें आई दिमाग में। आज के दिन को याद किया। छोटे छोटे बच्चे को याद किया। माँ पिताजी को याद किया। मन भारी हो गया। लेकिन उसी क्षण मन का दूसरा क्षितिज खुला। तुम अपने आँसू को शक्ति और सामर्थ्य में बदलो। इस दुष्ट समाज को बदल डालो- परिवर्तन करो।

आज जीवन के इस उत्तरार्ध में लगता है- कि मैंने जो निर्णय, विद्रोह और क्रान्ति का बीज बोया था। मेरे समाज और राष्ट्र को उनकी ज़रूरत थी। किसी क्रान्तिकारी संगठन में रहके, ये जिन्दगी बिताना भी महान धर्म है- कम से कम इतना करके इस जन्म को शोषित नारी के पक्ष में समर्पित होने में मुझे गर्व और प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

बाहर फ़िर कौआ काँव काँव करने लगा। बाहर फ़िर सूर्य की किरणें दिखाई देने लगीं। बाहर फ़िर नया क्षितिज खुला- यही होना चाहिए मेरा और हमारा चक्रव्यूह।

अनुवादक : कंचना झा

कहानी

काजोल खातुन

फूलमान बल

उस दिन हैदरावाद में सुवह के आठ बजे तक घना कोहरा छाया रहा। सुवह सवेरे उठकर ठंडी-ठंडी हवा के साथ लुकाछिपी खेलने वालों की भीड़ हैदरावाद को पहली सुवह से ही व्यस्त बनाए रखती है। इसलिए पूस के महीने में भी शीतल और मोहक हवा के साथ सैर करना चाहने वालों के लिए सुवह से अच्छा कोई समय ही नहीं होता। या यों कहें, दोपहर की चरम उष्णता और शाम को नारियल व दाड़िम के पत्तों को हिलाती हुई दक्षिण दिशा से ज़ोर शोर के साथ आने वाली आसुरी समुद्री हवा की कशमकश के साथ लाचार समझौता करना ही जीवन की नियति होता है।

पिछले साल के ग्रीष्म में ही उष्ण लहर ने मुसलमान बहुल दक्षिण भारतीय इस प्रदेश में ग्यारह सौ छत्तीस लोगों की जानें ले लीं– प्रियंका राठी सुना रही थी। वह आंध्रप्रदेश राज्य सरकार की केंद्रीय सरकार के वकील की बेटी है। हैदरावाद में स्थित उस्मानिया यूनिवर्सिटी की स्नातक, इसके अलावा दो साल पहले से मेरी अच्छी दोस्त भी।

वहीं सुवह आठ बजे के बाद हैदरावाद के फुटपाथ चेहरे को बुर्का ढकी हुई मुस्लिम युवतियों से भर जाते हैं। उनमें से कुछ बाज़ार में सामान खरीदने के लिए तो कुछ हाथ में कॉलेज बैग थामे गाड़ी के इंतज़ार में चौक-चौक पर झुंड में खड़ी मिलतीं। दोपहर को थोड़ी देर समूचा शहर विश्रांत-सा होता। और नारियल व दाड़िम के पेड़-पौधे भी शांत मुद्रा में खड़े हो जाते हैं। सफ़ेद ऊँचे गगनचुंबी भवन, चिकनी सड़कें और व्यवस्थित बाज़ार व युवा-युवतियों के बनाए गए पार्क भी, मानो उन्हें भी थकान ने पस्त कर दिया हो और वे भी सुस्ताना चाहते हैं। पर दोपहर के तीन बजते न बजते ही बढ़ती जाने वाली शहर की व्यस्तता के साथ ही हुसैन सागर, लुंबिनी पार्क और पब्लिक गार्डन में आने वाले युवा-युवतियों की चहलपहल समूचे हैदरावाद को रोमांचित कर देती है।

उस दिन मैं श्याम मंदिर होते हुए काँचीगुड़ा स्थित पुराने रेलवे स्टेशन तक मॉर्निंग वॉक जाकर होटल एलोरा की तरफ़ लौट रहा था। सुवह के धुंध को चीरकर मुस्कुराती हुई धूप की आँखें बिड़ला मंदिर के कोप्चे से हुसैन सागर को चूमने की कोशिश कर रही थी। सागर के बीच में अचल खड़े बुद्ध की आँखें इस कदर चमक रही थीं मानो उस तिलस्मी तेज से शहर के बासिंदे पूरी तरह जाग चुके हैं और तब तक शहर में चहलपहल शुरू हो चुकी थी।

"माफ़ कीजिएगा, क्या मैं आपसे थोड़ी मदद के लिए अनुरोध कर सकती हूँ?"

अचानक ठीक मेरे सामने मुझे ही लक्षित कर थोड़ी-सी उठी हुई एक किशोरी के सुकोमल सुंदर हाथ ने मुझे रुकने को बाध्य किया। मैं आहिस्ता अपने चलने की गति को कम करता हुआ किशोरी के नज़दीक पहुँचा। काली लंबी कुर्ती, काली सलवार और काले रंग के हिज़ाब से अपने दोनों कान ढँकी हुई करीब सोलह साल की मुस्लिम किशोरी का शरीर मेरे सामने खड़ा था। गोरे चिट्टे अंडाकार चेहरे की दोनों आँखें काले चश्मे से बेशक ढके हुए थे, पर उसका मलिन चेहरा मुझसे सदाशयता की याचना करता हुआ स्पष्ट दिख रहा था।

"अल्लाह के लिए...."

मेरी किंकर्तव्यविमूढता को भंग करती हुई उसने मुझसे याचना करनी चाही। लेकिन अचानक उसके होठ काँपने लगे और पता नहीं क्यों, वह आगे बोलने की हिम्मत नहीं जुटा पाई। बल्कि ज़मीन पर एकटक देखती हुई पैर की उँगलियों से चप्पल को बेवजह

दबाने लगी। यह विचित्र-सी आकस्मिकता थी मेरे लिए। क्या करना चाहिए, कुछ तय न हो पाने के कारण मैं चुपचाप खड़ा रहा। हैरानी तो यह थी कि उसका सर नीचे की तरफ़ झुका हुआ ज़रूर था पर चेहरे पर शर्मिंदगी का भाव बिल्कुल भी न था। उम्र के साथ मेल न खाने वाली यह कैसी अस्वाभाविक गंभीरता ? मुझे लगा कि वह एक जून खाने के लिए मुझसे कुछ रुपए माँगना चाह रही है।

"बेफ़िक्र होकर बोलो।"– उसके झुके हुए चेहरे को देखते हुए मैंने कहा।

उसने आहिस्ता चेहरे को उठाया और कहा– "अल्लाह के लिए क्या आप मुझे निजाम कॉलेज जाने का रास्ता बता देंगे ?" मैं फ़िर बुरी तरह हैरान हुआ। अपेक्षा से बिल्कुल अलग तरह की स्थिति के कारण मेरे भीतर शंका घर कर गई। मुझे लगा कि यह लड़की मेरे साथ बुरी नीयत से व्यवहार करना चाहती है। सोच रहा था, अब एक ही पल में थोड़े नखरे के साथ कहेगी निजाम कॉलेज के ग्राउंड तक ही पहुँचा दीजिए, फ़िर दूसरा नखरा..., फ़िर ये, फ़िर वो.... वरना एक स्थानीय मुस्लिम लड़की का यों इस तरह मेरे साथ नाटक करने का मतलब क्या हो सकता था ?

"देखिए न, सभी दोस्त लोग मुझे होटल में अकेले छोड़कर चले गए।"– किशोरी के चेहरे पर स्पष्टीकरण का भाव घूम रहा था। अब मैं और भी हैरान हो गया। थोड़ी ही देर में उसके चेहरे पर जल्दी-जल्दी मायूसी छाई और बड़ी समस्या के पहाड़ से दबे होने के समान उसने मन ही मन बुदबुदाने का भाव प्रकट किया। अब अगर मैं उसे और उलझाता तो मेरी नैतिकता पर प्रश्न उठना निश्चित था। "तुम बिरासी नंबर की बस पकड़ लो।"– हठात् मैंने पिछले साल उस्मानिया यूनिवर्सिटी के साथियों के न्योते पर हैदराबाद में दो महीने बिताए हुए अनुभव का प्रयोग करते हुए कहा।

"पर तब तक तुम यहीं खड़ी इंतज़ार करो।"

उसके चेहरे पर मुस्कान फैल गई। चेहरा इस तरह चमक उठा कि चेहरे से सटीक मेल खाता हुआ और सूरत के कोमल आकर्षण को छिपाता हुआ चश्मा भी मानो स्वच्छंद हँसने लगा। वहीं समस्या के भँवर में तड़पकर थरथरा रहे उस निर्दोष चेहरे के प्रति मेरे भीतर नकारात्मक धारणा उत्पन्न होने को लेकर हुए ग्लानिबोध से मैं शर्मिंदा हो गया। और उसके बाद मैं उसके चेहरे पर नज़र ले जाने की हिम्मत नहीं जुटा पाया। शायद काले चश्मे में छुपी उसकी आँखें और कमज़ोर होकर चमक रही थीं।

मेरी बात खत्म होने के साथ ही बिरासी नंबर की बस हमारे आगे आ खड़ी हुई। मैंने उसे हाथ से इशारा किया। चेहरे पर खिली धूप को और तेज़ बनाती हुई वह जल्दी-जल्दी बस में सवार हो गई।

"शुक्रिया ! अल्लाह आप पर मेहरबानी फ़रमाएँ।"– उनके चेहरे पर उत्कट आत्मीयता और सुखानुभूति की चमक जवान होकर चमकने लगी। उसने जल्दी-जल्दी खिड़की के शीशे को सरकारया और थोड़ा-सा सिर निकालकर मेरी ओर हाथ हिलाया। बस चलने लगी थी, सो मैंने भी प्रत्युत्तर में जल्दी-जल्दी हाथ हिलाया, लेकिन उसका हाथ मेरी आँखों में सम्मोहन जगाता हुआ जोड़-तोड़ के साथ तब तक हिलता हुआ दिखा, जब तक बस दायीं ओर मुड़कर ओझल न हो गई।

मॉर्निंग वॉक से होटल एलोरा तक आने तक सुबह के नौ बज चुके थे। क्यों आज मुझे अधिक समय लग गया। मेरे पास उत्तर नहीं था। मैंने पहली बार अपने पैरों के प्रति अविश्वास जताया। पर मेरे ऐसा करने के पीछे कोई मजबूत तर्क नहीं था। वह इसलिए कि पता नहीं क्यों, मुझे उस किशोरी का व्यवहार और हाव-भाव बड़ा ही प्यारा लगा था और अपने चेहरे को प्रेमिल बनाते हुए खिड़की से हाथ हिलाने का सम्मोहक दृश्य मेरे मानसपटल का पीछा करता रहा। ऐसा लगा जैसे दो साल पहले घर से काठमांडू आते वक्त नीचे चबूतरे से अपनी ही बहन बकरी के कान सहलाते हुए मेरे लिए प्रेमपूर्वक हाथ हिला रही हो।

मैं सरासर ऊपर छत पर आ गया। दायीं तरफ़ हुसैन सागर में सुबह की धूप तैर रही थी। और ठीक उस पार चारमिनार टावर निर्भीकता के साथ मक्का मस्जिद को निहार रहा था।

"प्रशांत सर, आपके लिए खाना तैयार हो चुका है।"

अचानक पीछे से आई एक बेयरा की नरम और तीखी आवाज़ ने मुझे चौंका दिया। उस वक्त मैं

हुसैन सागर में तैरकर क्रमशः प्रौढ़ा होती हुई धूप के प्रतिबिंब को एकटक निहार रहा था। क्यों मेरा मन इस तरह मलिन हो रहा है ? मैं नहीं जान पाया। घर की याद ने मुझे बुरी तरह झकझोरा। संकटकाल के बाद से मैं दशहरा नहीं मना पाया हूँ।

दोपहर को आंबेडकर भवन में एक सेमिनार था। मुझे सेमिनार की अवधि भर काले चश्मे से ढकी हुई कोमल अंडाकार मुखड़े की दो आँखों वाला खूबसूरत चेहरा खींचता रहा। यहाँ तक कि सेमिनार के मध्यांतर में नाश्ते की किश्ती थामे मेरे सामने आने वाली मुसलमानी चेहरे वाली हर युवती को मैं वही काला चश्मा वाली किशोरी समझ लेता। और उनके हाथ से नाश्ता लेने से पहले अचानक से खो जाता। दायीं बगल में बैठी हुई प्रियंका राठी के चिकोटते हुए यह याद दिलाने पर कि मुस्लिम युवती को इस तरह देखना अपराध होता है, मेरा ध्यान भंग होता और मैं हड़बड़ाकर नाश्ते की किश्ती उठाता।

शाम तक मेरी स्थिति नाजुक हो गई थी। मैंने प्रियंका को कुछ नहीं बताया। शाम को देर तक मैं होटल की छत पर टहलता रहा। हुसैन सागर में टिमटिमाते हुए जलती हुई असंख्य बत्तियों की मधुर टिमटिमाहट शायद अब कभी भी मुलाकात न हो पाने वाली उस किशोरी की याद को और गहरा कर रही थी। मैंने उस रात कुछ नहीं खाया। पता नहीं क्यों, मुझे लगा उस किशोरी की तसवीर अज्ञात आकर्षण लेकर मानो मेरे पास, और पास आ रही है। उसका अबोध, निश्छल और निर्दोष आकर्षण ही वह आकर्षण था, जो उसकी उम्र की तुलना में बिल्कुल अस्वाभाविक और गंभीर था। इसलिए कि गंभीरता के भीतर जीवन के बहुत-से दार्शनिक उत्तर छिपे होते हैं।

कुछ दिन और बीते। मेरी दिनचर्या में खास फर्क नहीं हुआ। सुबह मॉर्निंग वॉक, दोपहर को सेमिनार और शाम के वक्त होटल की छत पर हुसैन सागर की ओर मुड़कर कुछ देर टहलना ही मेरी दिनचर्या बन चुकी थी। शाम को यादों के प्रहार से मेरे मानसपटल को विचलित करने वाले उस किशोरी के चेहरे को अब मुझे भूलना था। प्रियंका कह रही थी कि उसके साथ मुलाकात अब संभव नहीं है और बहुत महत्व के साथ सर दुखाते रहने का विषय भी यह नहीं है। एक महीना लंबा सेमिनार और कार्यशाला मुझे झंझटीले लगने लगे थे। इस दरमियान प्रियंका चार बार मुझे अपने घर ले गई। उसके पिता और दादाजी चाहते थे कि मैं होटल एलोरा की बुकिंग रद्द करवाकर एक महीने तक उन्हीं के साथ रहूँ। लेकिन मैंने ऐसा नहीं किया। वे बताते कि हैदराबाद के लड़के लड़कियों के मुकाबले कम पढ़ते लिखते हैं और बेटियों की शादी के लिए लड़के ढूँढ़ने महाराष्ट्र तक जाना पड़ जाता है।

एक दिन शाम के समय 'युद्ध और आतंकवाद' शीर्षक के सेमिनार में शिरकत कर पब्लिक गार्डन स्थित स्मृति हॉल से जल्दी-जल्दी मैं बाहर निकल रहा था। वह मेरा अंतिम सेमिनार था। घर लौटने के विषय में मैं अधिक सोचमग्न होकर आगे बढ़ रहा था। अचानक मेरे कंधे पर एक मुलायम हाथ का कोमल धक्का लगा। मैं हठात् पीछे मुड़ा ही था कि सामने खड़ी एक वनिता की आकृति ने मुझे बुरी तरह चौंका दिया।

"आप यहाँ ?" वह उतावलेपन से बोली– "कैसे मुमकिन हुआ, या अल्ला ?" मेरे सामने उसी काले चश्मे वाली किशोरी का शरीर चौंकता हुआ खड़ा था। मैं अचानक कोई शब्द न पाकर असमंज में खड़ा रहा। क्या मुझे खुशी के खुमार में उसे गले लगा लेना चाहिए था ? नहीं, यह संभव नहीं था। वह न तो लंबे समय से खोई हुई प्रेमिका थी और न ही किसी हादसे में असोचनीय और आश्चर्यजनक तौर पर पुनर्जीवन पाई हुई हितैषी ही। मैं पशोपेश में पड़ गया क्योंकि मेरा उसके साथ कोई रिश्ता ही नहीं था।

"मैं तो मेरे बेदर्द दोस्तों की तलाश में थी।"– अपने बिखरे हुए बालों को पीछे सहेजते हुए और जल्दी-जल्दी हिज़ाब से अपने दोनों कानों को ढकते हुए उसने कहा– "लेकिन यह तो और भी अच्छा हुआ। मैं आपको ही याद कर रही थी। आपसे दुबारा मुलाकात हुए बिना ही मुझे काबुल लौटना पड़ेगा सोचकर मैं फ़िक्रमंद थी।

काबुल.....! विस्फारित नेत्रों से मैंने उसे देखा।

"आइए न, बैठकर बातें करते हैं।"

उसने दोनों हाथों से मेरी बाईं बाँह को पकड़े हुए अपना सर मेरे कंधे पर रखने की कोशिश करते हुए इमारत के बाहर के पार्क की तरफ़ खींचकर ले गई। मुझे उसका वह बरताव ज़रा अस्वाभाविक लगा।

और सेमिनार के पहले दिन नाश्ता लेकर आने वाली मुस्लिम युवती को देखकर खोने के दौरान प्रियंका की मुझे चिकोटी काटते हुए कही हुई बात से मुझे तमाचा-सा लगा हुआ महसूस हुआ। मुझे लग रहा था जैसे पार्क के सभी लोग एकटक मुझे ही देख रहे हों। दूब से आच्छादित छोटे-छोटे सुंदर और वातानुकूलित चौकोर चौर के अगल-बगल खिले हुए असंख्य फूल, नारियल के पेड़ पार्क को शोभायमान बना रहे थे।

"मेरा नाम काजोल खातुन है।"– पार्क में पहुँचकर कालीन की तरह बिछी हुई दूब पर बैठते ही उसने बातचीत शुरू की– "और मैं दक्षिण काबुल स्थित शरणार्थी शिविर के सेक्टर नंबर तीन से हूँ।"

तब तक मैं कुछ नहीं बोला था और मेरी चुप्पी पर उसने ध्यान भी दिया हो, ऐसा मुझे लगा नहीं। इसलिए कि उसकी जिस गंभीरता से मुझे मन ही मन प्रेम था, वह अब पूरी तरह गुम हो चुकी थी और उसके चेहरे पर एक अपरिपक्व किशोरी की बालसुलभ अधीरता फैली हुई थी। हुसैन सागर में तैरती हुई धूप पीली पड़कर क्षितिज में खोने ही वाली उस संध्याकाल में वह उतावली-सी हड़बड़ाकर बोली जा रही थी मानो सारी बातें वह खुद बताना चाह रही हो।

"यह देखिए..." पास ही खिले भूचंपा का एक फूल तोड़कर बच्ची की तरह खेलने की कोशिश करती हुई उसने कहा– "मुझे आपकी यह जगह पसंद आई। अगर फ़िर से लौटकर यहाँ आने का मौका मिले तो मैं अल्लाह का शुक्रिया अदा करूँगी।

"मगर..."– मैं बोलना चाहा।

"हाँ हाँ, बताईए न, क्या ?– उसकी बोली में अधीरता थी और चेहरे पर पुलिस के बयान लेते वक्त उत्पन्न होने वाला भाव। अचानक चौंक-सी गई और झटपट काले हिज़ाब से दोनों कानों को ढकने की कोशिश करती हुई मेरे मुँह के नज़दीक अपने चेहरे को लाने की कोशिश की। ऐसा करने पर उसके कान के मुलायम निचले हिस्से का स्पर्श मेरी ठोड़ी में हुआ। मुझे उसका यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा।

"और मैं काठमांडू से... ।"– मैंने सपाट जवाब दिया।

"काठमांडू से ?"– उसके माथे पर शिकन पड़ गई और धीरे-धीरे वह शिकन आँखों, गालों और ठोड़ी से गुज़रते हुए एक विचित्र गंभीरता में परिणत हो गई।

"मुझे लगता है तुम कुछ सोच रही हो।"– परिस्थिति को सहज बनाने की कोशिश करते हुए मैंने कहा।

"बिल्कुल नहीं।"– स्पष्टीकरण-सा देती हुई वह फुसफुसाई।

"लेकिन तुम्हारा चेहरा तो.... ।"

उसके चेहरे पर गंभीरता के घने बादल छाए हुए थे। वहीं मैं थोड़े पशोपेश में पड़कर भावशून्य हो गया। अचानक उसके हाथ से भूचंपा फूल नीचे गिर गया और रुँधे हुए गले से हल्की और मधुर आवाज़ में उसने कहा– "क्या हर जगह काजोलों को ही मरना होगा सर ?"

"यह तुम क्या कह रही हो ?"– मैंने हैरानी से पूछा। मैंने उसके प्रश्न का अपने मस्तिष्क में मंथन कर समझने की कोशिश की लेकिन कुछ समझ न सका।

"द इंडिया टाइम्स कहता है कि काठमांडू से ईद मनाने के लिए वीरगंज जाती हुई सात वर्षीया काजोल खातुन जलकर मर गई।"– काँपती आवाज़ में उसने कहा।

सुबह मॉर्निंग वॉक से लौटकर आराम करता उससे पहले ही होटल की रिसेप्सनिस्ट ने 'द इंडिया टाइम्स' दिखाते हुए चितवन के भंडारा में काजोल खातुन समेत पाँच लोगों के जलकर मरने की खबर सुनाई थी। वह खबर मेरे लिए याद का तीर बनकर दिल में चुभ गई थी। और काठमांडू की याद मुझमें हैदराबाद की रिहाइश के प्रति एक निस्पृहता उत्पन्न कर गई थी। यह हादसा मुझसे भी ज़्यादा एक अफगान किशोरी को भला इस तरह क्यों खींच रहा है ?

"इस खबर को लेकर तुम..... ?"

"मैं भी इसी कदर मरी हुई काजोल खातुन हूँ।"– इससे पहले कि मेरी बात पूरी होती, वह बुदबुदाई।

"तुम्हारा दिमाग तो ठीक है ?"– मैंने अपने लहजे को थोड़ा कठोर बनाया। मुझे उसके तमाम हाव-भाव एक पेशेवर अभिनेत्री के-से लगे। नहीं तो पल में ही बालसुलभ अधीरता और अगले ही पल

गहरी पीड़ा से तरवतर और उम्र से मेल न खाने वाली अस्वाभाविक गंभीरता का मतलव क्या था ? कैसा रहस्यमय नाटक चल रहा था ?

अचानक आभास हुआ कि मेरी कठोरता उसे छू गई। शायद मेरा निर्दयी प्रहार उसके किशोर मन को तीर-सा चुभ गया। काले चश्मे को पार करते हुए गालों से गुज़रकर गिरी हुई उसके आँसू की बूंद का स्पर्श मेरे हाथ को होने पर मैं सन्न-सा हो गया। झटपट मैंने उसके चेहरे की ओर देखा। उसके चेहरे पर नमी छाई हुई थी। एक बार फ़िर पश्चाताप ने मुझे अपने आगोश में ले लिया।

"मेरी एक कहानी है सर।"– बैग से रुमाल निकालकर आँसू पोंछते हुए उसने कहा– "अल्लाह के लिए क्या आप मेरी कहानी सुनना चाहेंगे ?"

"क्या रोना ज़रूरी था पगली ?"– मैंने उसके आँसू पोंछ दिए।

"असल में मेरा घर दक्षिणी काबुल के मूहरेम गाँव में है।"

सूरज अस्त होने वाला था और पब्लिक गार्डेन में क्रमशः लाल, नीली, पीली बत्तियाँ अपनी-अपनी चमक के साथ जलने लगी थीं। लोग धीरे-धीरे बढ़ने लगे। शायद वे लोग नारियल और दाड़िम के पत्ते हिलाते हुए शाम की वेला में मंद-मंद चलने वाली ठंडी हवा के साथ सैर करके जीवन का आनंद उठाना चाहते थे। लेकिन काजोल के चेहरे को उस ठंडी और रमणीय हवा ने स्पर्श नहीं किया। उसका चेहरा क्रमशः मुरझा रहा था, मानो बारूद के छर्रे से आहत गुराँस के घायल पौधे हवा से जीवन की याचनापूर्वक सिर सिर करते हुए आहें भर रहे हों।

"जिस दौरान काबुल में हमला हुआ, उसके तीन दिन बाद हमारे गाँव के नज़दीक ही एक शक्शिाली बम गिरा। और उस बम ने मेरे भाईजान के लिए जोड़ी तय हो चुकी रब्बानी, जो मेरी बचपन की सहेली थी, उसके समूचे परिवार को राख बना डाला। कितनी भली लड़की थी रब्बानी। हम पानी भरने के लिए कुएँ के पास साथ जाती थीं और कंचन पानी में एक दूसरे की सूरत देखकर चिढ़ाती थीं। उसका निकाह रमज़ान के खत्म होते ही मेरे भाईजान के साथ होने वाला था।"

काजोल अपने चेहरे को भरसक कठोर बनाना चाह रही थी। धूप समाप्त हो जाने से काला चश्मा आहिस्ता सफ़ेद होकर पलकें जल्दी-जल्दी झपकती हुई दिखने पर भी हर तरफ़ चमकली बत्तियों की वजह से उसकी आँखों के भाव को मैं ठीक से भाँप नहीं पा रहा था। पर उसका चेहरा पीड़ा को छिपाकर कठोरता का भाव जता रहा था।

"उसके बाद गाँव में दहशत फैल गई। गाँव के तकरीबन सभी युवा-युवती और कुछ बुज़ुर्ग भी गाँव छोड़कर जाने लगे और हज़ारों का हुजूम शहर से दूर शरणार्थी शिविर की कतार में खड़ा होने लगा। वहीं गाँव के कुछ बड़े-बुज़ुर्ग ये कहते हुए कि गाँव छोड़ना अल्लाह को धोखा देना है, गाँव छोड़ने को तैयार नहीं हुए।

काबुल में सबसे बड़ा हमला होने के दूसरे दिन सुबह ही हमारे घर में भी बारुद का काला धुआँ जीवन लीला समाप्त करने वाली भयानक मौत बनकर आया। अगले दिन काबुल में शक्तिशाली हमला होने के बाद अब्बू, भाईजान, दीदी, शबनम और मैंने मिलकर कल सुबह ही घर छोड़ने के लिए बूढ़े अब्बा-अम्मी को समझाने की योजना बनाई। उस दिन काबुल में ऐसा हमला हुआ कि देर शाम तक बम का काला और ज़हरीला धुआँ आसमान में मँडराता रहा। और उस दिन हमें धूप दिखाई नहीं दी।

तीखी और अजीब बदबू की वजह से अब्बा खाना तक नहीं खा सके।

हम अब्बा-अम्मी को समझा नही सके। घर छोड़कर वे लोग अल्लाह को धोखा नहीं देना चाहते थे।"

"तुम लोग जाओ और लड़ाई रुकने बाद लौटकर आ जाना। यहाँ हमें कुछ नहीं होगा।"

"हमारे घर छोड़ने से पहले पहली सुबह अम्मी कह रही थीं कि ईद आने से पहले ही हमारे लिए कपड़े सिल जाने चाहिए कहकर उन्होंने अब्बा पर. दबाव डाला था।

मगर बदकिस्मती का सबसे तकलीफदेह आलम यह रहा कि उसके बाद हम कभी ईद नहीं मना सके। जब हमने घर छोड़ा, अचानक बड़े धमाके की आवाज़ आई। मुझे बस इतना याद है कि घर के ढहकर बिखरने की ज़ोरदार आवाज़ के साथ ही अम्मी की दर्दनाक आह खो गई। और मेरे साथ-साथ दीदी

शबनम भी बेहोश होकर आँगन में गिर गई। होश आने पर दीदी और मैं उत्तरी काबुल के शरणार्थी शिविर में पड़ी हुई थीं और रेडक्रॉस के लोग जल्दी-जल्दी हमारा इलाज कर रहे थे। तब तक हम अम्मी-अब्बा और भाईजान को गँवाकर यतीम हो चुके थे।"

अचान वह मेरी गोद में लुढ़क-सी गई। उसकी आँखों से निकली आँसू की धारा गालों से गुज़रकर बहने लगी, मानो पीड़ा से कसमसा रही उसकी आँखों से आँसू का बाँध टूट गया हो। मैंने खुद को ज़बरदस्ती संभालने की कोशिश की लेकिन संभाल न सका। एक अनाथ किशोरी की दिल पिघला देने वाली अभिशप्त जीवन कथा ने मेरी आँखों को विक्षिप्त बना डाला और मेरे गालों के बारीक छिद्रों से गुज़रकर बही हुई सांत्वना की बूँदों ने उसके बालों को सराबोर कर दिया। वह काफ़ी देर तक मेरी गोद में सिकुड़कर रोती रही, मानो मेरे अलावा उसका सब कुछ खत्म हो गया है।

मैंने प्यार से उसके आँसू पोंछ दिए। इसके बाद वह आहिस्ता उठी।

"और, मेरी दीदी और मुझे हमेशा के लिए यतीम बनाने वाले उस बेदर्द हादसे ने मेरे दाएँ कान और दाईं आँख की शक्ति छीन ली।"– पीड़ा से घुटी हुई छाती से निकली हिचकी के साथ लंबी निच्छ्वास छोड़ती हुई उसने कहा।

नारियल और दाड़िम के पत्तों को हिलाते हुए बह रही हवा के झोंके ने एकाएक काजोल के गीले चेहरे पर प्रहार किया और मेरी गोद में औंधे मुँह रो रही काजोल के बिखरे बालों को उड़ाने की कोशिश की। वह जल्दी-जल्दी फ़िर से पहले की ही तरह हिज़ाब से अपने कानों को ढकने लगी। पार्क में लोगों की तादाद धीरे-धीरे कम होती गई। कुछ दूरी पर एकरसता से हिल रहे नारियल और दाड़िम के पत्ते की तरफ़ एकटक देख रही काजोल के चेहरे पर धीरे-धीरे गंभीरता छा गई और ज़िंदगी के रूमानी झरोखे से संसार को देखने को मजबूर सोलह साल की उस किशोरी के अंडाकार चेहरे पर मोहकता छाई रही।

"अब तुम कहाँ जाओगी ?"– मैंने उसे रोकते हुए पूछा।

उसने अपने आँसू पोंछे और चेहरे को दृढ़ बनाया।

"वहाँ तुम ..... ?"

"मैं वहाँ इंसानियत और प्यार की खोज करूँगी।"

मुझे उसका चेहरा और भी अधिक मोहक लगने लगा।

अनुवादक : मुकेश कुमार मिश्र

कहानी

हजाम और बूढा

भाउपंथी

अभी मधेश में बहुत ही गर्मी होगी, नहीं ? यहाँ तो ऐसी है ।

बूढ़ा बाल कटवाने के लिए कुर्सी पर बैठा हुआ है । रामविलास ने गरदन से नीचे सफेद कपड़ा से ढक दिया है । बूढ़ा थोड़ी कठिनाई महसूस कर रहा है । कुर्सी पर बैठने से पहले उसने कहा था– ओ भइया ! इस तरह से बाल काटो कि नहाना न पड़े । वैसे तो दुकान का मालिक रामविलास बूढ़े के पोते की उम्र का है लेकिन बूढ़े ने एक तरह से खुशामद की स्निग्धता लाने के लिए भैया कहकर सम्बोधन किया । बूढ़ा की यह व्यक्तिगत आदत है । काम निकल आया तो बहुत विनम्र हो जाता है । नदी पार किया और लाठी भूल गया जैसा करता है बूढ़ा ।

पानी का हाहाकार वाली इस राजधानी में भी रोज़ सुबह बूढ़ा स्नान करता है । शैम्पू भी करता है और साबुन भी शरीर पर मल-मल के स्नान करता है । बूढ़े के शरीर पर मैल भी कितनी होगी ? लेकिन सन की तरह सफेद बाल शैम्पू से ही नरम हुआ है । आज सुबह भी स्नान किया है । फ़िर नहाना न पड़े इस तरह से बाल काटने के लिए आग्रह करने का कारण भी वही था । नहाने से पहले उसने बाल कटवाने के लिए सोचा तो था लेकिन रामविलास की दुकान सुबह खुली भी तो नहीं होती है ।

सुबह देर से सोकर उठते हो क्या रामविलास ? नशा पानी तो नहीं करते हो तुम ? सुबह जल्दी न उठने का कारण एक यह भी हो सकता है । रामविलास झल्लाया क्यों नशा पानी करूँ ? करूँगा भी तो क्या ? बूढ़ा बाल कटवाने के लिए आया है कि मेरे ऊपर तहकीकात करने ?

बूढ़ा खाना खाने के बाद दिन भर सोता है । सोचता है अब इस बुढापे में दुनिया-संसार भटकने किधर-किधर जाऊँ । एकदिन अनन्त निद्रा में तो सोना ही है । इस बीच के समय को सोकर ही क्यों न बीताएँ ? नींद भी कितनी आती है बूढ़े के स्वयं भी आश्चर्य में पड़ जाता है । जन आन्दोलन के बाद भी बाहर उतना ही राजनैतिक कोलाहल है लेकिन वह निद्रा में मग्न है यह सोचकर बूढ़ा थोड़ा लज्जित भी है लेकिन 'अपना तो समय ही बीत गया' कहकर अपने मन को समझाता है और तुरन्त सोने का प्रयास करता है । आज एक दिन निद्रा को छलकर बाल कटवाने के लिए आया है । तीन-चार दिन से वह बाल कटवाने के कार्यक्रम को स्थगित करते हुए आ रहा है । तीस-पैंतीस लगेगा । महँगा है लेकिन उस दिन सुबह बूढ़े ने कहा बाल कटवाने के लिए जाना है । हजाम की दुकान की काठ की कुर्सी उँची है और घूमने वाला भी नहीं है । बूढ़े के आसन में काठ चुभता है । नीचे फोम भी नहीं है लेकिन यह जानते हुए भी बूढ़ा इसी हजाम की दुकान में जाता है । पहले भी दो-तीन बार आ चुका है । थोडे सस्ते में काम हो जाता है यहाँ । दुकान का मालिक रामविलास है और उससे कुछ छूट पाने की आस में बूढ़ा बातचीत भी करता हैं ।

रामविलास पाँच रूपए भी कम कर देगा इसी आस में बूढ़ा बहुत मीठी–मीठी बातें भी करता है । चापलूसी भी करता है । यह बात रामविलास को पता है । बूढ़ा क्या-क्या बोलता है । अभी गर्मी की बात कर रहा है । बूढ़े के बाल कटवाना होता है तो यहाँ आता है, वह नियमित ग्राहक भी है, और भी जगह होगी यह वह सोच भी नहीं सका । वैसे भी वह बूढ़े के बक बक करने की आदत से ऊबा हुआ है । बूढ़ा बोल रहा है और बूढ़े के सर पर रामविलास की कैंची चल रही है खच-खच ।

बूढ़ा द्वारा गर्मी का प्रसंग चलाने पर बूढ़े के सर पर दो बार जल्दी-जल्दी कैंची घुमाई। खच-खच ! खच खच उसने बूढ़े के गर्मी वाले प्रसंग पर कोई उत्तर नहीं दिया। कैंची चलाकर ही संकेत दे दिया। खबरदार ! कहीं बूढ़े के कान फट से न काट डाले। कान वैसे भी नरम ही होता है। कैंची से खच से काट डालेगा तो भी पता नहीं चलेगा। बूढ़ा बात नहीं करे वह चाहता है, पर बोल नहीं सकता। बात चीत के सुर में उसका कान कट सकता है। बूढ़े की बक-बक वह सुन नहीं सकता। हाथ तेज़ गति में चल रहा है। मधेश में गर्मी में गर्मी नहीं होगी तो क्या बर्फ गिरेगा ? वह इस तरह से कहना चाहता था। घर में उसका बाप भी इसी तरह से बोलता रहता है। बेटा सब पैसा नहीं कमा रहा है। झुपडी हिलने वाली खाँसी होती है उसे रातभर। आजकल समय ठीक नहीं है। रातभर नहीं खाँसो, कहने पर झगड़ने ही बैठ जाता है, खाँसी को कैसे रोकूँ ? किसको कब घरसे बाहर धक्का दे कर निकाल डालेगा, यह मालूम नहीं है। पहाड़ी और मधेशी का विवाद होते रहता है। राजधानी में ऐसा नहीं हुआ है। सब हैरान हैं। लड़ाई-झगड़ा मारपीट और हत्या-हिँसा बहुत हुआ रामविलास सोचता है। घर लौटने में अब उसे डर लग रहा है।

इस बार तुम घर नहीं गए ? बूढ़ा अब गर्मी के प्रसंग को छोड़कर घर जाने वाली बात पर प्रश्न किया। घर जाता है न आदमी क्यों नहीं जाएगा ? लेकिन घर छोड़कर रोज़ी रोटी के लिए राजधानी में प्रवेश किया है रामविलास ने। अब कितनी बार घर जाओगे रामविलास ? लेकिन क्यों जाओगे ? घर जाना अब निरापद नहीं है। एक न एक आदमी की मौत की खबर रोज़ पढ़ने को मिलती है।

सैलून का काम ठीक चल रहा है। रामविलास अपनी दुकान को सैलून बोलता है। बूढ़ा भी रामविलास से बातचीत के दौरान दुकान को सैलून ही बोलता है। पहले बूढ़ा दुकान के अंदर जाने पर पीछली बार की तरह रामविलास अपनी कैंची खचा-खच करते हुए बाल काटता हुआ ग्राहक का सर इधर और उधर घुमाता हुआ मिलता था। अपनी बारी के लिए रुकना पड़ता था। दुकान इधर की भीतर की गली में है। इधर-उधर के व्यक्ति सब रोज़ बासी दाढ़ी और चेहरा लेकर रामविलास की दुकान में दैनिक अखबार के पन्ने बाँटकर पढ़ रहा होता है। आज दुकान खाली है। मंगलवार है कि इसलिए, वैसे तो मंगलवार बाल नहीं कटवाना चाहिए लेकिन उस में उसे विश्वास ही नहीं है। किसी रोज़ नाखून नहीं काटो, किसी रोज़ बाल नहीं काटो, इसका क्या मतलब ? किसी रोज़ यह नहीं करो, किसी रोज़ वह नहीं करो यह सब ब्राह्मणवाद का नखरा है। बूढ़ा भी ब्राह्मण ही है। हाँ आजकल ब्राह्मणों को ब्राह्मणवाद के प्रर्वतक कहकर खूब निंदा की जाती है। अभी के समय में अल्पसंख्यक और वहिष्कृत जनजाति दलित और सूचीकृत न हो सके यानी बाहरी समुदाय में है ब्राह्मण। वह भी तो ब्राह्मण ही है लेकिन उससे क्या लेना ? क्रान्ति के मुखिया भी तो ब्राह्मण ही हैं। यह सोचकर वह ब्राह्मण होने पर थोड़ा तृप्त होता है और आत्म बल भी मिलता है।

रामविलास मधेश क्षेत्र का लड़का है। वह अविवाहित है बताता है लेकिन बूढ़े के इस बात पर विश्वास नहीं है। अविवाहित ही नहीं बाल बच्चा भी होगा। मधेश में तो और कम उम्र में ही शादी कर दी जाती है उसे इस बात से क्या मतलब ? लेकिन परिवार की बात करके आदमी को नरम बनाया जा सकता है। परिवार की बात से आदमी के अंदर संवेदनशीलता जागृत होती है।

रामविलास विशुद्ध काठमांडू वासी नहीं है। उसके संबंध में यह कहना उपयुक्त नहीं होगा क्योंकि बूढ़ा भी काठमांडू का नहीं है। राजधानी ऐसे ही बाहर के लोगों से भरा है। दो सौ पचास वर्ष से व उससे भी अधिक से ही तो होगा इधर बाहर के लोगों का आगमन हुआ है। सिर्फ़ इन दोनों का क्या हिसाब ? दोनों के बाहर से यहाँ आकर लड़ने का क्या मतलब ?

"तो फ़िर कब जाओगे घर ?" रामविलास के सर पर पानी छिड़ककर बालों को मसलने लगा।

बाल छोटे-छोटे काटने के लिए बोला है बूढा ने। कम से कम एक डेढ़ महिना तो चले। घर में बुढ़िया कर-कर करने लगती है। यह क्या सिर्फ़ कनपट्टी के बाल छाँटकर आ गए हो ? बाल जैसे का तैसा ही है। पैसा देकर आने पर थोड़ा छोटा बाल नहीं बनवाना चाहिए ? इस बूढ़ापे में अब मेरा बूढ़ा क्यों इतना अच्छा बनना चाहते हैं।

बूढ़े ने कुर्सी पर बैढ़ने से पहले ही बोला है -

"छोटे-छोटे करना।" रामविलास उसके बाल छोटे-छोटे काटता है। बूढ़ा एक दो बार आ चुका है उसकी दुकान पर। बोलता है-"नियमित ग्राहक है पैसा कम करवाने के लिए सब ऐसा ही बोलते हैं।"

"जाना पड़ेगा" रामविलास ने आलस दिखाते हुए बोला वह घर नहीं गया तो बूढ़े कैन सा दुखी हो जाएगा। जब भी बाल कटवाने के लिए आता है बूढ़ा यही बात पूछता है ? 'घर गए ?' मधेश में रामविलास का घर और उसका घर एक ही जगह अगल-बगल में हो जैसा पूछता है।

"घर में कौन-कौन है ?" " माँ-बाप, भाइ-बहन सब है ?" रामविलास

खच-खच की ज़ोर की आवाज़ के साथ रामविलास कैंची से आवाज़ निकाल रहा है अपनी अनिच्छा व्यक्त करते हुए। पानी से बूढ़े के सर पर मालिश करने के बाद कैंची चलाने लगा।

"कितने भाई-बहन हो तुम लोग ?"

"चार भाई।"

वह बूढ़े के दायीं तरफ़ थोड़ा किया। खच-खच कैंची की तरह बूढ़ा ज़बान चलाता है।

"तुम्हारा कौन सा नम्बर ?"

"मैं बड़ा"

"खच-खच" कैंची से बूढ़े के बाल नहीं काटते हुए सिर्फ़ खिंच गया। बूढ़े के थोड़ा-सा दर्द हुआ फ़िर भी सहना ही पड़ा। प्रतिवाद में बूढ़ा बोल नहीं रहा है।

"खेत कितना है ?"

"होगा आठ-दस बीघा के करीब।"

जितना भी बोल दोगे होगा। कौन जाता है देखने के लिए। खच्-खच्।

अभी आम थोड़ा सस्ता हुआ है। बोलता है नहीं।

बूढ़े ने आईना में अपने झुर्रियों वाले चेहरे के प्रतिबिम्ब के साथ साथ आम से लदी हुई साइकिल को जाते हुए देखा तो पूछ बैठा। बाल कितनी आसानी से काटे रामविलास ने। ऐसे सन जैसे नरम बाल काटने पर भी वही रेट लेता है रामविलास।

आम के विषय में रामविलास की तरफ़ से कोई जवाब नहीं आया।

"तुम्हारे पास आम का बगीचा है ?"

"है।" रामविलास हाथ जल्दी चला रहा है।

बूढ़े के बाल बहुत नरम हैं। बूढ़ापे में बाल बहुत घना नहीं होता है इसलिए काट्ने में मज़ा नहीं आता है। कैंची फिसल भी सकती है।

"कौन-कौन-सी जात का आम है ?" आम का स्वाद जीभ पर लाते हुए बूढ़े ने कहा। आम है। एक किलो में पाँच-सात आ जाएँगे। पैसा ४०-५० देना पड़ेगा। रक्तचंदन की तस्करी करते तो मुँह माँगी किमत देते, कि बैंक लूटता, कुछ भी नहीं कर सका। जीवन ऐसे ही बीत गया। एक किलो आम खरीदने के लिए इतनी परेशानी। असफलता का स्वाद आम के स्वाद को फीका कर बूढ़ा की जीभ पर बैठ गया है। पचास-साठ पेड़ हैं। लङ्गड़ा, मालदह, दसहरी, कलकतिया रामविलास बोलता गया। बूढ़े के आम के नाम पता होते तो।

भेज देता होगा, तुम्हें ?

मैं आषाढ़ में जाता हूँ घर, तब तक के लिए एक दो पेड़ छोड़ देता है। अगर नहीं जा सका तो एक दो बोरी भेज देता है।

खच-खच। रामविलास ने कैंची रखी, उस्तुरा हात में रखा और टूटा हुआ आधा ब्लेड उसमें फिट किया। एड्स के कारण से पुराना उस्तुरा प्रयोग में नहीं लाता। ब्लेड फिट करने वाला उस्तुरा। रामविलास ने बूढ़े के बाल के बिट सबको और गाल के ऊपर के बालों को खुरदकर चिकना और नरम बना दिया।

'साहब का घर है यहाँ ?' रामविलास ने पूछा, सारी बातें मेरी ही क्यूं की जाये कुछ आपकी भी हो जाए न कहने के अंदाज में।

घर है। इधर भी है, उधर पश्चिम में भी है किराए का घर सोचकर बूढ़ा हड़बड़ा गया लेकिन है कह देने पर रामविलास प्रभावित हो जाएगा। मधेश में इसकी ज़मीन-जायदाद है और आम का बगीचा भी है तो सिर्फ़ खुद को क्यों फूटपाथी बताए। कहने के लिए तो घर है कह डाला लेकिन डर भी गया। कहीं रामविलास ने काठमांडू में घर बनाकर रहने वाला धनी आदमी समझकर डबल पैसा तो नहीं लेगा ? उधर पश्चिम में भी जा चुका है, लहान सिरहा और बहुत जगह।

विदेश तो नहीं है वह जगह। दोनों कुवैत, सउदी अरब वह जा चुका है बन्धु सब। मारे भी जा

चुके हैं। रामविलास ने खूबसूरत-सा जवाब दिया।

अच्छा ! मैं काठमांडू में सैलून सबसे अधिक चलने वाला एरिया कौन सा है ? बूढ़े ने रामविलास से अध्ययन अनुसंधान के अंदाज़ में सवाल किया।

"क्या पता ? जिधर भी चलता है। काठमांडू में सिर्फ़ नेपाल के ही आदमी नहीं है न।"

रामविलास ने बूढ़े के सर पर ऊँगली बजाते हुए मालिश करने लगा। इसने मालिश करना नहीं सिखा है। इतना पैसा देकर बाल कटवाएगा तो खसी बजार के सैलून में फस्ट क्लास की मालिश कर देगा। रामविलास कच्चा अनुभव वाला है कि आलसी है ?

बूढ़ा अब समाप्ति की ओर आ-चुका है जानकर बताया।

"विदेशी सब भी है। दुकान खोलना चाहो तो जहाँ भी चलेगी।"

'तुम्हारी दुकान में विदेशी आता है ?'

'नहीं मैं अपनी दुकान की बात नहीं कर रहा हूँ। एक बात बताया उधर किंग्स वे की तरफ़ दरबार एरिया।'

किंग्स वे कहने से बूढ़े ने दरबार समझा, पूछा, 'दरबार को गणतन्त्र भवन घोषणा करने की बात कह रहा है क्या विचार है तुम्हारा ?"

रामविलास ने बूढ़े के सवाल का जवाब नहीं दिया।

अच्छा उधर तुम लोगों की तरफ़ प्रतिमा को तोड़कर तो। वह ऐसी विमूर्तियाँ की मूर्ति।

'मूर्ति की क्या पहचान है ? मधेशियों द्वारा पहचानने वाली वह मूर्ति नहीं है न ?

थोड़ी देर बूढ़ा रुका। गमरा लेकिन जो हो--

मधेशी सब भी इसी देश का नागरीक है। एक बार उसने कैंची चलाई। खच्-खच्। उसकी बातों में रोष और आवेश प्रकट होने जैसा महसूस किया बूढ़े ने। वह कहीं आवेश में कैंची चलाते समय खच् से कान ही न काट डाले। देश का नाक तो कटा ही हुआ है। पहले राजा ने काटा फ़िर नेताओं ने।

'अब उन लोगों की पहचान की चिंता करनी पड़ेगी की नहीं करनी पड़ेगी खच् खच्।

राजा-महाराजाओं की मूर्ति तो नहीं बची। वह कैंची चलाना रोककर थोड़ी देर रुककर बोला।

कैंची की खच्-खच् थोड़ी देर के लिए रुक गई। अच्छा यही तो है। बातें सिर्फ़ सही-सही ही नहीं, पूरी सही है जैसे बूढ़े के लगा।

बूढ़े ने वह प्रसंग फ़िर नहीं चलाया। प्रसंग का निराकरण तो वह नहीं कर पाएगा लेकिन बोला इस बुढ़ापे में देश की ऐसी दुर्गति देखकर मरना पड़ेगा।

फ़िर उस तरफ़ ही मुड़ा, दुकान चलने और नहीं चलने की तरफ़।

'झोंछे की तरफ़ चलेगा की ठमेल की तरफ़।'

टुरिस्ट एरिया तो हुआ लेकिन अभी तो लटें बनाना और कान में टप लगाने की वजह से व्यवसाय कम चलता है, नहीं ?

रामविलास को लगा बोल दें, देश तो चल नहीं रहा है, दुकान की क्या बात ?

रामविलास ने जवाब नहीं दिया। इतनी देर में और कोई ग्राहक आया भी नहीं। कभी काम से हाथ खाली नहीं होता। लोग कतार में खड़े रहते थे। आज ऐसा हुआ।

बूढ़ा की आँख रेटलिस्ट की तरफ़ गया। बाल कटाई ३५ रूपए। पैतिस रूपया अंक में लिखा हुआ है। दूर से ही बूढ़े ने देख लिया। पास के लिए रिडिङ्ग चश्मा लगाना पड़ता है। बूढ़ा की दूर दृष्टि अच्छी है। आँख इधर-उधर घुमाने की आदत है बूढ़ा की दूर की दृष्टि अच्छी है इसलिए सुविधा है।

दुकान बहुत अच्छी तरह नहीं चल रही है आजकल है न ? बूढ़े ने रामविलास पर सहानुभूति दिखाते हुए बोला।

नहीं, ठीक ही चल रही है, ऐसी बात नहीं है। रामविलास ने बूढ़े के सहानुभूति स्राव को रोकने का प्रयास करते हुए बोला।

'किराया कितना देते हो ?' देह पर से रामविलास सफेद चादर उतार रहा था, उसी पल बूढ़े ने सवाल किया। रामविलास ने इस बात का जवाब नहीं देना चाहा। उसने बूढ़े की गर्दन नीचे करते हुए, छोटे-छोटे गर्दन के ऊपर के पतले बाल को खुरचकर निकाल डाला। अंतिम क्रिया। बूढ़े ने अपने कान के ऊपर के लंबे-लंबे बाल को साफ़ करने के लिए बोला। कान के ऊपर के बाल को देखकर के बूढ़े के पड़ोसी उससे 'कान जुँगे' बूढ़ा बुलाता है। उसे साफ़ करने का काम भी रामविलास ने सम्पन्न कर दिया। और गंदे तौलिए से बूढ़े के गर्दन और शरीर पर पड़े बाल को झाड़

दिया। उसके बाद तौलिया को दुकान के बाहर दो-तीन बार ज़ोर से झाड़ा।

'पैसा देने का समय आया।'

'कितना ?' कुर्सी से नीचे उतरते हुए बूढ़े ने रामविलास को बहलाने के अंदाज में पूछा। "रेट तो है, पैंतीस" उसने सीधा बोला। "यह तो बहुत ज़्यादा हुआ यार। पैंतीस। 'इतना नरम बांल काटने का भी पैंतीस।' 'इतनी देर तक तुमसे बातें की, और कोई है इस तरह। इतना प्रेम से तुमसे बातें करेगा।

और लोगों के पास फुर्सत नहीं होती है। फटाफट बाल काटो बोलता है और कमरे की तरफ़ चला जाता है। कान के बाल भी काट दिए हैं मैंने।

ऐसा कहा जाए तो बातें करने का चार्ज सहित पैंतीस नहीं ? बूढ़े ने मज़ाकिया अंदाज में कहा, रामविलास ने कुछ नहीं बोला। उसके भावह में परिवर्तन आया। बूढ़ा थोड़ा उदास हुआ। कैसा आदमी है ? मज़ाक भी नहीं समझता है। रामविलास भाव शून्य खड़ा रहा। पहले से ही पता था उसको बूढ़ा पैसा देने के समय में झिक-झिक करेगा। कुर्सी पर बैठते हुए , जब बोलना शुरू किया तो, बोलता ही रह गया। समय ठीक नहीं है। जेब से तीस रूपिया निकाला और बोला,"पहले तो पच्चीस लेता था, नहीं ?"

"उस समय वही रेट था।" रामविलास ने तौलिए सें कैंची को पोछते हुए कहा।

"लो तो ऐसी बात है तो ले लो न।" बूढ़े ने एक बीस और एक दस का नोट उसकी तरफ़ बढ़ाते हुए बोला। ऐसे नरम बाल काटने के लिए तो १५ मिनट भी नहीं चाहिए। तीस रूपए में भी नहीं मानोगे। तीस में भी नहीं माना तो ५ और बढ़ा देंगे। लिखकर ही टाँग दिया है, इन लोगों के संघ ने रेट लिस्ट पर जो लिखा हुआ है, वह हो नहीं रहा है आजकल। पहले दिन ही संसद ने क्या-क्या घोषणा नहीं किया लिखित रूप में, लेकिन कहाँ है वह ? सिर्फ़ लिखित में ही सीमित है। मल्लिक ने कहा, रायमाझी ने कहा, लिखित प्रतिवेदन सारे जमा है। जो भी हो, देना ही पड़ेगा ५ रूपए बढ़ाकर। कौन बक-बक करे।

तो रामविलास ने बूढ़े के दिए हुए तीस रूपए लिए और दराज में रखे।

कुछ नहीं बोला।

बूढ़ा दुकान से बाहर चला गया और पास के फलफूल की दुकान को अच्छी तरह से देखा। अच्छा ही है संसार। बूढ़े ने जेब टटोला। कुछ रूपए हैं। केला खाने का मन हो रहा है। लेकिन सुगर का खतरा है। जो भी हो, खाते रहेंगे। खाया भी। रामविलास बाहर निकलना चाहता था। पर बूढ़े को देखकर अंदर ही रुक गया। बूढ़े ने सर के बाल को खुजलाया। छोटा कर दिया है। बूढ़ा तृप्त और विजयी भाव से कमरे की तरफ़ गया।

अनुवादक : मौसमी सिंह (तिवारी)

कहानी

रूपांतरण

भागीरथी श्रेष्ठ

अचानक रात में फोन की घंटी बजी। वह आवाज़ मेरे दिल और कान को छेद गई। अशुभ समाचार है इस सोच के डर से बहुत देर तक फोन की घंटी बजने पर भी झट् से फोन उठाने की हिम्मत नहीं आई। लगा, मानो स्वयं फोन सेट ही अलंकारी होकर उपस्थित हुआ है, मेरे सम्मुख। जैसे-तैसे फोन उठाकर 'हैलो' ही सिर्फ़ बोल पाया था कि उधर से किसी महिला के रोने की आवाज़ सुनकर विस्मित हो गया मैं। यह सपना है कि यथार्थ ? जितना भी वह रोने की आवाज़ सुनता हूँ उतना वह चिर परिचित स्वर लगा, न मैं 'कौन रो रहा है' पूछ ही पाया और न ही मैं फोन काट सका लेकिन उस स्वर ने ... मेरे सर्वाङ्ग में।

उसके बाद उस आवाज़ का स्पर्श मेरे कानो में गुञ्जायमान हुआ। उस आवाज़ को सुनकर मैं दुख के संसार में भी नहीं डूबा। सुख के संसार में भी नहीं पहुँचा लेकिन मैं अपने नितान्त, रोमाञ्चक और आश्चर्यजनक संसार में पहुँचने लगा उस आवाज़ की सिढ़ीयाँ चढ़ते हुए।

"मैं अलका बोलरही हूँ। हालाकि मैं अपने उन्माद और चंचल हृदय के प्रवाह में बहकर आप जैसा ज्ञानी, ईमानदार पति और हीरा-मोती के जैसे संतान को छोड़कर पतन के रास्ते मैं लग गई। मैंने आप लोगों के साथ जघन्य अपराध किया है। वैसे तो मैं क्षमा के लायक नहीं हूँ लेकिन मैं आप और बच्चौ के मोह में बंधी लौटी हूँ और इस तरह से आपसे बातें करने की साहस जुटा पाई हूँ।" उस वक्त हालात ने मुझे क्यों अपराधी बनाया। आज फ़िर वे ही हालात मुझे पश्चाताप की अग्निकुण्ड में डुबो रहे हैं। मैं समझ नहीं सकी। यदि मुझे इस तरह से आलाप-विलाप करना होता तो किस सुख की खोज में निकलती ऐसा सुखी और खुशनुमा संसार को छोड़कर। दो महीने से अशांति की ज्वाला में जल रही हूँ मैं। कहीं भी शांति और सुख नहीं मिला। पश्चाताप की अग्नि में पल-पल जलते हुए लौटी हूँ मैं। मैं तो सिर्फ़ अपना शरीर लेकर गई थी, अपना दिल तो आप लोगों के पास ही छोड़ आई थी। इस शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग में आपके और संतान के अस्तित्व के अलावा और कुछ भी नहीं है, मुझे माफ़ कीजिएगा।

मैं फ़िर से आपके और बच्चों के साथ नई ज़िंदगी की शुरूआत करना चाहती हूँ। मैं पूर्ण रूपसे रूपांतरित होकर लौटी हूँ, मुझे एक बार अवसर दीजियेगा। जिस लड़का के साथ मैं भागकर गई थी, वह मेरी आँखों से अनवरत आँसू झड़ते हुए देखकर उसने अनुमति देते हुए कहा- "तुम मेरे साथ सुखी नहीं रह सकती। तुम अपने पहले के ही पति और बच्चों के पास लौट जाओ। मुझे विश्वास है- तुम्हारा सज्जन पति नरेन्द्र अवश्य तुम्हें माफ़ कर देगा।" मुझे स्वयं विश्वास है कि आप मुझे ज़रूर स्वीकार करेंगे। वैसे तो मैं आपको बाध्य नहीं करूँगी लेकिन यह मेरा अंतर-हृदय की सत्य पुकार है। अनुनय-विनय है। मैं अत्यन्त व्याकुल और और पीडित हूँ। मैं अत्यन्त व्याकुल हूँ आप लोगों से मिलने और देखने के लिए। मुझे विश्वास है कि समय मुझे अवश्य आशीर्वाद देगा लेकिन फ़िर भी अपनी अंतर-आत्मा से पूछिये। मैं कल सुर्योदय से पहले ही घर लौट आऊँगी।" इतना विलाप करते हुए अलका ने मेरे जवाब का इंतज़ार किए बगैर ही फोन काट दिया।

यह क्या ? क्या हुआ ऐसा ? ऐसा भी होता है क्या ? होता होगा। थोड़ी देर तक कुछ नहीं दिखाई दिया। अंधा के समान हो गई आँख और मन। कुछ सोच ही नहीं सका मानो सोच का प्रवाह ही रुक गया हो।

साथ में पलंग पर मस्त से सोए हुए बच्चों को देखा। दो महीने से जिस दिन से अलका भाभी उसी दिन से ये दोनों बच्चे अलका की साड़ी और ब्लाउज पकड़कर सोते हैं। कितना मार्मिक दृष्य। माँ के होते हुए भी अनाथ के समान मेरा बेटा-बेटी।

यह कैसी दुष्कर परीक्षा है मेरे लिए।

अलका से अधिक यह समय मेरे लिए अत्यन्त चुनौती का समय है। मैं अभी समय के भार से दबता जा रहा हूँ। इस समय के भार को मैं कैसे बरदाश्त कर पाऊँगा।

पता नहीं क्यों अलका के प्रति मेरे अंदर न तो गुस्सा का भाव जागृत हुआ और न ही घृणा ने कर्ण उठाया और न ही मैंने उसे डाँटने का प्रयास ही किया।

वह कल आ रही है। यह सोचने में लगा। यह सत्य है कि असत्य ? क्या सच में वह आ रही है ? कैसे उसने धृष्टता की ? शरीर भर काँटे उग गए, लगा मैं स्वयं काँटो से भरा– भरा हूँ -मैं कैसे इन काँटो से निकल सकता हूँ।

वह मेरे लिए सुख बनकर आई है, या दुख बनकर आई है ?

उसने कहा मेरे आँसू और पश्चाताप ही मेरे रूपांतरित होने का प्रमाण है। क्या यही है सुबूत ?

दो महीना पहले अपने घर में किराए में रहने वाला योगेश गुरूङ्ग, जिस युवक के साथ भाग गई थी अलका अब फ़िर से इसी घर में लौटने की हिम्मत कैसे की ?

लेकिन वह जो कर रही थी, इससे मैं रोमांचित था। आश्चर्यजनक खुशी और उत्साह छलांगे लगा रहा था। चाहकर भी गुस्सा कर न सका उस पर क्योंकि उसे घृणा करने के लिए कोई भी अवगुण उसमें नहीं देखा जितना ढूँढ़ने पर भी। व्यक्ति को याद करने के लिए भी उसका गुण है और भूलने के लिए भी उसका अवगुण ही होता है। अलका इस घर की जान थी। एक विश्वासी और प्रियात्मा पत्नी और प्यारे बच्चों की मम्मी थी। घर का सारा व्यवहार उसी के सलाह अनुसार होता था। जहाँ तक लगता है उसे मैंने हर बात से सन्तुष्ट किया था। पता नहीं कहाँ भूल हो गई मेरी ? मेरी एक ही भूल थी कि मैं सुबह से शाम तक अपने काम में व्यस्त रहता और घर परिवार पर ध्यान नहीं दे पाता था। वह एक अवारा लड़का के साथ कौन से सुख की खोज में कैसे उजालों की चाहत में इतने सुंदर संसार को लात मारकर गई। कौन सी तृष्णा थी, जो उसके वशीभूत हो गई ? कितनी निर्दयी बन गई वह। आदमी का मन का संसार कब, किस कारण से परिवर्तन होता है ? किस समय दिल क्या चाहता है ? किस समय दिल दुखता है। उसकी कोई सीमा नहीं है। अलका के जाने पर दुनिया ने बदनाम किया, द्वेष के राक्षसों ने ताली पीटी। सबने अपमान किया उसकी बुद्धि और कर्म को धिक्कारा। मैं भी उसके साथ बहुत नफरत करना चाहता था कितना भला-बुरा कहना चाहता था लेकिन नहीं हो पाया। उसके गुणों ने मुझे नतमस्तक कर दिया। बल्कि कितनी रातें आँखे भीगी और ऐसे ही बीती उसकी कमी और अभाव में। उसके रहते समय घर का बातावरण सुबह की किरणों जैसा होता था। उसके बिना घर ढले हुए पेड़ की तरह, टूटा हुआ डाल से झरे हुए पत्ते की तरह। घर का सारा सुख चैन हरण कर के चली गई थी। सोचता था, अंतर्मन से अलका घर लौट आए उसके द्वारा किया गया गलत कार्य कर्म, मेरा और सबके मन से विस्मृति हो। फ़िर से गृहस्थी का नया संगीत शुरू हो। मृत मेरी गृहस्थी फ़िर से संगीतमय हो। इस घर का मुख्य दीप फ़िर से प्रज्वलित हो। अलका के फोन के बाद आश्चर्य चकित होकर सोचने लगा। उसके अंदर की चाहत का सूत्र और मेरी चाहत का सूत्र कैसे जुड़ गया ?

आठ वर्ष का बेटा नीरज और सात वर्ष की बेटी नीता हरवक्त पूछती थी "पापा मम्मी कहाँ चली गई ? कब आएँगी ?" मैं विश्वास के साथ कहता था-"तुम लोगों की मम्मी दो-तीन महीने के बाद तुम लोगों के लिए ढेरों उपहार लेकर आएँगी।"

इस तरह से झूठ बोलकर बच्चों को अश्वासन देता था। मुझे लगता था झूठ बोलने से कोई पाप नहीं लगता। अगर एक झूठ बहुतों का अहित करता है तो बोलना पाप है। इसलिए झूठ बोलकर बेटा-बेटी के मन में अपनी मम्मी के प्रति आशा के दीप जला देता था। उन लोगों के सामने सत्य बोलकर अपनी मम्मी के प्रति घृणा, का भाव जगाने की कोशिश मैंने कभी नहीं की। सोचता था आखिर बच्चों की जननी है। जीवन की इस यात्रा में कहीं और कभी

इन लोगों की अपनी मम्मी से मुलाकात भी हो सकती है।

जब अलका आज परिमार्जित और परिष्कृत होकर छाँव बनकर भरिपूर्ण कारण और धूप की जैसी गर्मी, चन्द्रमा जैसी शीतलता बनकर लौटी है तो क्यों स्वीकार न किया जाए। उसके लिए इस घर का दरवाज़ा सदा के लिए खुला है। हम लोगों के जैसे कितने पुरुष इसी समाज में दो-तीन शादियाँ करके ठाट से रहते हैं तो अलका की एक गलती को क्यों माफ़ नहीं किया जा सकता ?

लगा किसी समय के कैदी बनकर रास्ता भटककर गई अलका फ़िर रास्ता याद करके लौटी है।

जीवन है, इस जीवन में कौन गलती नहीं करता ? माफ़ करना पड़ता है ? करुणा, सहृदयता और उदारता ही मानवीय उच्च भावना है। मुझे अलका को प्रेम और सम्मानपूर्वक स्वीकारना पड़ता है क्योंकि वह शरणागत और समर्पित लौटी है। अनन्य भाव लेकर।

लगा मैं तो खुशी की उतान तरंग में तैरने लगा हूँ। खुशी के नैसर्गिक हलचल के अंदर चलने लगा।

सोचा मैं फ़िर से कुशल और प्रेयसी पत्नी की प्राप्ति करने वाला हूँ।

मेरे बच्चों को फ़िर से ममता का छाँव मिलने वाला है।

इस घर को एक ईमानदार मालिक मिलने वाला है।

जीवन फ़िर से अधोगामी से उर्ध्वगामी होकर चलने लगेगा।

मैं सभी निरूपाय स्थितियों और यन्त्रणा से मुक्ति पा लूँगा।

अनेक सोच के संसार में विचरण करते-करते सुबह होने का पता ही नहीं चला। एक ही बार द्वार की घंटी बजने पर चौंक गया। पता नहीं कौन सा उत्साह और उल्लास के साथ गेट खोलने को गया तो हात में बड़ा सा बैग उठाई हुई अश्रुपूर्ण नयन से संकोचपूर्वक मेरी ओर देख रही थी। कितनी हृष्ट-पुष्ट थी वह। दो महीने में ही कितनी दुर्बल हो गई है। मैंने पूरा द्वार खोल दिया लेकिन एक मौनता हमारे बीच पसरी हुई थी। ऐसा लगा उसका समग्र व्यक्तित्व देखने पर इस दुबली अलका की काया से मातृत्व का प्रकाश चमक रहा है। पश्चाताप का आँसू झर रहा है। मानो वह कहीं दूर परदेस से लौट रही हो। मन में गाँठ पड़ा था लेकिन मैं दिल खोलकर उसको आगोश में नहीं ले सका।

वह चुपचाप धीरे-धीरे मेरे पीछे-पीछे आई। खुलके न तो मैं बोल सका, न वह बोल सकी। यद्यपि मेरे मन में उसके प्रति कोई दुर्भावना नहीं थी। एक संवेदना वह रही थी मेरे अंदर।

उसके फटाफट मेरे कमरे में आने से बच्चे झटपट उठ गए। दुबली मम्मी को देखकर थोड़ी देर ठिठक गए। रोते हुए दोनों एक साथ चिल्लाते हुए बोले-"मम्मी कहाँ आप गई थीं हमें छोड़कर ? मम्मी क्या लाया आपने हमारे लिए ?"

मम्मी के बाहुपाश से छिटककर वे लोग बैग से खोजतलाश करके समान सब निकालने लगे।

ज़मीनपर बिखरा-बिस्कुट, चकलेट, चिजवल, लेज और अनेक खेलौना सब।

बेटा-बेटी खुशी से उछलने लगे। ऐसा लगा मुझे इस समय आकाश से खुशी और उत्सव का फूल सब बरस रहा है। कमरे का बातावरण अत्यन्त करुण हो गया था।

चुपचाप एकटक देखरहा था वह करुण दृश्य सब। लगा वह बीता प्रिय और हार्दिक दिन सवरे फ़िर लौटकर आ गया हो। भिन्न अनुभूति, नया स्वाद और आकर्षक रङ्ग लेकर। अलका को सिर्फ़ मैंने ही नहीं, यह घर और घर का सारा बातावरण ने भी माफ़ कर दिया हो। बेटा-बेटी का प्रेम और अधिक संभल गई हो वह।

बाहर उजाला हो चुका था। सदा की तरह आज भी अलका उठकर बाहर ही चली गई। शायद घर के काम-काज की तरफ़ होगा। मन से बहुत-बहुत कशमकश और पीड़ा का बोझ हटा हुआ महसूस किया।

अनुवादक : मौसमी सिंह (तिवारी)

कहानी

मुझे भी नींद नहीं आई

मातृका पोखरेल

मोबाइल फोन से अभी-अभी मिली हुई खबर मेरे लिए कोई खास अप्रत्याशित नहीं थी। सरकार द्वारा बनाई जा रही सुकुमवासी बस्ती में डोजर चलवाने की योजना की जानकारी मुझे आधिकारिक स्थान से ही मिल चुकी थी।

"यह कदम हमारी पार्टी के लिए अत्यंत घातक होगा।"– सूचना मिलते ही मैंने प्रतिक्रिया दी थी।

"अब यह पार्टी हमारी नहीं रही। जनता की नहीं रही।"– पार्टी के नेताओं को चुनौती देते हुए कहा था मैंने।

ज़िम्मेदार कॉमरेड भी मेरी बातें प्रतिक्रियाविहीन होकर सुनते रहे।

दो दिन पहले तक मैंने कार्की चाचा को 'यह तो हो ही नहीं सकता' कहकर फ़िर से विश्वास दिलाने की कोशिश की थी। लेकिन अपनी बात पर मैं स्वयं भी विश्वस्त नहीं था।

मोबाइल की घंटी लगातार बजने लगी। रजमान गुर्मछान, सरला कार्की, हरिदेव चौधरी, सुवास आले समेत कई दोस्तों के फोन से आई घंटी बजती की बजती ही रही। लगातार घंटी बजने पर मैंने मोबाइल को साइलेंट कर लिया।

रेडियो खोला। एफएम स्टेशनों से 'वाग्मती के सुकुमवासी बस्ती को सरकार डोजर लगाकर हटा रही है' समाचार आ रहे थे।

फ़िर मैं बिस्तर पर जाकर लेट गया। बस लेटना ही तो था। कल तक नरम लगने वाला बिस्तर भी काँटे की तरह चुभता हुआ-सा लगा। बदन पसीने से लथपथ-सा हो रहा था। फ़िर उठा। मोबाइल के स्क्रिन को देखा। सुकुमवासी टोल के कॉमरेडों के आए कॉल्स की लंबी लिस्ट थी।

पार्टी के शांति प्रक्रिया में आने के बाद सुकुमवासियों का व्यवस्थापन बड़ी चुनौती के रूप में हमारे सामने खड़ा हुआ था। देश भर में ही यह समस्या थी। काठमांडू के भीतर के सुकुमवासियों का व्यवस्थापन करने की ज़िम्मेदारी के साथ पार्टी ने मेरे नेतृत्व में एक टीम बना दी। हमारे लिए यह काम कम चुनौती भरा नहीं था। पार्टी में संगठित हुए कुछ सुकुमवासी कॉमरेडों के सहयोग में हम ने वास्तविक सुकुमवासियों की लिस्ट बनाना शुरू किया। सुकुमवासियों की अवस्था बड़ी विकराल थी। काठमांडू की बहुत सारी ज़मीनों पर सुकुमवासी के ही नाम पर अमीर लोग कब्ज़ा जमाकर बैठे हुए थे। उच्च ओहदे के सरकारी मुलाज़िम ही नहीं, बल्कि उच्च राजनीतिक प्रभाव के बल पर सरकारी ज़मीन हड़पकर बसे हुए गैर सुकुमवासियों की तादाद भी बड़ी थी।

पार्टी द्वारा हमें सौंपी गई ज़िम्मेदारी में सहयोग देने वाले साथी भी बहुत थे। वास्तविक सुकुमवासियों के समूह में प्रवेश करने के बाद लगा जैसे हम एक अलग ही संसार में आ गए हैं।

सुकुमवासी टोल के भीतर ही सुकुमवासी और गैर सुकुमवासियों के बीच एक ध्रुवीकरण था। वास्तविक सुकुमवासियों का साथ हम अच्छी तरह ही दे रहे थे। उन्हें भी हमारे ऊपर यकीन और भरोसा था। सुकुमवासी टोल के गैर सुकुमवासियों के हमारे विरुद्ध विविध षड्यंत्र करने की सूचना हमें मिलने लगी थी। वास्तविक सुकुमवासियों की एकता के आगे गैर सुकुमवासी कमज़ोर पड़ रहे थे।

लोगों के सुकुमवासी जीवन में रूपांतरित होने के पीछे बहुत सारे कारण होते थे। अच्छी तरह पेट भर सकने वाले भी पारिवारिक दुर्घटना के कारण यहाँ आ जाते थे। वाग्मती किनार के सुकुमवासियों के सहकार्य के कारण देश भर बिखरे हुए सुकुमवासियों के

साथ संपर्क बढ़ता गया। एक तरह से कहा जाए तो वास्तविक सुकुमवासियों का नेतृत्व लेने में हमारी पार्टी सफल थी। इस बात को लेकर ही हमें गर्व था।

**

जब मैं वाग्मती पुल पर पहुँचा तो पुलिस और सुकुमवासियों के बीच झड़प हो रही थी। पुलिस की ज़्यादती सीमा पार कर रही थी। दूर से ही देखा– कॉमरेड सरला का छोटा-सा बेटा बच्चों का एक समूह बनाकर डोजर पर पत्थर मार रहा था। पुलिस वाले क्या बच्चा, क्या बुजुर्ग, सब पर लाठी बरसा रहे थे और क्रूरतापूर्वक झोपड़ियों के सामानों को वाग्मती नदी में फेंक रहे थे।

एक ही निमेष में देखते-ही-देखते लोगों की बड़ी संख्या बेघर हो गई। मेरे साथ अंतर्संबंध वाले सभी कॉमरेड बेघर हो चुके थे। भीतर से ही मन जुड़े हुए लोगों के ऊपर पड़ी चोट से कितना दर्द होता है, इसका अनुभव मैंने आज पहली बार किया। अपनी ही पार्टी सरकार में है। इस विषय में उनकी मेरे साथ होने वाली बातचीत से पीड़ा और बढ़ी हुई महसूस होती है।

"मैं आप लोगों के साथ हूँ और रहूँगा।" इतना मात्र उत्तर देकर उनकी गहरी पीड़ा पर मरहम लगाने की कोशिश कर रहा हूँ।

समर्थ लोगों ने थोड़ा-थोड़ा करके अपने सामान उठाए, असमर्थ लोग वह भी नहीं कर सके। पार्टी और सरकार ने भयंकर गलत फैसला लिया था। इस वारदात से जनता और हमारी पार्टी की दूरी काफ़ी बढ़ गई है।

"वास्तविक सुकुमवासियों के लिए वैकल्पिक व्यवस्था करके ही वाग्मती किनारे के सुकुमवासियों को हटाना जायज होगा।" पार्टी कमिटी की तरफ़ से हमने बारंबार पार्टी नेतृत्व और सरकार से आग्रह किया था।

उजाड़ दी गई झोपड़ी में छूटा-फूटा कुछ मिलने की आशा में अपने बेटे को लेकर गई हुई सरला दुपट्टे से आँसू पोंछती हुई वाग्मती पुल की तरफ़ आ रही थीं। इसी तरह अपने-अपने बच्चों के साथ मोटरी-गठरी थामे आ रहे थे– कार्की चाचा, रजमान गुर्मछान, हरिदेव चौधरी, सुवास आले लगायत कॉमरेड लोग। इन साथियों को किस मुँह से क्या बोलूँ, अब दूसरे पहाड़ से दबा हुआ-सा महसूस होने लगा।

पुल ऊपर के लोगों को पुलिस तितर-बितर कर रही थी। मैं कॉमरेडों से मुलाकात कर पुल के उत्तरी हिस्से की तरफ़ बढ़ गया। मैं उनकी पीड़ा को सहलाने के लिए उपयुक्त शब्द खोज रहा था। इतना ही नहीं, मैं खुद भी निराश था। ऐसा लग रहा था मानो मेरे आगे मुश्किलों का पहाड़ खड़ा हो।

कैसा सपना सँजोए चला था। अपनी यात्रा पर कितना विश्वास था। लेकिन अपने ही सामने चकनाचूर होकर टूट रहे शीशे के समान सपना टूट रहा था।

मुझे पता है सरला के रहने का अब कोई आसरा नहीं है। रामेछाप में ही पली बढ़ी हुई, माँ-बाप का चेहरा तक न देख पाई अनाथ। छोटी उम्र में ही चाचा-चाची ने सौतन वाले घर में अधेड़ पति का साथ लगा दिया। विवाह करके गई हुई ससुराल किसी यातनागृह से कम न थी। कालीन के कारखाने में काम करेंगे कहकर कुछ साल पहले उनका पति काठमांडू लेकर आ गया। साथ में दो छोटे-छोटे बच्चे थे। एक दिन पहली सुबह ही उनका पति उन्हें छोड़कर लापता हो गया। उन्होंने कुछ दिनों तक अपनी क्षमता के मुताबिक अपने पति को ढूँढ़ने की कोशिश की। बाद में वह समझ पाईं कि खुद से दूर करने के लिए ही उनके पति ने ये सब नाटक किया था।

कुछ दिनों तक तो काठमांडू की सड़कों पर, गलियों में वह भीख माँगती फ़िरीं। एक दिन भीख माँगने दौरान गाँव की एक दीदी से उनकी मुलाकात हुई, जिन्होंने उन्हें अपनी ही तरह पत्थर तोड़कर गुज़ारा चलाने की सलाह दी। माँगकर खाने की इच्छा उन्हें भी बिल्कुल न थी। सो वह भी दीदी के पीछे-पीछे बल्खु नदी के किनारे काम की तलाश में गईं।

उसी साल बड़ा लड़का नदी में डूबकर मर गया। उसके बाद उन्हें वहाँ रहना अच्छा नहीं लगा। पर करतीं क्या? मजबूरी से बँधी हुई ज़िंदगी के उनकी मर्ज़ी से चलने का सवाल ही नहीं था। करीब दो साल बल्खु नदी के किनारे पत्थर तोड़ने के दौरान उन्होंने कहीं से सुना कि वाग्मती के किनार में झोपड़ी बनाकर रहा जा सकता है।

पत्थर फोड़ने वाले साथियों के पीछे लगकर

सरला वाग्मती किनार वाली सुकुमवासी बस्ती में आई थीं।

कॉमरेड सरला बेटे का हाथ पकड़े मेरे पास आईं और एकटक मुझे देखती रहीं। सरला और मैंने थापाथली पुल पर खड़े होकर फ़िर से एक बार सुकुमवासी बस्ती की ओर देखा। उधर देखकर शायद उन्होंने अपने पुराने घाव को कुरेदा होगा। पपड़ी पड़ चुके घाव से वापस खून बहने लगा होगा। उनके चेहरे को पढ़कर ऐसा ही कुछ आभास हो रहा था।

बेआसरे कॉमरेड कुछ नज़दीक के और कुछ दूर के रिश्तेदारों के यहाँ जाने की बात कर रहे थे। मोटरी लादे हुए कार्की चाचा ऐसे मुँह लटकाए मुझे देख रहे थे, मानो बस अब रोने ही वाले हैं।

"सरला कॉमरेड, चलिए मेरे ही यहाँ चलते हैं।"– सरला को आश्रय लेने की यहाँ कोई जगह नहीं है, यह मुझे पता था।

मैंने सरला की ओर देखा। वाग्मती के पानी में उनके आँसू की बूँदें गिरकर कहीं खो गई थीं।

"मैं कभी भी न रोने वाले इंसानों में से हूँ कॉमरेड, पर आज... !"– हथेली से आँसू पोंछती हुई बोलीं वह।

सरला की खुशी और दुख दोनों स्थितियों को मैंने नज़दीक से देखा था। जब पहली बार वह पार्टी के संपर्क में आई थीं, तब बेहद खुश थीं।

"ऐसा लग रहा है, आज से मुझे नई ज़िंदगी मिली है।"– पार्टी सदस्यता प्राप्त होने के दिन उत्साहित होते हुए कहा था उन्होंने।

वही इंसान इतनी छोटी अवधि में आज कह रही है– "कॉमरेड, अब मैं सच में हारी हुई महसूस कर रही हूँ।"

मैं निरुत्तर उसकी बातें सुनता हुआ रास्ते पर चल रहा था और खुद चल रहे रास्ते से खुद को ही अविश्वास पैदा हो रहा था।

**

सरला और उनका सात साल का बेटा शिवहरि रसोई घर के रूप में प्रयोग किए जा रहे बगल के कमरे में सोए थे। बीच में प्लाइवुड का छेका लगा हुआ था। इधर के कमरे में हमारा परिवार सोया हुआ है।

"आप कह रही थीं कि अब हमें पहले की तरह अन्याय नहीं सहना पड़ेगा!" शिवहरि के अपनी माँ से पूछे हुए शब्द रात के सन्नाटे को चीरते हुए हम तक आ पहुँचे। मेरी पत्नी सरिता उस आवाज़ को सुनने के लिए मुझे टोक रही थी।

"मैं भी सोया नहीं हूँ।" मैंने धीरे से उसके कान में कहा।

अनुवादक : मुकेश कुमार मिश्र

कहानी

प्रियंवदा

माया ठकुरी

'आपके मस्तिष्क की नसें थोड़ी कमज़ोर हुई दिखाई देती है। अधिकतर लोगों में उम्र वृद्धि होने के साथ-साथ शरीर के अवयव भी थोड़े दुर्बल होते जाना स्वभाविक ही है, पर किसी-किसी में ऐसे लक्षण थोड़ी जल्दी ही दिखाई पड़ने लगते हैं। आपके सम्बन्ध में कहा जाए तो आप अपने मस्तिष्क को हमेशा सक्रिय रखने हेतु कोई नवीन वात जैसे, खुद से अनजान भाषा सीखने लगेंगी तो मस्तिष्क सक्रिय रहेगा और उससे आपको लाभ होगा।'– प्रियंवदा के सर की सि.टी. स्कैनिंग रिर्पोट देखकर डॉक्टर ने उनसे कहा।

"आप क्या बात करते हैं डॉक्टर साहब ? अब इस उम्र में आकर नई भाषा सीखकर मुझे क्या करना है ? रोग भी कैसी लगी है भाषा सीखने की ? हल्की हँसी हँसती हुई बोली प्रियंवदा।

'देखिये आप अपने रोग को साधारण मत समझिए। मेरी कही बातें मानिए ! जितनी जल्दी हो सके एक नवीन भाषा सीखना शुरू कर दीजिए !' डॉक्टर ने तटस्थ होकर कहा।

'मुझे ऐसा क्या रोग लग गया है डॉक्टर साहब ?' प्रियंवदा ने पूछा।

'आपको विस्मृति होने का रोग लग चुका है। समय पर ही इसे ध्यान देकर सावधानी नहीं अपनाई गई तो मनुष्य पूर्ण रुप से विस्मृति के गर्भ में चला जाता है, और वह अपना अतीत, वर्तमान सबकुछ भूल जाता है। आपके विषय में बहुत से बहुत ८-१० वर्ष वैसा बड़ा प्रभाव न पड़े, पर निश्चित नहीं कह सकते।' डॉक्टर ने खुलकर कहा।

'ओ, इसी से तो आज-कल मैं बहुत बातें भूलने लगी हूँ। कभी-कभी तो खुद को हमेशा मिलते रहे, देखते रहे लोगों का नाम तक भूल जाती हूँ। एक काम करना शुरू किया, आदमी थोड़ी देर में क्या हो जाता है क्या पता, बीच ही में उस काम को चट से भूलकर दूसरा ही काम प्रारम्भ कर देती हूँ। कितनी बार तो मैं घर से एक निर्दिष्ट स्थान पर जाने हेतु निकली, भूलकर दूसरी ही रुट में चलने वाली गाड़ी पकड़कर अन्यत्र किसी नई जगह पर पहुँची होती हूँ। अब जा के पता चला मुझे भूलने का रोग पकड़ लिया है।' डॉक्टर की बातें सुनकर मन के अंदर उमड़ती हुई वहदना की लहरों को दबाने का प्रयास करती हुई प्रियंवदा ने कहा।

'हाँ आपका सिर बहुत ही दुखे तो यह दवा खाएँ पर यह दवा बेहोश कर देती है और झपकी आने लगती है।' डॉक्टर ने प्रियंवदा के लिए दवा का नाम लिखने का उपक्रम करते हुए कहा।

'उस तरह बेहोश करने वाली दवा मत लिख दीजिए डॉक्टर साहब। बेटे-बेटी सभी बाहर हैं। दमा रोग के कारण वह कई सालों से बिस्तर पर पड़े हैं इसलिए घर का सब कुछ मुझे ही देखना होगा, ऐसी अवस्था में मैं ही बेहोश रही तो कैसे चलेगा... ? हां, कोई सामान्य प्रकार की दवा लिख दीजिए।' प्रियंवदा ने कहा।

ठीक है, मैं यहाँ एक सामान्य दवा लिख देता हूँ, सर दुखने के समय खा लें पर देखिए, ! विस्मृति के लिए आज तक ऐसी कोई दवा बनी नही है। इससे बचने हेतु आपको मस्तिष्क को सक्रिय रखने की कोशिश करनी पड़ेगी।' डॉक्टर ने फ़िर वही बात दोहराई।

'अच्छा तो डॉक्टर साहब नमस्कार ! प्रियंवदा ने डॉक्टर की दी हुई परची हाथ में लेती हुई बोलीं।

उस दिन डॉक्टर साहब के यहाँ से घर लौटने के क्रम में प्रियंवदा के हृदय में वहदना की आंधी-तूफान उठे थे। वह बार-बार आँखों की पुतलियों तक आए आँसू के प्रवाह को हाथों से पोंछती हुई कदम

बढ़ा रही थीं।

घर पहुँचने पर प्रियंवदा के पति गोविन्दराज ने उनसे डॉक्टर की प्रतिक्रिया के बारे में जिज्ञासा रखी थी।

'वैसी खास चिन्ता करने की कोई बात नहीं है। अधिक टेन्शन न लें, तथा मस्तिष्क को सक्रिय रखें कहा। दवा भी सामान्य दिए हैं।' प्रियंवदा ने असलियत को छुपाते हुए कहा।

'यही बात तो मैं भी तुमसे कहता आया हूँ। तुम बिना मतलब जाने-अनजाने बातों की चिन्ता करती हो।' गोविन्दराज ने कहा।

समय-समय पर असहनीय तरीके से सिर दुःखते रहने के कारण उसके समाधान हेतु डॉक्टर के यहाँ पहुँची प्रियंवदा ने जब अपने रोग के बारे में मुख्य बातें जान पाईं तो उसी क्षण से उनकी छाती में पीड़ा का धुँवा उठकर उन्हें छटपटाने लगा थी।

प्रियंवदा ने बाद के दिनों में स्वयं को जितना हो सके सचेत रखने का प्रयत्न करने लगी। नई भाषा सीखने के निमित्त वह बाज़ार से एक पुस्तक लाईं जिसमें सरल ढंग से जापानी भाषा सीखने के लिए पाठों को तैयार किया गया था।

वैसे तो प्रियंवदा अपनी ओर से बहुत ही सचेतता अपना रही थीं, फ़िर भी कभी-कभार उन्हें अकस्मात् किसी अदृश्य छाया ने ढक लिया जैसा होता और क्षण भर के लिए वह विस्मृति अवस्था में पहुँच जातीं।

वैसी ही विस्मृत अवस्था में जाने के किसी क्षण में उनसे हुई गलत बातों के कारण कभी-कभी घर में कुछ क्षति भी हुआ करती। बाद में होश में आने पर खुद से हुई गलती के कारण आमन्त्रित हानि को याद कर अंदर ही अंदर अत्यन्त ही लज्जा बोध करतीं प्रियंवदा। पर क्या करें, निरुपाय थीं वह। उनके वश में कुछ भी नहीं था।

एक दिन की बात है उस दिन लोडशेडिंग होने से शाम ६ बजे से बिजली नहीं जली थी। कमरे में अन्धेरे का प्रवेश होने पर बैठक-कक्ष में रखने हेतु प्रियंवदा ने मोमबत्ती जलाई। बत्ती लेकर बैठक-कक्ष में जाते-जाते वह अपनी सुध खो बैठीं तथा बैठक कक्ष में रखने चली मोमबत्ती शयन कक्ष में लाकर बिस्तर पर रख दी थी। गनीमत हुई कि उस वक्त गोविन्दराज की दृष्टि उस पर पड़ गई वरना महा अनर्थ हो जाता।

पिछले कुछ समय से प्रियंवदा की मानसिक स्थिति सामान्य होने से वह स्वयं को बहुत स्वस्थ अनुभूत करने लगी थीं।

पिछले हफ्ते गोविन्दराज की बड़ी दीदी नर्मदा ने अपनी छोटी बेटी कृपा की शादी के उपलक्ष्य में भाई गोविन्दराज और बहू प्रियंवदा को कुछ दिन के लिए कृष्ण नगर आमंत्रित की थीं। गोविन्दराज चाहकर भी स्वास्थ्य के कारण भांजी की शादी में नहीं जा सके। इस प्रकार प्रियंवदा अकेली ही कृष्ण नगर गईं।

विवाह में कृष्ण नगर पहुँचे सभी आमंत्रित लोगों के लिए खाने-पीने की व्यवस्था नर्मदा ने अपने ही घर पर ही की थी और सोने की व्यवस्था घर के नजदीक ही एक होटल में कर दी।

कृष्ण नगर पहुँचने पर अपनी बड़ी ननद नर्मदा तथा अन्य सगे-सम्बन्धियों से भेंट होने पर प्रियंवदा को बहुत ही खुशी हुई थी। कतिपय सगे-सम्बन्धियों के साथ प्रियंवदा की मुलाकात न हुए बहुत समय हो चुके थे। इस कारण भी भांजी की शादी के अवसर पर उनलोगों से भेंट-घाट हो पाने पर वह अत्यन्त उत्साहित हुई थीं।

प्रियंवदा कृष्ण नगर पहुँचने के अगले दिन दुल्हन की ओर से शाम के समय भोज का आयोजन किया गया था। इस प्रकार दिन में प्रायः सभी निमन्त्रित लोग कोई आराम करने, कोई बातें करने में लगे थे।

प्रियंवदा को दिन में-थोड़ी देर के लिए भी बढ़नी बाज़ार तक जाकर खरीदारी करके आने का मन था। बढ़नी बाज़ार और कृष्ण नगर के बीच दस गज का मात्र अन्तर होने से अधिकतर प्रायः नेपाली लोग दस गज पर करके भारतीय भूमि पर अवस्थित बढ़नी में जाकर खरीद फरोख्त किया करते थे।

"प्रियंवदा ने बढ़नी जाने से पहले दूर की एक महिला नातेदार से "मेरे साथ बढ़नी तक चलोगी क्या.....?" कहकर पूछी थीं पर विवाह वाले घर की चहल-पहल वाले माहौल छोड़कर बढ़नी जाने के लिए वह राज़ी नहीं हुईं। इस प्रकार और किसी को भी अपने साथ जाने के लिए जोर दिए बिना प्रियंवदा ने रिक्शा लिया और बढ़नी की ओर चल दिया।

बढ़नी पहुँचकर रिक्शा से उतरने के बाद रिक्शेवाले को पैसे देने के लिए प्रियंवदा ने अपने कंधे

पर टंगे हुए बड़े झोले के अंदर से एक दूसरा छोटा बैग निकालने के क्रम में एक छोटा कागज का टुकड़ा ज़मीन पर गिर पड़ा।

"माताजी, यह आपका कागज ? उठाकर किसी ने प्रियंवदा को दिया। प्रियंवदा ने देखा उस कागज के टुकड़े पर प्रियंवदा का तथा उसके पति का नाम, उपनाम, उम्र एवम् टेलिफोन नं. लिखा था।

कागज में लिखे विवरण को पढ़कर प्रियंवदा के होंठ पर अनायास ही मृदु मुस्कान बिखर गई, तब वह गोविन्दराज के ममता भरे चेहरे को याद करती हुई वह वो कागज बैग के अंदर रखीं और रिक्शेवाले को भाड़ा देने के बाद बढ़नी स्थित विभिन्न दुकानों में खरीद-फरोख्त करने लगीं।

डेढ़ घण्टे तक प्रियंवदा ने खरीद-फरोख्तकिया। इसके पश्चात् अपना खरीदा हुआ सामान रखकर झोला लिए वह कृष्णनगर लौटने के लिए रिक्शा ढूँढ़ने लगीं।

कुछ दूर हट के एक खाली रिक्शा देखने पर प्रियंवदा ने हाथ के इशारे से रिक्शा बुलाया और रास्ते के किनारे पर खड़ी रहीं।

उसी वक्त क्या जाने किधर से, एक आठ-दस साल का बालक बर्तन में कुछ लेकर आया और प्रियंवदा के आगे आकर टकराया और फ़िर उसके हाथ में रखे वर्तन उछटकर प्रियंवदा के पाँव में लगा।

'हे भगवान यह क्या किया..... ! पूरी सब्जी मेरे पूरे पाँव भर लग गई। कैसे बिना आँख देखे ही दौड़ा ? पाँव भर रसदार सब्जी गिरकर साड़ी में समेत लगे देखकर अनायास ही क्षुब्ध होकर प्रियंवदा ने कहा था।

'हरे ! अब यह कैसे साफ करें....' कहते हुए प्रियंवदा के अपने कदम और साड़ी झाड़ते वक्त वह बालक नीचे गिरे बर्तन झट से उठाया और एक गली की ओर दौड़ पड़ा।

'अरे.... भाई ! इधर कहीं नल है पानी का ? प्रियंवदा ने नजदीक के दुकानदार से पूछा।

'है उधर थोड़ी दूर पर एक पानी की टंकी है। वहीं नल भी है।' दुकानदार ने आगे की ओर इंगित करते हुए कहा।

दुकानदार के दिखाए दिशा की ओर बढ़ते जाने पर प्रियंवदा ने वहाँ एक पानी टंकी और नल को देखा। धारा पर पहले ही एक महिला बाल्टी में पानी भर रही थी। बाल्टी भर जाने के बाद वह महिला बाल्टी उठाकर चली गई।

प्रियंवदा ने हाथ में लटकाया हुआ झोला नल के नजदीक रखा फ़िर कंधे पर लटकाये बैग को बगल में दबाया।

इसके पश्चात प्रियंवदा ने पाँव धोया और साड़ी में लगे दाग रगड़ रगड़कर साफ़ करने लगीं।

बहुत देर लगाकर पाँव और साड़ी के किनारों को खंगालने के बाद बगल में दबाया हुआ बैग हाथ में लिया तथा बैग का चेन खोलकर बैग को धारा के नीचे रखीं। कुछ देर तक इस प्रकार बैग रखने पर प्रियंवदा ने बैग के अंदर हाथ डाला और बैग भीतर के सभी सामानों को धोने लगीं।

कुछ देर बाद बैग के अंदर के सभी सामानों को धो लेने के बाद वह बैग को उल्टा करके धोने लगीं। बैग के अंदर का सभी सामान ज़मीन पर फैल गया, पर प्रियंवदा उन सामानों की परवाह किए बिना एक सुर से बैग धोती रहीं। इसके पश्चात् प्रियंवदा ने बैग सीधा किया और उसमें पानी डाला, फ़िर पानी से भरे बैग कंधे पर लटकाकर अपना सामान रखा हुआ झोला वहीं छोड़कर आहिस्ता-आहिस्ता कदम बढ़ाती हुई वह दक्षिण की ओर बढ़ीं।

अनुवादक : पूनम झा

कहानी

छल का दूसरा रूप

राधा कार्की

जब ठंड का समय आता है तो मन में अनेक कशमकश उभरने लगती हैं। कुछ समय पहले 'जमी हुई हवा को रज़ाई से निकालती हूँ' कहने पर रज़ाई को उठाने तक न देने वाले, 'हवा के झोंके को रोक दूँगा, तुम्हारे और मेरे बीच नहीं आने दूँगा' कहने वाले इंसान ने कितनी जल्दी खाई खोद दी और नामोनिशान तक न छोड़ते हुए उस खाई को भर भी दिया। सालाना आने वाली ठंड यही कहानी दोहराती है। 'गैस भी ठंडे को गर्म बना देती है, तुम रज़ाई मत उठाओ।' आज सिर्फ़ उस बेतुके इंसान की बातें ही कान में गूँजती रहती हैं। मैं टालने की कोशिश करती हूँ उसके काले चेहरे को, फ़िर भी जाड़ों के साथ चिपककर पास आता रहता है।

तराई के पूर्वी हिस्से के किसी गाँव में बद्रीमाया नाम की युवती रहती थी। वह बड़ी ही शालीन थी। कभी किसी पर कड़ककर बोले होने या गुस्सा होकर कोई काम करने में मुश्किल माने होने की याद नहीं है घर के लोगों या समाज को। उसकी शादी उस पार के गाँव के राकेश नाम के युवक के साथ हुई थी।

समय बीतते भी देर नहीं लगती। उसके और राकेश के विवाह के बंधन में बँधे हुए भी पाँच साल बीत चुके हैं। उनका दांपत्य भी अच्छी तरह ही बीत रहा था, लेकिन बाल-बच्चे नहीं थे। राकेश की माँ गाँव भर में– "बद्रीमाया बच्चे पैदा नहीं कर सकी, अब राकेश की दूसरी शादी कराए बिना नहीं होगा।" कहकर हल्ला मचाने लगीं। बद्रीमाया सास की ऐसी बातें सुनकर रोती हुई राकेश को कहती– "मैं कितनी अभागन हूँ, आपको एक भी खुशी नहीं दे सकी।" राकेश बद्रीमाया को समझाता– "माँ के कहने से क्या होता है ? मैं तुम्हारा हूँ और तुम्हारा ही रहूँगा। बच्चे नहीं हुए तो क्या हुआ ? जिनके बच्चे हैं, उन्होंने ने ही क्या हासिल कर लिया है ? वैसे भी हमारी शादी हुए दिन ही कितने हुए हैं ? बाद में हो भी सकता है, अगर नहीं भी हुआ तो मैं दुखी नहीं होऊँगा, हाँ, अगर तुम दुखी हुई तो ज़रूर दुख होगा मुझे।"

बद्रीमाया राकेश की बातों से खुद को भाग्यशाली समझते हुए घर के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी निभाने में जुट जाती थी। समय बीतता जा रहा था। बद्रीमाया आशावादी थी। वह सोचती कि बोया हुआ धान एक दिन ज़रूर फलेगा।

अंधेरा जवान हो चला था, बद्रीमाया आसमान में तारों को निहार रही थी। अचानक जिस तारे को वह देख रही थी, उसे बादल ने ढक दिया।

राकेश– "क्या देख रही हो ?"

"मेरे तारे को बादल ने ढक दिया।"

"लो, तुम्हारे तारे ने बादल को खदेड़ दिया।"

"कहाँ ? मुझे भी दिखाइए न।"

बद्रीमाया आसमान को गौर से देखने लगी, वहाँ तारे विजय जुलूस निकाले हुए चल रहे थे। बद्रीमाया ने लंबी निच्छ्वास के साथ कहा– "आप ने उस बादल को खदेड़ा, मैं बहुत खुश हूँ।"

राकेश ने बद्रीमाया को प्यार से सहलाते हुए कहा– "उफ्! अब गाँव में कितना रहा जाए ? फ़िर तुम्हें तरह-तरह की तानाकशी चुभती रहेगी। चलो, शहर चलते हैं, काठमांडू, वहीं कोई काम करके रह लेंगे।"

राकेश की बातों से बद्रीमाया फूले न समाई।

कल होकर मन भर खुशी और आकांक्षाओं की गठरी बाँधे हुए बद्रीमाया राकेश के पीछे लग गई। काठमांडू आने के कुछ दिनों में ही राकेश को ट्रेवल एजेंसी में काम मिल गया। बद्रीमाया भी गार्मेंट में काम करने लगी। उनके दिन अच्छी तरह गुज़रने

लगे। दोनों की कमाई में से बद्रीमाया की आमदनी से घर का खर्च चलता था और राकेश के कमाए पैसे बैंक में जमा होते थे। चूँकि राकेश ट्रेवल्स में काम करता था, इसलिए बद्रीमाया उसके कपड़े धोकर इस्त्री करके बखूबी सजाकर रख देती थी। कुछ महीने बिताकर नए कपड़े भी खरीद देती थी। बद्रीमाया के प्यार और देखभाल की वजह से राकेश बहुत हैंडसम और छैल-छबीला दिखने लगा था। राकेश के रूप और कद-काठी की तारीफ़ सभी करने लगे।

वैसे ऑफ़िस में काम करने वाले बहुत-से दोस्त थे लेकिन राकेश की सबसे अच्छी दोस्त थी अंजना। बहुत कम समय में ही उनकी आपस में बढ़िया बनने लगी थी। साथ-साथ काम करना, साथ-साथ लंच के लिए जाना और कहीं कोई खरीददारी करनी हुई तो राकेश अंजना को साथ लेकर जाता था। अंजना की हर पसंद उसे अच्छी लगने लगी थी।

बद्रीमाया पैसे कमाने के लिए दिन-रात मेहनत करती थी। सुबह नौ बजे काम पर निकलने के बाद शाम को घर लौटते वक्त भी काम हाथ में लेकर आती थी। रात के दस-ग्यारह बजे तक वह काम में व्यस्त रहती थी। वहीं राकेश आजकल समय मिलते ही सोच में डूबने लग जाता।

'बद्रीमाया गाँव की सामान्य पढ़ी-लिखी हुई लड़की, अंजना शहर में पैदा होकर बड़ी हुई। महँगे स्कूल में पढ़ी हुई, वह मुझसे ज़्यादा जानकार है फ़िर भी मुझे इतना पसंद करती है। उस दिन सर दर्द की वजह से ऑफ़िस न जाने पर कितनी उदास हुई थी! कह रही थी– आपके न होने पर तो दिन बिताना मुश्किल हो जाता है! मुझे भी कितनी प्यारी लगी थी वह बात! जब देखो तब वही बात कानों में गूँजती रहती है।

दूसरे दोस्त के यह कहने पर कि 'ऐ राकेश! क्या सोच रहे हो?' वह चौंक गया।

अंजना की नज़दीकी बद्रीमाया को दूर करती जा रही थी राकेश के मन से। अंजना उसके मन के भीतर बैठ चुकी थी।

'आखिर मुझे घर में भी तो दूसरी शादी करने के लिए कहा ही गया है। पोते को देखने की माँ की कितनी तमन्ना है। अंजना को अपने घर ले आया तो पूरा परिवार ही खुश हो जाएगा। मैं क्यों चुप बैठूँ? ऐसा मौका बार-बार नहीं मिलता। ऐसी ही बातें मन में सँजोए राकेश अंजना के और करीब होता गया।

आजकल राकेश रात को भी देर से घर लौटने लगा। आकर मुँह लटकाए बिस्तर पर लेट जाता।

बद्रीमाया– "क्या आपकी तबीयत ठीक नहीं है?– कहकर उसका माथा छूने जाती लेकिन वह बद्रीमाया के प्यार से और चिढ़ जाता। वह एकांत चाहता था ताकि दिन भर अंजना के साथ हुई बातों को याद कर करके मन ही मन आनंदित हो सके। बेचारी बद्रीमाया को क्या पता? वह कभी दूध में हॉर्लिक्स मिलाकर राकेश से पीने का अनुरोध करती तो कभी तौलिए से उसका माथा पोंछती।

"आपको काम को छोड़कर और किसी बात की फ़िक्र करने की ज़रूरत नहीं है! अपनी सेहत का भी खयाल तो रखना पड़ता है न। उतना मस्तमौला शरीर देखो तो कितना गल गया है। बस आँखें ही बाकी हैं। आज के बाद सुबह एक ग्लास दूध पीने के बाद ही उठने दूँगी।"

राकेश हाथ झकझोर देता है, बद्रीमाया के हाथ का दूध और हॉर्लिक्स की शीशी नीचे ज़मीन पर गिर जाते हैं। राकेश का यह बरताव देखकर बद्रीमाया का दिल भर आता है। गले में अटकी हुई साँस को रोकती हुई छत की तरफ़ देखने लगती है।

उफ्! इंसान कितनी जल्दी बदल जाता है! कल तक उतना ज़्यादा प्यार करने वाला पति आज उसकी बोल नहीं सुनना चाहता, चिढ़ जाता है। इतने साल बिताए हुए पल कितनी जल्दी भूल गया वह! कल-परसों पहचान हुई अंजना को याद करके बद्रीमाया से चिढ़ता है। स्वार्थी पति! मर्ज़ी हुई तो चाटने लगते हैं, गुस्सा आया तो दुत्कारने लगते हैं। बहाना ढूँढ़ते हैं बाहर निकलने का और नए आकार में रमने का।

राकेश अंजना को किस तरह खुश किया जा सकता है, इस ताक में रहने लगा। अंजना के कहे हुए हर एक शब्द का खयाल रखता। अंजना भी राकेश का साथ पाकर बहुत खुश थी। अब वह बस अंजना के सामने विवाह का प्रस्ताव रखने के मौके की तलाश में था।

अंजना जब छोटी थी तभी उसके माता-पिता एक हादसे में गुज़र चुके थे। माँ-बाप के गुज़रने के बाद वह खुद काम-काज करके गुज़ारा चलाती थी।

अंजना को पता नहीं था कि राकेश शादीशुदा है। राकेश ने भी नहीं बताया था।

राकेश किस तरह अंजना को अपना बनाया जाए और प्रस्ताव किया जाए, इस सोच में डूबने लगा। एक दिन मौका पाकर–

"अंजना, मैं तुम्हारे बारे में बहुत सोचने लगा हूँ।"

"क्या सोचने लगे हो ?"

"मैं तुम्हारे बिना जी नहीं सकता।"

"धत् ! क्या बच्चों की तरह बात कर रहे हो।"– कहकर अंजना ने मुस्कुरा दिया।

अंजना की मुस्कान को वह उसके प्रस्ताव को मिली स्वीकृति समझने लगा। एक ही पल में उसके मन में शहनाई गूँज उठी, ख्वाब में वह अंजना को डोली में चढ़ाकर अपने घर ले आया और अगले ही पल उसकी माँ नन्हे-से पोते को अपनी गोद में खिलाने लगी। तभी उसके दिमाग में एक शैतानी सूझ उपजी– 'इस सपने को पूरा करने के लिए एक खेल खेलना ही होगा।'

एक दिन राकेश ने बद्रीमाया से कहा– "कल अपने मैनेजर को खाने पर बुलाओ न, मैं भी उनसे परिचय कर लूँगा।"

अपने पति के वचन को न टाल सकने वाली बद्रीमाया ने मैनेजर को घर में खाने का न्योता दिया। मैनेजर भी अपनी स्टाफ़ के अनुरोध को स्वीकार कर बद्रीमाया के घर आए। बद्रीमाया ने शाकाहारी खाना बनाया। वे लोग कुछ घंटे राकेश का इंतज़ार करते रहे। नौ बजे तक भी राकेश के न आने पर– "बाद में कभी खाएँगे खाना, आज मैं चलता हूँ, आपके पति भी नहीं आए।" कहते हुए मैनेजर जाने लगे। बद्रीमाया ने मैनेजर को रोकती हुई– "सर आप खाइए न, उन्हें ऑफ़िस में काम से फुर्सत नहीं हुई होगी।"– कहकर मैनेजर के लिए खाना परोसा। मैनेजर ने एक-दो निवाले ही खाए होंगे कि राकेश दरवाज़े पर आकर कड़कने लगा– "तुम लोगों का यह क्या तरीका है। इतनी रात गए क्या गुल खिलाया जा रहा है ?"

बद्रीमाया– "खाना तो सात बजे ही तैयार हो गया था। सर ने आपका भी बहुत इंतज़ार किया। घर जाने में देरी होगी बोलकर हड़बड़ाने लगे थे तो मेरे ही अनुरोध पर अभी तुरंत खाने को बैठे हैं।"

वह और चिल्लाने लगा– "मैं सारी कहानी समझ गया। सिर्फ़ ऑफ़िस में ही रंगरलियाँ मनाना कम पड़ रहा था तो अब घर में भी शुरू हो गया ?"

राकेश की बातें सुनकर मैनेजर झट् से उठते हुए– "कैसे लोग हैं यार ? पागल !" कहकर चुपचाप चले गए। बद्रीमाया अवाक् रह गई। 'खुद खाने के लिए बुलाने को कहा था और खुद ऐसे अनावश्यक शब्द ! कैसे ऐसी गंदी सोच आई होगी ! इतने सालों तक एक शब्द भी बुरा न कहने वाले ने यह सब कैसे कह दिया ?'

राकेश का हाथ पकड़कर फ़िर से समझाने की कोशिश की बद्रीमाया ने लेकिन वह कुछ सुनने को तैयार न था। राकेश के इस व्यवहार ने उसका मन, दिल सब तोड़कर रख दिया। वह अपने वश में नहीं थी। रात भर बहुत सारी बातें सोचती रही। इतना ज़्यादा प्यार करने वाले से इस तरह विश्वासघात होगा, उसे यकीन ही नहीं हो रहा था। 'कुछ ही दिनों में तो राकेश का गुस्सा खत्म हो ही जाएगा। मैं कुछ दिन मायके से हो आती हूँ।' सोचकर वह निकल गई।

अपने नाटक के सफल होने पर खुश होते हुए राकेश ने बद्रीमाया के मायके जाने के दूसरे ही दिन अंजना को ब्याहकर ले आया।

अनुवादक : हिना झा

कहानी

एक सच्ची कहानी

राधेश्याम लेकाली

दादा हो दादा ....., माई हो माई .....।

दिल पिघला देने वाले रुदन और विलाप की आवाज़ से मेरी नींद खुल जाती है। वेदना से ओतप्रोत रुदन का चीत्कार और अधिक कर्कश होकर आता है। मैं खुद को रोक नहीं पाता और उठता हूँ, एक बार अपने बीमार दोस्त पर नज़र दौड़ाता हूँ, उसे सोया हुआ पाकर उस आवाज़ की तरफ़ दौड़ता हूँ।

करुण चीख बच्चों के वार्ड से आ रही है, इसलिए उसी वार्ड में प्रवेश करता हूँ। वहाँ बहुत-से बच्चे हैं। बीमार बच्चे, हाथ-पैर में पट्टी बँधे हुए, रुआँसे चेहरे वाले बच्चे। उन बच्चों के बीच एक लड़के को खोया-सा पड़ा हुआ देखता हूँ। ऐसा लगा मानो उसका चेहरा शिकायतों भरा पड़ा है। उस लड़के की बगल में बैठे हुए एक स्त्री और दूसरे पुरुष (संभवतः दंपति) एक-दूसरे का गला पकड़कर विरह से छटपटाते और ममतामय अश्रुबिंदु बिखेरते हुए छाती पीट पीटकर विलाप कर रहे थे।

"इकलौते बेटे को भला कैसे ले जा सके हे भगवान !"– कहकर विलाप कर रहे थे। मैं तो कुछ देर तक यों ही भौंचक्का बना रहा, समझाने के बहुत-से तरीके अपनाए मगर वहाँ ममता की ज्वारभाटा फूट पड़ी थी। बुढ़ापे में कदम रख चुके माँ-बाप की लाठी टूट चुकी थी। बेटे के लिए सँजोई हुई ममता टूटकर बिखर चुकी थी। सजाए हुए सपनों का महल ढह चुका था। कलेजे का टुकड़ा जीवन का इकलौता सहारा बेटा मरा था। और यही वजह है कि उनका करुण विलाप थमने का नाम नहीं ले रहा था।

नर्स मृतक बच्चे की बगल में खड़े उसके माँ-बाप को बाहर निकालने का विफल प्रयत्न कर रही थी। उसी वक्त गले में साँप की तरह स्टेथेस्कोप लटकाए भगवान शिव के अंदाज़ में एक डॉक्टर साहब प्रवेश करते हैं। मौन डॉक्टर साहब लाश और नर्स के दिए हुए कागज़ को देखते हैं, कुछ लिखते हैं और चुपचाप निकल जाते हैं। उसके बाद नर्स बड़ी बेपरवाही के साथ लाश को ढक देती है। मुझे डॉक्टर पर बड़ा गुस्सा आता है– मरीज के मर जाने के बाद क्या वह कफ़न देने आया था ?

वार्ड मैन आकर उस बेसहारे बूढ़े को पकड़कर ज़बरदस्ती बाहर ले जाता है। बेबस बूढ़ा प्रतिकार नहीं कर पाता और न ही इसकी हिम्मत ही जुटा पाता है। मैं लाचार उस मृतक बच्चे के पिता को समझाने की कोशिश करता हूँ। मैं उन्हें किसी तरह उनकी पत्नी के पास ले आता हूँ जहाँ वह छाती पीट पीटकर फूट फूटकर रो रही है। वहाँ उन्हें समझाने और भी मरीजों के परिजन पहुँच जाते हैं। मेरा मन नहीं मानता और मैं वापस मृतक बच्चे के पास पहुँचता हूँ सफ़ेद कपड़े से ढकी हुई बच्चे की लाश को देखता हूँ और नर्स के कमरे की तरफ़ जाता हूँ। दो नर्सों को आपस में बातें करते हुए पाकर मैं थोड़ा बगल हो जाता हूँ। वे कह रही थीं– "मैंने पहले ही कहा था कि अगर ऑपरेशन नहीं किया गया तो बच्चा मर जाएगा।"

"आखिर सब कुछ तो था ही, अगर डॉक्टर ने एक-दो घंटे न सोकर ऑपरेशन कर दिया होता तो बच्चा नहीं मरता।"

"असल में बच्चा तो डॉक्टर की लापरवाही से ही मरा है। रात की ड्यूटी ले ली और घर जाकर बीवी के साथ सो गए, उफ् !"

"आए दिन मरीज मरते रहते हैं। इस वजह से हॉस्पिटल की ही बदनामी होती है। भई, हम नर्स भला क्या कर सकती हैं, जब डॉक्टर ही कोई मतलब नहीं रखता।"

उन नर्सों को यह पता नहीं था कि मैं उनकी

बातें सुन रहा हूँ। और असलियत जान लेने के बाद मैं अपने मरीज दोस्त के कमरे में आ गया। इस घटना से तकलीफ़ तो हुई मगर क्या करूँ ? मुझमें वह ताकत नहीं जो डॉक्टर पर लगाम लगा सके। मैं बस देश की चिकित्सा व्यवस्था के व्यावहारिक पक्ष से चिढ़ता हूँ और अफ़सोस जताते हुए लंबी निच्छ्वास छोड़ता हूँ।

बाहर से वही करुण विलाप सुनाई दे रहा है– 'दादा हो दादा....., माई हो माई.....!'

अनुवादक : मुकेश कुमार मिश्र

कहानी

रनियाँ की पंचायती

राप्रउ पोखरेल

सिर्फ तरह वर्ष की रनियाँ को दोंगा कराकर देवा ने लखौरी से अपने घर लाया। छोटी उम्र में टुअर हुए देवा को उसकी माँ लेउराली ने धनी-मनी गृहस्थों के घरों में चुल्हा-चौका-बरतन और मेहनत-मजदूरी करके बड़े ही दुःख-तकलीफ से पाला था। देवा के पास जोतने के लिए कोई जग्गा-जमीन नहीं थी। लगभग नौ कट्ठा के बराबर बटैया में जोता हुआ है। खेत की आधी बाली वह मालिक को देता है। लगभग चार महीने का घर-खर्च उससे चल पाता है। बाकी के आठ महीने तो माँ बेटे दोनों की मेहनज मजदूरी से कटते थे। अब जब रनियाँ भी आ गई, तो खानेवाला एक आदमी का और इजाफा हो गया।

नहीं, यह ठीक नहीं है। ऐसा नहीं होना चाहिए। कनियाँ (पत्नी) शारीरिक दृष्टि से अभी पूरी तरह ठीक-ठाक नहीं है। अभी तो उसके खाने-पीने और मौज-मस्ती करने की उम्र है। उसने तीन-चार वर्ष तक आसाम की ओर जाकर काम करने का विचार किया और इसके बारे में अपनी माँ से कहा। देवा की बातें सुनकर माँ घबड़ा-सी गई। उसने मन ही मन विचार किया-'अभी-अभी खिली हुई कली-सी अपनी जवान बीवी को छोड़कर इस तरह परदेश जाना क्या ठीक होगा ?' माँ ने फिर दूसरे तरीके सोचा,-' क्या फर्क पड़ता है,.....घर तो चलेगा। गाँव के और लोग भी तो आसाम और कोहिमा की ओर जा ही रहे हैं। उसने मन बना लिया है, जाए। यहाँ चाहे जितना भी मर-खप लो, बस पेटवे कि लोटवे.... आदि बातों पर उसने विचार किया और अपने बेटे को नहीं जाने के लिए जोर नहीं किया।

पत्नी को घर में आए चार-पाँच महीने हो गए थे लेकिन वह उससे ठीक ढंग से बोल-बतिया भी नहीं पाया था देवा ने, साथ उठने-बैठने की बात तो बहुत दूर की है। पत्नी के साथ सोने का वक्त तो जल्दी मिलता ही नहीं ...कहाँ मिलना ! आधी रात में चोर पाँव चुपके से पत्नी के पास जाना होता था। बाकी के समय अपने मालिक के बैठक घर (जो खुला होता था) में सोता था। मुहल्ले के दो चार विवाहित लड़के भी वहाँ सोया करते थे। वह बैठक घर गृहस्थ मालिक के होने के बाद भी वह पड़ोस के सामाजिक जीवन से जुड़ा हुआ था, एक तरह से साझा रूप से।

देवा का बाहर जाने का तय किया हुआ दिन भी आ गया। माँ ने अपने बेटे को गले लगाया और रो-धोकर विदा किया। उस वक्त देवा ने अपनी बीवी रनियाँ का घूँघट की ओट में सिसकने का अनुभव किया। उसका मन था कि वह अपनी बीवी रनियाँ को बाँहों में भरकर प्यार करे लेकिन वह ऐसा कर नहीं सका। बड़े बुजुर्गों के सामने ऐसा करना मर्यादा के खिलाफ था। एक बार बीवी की ओर देखा। 'तुम लोग ठीक से रहना, अपना देखभाल करना।' हालाँकि इतने शब्द उसने अपनी माँ की ओर देखकर कहा था, लेकिन वास्तविकता यह थी कि यह उसने अपनी बीवी के लिए कहा था। वह घर से विदा होकर रेल चढ़ने के लिए परवाहा स्टेशन की ओर चला।

देवा के जाने के बाद रनियाँ उदास रहने लगी। वह उस दिन उदास रही। धूप पश्चिम दिशा की ओर ढलने के बाद वह घास-पात करने के लिए छैंटी लेकर धीरे-धीरे वन की ओर (आम, सिसो इत्यादि का वगीचा) चली। वहाँ उसका मन खोया-खोया-सा रहा। लगा, कुछ खो गया है। वह कभी-कभी एकांत और मौका पाकर देवा के साथ घूँघट हटाकर थोड़ा बहुत बात कर लिया करती थी। लेकिन पति-पत्नी होने के बावजूद व्यवहारिक सह जीवन का संबंध नहीं कायम हो सका था। लेकिन इतना से ही देवा के प्रति

उसका मोह और दिल की गहराई से लगाव हो गया था। यह बात उसे भी आज ही पता चली थी। आज ही उसका दिल ने इस बात का एहसास किया था।

दिन बीतने लगे। देवा की स्मृति की वेदना भी धीरे-धीरे कम होने लगी। देवा की माँ मालिक के यहाँ चुल्हा-चौका करती थी। खेतीपाती के मौसम में रोपनी कटनी जैसे कामों में लगती थी और उसके बनिहारी से दो चार महीने का घर खर्च गरज टल जाता था।

रनियाँ अगन पुस के धान और चैत वैशाख के गहुँ के कटनी में जाती थी। बाकी का समय चुल्हा-चौका, लीप-पोत, नादी-पानी, गोहड़ा-चिपड़ी, घर-पतवार करते बीत जाता था। एक बकरी और दो खसी बटैया में पाल रखा था।

गत वर्ष इसी कात्तिक में देवा आसाम गया था, एक वर्ष हो गया है। रनियाँ का शरीर भी गदराने लगा है। कभी–कभी उसके शरीर के अन्दर कुछ न कुछ होने जैसा एहसास भी होने लगा है। एक बार महिंदर वन की ओर अपनी बहन फुलो अर्थात् फुलेसरी को बुलाने के लिए गया था। उसने उसी वक्त पहली बार रनियाँ को ढंग से देखा था। पड़ोस में ही उसका घर था, फिर भी वह रनियाँ को इस तरह नहीं देख पाता था। क्योंकि वह हर वक्त घूँघट में ही रहा करती थी। साँवला रंग होने के बावजूद उसकी बड़ी-बड़ी आँखें, गठा हुआ बदन ....बहुत सुन्दर और आकर्षक लगी। आँखें चार हुईं। अचानक रनियाँ को जाने क्या याद हो आया, उसने अपना चेहरा घूँघट में छुपा लिया। महिन्दर कुछ देर के लिए अवाक् रह गया। मगर अन्दर ही अन्दर उसे अच्छा लगा। लेकिन शायद जल्दीबाजी में था। उसकी बहन फुलो दो-चार सौ गज की दूरी पर सुखे हुए पत्ते बिटोर रही थी। उसकी माँ ने घर जल्द बुला लाने को कहा था। महिन्दर फुलो को लेकर घर लौट गया।

महिन्दर की पत्नी बच्चा जनने के कम में पीड़ा बर्दाश्त न कर पाने से दो दिन की प्रसव वेदना की वजह से मर गई थी। दाई बच्चा नहीं निकाल पाई थी। वैसे भी वह पीली हो चुकी थी, मानो शरीर में खून ही नहीं था। एक दो दिनों तक रोना-धोना चला, उसके बाद धीरे-धीरे महिन्दर की गृहस्थी सामान्य हो गई।

महिन्दर की पत्नी कटैयावाली का मरा हुआ २०-२५ दिन हो गए थे। एक दिन दोपहर में वह फुलो को ढूँढ़ने के बहाने फुलवारी में पहुँचा। फुलो न जाने क्यों आज वहाँ नहीं आई थी। रनियाँ अपनी ही धुन में थी। बाँस के फाटा में लकसी लगाकर सुखी हुई डालियाँ तोड़कर नीचे गिरा रही थी। एक डाली थोड़ी ऊपर थी, इसलिए उसकी लकसी पहुँच नहीं पाई। वह एक छोटा झटहा चलाकर नीचे गिराने की कूद-कूदकर करती थी लेकिन फिर भी वह सफल नहीं हो पाती थी। पसीना-पसीना हो गई थी। सर से आँचल कब का न गिरकर बदन पर लटक रहा था। सर और गर्दन खुली नजर आ रही थी। छाती भी चोली के अन्दर नजर आ रही थी। महिन्दर कुछ देर यूँ ही चोर नजर से देखता रहा और रनियाँ को ताड़ता रहा। रनियाँ को यह पता ही न था कि वहाँ कोई पुरुष है।

शायद महिन्दर को खुद ही अच्छा नहीं लगा होगा। गाँवों में मर्यादा का बहुत ज्यादा ख्याल रखा जाता है। वैसे भी वह किसी महिला के साथ छेड़कानी वगैरह नहीं करता था। उसने एकाध बार खाँसा। जबकि उसे खाँसी नहीं आई थी। लेकिन पर्दा में रही महिलाओं को यह संकेत करने का प्रचलन था कि कोई पुरुष आ रहा है।

रनियाँ जब मर्दानी खाँसी सुनी तो वैसे ही सर्तक हो गई जैसे किसी बिच्छी के काटने पर आदमी छिलमिलाकर सर्तक हो जाता है। उसने यह विचार किए बिना कि कौन आया है, फटाफट लटकी हुई साड़ी से अपना सिर ढका और चेहरे को थोड़ा उघार ही रखा। उसके बाद उस पुरुष की ओर देखा। हालाँकि कोई खास परिचय नहीं था, लेकिन वह उसे पहचानती जरूर थी। उसको यह याद भी हो आया कि देवा ने कभी कहा था कि वह उसके घर की रखवाली कर दिया करता है। एक पल के लिए दोनों की आँखें चार हुईं। महिन्दर ने यह पूछते हुए उसे टटोला कि इधर फुलो नहीं आई है क्या ? रनियाँ ने थोड़ी देर तो ऐसा व्यवहार किया मानो उसने कुछ सुना ही न हो। कभी भी नहीं बोलनेवाले पुरुष से बातें करने पर बहुओं के ऊपर छिनाल होने का आरोप लगने की सम्भावना हो सकती थी। यह भी डर था कि अगर किसी ने देख ले तो जाने क्या कहे। रनियाँ का मन आशंकित हुआ।

जब महिन्दर ने दोबारा फुलो के उधर आने के बारे में पूछा तो उसने अपने को थोड़ा संयत किया।

उसने खुद को हिरन की तरह चौकना करते हुए अपनी नजरें चारो तरफ दौड़ाई। जब उसने देखा कि वहाँ तीसरा कोई व्यक्ति नहीं है तो अपना सिर 'ना' में हिलाकार कहा कि उसने फुलो को नहीं देखा। महिन्दर ने एकांत देखकर कहा,-' लाओ, मैं सुखी डालियाँ नीचे तोड़ गिरा देता हूँ।' और उसकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा किए वगैर आम के पेड़ पर चढ़ गया और सुखी हुई कई डालियों को तोड़कर नीचे गिरा दिया।

रनियाँ मन ही मन प्रसन्न हुई। जब तक महिन्दर सुखी हुई डालियाँ गिराया, वह वहीं खड़ी रही। आज तो आसानी से और समय रहते और दिनों के अपेक्षा ज्यादा लकड़ियाँ एकत्रित हो गई थीं। महिन्दर पेड़ से नीचाा उतरा। कुछ देर वह जलावन एकट्ठा करने के हाव-भाव देखता रहा। उसके बाद -' अच्छा तो मैं चलता हूँ ' कहकर उसकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा किए वगैर जिधर से आया था, उधर चला गया। सच बात तो यह थी कि वह जानता था कि वहाँ फुलो नहीं है, केवल रनियाँ है और वह जलावन, खर पतवार बिटोर रही है। वह जानबूझकर रनियाँ से भेंट करने और बातें करने के लिए आया था।

महिन्दर के घर में उसकी माँ और और बहन फुलो थी। उसके विधुर होने का तीन चार महीने हो गए थे। इस बीच में उसकी दूसरी शादी की बात एकाध जगह चली भी थी। लेकिन उसका मन इस बात को लेकर नहीं माना था कि जब वह खुद पच्चीस वर्ष का है तो किसी ६-७ वर्ष की कन्या के साथ कैसे शादी कर ले। शादी करने के बाद भी ६-७ वर्ष यानि कि उसके वय होने तक दोंगा के लिए इन्तजार करना ही होगा। अपनी जात बयादर की लड़कियाँ तो १० वर्ष की उम्र होते होते शादी कर चुकी होती हैं। उमरदराज और विधुर को या तो छोटी उम्र की बालिका के साथ शादी करनी पड़ती है या फिर किसी विधवा या पति से पीड़ित होकर मायके में रह रही किसी औरत को बहला फुसलाकर भगाकर ले आना पड़ता है। उसके बदले में उसे उसके पहले पति को शादी का खर्च देकर समझा-बूझा देना पड़ता है। वरना जात समाज में सजा भोगनी पड़ सकती है। अब कोई गूँगी, बहरी, लंगड़ी या शारीरिक खोट हुई , बिन व्याही लड़की मिल जाय तो बात कुछ और है। इन सारी परिस्थितियों पर विचार करने पर परदेश गये किसी मर्द के जवान पत्नी के ऊपर आँखें लगाना स्वाभाविक था।

और फिर देवा ने तो परदेश जाने के पहले महिन्दर को अपने घर की रखवाली करने के लिए कहा भी था। वह इस वक्त यह बात भी याद करने लगा। इसलिए देवा की माँ से मिलने, उन लोगों की हाल खबर और दुःख तकलीफ के बारे में जानने-बुझने के लिए महिन्दर का उस घर में आना- जाना थोड़ा ज्यादा ही बढ़ गया। रनियाँ से मिलने के लिए वह फुलवारी की ओर दो तीन दिनों के अन्तराल में जाया ही करता था। पहले-पहले दुबली-पतली बालिका-सी नजर आनेवाली रनियाँ अब तो पूरी मस्त जवान नजर आती है। रनियाँ और महिन्दर दोनों को ऐसा महसूस होने लगा कि उन लागों के बीच गहरा प्रेम हो गया है। गाँव-घर में इस तरह की बातें ज्यादा देर छिपी नहीं रहती। पलक झपकते जंगली आग की तरह फैल जाती है। क्योंकि गाँव-घर में ध्यान देनेवालों की कमी नहीं होती। गाँव के लोग उन लोगों के छिनालपन की बातें करने लगे। गाँव में यह बात भी धीरे-धीरे की जाने लगी कि रनियाँ पेट से है। गाँव के बड़े बुजुर्ग टिप्पणियाँ करने लगे,- ' क्या जमाना आ गया है ,पूरा कलियुग ही आ गया है। बेटी बहुएँ अब सुरक्षित नहीं रह गईं। पूरा अँधेर छा गया है। क्या हुआ तो ? बेचारी दो वर्ष से अपनी गदराई जवानी और उम्र को लेकर पति की राह देख रही है। उसके पति का कुछ अता-पता नहीं है। तो ऐसे आखिर कब तक रहे ? महिन्दर की बीवी भगवान को प्यारी हो चुकी है। बेचारा भला आदमी है, कमाता भी है। और अकेला है, आखिर क्या करे ? जैसी टिप्पणियाँ करनेवालों में युवाएँ भी थे।

आसाम के कोचवाड़ी, एक गाँव के धनी-मनी किसान के यहाँ देवा गाय के गोठ में काम करता था। खेतीपाती में भी खटना पड़ता था। एक तरह से उसे फुर्सद नहीं थी। सुबह पौ फटते ही वह काम में जुटता तो दिन भर कमरतोड़ काम करता रहता। शाम के वक्त खानपान हो जाने के बाद गोठ में ही बना काठ का मचाननुमा कमरे में आता था। उस वक्त जब कभी नींद नहीं लगती, तो अपने गाँव और अपनों के बारे में याद करने लगता था।

आज भी रात बहुत हो चुकी है। ग्यारह बज चुका है। नींद आँखों से कोसो दूर है। नींद और आँखों

में कोई सम्बन्ध नहीं जुट पाया है। घर की ओर की बातें ही मन में उठने लगीं। इधर आया हुआ दो-चार वर्ष हो गये। अब तो रनियाँ भी गदरा गई होगी। थोड़ा बहुत पैसा बचाकर रखा है। उससे लगभग पाँच कट्ठा जग्गा तो हो ही जाएगा। अब घर चलना चाहिए....! इस तरह का विचार मन में आने लगा।

रनियाँ वास्तव में गर्भवती हो गई है। महिन्दर ने अपनी माँ से सलाह की। करीब के चाचा से भी इस बारे में बात हुई, पूरी कहानी सुनाई गई। थोड़े दिन के बाद उसने रनियाँ को अपने घर ले आया। इधर देवा की माँ दो-चार दिनों तक रोई, चिल्लाई, महिन्दर को जाने क्या-क्या कही, भँडुवा, गंदा आदि कही, उसकी माँ को डायन कही। रनियाँ को भी उढ़री, वेश्या और इसी तरह की गालियाँ दी, गीत की धुन में सभी को सरापी। पाँच-सात दिनों के बाद धीरे-धीरे सबकुछ सामान्य होने लगा।

रनियाँ और महिन्दर के इस कांड के ६-७ महीनों के बाद देवा गाँव वापस लौटा। रेलवे स्टेशन से सरासर घर पहुँचा। उसने वहाँ किसी को भी नहीं देखा। फुस से बने हुए एक दो छोटे-छोटे घर निर्जन उजाड़-से दीख रहे थे। दो कुत्ते ओसारा में इस तरह सुते हुए थे मानो वे घर की रखवाली कर रहे हों। देवा को देखते ही फटाक से उठे और जोर-जो से अपनी पूँछ हिलाने और भोंकने लगे।

देवा ने उन कुत्तों का डाँटा। कुत्ते कुछ पल के लिए थथम जरूर गये, मगर भोंकना नहीं छोड़ा। घर की हालत देखकर वह अचम्भित हुआ और दुःखी भी। रनियाँ कहाँ चली गई ? माँ को तो होना चाहिए ? वह भी कहाँ चली गई ? ऐसा लग रहा था कि वहाँ बहुत दिनों से कोई नहीं रहता वगैरह नहीं है। बाँस के फाटक में अन्दर से किली लगाकर छोड़ा गया था। उसने उँगलियाँ घुसाकर फाटक को उघारा। अन्दर नीचे की जमीन भीगी-भीगी-सी नजर आ रही थी, चारो तरफ सफेदी नजर आ रही थी। टाट भी सिमसिमा चुका था,कहीं-कहीं। मिट्टी की हाँड़ी और आल्मुनियम के बरतन वगैर माजे काले पड़े हुए थे। एकदम कुचली मैली चादर साबे की डोरी से बनी खटिया पर सिकेड़ी पड़ी हुई थी। देवा का मन यह सब देखते ही रोने को हुआ।

जब महिन्दर ने रनियाँ को अपने घर ले गया तो देवा की माँ भी अपने मायके भाई के शरण में चली गई। देवा वहाँ से हवा की तरह दौड़ता हुआ महिन्दर के घर पहुँचा। ओसारा में बैठी रनिया लगभग सात महिने की एक बच्ची को दूध पिला रही थी। यह देखते ही देवा सबकुछ समझ गया। कुछ पल के लिए तो उसका दम भी फुल गया। लंबी सांस ली उसने। उस वक्त उस घर में कोई नहीं था। उसने रनियाँ को अनाप-सनाप कहा, गाली दी। रनियाँ अपना सिर घूँघट में छुपाई मगर उसे देखती हुई सब सुनती रही। देवा अचानक मूड़कर वहाँ से चला भी गया। गुस्से की आग में वह जल रहा था, थर-थर काँप रहा था।

जब वह आसाम से घर लौट रहा था तो रेल की यात्रा में वह ज्यादातर रनियाँ के बारे में ही सोचता आया था। वैसे गाँव, घर, दोस्त यार भी उसे याद आते थे। सुनहरे भविष्य की अनेक तरह की कल्पना करते हुए वह दो दिन और दो रात की यात्रा तय करके घर आया हुआ था। लेकिन वहाँ पहुँचे और घर की हालत देखते ही कटे हुए पेड़ की तरह गिर गया था। ऐसा लग रहा था कि उसके शरीर में खून ही नहीं है।

वह सोचता है कि 'अब क्या किया जाय ?' कुछ देर सोचता है, फिर हकीकत की दुनिया में लौटता है। उसे कुछ समझ में नहीं आता। उसका माथा चक्कराता है। आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है। देवा मन ही मन विचार करता है, खुद से बातें करता है,-'जिसके ऊपर भरोसा करके माँ और अबोध पत्नी के साथ-साथ घर द्वार छोड़कर गया हुआ था, उसी दोस्त महिन्दर ने पीठ में छुरा घोंप दिया। वह छिनाल भी उसी के पीछे हो ली। थोड़ा भी धैर्य नहीं रखा। गलती अपनी ही है। दुनिया के व्यवहार से अनजान एक जवान यौवना कैसे अकेली रह सकती है ? एकदम जिगरी दोस्त महिन्दर के ऊपर भरोसा किया, और वही चोट्टा निकल गया। केवल मुँह में राम-राम, बगल में तो छुरी ही रखी है उसने।

कहा जाता है कि सयम हर मर्ज की दवा है, सभी घाव समय से भर जाते हैं। लेकिन देवा के साथ ऐसा कुछ नहीं हुआ- मन की बेचैनी और बढ़ती गई। उसने सोचा कि नहीं ऐसा नहीं होना चाहिए। अगर खामोश रहा तो अपना जहाज ही डूब जाएगा। गाँव के जात, समाज और भर भले आदमी से सलाह मशवरा किया और ८-१० लोगों का एक पंचायत

बुलाया। गाँव में कभी कोई छोटा-मोटा झगड़ा होता था या कोई पारिवारिक समस्याएँ आती थीं; तो यही जात समाज के पंचायत में उसका फैसला होता था और पंचायत का फैसला पक्ष और विपक्ष दोनों को मंजूर होता था। केवल हत्या, डकैती जैसे बड़े अपराध ही अदालत तक पहुँचते थे। अड्डा अदालत की दौड़ दगाने का अर्थ पूर्व जन्म के पाप की सजा समझी जाती थी, इसी तरह का विश्वास था।

गाँव के प्रायः पंचायती में बुधन ठाकुर और अयोधी मण्डल सर्वसम्मत पंच हुआ करते थे। दोनों प्रौढ़, धीर, गंभीर और वजदार बातें करते थे। उनकी राय और तर्क गाँव के लोग बड़े ध्यान देकर सुनते थे। आज देवा ने यह पंचायत बुलाई थी। पंचायत करने की जगह वही धनी गृहस्थ मालिक का बैठक बंगला थी। वैसे गाँव के २०-२५ लोग थे, लेकिन वास्तविक पंच वही ६-७ लोग थे।

बुधन ने देवा से कहा,-' चलो ! बताओ , तुमने हमें यहाँ क्यो बुलाया है ? अपनी पीर समस्या जो कुछ भी है, खुलकर बताओ ? देवा की समस्या तो वहाँ उपस्थित सारे पंचों को पता थी। लेकिन पंच उसके मुँह से सुनना चाहते थे। सिर झुकाकर बैठा हुआ देवा ने बुधन ठाकुर की बात सुनी। कुछ पल कुछ सोचा। सिर थोड़े ऊपर की ओर उठाया , एक दो बार हलका खाँसा और गले को साफ किया। कुछ गंभीर हुआ और बोलना शुरु किया। लेकिन उसने अपनी घटना का विवरण नहीं सुनाया। उसने पंचों को जो बातें कही थी, वह कुछ इस तरह थी,-'मैंने अपने आँगन में एक सहजन की लत्ती लगाई थी। काम की वजह से विदेश जाने के समय अपने एक भरोसेमंद दोस्त को उसकी देखभाल करने को कहा और विदेश चला गया। जब मैं परदेश से लौटा तो देखता क्या हूँ कि मेरे लगाई हुई सहजन की लत्ती पड़ोसी के आँगन में चली गई है। उसमें सुहजन लगा हुआ है। पड़ोसी का कहना है कि वह सहजन की लत्ती और सहजन उसी का है। आप पंच माई बाप, अब यह इन्साफ कर दें कि वह लत्ती और उसका फल किसका हुआ ? मेरा है या पड़ोसी का ?

उसकी इस घुमावरेदार भाषा के विषयवस्तु को वहाँ जितने लोगों ने सुना, सभी समझ गए। गाँव जवार की जगह में हर कोई एक दूसरे के बारे में जानता-समझता रहता है। आज किसके घर में चुल्हा नहीं जला, या किसके घर में आज क्या सब्जी बनी, या आलू के चोखा से काम चला लिया गया जैसी छोटी-मोटी बातों की खबर पड़ोसियों को रहा करती थी। रनियाँ और महिन्दर की बात तो वैसे भी जग जाहिर हो चुकी थी।

देवा की बातें सभी ने सुना। पंचों ने भी ध्यान देकर सुना। कुछ देर कोई किसी से बात नहीं की। कुछ पल तो वातावरण निस्तब्ध हो गया। पंचों में से ही लखना ने ठाकुर की ओर देखते हुए कहा,-' चलिए मौसाजी ! आप सभी की बात समझते हैं, किसी का भी दिल न दुखे, इस बात का फैसला कर दीजिए। आपके फैसले सभी को मंजूर हुआ करते हैं। किसी को कोई शिकायत नहीं होती। आज भी कोई आपके फैसले के खिलाफ नहीं जाएगा।

वहाँ जितने लोग उपस्थित थे, सभी के दिल में यही बात उमड़-धुमड़ कर रही थी कि जिसके ऊपर देवा ने विश्वास किया था उसी व्यक्ति महिन्दर ने उसकी बीवी को बहला-फुसलाकर अपनी बीवी बना लिया। देवा के साथ अन्याय तो हुआ ही है।

हालाँकि लखना ने बुधन को बोलने को कहा था, फिर भी वह चुप ही था। वहाँ जितने लोग हाजिर थे, उन सभी में अयोधी मण्डल सबसे ज्यादा उम्रदराज और परिपक्व था। उसने एक बार खाँस कर गला साफ किया। उसके ऐसा करने के बाद सभी ने यह अंदाज लगाया कि आज का फैसला अयोधी काका ही करेंगे।

अयोधी देवा की ओर घूमकर उसी से कहा,-' तुम्हारे कथन के अनुसार तुम ने अपने घर में सहजन की लत्ती लगाई। वह लत्ती बड़ी होकर दूसरे के आँगन में चली गई। उसमें फल भी लगा। अब तुमने यह पूछा है कि वह फल किसका होगा। मैंने जो जाना समझा वह यह है कि तुमने लत्ती तो अपने घर में ही लगाई। मगर जब तुम नहीं थे, वह लत्ती पड़ोसी के आँगन में चली गई जहाँ फल लगा। ऐसी स्थिति में तुम अपनी लत्ती अपनी ओर खींचो। फल अगर उधर गिर गया तो, उसी का होगा। लेकिन फल उधर नहीं गिरा और लत्ती के साथ आ गया तो तेरा होगा। कहिए इसमें किसी को कुछ कहना है ? ' इतना कहकर अयोधी ने एक बार चारो तरफ देखा और चुप हो गया।

कुछ देर वहाँ एक आपस में कानाफुसी हुई , मगर किसी ने उसमें कुछ जोड़ घटाव नहीं किया, पूछताछ नहीं की। बल्कि बहुतों ने ध्वनि मत में अपनी सहमति जताकर उस फैसले का समर्थन किया। हाँ, यह अलग बात है कि दो चार लोग गंभीर नजर आये। शायद उनका दिल ने इस फैसले को नामंजूर किया हो। एक एक करके सारे पंच और अन्य लोग वहाँ से चले गए, बैठक घर पूरा खाली हो गया।

देवा वहाँ से सीधे महिन्दर के घर गया। कुछ देर ओसारा में ही खड़ा रहा। एक दो बार खाँसा। शायद घर में महिन्दर नहीं था, वरना वह बाहर निकल कर देखता ही। हिम्मत करके देवा आँगन में गया। इसी बीच किसी औरत की आवाज सुनाई दी ,-' घर में कोई मर्द नहीं है, कौन है वहाँ ? 'यह आवाज रनिया की ही होनी चाहिए।' देवा ने अंदाज किया।

आँगन के ओसारा में रनियाँ ही थी बचिया को दूध पिला रही। कुछ देर तो वह अवाक् वहीं खड़े होकर उसे देखता रहा। और एक बारगी रनियाँ के करीब पहुँचकर उसकी बाँह पकड़ा। बचिया को छीनकर एक हाथ से अपनी छाती से चिपका लिया। उसके बाद रनियाँ की बाँह पकड़कर घसीटकर अपने साथ ले गया। बच्ची डर गई। अँकमाल पाने के बाद भी नया आदमी देखकर डर होगी शायद। लेकिन उसने इस तरफ ध्यान ही नहीं दिया। उसका सारा ध्यान तो किसी तरह रनियाँ को घर लाने की ओर था। यह वह कर पाया। बाद में उसने बचिया को रनियाँ की गोद में डाल दिया।

रनियाँ डरकर कुछ नहीं बोल पा रही थी। अन्दर प्रवेश करके उसने रनियाँ को बड़े प्यार और शान्ति से समझाते हुए कहा,-'देखो रनियाँ ! यह घर तेरा ही है, तुम अपनी गृहस्थी सम्भालो। यह बनिया भी हमारी ही होगी। मैं तो तेरा पहला पति, अग्नि को साक्षी मानकर पंडित ने मंत्र पढ़कर हमें पति-पत्नी बनाया। यह बंधन वैसे ही कैसे टूट जाएगा ? यदि टूटता है तो भगवान हमें माफ नहीं करेंगे, सीधे नर्क मिलेगा।' और आगे कहा,-'बचिया का क्या नाम रखा है तुमने ? मैं तेरी खातिर ही कमाने के लिए दूर देश गया। वहाँ बहुत ही दुःख तकलीफ सहा और मेहनत करके रहा। यहाँ तुम्हे भी अकेले रहने में मन नहीं लगा होगा। मेरा भी तो वहाँ अकेले रहने में कहाँ मन लग रहा था। अब जो हुआ सो हुआ, भूल जा। मैं भी अपने मन में कोई मैल नहीं रखूँगा। चार-पाँच कट्ठा जग्गा खरीदेंगे , मैंने कुछ रकम बचाकर रखी है। अपने ही जोत की खेतीपाती होगी।' उसने ऐसे ही कह सुनकर रनियाँ का मन जीतना चाहा।

सूर्य डूबने के समय महिन्दर घर आ पहुँचा। उसने अपने दोस्त बेचना से दोपहर में ही पंच के फैसला सुन लिया था। उसको इस बात पर थोड़ा भी विश्वास नहीं था कि रनियाँ देवा के साथ चली जाएगी। लेकिन बेचना की बात पर विश्वास नहीं कर पाना भी संभव नहीं था। जब वह घर में आया तो देखा कि उसकी माँ रो रही थी।

महिन्दर दिन भर काम करने की वजह से बहुत थक चुका था। दोपहर में किसी ने कलेवा भी नहीं पहुँचाया था। दोपहर में खा भी नहीं पाया था। उसके ऊपर वज्रपात ही हुआ था। ऐसे में खाने का मन भी कैसे करे भला ? बिना खाए-पिए ही उसकी रात जैसे-तैसे कटी। मन में अनेक विचार आते-जाते रहे। जैसे रनियाँ क्या कर रही होगी ? कहीं ऐसा तो नहीं कि वह देवा की बाँहों में मस्त होकर सो रही हो। मनटुटिया (छोटी बच्ची) कितना रोई होगी। वह राँड भी उसके साथ फटाफट पीछे चल दी ... तिरिया चरित्तर इसी को कहते हैं ... इसी तरह की सोच और चिंता में रात कट गई।

महिन्दर पौ फटते ही लोटा लेकर मैदान की ओर गया और कुछ दूर ही गया। उमगाँव वाले मेहमान का बैल पगहा तूड़ाकर धनौजीवाला के खेसारी में पहुँचा हुआ था। उसे भगाने के बारे में भी नहीं सोच। उसके ऊपर तो वैसे ही बड़ी समस्या आ पड़ी थी। उसने यह सपने में भी नहीं सोचा था कि देवा इतनी जल्दी आसाम से लौट आएगा। उसने तो देवा की चिट्ठी के जवाब में यही लिखकर भुटना के हाथों भेजा था कि रनियाँ अभी पूरी तरह से खिली नहीं है, कुछ दिन धिरज रखो। लेकिन वह चोट्टा देवा तो इस तरह अचानक ही आ गया।

वह यही सोचते-सोचते, भाँट के दातुन करते-करते हुए मैदान से दायें हाथ में लोटा लेकर लौटा गया। मालिक के कल पर हाथ मुँह धोया, काँध के गमछे से मुँह पोंछा। उसके बाद वह अपने एक दोस्त झोटेला के यहाँ चला गया। वैसे नाम तो उसका

फुलगेन है लेकिन बचपन में उसके बाल झोटिला होने से वह झोटेला नाम से ही परिचित हुआ। उसी से उसने सलाह माँगी।

उसे तो ऐसा लग रहा था कि उसकी जिन्दगी का जहाज ही डूब गया है। झोटेला ने उसे यह सलाह देते हुए कहा,-' तुम भी पंचायत बुलाओ।' उसे यह बात जची। थोड़ी-सी आशा भी हुई कि शायद कुछ हो जाए।

महिन्दर ने भी पंचायत बुलाई। पहले के ही पंच थे - एकाध जोड़ घटाव के अतिरिक्त। जब पंचों ने उसे बोलने को कहा तो उसने कुछ इस तरह अपनी बात रखी,-' पड़ोसी के आँगन से मेरे यहाँ कोंहड़ा की लत्ती आई। मैंने उसे पोसा-पाला। समय पर लत्ती खिल गई और उसमें फल भी लगा। लेकिन पड़ोसी ने उसपर अपना हक दावी किया। उसने कहा कि चूँकि लत्ती उसने लगाई थी इसलिए लत्ती उसकी है और उसमे लगा फल भी उसका है। हाँ मैं मानता हूँ कि लत्ती उसी ने लगाई। लेकिन जब लत्ती मेरे यहाँ आ गई और मैंने उसमे फल लगाया तो वह फल मेरा न होकर उसका कैसे हुआ ? आप लोग इसका फैसला कर दें।' इतना कहकर उसने अपनी बात को विराम दिया।

पंचों ने उसकी बात अच्छी तरह सुनी। कुछ देर विचार किया। राम सुबोध ने अयोधी के साथ राय-सलाह भी की। अयोधी ने सहमति में सिर हिलाया। उसको बाद राम सुबोध ने एक बार खकारकर खुद बोलने का संकेत दिया। उसने चारो तरफ नजरें दौड़ाईं। पंचायती सुनने के लिए वहाँ उपस्थित हुए सभी उसका फैसला सुनने का इन्तजार कर रहे थे।

राम सुबोध ने मुँह खोला,-'पड़ोसी की लगाई हुई कोंहड़े की लत्ती तेरे यहाँ आई, तुमने उसकी देखभाल की, उसमें कोंहड़ा फला। तुम्हारे आँगन में फला हुआ कोंहड़ा किसी दूसरे का नहीं हो सकता, वह तुम्हारा ही होगा, तुम्हारा ही है। यदि पड़ोसी ने ले भी गया है तो तुम अपना फल ला सकते हो।' इस तरह राम सुबोध ने अपना फैसला सुना दिया।

कुछ देर सभी चुप रहे। वहाँ उपस्थित लोगों में से एक ने फैसला ठीक है कहकर अपना समर्थन भी जताया। किसी और ने कोई प्रतिक्रिया जाहिर नहीं की। यह अर्थ लगाया गया कि फैसला में सभी की मंजूरी है। और इस तरह पंचायत उठ गई।

महिन्दर पंचायत का फैसला सुनते ही देवा के घर दौड़ते हुए गया। खर के टाट से घेरे हुए आँगन में कुछ देर खड़े होकर एक बार खाँसा और सीधे अन्दर चला गया। वहाँ देवा दिखाई दिया, लेकिन उसने देवा की परवाह नहीं की। ओसारा में रनियाँ खेसारी का साग चुन-विन रही थी। महिन्दर ने ऐसे-वैसे कुछ नहीं किया, ओसारा में गिरा हुए पानी में छप-छप करके खेल रही मनटुरिया को उठाया और सनसनाता हुआ बाहर निकल गया। बच्ची एक बार रोई, छटपटाई लेकिन महिन्दर के पास होने के चलते चुप हो गई।

महिन्दर अपनी बेटी मनटुरिया को बहुत लाढ़ करता था। उसने उसी के लिए खरीद कर लाये हुए मिट्टी के खिलौने खेलने को दिया ,-वह चुप हो गई। दादी अर्थात् महिन्दर की माँ ने उसे अपनी गोद में लेकर एक छोटा-सा गूड़ का टुकड़ा उसके नरम हाथ में रख दिया। महिन्दर ने सोचा था कि मैंने बचिया को उससे छीनकर लाया हूँ। अपने बछड़े के पीछे-पीछे आनेवाली गाय की तरह रनिया भी कैसे नहीं चली आएगी। लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ, रनिया पीछे-पीछे नहीं आई।

अपनी गोद में रही बेटी मनटुरिया को उसके ही सामने चितुवा की तरह झपट कर ले जाते हुए देखकर वह अवाक् हो गई थी। कुछ देर रोई-धोई और अपने भाग्य को धिक्कारने लगी। उसे चारो तरफ अंधेरा नजर आने लगा। बेटी ही थी, मगर थी तो उसकी ही कोख से जन्मी, उसके ही खून से बनी। फिर कैसे नेह न लगे, प्यार न उमड़े। बहुत ही बेचैनी हुई।

रनियाँ उस दिन भर रोई-चिल्लाई, बेचैनी में ही दिन बीता। रात में भी सो न सकी, जागती रही। देवा ने बार-बार सम्झाया, बहलाया-फुसलाया, सन्तान तो फिर जन्म लेगी, यह बात भी कहकर शान्त करने की कोशिश की। लेकिन वह अपने मन को समझा नहीं पाई। देवा के प्रति आक्रोश था। गाँव की बहू, घूँघट में रही नारी भला कर ही क्या सकती थी ? लेकिन यहाँ तो उसके दिल के टुकड़े को उससे अलग किया गया था।

अगले दिन पौ फटते ही वह उठी। उसने भी पंचायत कराने की हिम्मत की। देवा के साथ कल दिन भर बात नहीं की थी। सुबह होते ही रनियाँ ने देवा को गंभीर होकर कहा,-' मैं भी पंचायत बुलाऊँगी,

आज ही दोपहर में। तुम सभी को खबर कर दो, मैं बुधन काका के यहाँ जाऊँगी। वह चल भी दी।

किसी जवान बहू के द्वारा पंचायत का बुलाना इस गाँव में पहली बार हुआ था। लेकिन इस वक्त उसके बहू होने के शिष्टाचार के ऊपर मातृत्व के रसायन भारी पड़ा था। वह अनपढ़ थी लेकिन माँ थी और मातृत्व का आवेग तो ईश्वरीय गुण है। यही भावना उसको अभिप्रेरित कर रही थी।

देवा बहुत कम दुःखी नहीं था। लेकिन वह अपने कर्तव्य का निर्धारण नहीं कर पा रहा था। उसने रनियाँ के कहने के मुताबिक सभी के यहाँ जाकर पंचायत में आने के लिए आग्रह किया। घर में ही आ जाने के लिए आग्रह कर आया।

उधर रनियाँ सीधे बुधन काका के यहाँ पहुँची। उसने उससे अपनी सारी पीड़ा और समस्या सुनाई। बुधन की पत्नी से भी मुलाकात कर रो-रोकर अपनी सारी गाथा सुनाई। अपनी ही कोख से अपनी ही संतान को छीनकर ले जाने की बात कैसे सहे वह। अब ले जानेवाला उसका पिता ही क्यों न हो ! इस बात का रोना रोया। बुधन की पत्नी उसे प्यार करती थी। उसने यह कहकर कि 'सबकुछ ठीक हो जाएगा, अभी तुम जाओ, चिंता मत करो ' उसे आश्वस्त किया। बुधन ने भी हिम्मत दी। इतना सुनकर रनियाँ घर वापस लौटी और चुल्हा चौकी करने की लग गई।

जिन जिन लोगों को पंचायती करने के लिए बुलाया गया था, वे दोपहर के भोजन के बाद गुहस्थ के बैठक घर में एकत्रित हुए। अन्य दिनों की तूलना में आज कुछ ज्यादा ही लोग जम्मा हुए थे। रनियाँ घूँघट में खड़ी थी, बस उसके नाक और मुँह नजर आ रहा था। कुछ काँप भी रही थी। लोग अनेक तर्क कर रहे थे। माहौल अशान्त ही था। अयोधी और बुधन आगे रखी हुई एक चौकी पर बैठे हुए थे। रामलखन और भवना गोसाईं भी साथ ही में बैठे हुए थे। भवना ने सभी को चुप होकर बैठने के लिए कहा।

आँगन के बगल के कटहल के पेड़ की छाँव में मुहल्ले की काफी औरतें खड़ी हुई थीं। लगभग सभी के अन्दर कुतुहल था ,-' जाने पंच क्या पैसला सुनाए ?' उमगाँव वाला भी आया था, उसका यह ससुराल का गाँव था। वह मुगलनिया (भारतीय) होने के बावजूद यही इसी गाँव में घर बनाकर रह रहा था।

भवना ने बात शुरू की, -' आज हमें रनियाँ ने पंचायती करने के लिए बुलाया है। चलो रनियाँ, तुम अपनी पीड़ा, समस्या जो कुछ भी है , एकदम सही-सही, वगैर डरे, बिना कुछ छुपाए, बुधन काका, अयोधी मौसा और हम सभी के सामने बताओ, चलो पतोहू, बताओ।' अयोधी ने भी रनियाँ को अपनी बात कहने के लिए उत्साहित किया।

रनियाँ एक तरह से डरी हुई थी। दिल धक-धक जोर-जोर से धड़क रहा था। सांसे भी तेज हो गई थीं। वह समझ नहीं पा रही थी कि कैसे अपनी बात शुरू करे। लेकिन फिर भी बोलने का साहस किया। लेकिन यह क्या ? आवाज ही नहीं फूटी। राम लखन ने भी उसे उत्साहित किया। सभी की नजरें रनियाँ के ऊपर ही टिकी हुई थीं। देवा वही बगल में एक खम्भा की आड़ में इस तरह बैठा था कि भरसक कोई न देखे।

उस वक्त रनियाँ को अपनी बेटी मनटुरिया की याद आई। मातृत्व का वेग ने उसे साहस दिया। मन ही मन माँ दुर्गा की प्रार्थना की। अब वह पहले की रनियाँ नहीं रह गई थी। होठ और गला कँपाते हुए मगर दृढ़ होकर बोली,-' सभी मान्यजनों को मेरा करजोरी प्रणाम।' अपना घूँघट थोड़ा ऊपर की ओर सरकाई, ताकि मुँह और कपाल थोड़ा नजर आ जाए। उसके बाद रनियाँ ने अपनी बात कही,-'हे मान्यजन ! मेरे साथ बहुत ज्यादा अन्याय हुआ है। बात ऐसी है कि दूध मेरा,नदिया (मिट्टी की हाँड़ी) भी मेरी ही थी। मुझे दही जमाना था, लेकिन घर में जोरन नहीं था। मैंने पड़ोस से जोरन माँगकर दही जमाया। अब जोरन देनेवाला कहता है कि दही उसका है। क्या वह दही उसका होगा ? मेरा कोई हक नहीं है ? आप पंच महानुभाव ईमान से कहें, मैं न्याय की भीख माँगती हूँ। मुझे न्याय चाहिए।' इतना कहकर वह दोनों हाथ जोड़कर वही खड़ी रही।

रनियाँ की बात सभी ने ध्यान देकर सुना। कितने तो अवाक् से दिख रहे थे। आँगन के पेड़ के तले खड़ी औरतें रनियाँ का साहस देखकर दाँतों तले उँगलियाँ काट रही थीं। रनियाँ ने एक बार फिर शिष्ट स्वर में कहा,-' मुझे न्याय चाहिए, आप लोग पंच परमेश्वर हैं, इस समय मुझे न्याय दीजिए।'

बुधन ने ऐसे जोर से खाँसा मानो उसके गले में कोई चीज अटक गई हो। लोग बुधन का फैसला सुनने के लिए व्यग्र हो रहे थे। बुधन ने चारो तरफ नजरें दौड़ाकर देखा। उसने अपना विचार ऐसे रखा,- ' रनियाँ बहूँ ! तुम जरा शान्त हो जाओ। हम पंच जरूर तुम्हें न्याय देंगे। तुम्हारे कथनानुसार दूध तुम्हारा अपना ही है। तुम्हें दही जमाने के लिए जोरन चाहिए था जो उस वक्त तुम्हारे पास नहीं था। पड़ोसी से माँगकर तुमने दही जमाया। ऐसी सूरत में वह दही तुम्हारा ही होगा। कोई सिर्फ इस बात पर कि उसने जोरन दिया है, तुम्हारे दही पर अपना हक दावी नहीं कर सकता। बल्कि यह हो सकता है कि वह जोरन के बदले थोड़ा बहुत दही माँग सकता है। लेकिन दही तो तुम्हारा ही है। मेरा ब्रह्म ने तो ऐसा ही देखा और कहा, इसमें अन्य पंचों की कोई राय है ? तो कहिए। ' इतना कहकर बुधन चुप हो गया।

चारो तरफ से कानाफूसी की आवाज सुनाई देने लगी। कुछ देर के बाद अयोधी ने मुँह खोला,- 'बुधन ठाकुर की बात एकदम सही है। मैं भी उनका फैसला मानता हूँ।' जब अयोधी ने बुधन की बात पर मुहर लगा दी तो वहाँ उपस्थित लोगों में दो-चार को छोड़कर बाकी के सभी दही में सही करने लगे। बुधन के फैसले पर मुहर लगाने लगे। हो सकता है, वहाँ इस फैसले के खिलाफ भी कुछ आवाजें हों मगर उसकी खनक सुनाई नहीं दी। किसी ने बोलने की हिम्मत नहीं दिखाई।

पंचायत उठ गई। लोग धीरे-धीरे टिप्पणियाँ करते हुए अपने काम-धाम में जाने लगे। रनियाँ वहाँ से धीरे से चल दी। उसके ही पीछे-पीछे देवा भी चल दिया। वह महिन्दर के आँगन में सीधे गई। ओसारा में महिन्दर की माँ अपनी पोती को अपनी गोद में इस तरह चिपका कर रखी हुई थी, मानो उसे कोई झपटकर ले जानेवाला है। वह बहुत डरी-डरी-सी लग रही थी। अपनी माँ को आते देखकर बचिया बहुत खुश हुई। वह दादी की गोद से अलग होकर अपनी माँ की गोद में जाना चाहती थी, और माँ का प्यार में डूब जाना चाहती थी।

रनियाँ ने अपनी बेटी मनटुरिया को झपट कर ही उठाया और अपनी छाती से लगा लिया। उसकी आँखों और गालों को प्यार से बार-बार चूमने लगी। उसका मन ही नहीं भरता था। वह चुमती जा रही थी, बस चुमती जा रही थी। मानो जैसे पागल हो गई है। इसके बाद वह जैसी आई थी, वैसे ही चली गई। दायाँ बायाँ कुछ न देखा, सीधे देवा के आँगन में जाकर ही दम लिया, खड़ी हुई। उसकी सांसें फुल गई थीं। देवा उसके पीछे-पीछे ही आ रहा था। रनियाँ के चेहरे पर देवा एक तरह की चमक और विजयभाव देखा रहा था।

रनियाँ सोच रही थी, -'अब इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता कि पिता महिन्दर हो या देवा ! क्या हुआ ? कुछ भी तो नहीं हुआ। बेटी तो मेरी कोख से जन्मी है, बेटी तो मेरा खून है। सन्तान पर पहला हक माँ का न होकर किसका होगा ? इसे कौन छिन सकता है ? पंच तो परमेश्व होते हैं। उनमें देवताओं का वास होता है और पंचों के फैसले सभी मानते हैं, कोई नहीं काटता। माँ बाबूजे समाज के सामने मुझे देवा के साथ पति-पत्नी के बंधन में बाँध दिया। धर्म के बंधन में बंधा मेरा पति जब दूर, बहुत दूर चला गया तो मुझे सहारे की जरूरत थी। वह सहारा मुझे महिन्दर ने दिया। मुझे अच्छा लगा, देवा को तो मैंने ही महिन्दर से कहकर चिट्ठी भेजवाई थी। लेकिन महिन्दर ने वो बात मुझ से छुपाई थी। वह छली निकला। कपटी दिखा। छली और कपटी आदमी मुझे पसंद नहीं। देवा भला आदमी है, उसने बेइमानी नहीं की है। उसने मनटुरिया को अपनी ही बेटी माना है , मुझे भी अच्छा से ही रखेगा। पति तो पति ही है, भगवान ने दिया है मुझे।

कल से ही बचिया को दूध नहीं पिलाने की वजह से मेरी छाती भी भर गई है, दुखने लगी है। मनटुरिया भी कल से ही माँ का दूध नहीं पी पाई है। बेचारी को माँ की गोद और ममता से अलग रखा गया है।

देवा की ओर घूमकर रनियाँ ने कहा,-' चलो,मुँह क्या देखते हो ? गोदी में रखो बेटी को।' इतना कहते हुए रनियाँ ने मनटुरिया को देवा की गोद में रख दिया। देवा ने भी मन ही मन भगवान को धन्यवाद दिया, याद किया। दोनों हाथ से बेटी को उठाया और चुमने लगा, फिर गले से लगाया। मन ही मन कहा,-' ईश्वर की वरदान है ये हमारी बेटी।

अनुवादक : गोपाल अश्क

कहानी

सलीम

डा. रामभक्त ठाकुर

हर शाम की तरह एक दिन मैं उषा के साथ इज़िप्ट की नील नदी के किनारे घूमने निकला था। नील की हवा, मनमोहक वातावरण, नील में झाँकती चाँदनी सब कुछ बहुत अच्छा लग रहा था। शाम के जवान होते होते नील के इर्द-गिर्द आई काफ़ी सुंदर जोड़ियाँ घूमती नज़र आ रही थीं। मिस्र की सुंदरता का बयान तो सुना ही था। वहाँ लग रहा था मानो सुंदरता यहीं आकर ठहर-सी गई है। लहलहाते खजूर के पेड़ और उनसे लटके खजूर हमें पुराने-पुराने दास्तानों में पहुँचा जाते थे। काले बुर्कों में भी जैसे हूर इधर-उधर मचल रही हो। नील की शाम का क्या कहना! हम विभोर हुए, वाक्य सून्य हुए बस निरंतर बढ़ते जा रहे थे। किसी को भी फुर्सत नहीं कि किसी को कोई देखे। सब अपने आप में खोए हुए थे। हम दोनों एक जगह एक बेंच पर बैठ गए। वहाँ खूबसूरत-सा नज़ारा था। बगल में दो बड़ खजूर के पेड़ और सामने चाँदनी में नहाती नील। वातावरण इतना शांत था कि नील की लहरों के संगीत कानों में जैसे अमृत घोल रहा हो। इस तरह शाम को नील का सफ़र हमारा रोज़ का कार्यक्रम था। जैसे हम भी नील के दीवाने हो गए हों। रात के करीब दस बज गए होंगे। हर जोड़ी अपने आप में खोए नील की रेलिंग पर बैठे या फ़िर एक दूसरे को पकड़े हुए धीरे-धीरे फूटपाथ पर सरक रहे थे।

ऐसे समय में 'कालकादी' चाय की काफ़ी बिक्री होती है। यह लाल चाय है और मिस्री इसे काफ़ी पसंद करते हैं। हमारे आसपास बैठने का काफ़ी इंतज़ाम था। करीब अस्सी से सौ के आसपास लोग इधर-उधर बैठे चाय पी रहे थे। हम अकसर देखते थे, आसपास बैठे सारे लोगों को चाय या हल्का ठंडा पेय पिलाने का काम एक व्यक्ति करता था। तेज़ी से वह आधे किलोमीटर की दूरी इधर से उधर तय करता था। सबसे ऑर्डर लेने और उन्हें उनका पेय पदार्थ पहुँचाने का काम वह फुरती के साथ करता था। हम करीब एक घंटा या दो घंटे तक बैठा करते थे। तब तक वह व्यक्ति पचास-साठ बार इधर से उधर सेवा करता रहता था। हम आपस में बातें भी करते कि यह व्यक्ति कैसे नहीं थकता है? कैसे इतनी दौड़ लगाता है? कभी रात के ग्यारह-बारह बजे भी जब हम वहाँ पहुँचते थे तो वह इसी तरह दौड़ लगाता नज़र आता था। पचास की उम्र होगी उसकी, हट्टाकट्टा इंसान था। एक बार हम लोगों से भी पूछा– "क्या पिएँगे आप?" हमने 'शुक्रान' कहा अर्थात धन्यवाद। वह समझ गया हम परदेसी हैं और रोज़ शाम को टहलने वहाँ आते हैं। उसका नाम सलीम था। हमें देखता था और आदर से मुस्कुराते हुए बिजली की तरह दौड़ लगाता रहता था। हमने आपस में बातें की, आखिर इतना दौड़ लगाना आसान नहीं। किस वजह से यह इतना काम करता है?

"हो सकता है रात को बारह बजे के बाद घर जाता होगा। इसके बच्चे होंगे। सबके लिए थोड़ा-थोड़ा कुछ खरीदकर ले जाता होगा। गरीबी में किसी तरह परिवार को भरण-पोषण कर रहा होगा। इतनी कड़ी मेहनत बच्चों के लिए!" मेरा मन दुखी हो गया यह सब सोचकर क्योंकि हम भी बच्चों के लिए इसी तरह दुख उठाया करते थे।

"हाँ! यही बात है। घर चलाना आसान नहीं। यहाँ भी परिवार के लिए लोग हमारी तरह ही भावना रखते हैं।"– उषा ने गंभीर होते हुए भाव प्रकट किए।

एक शाम तकरीबन रात के ग्यारह बज गए होंगे। एक पार्टी से आते हुए नील के पास हमने अपनी गाड़ी छोड़ दी थी। फ़िर नील के पास धीरे-धीरे

टहलने लगे थे। कुछ समय में ही ज़ोर से रेगिस्तानी आँधी आई। अचानक ठंड बढ़ गई। लोग जल्दी-जल्दी इधर-उधर भागने लगे। नील के लंबे किनारे में जगह-जगह लकड़ी का हल्का मदिर-सा पड़ाव था। सब लोग वहीं छुप रहे थे। हम भी आसपास एक पड़ाव में घुस गए। ठंड बढ़ गई थी। सलीम दौड़ दौड़ के सबको चाय पिला रहा था। जो पैसा मिलता, रख रहा था। यह उसकी चाय की दुकान नहीं थी, मालिक और था। वह तो सिर्फ़ चाय बेच देता था। सलीम हमारे पड़ाव में ठंड की वजह से आ घुसा। थरथर काँप रहा था। उसके बदन पर अच्छे कपड़े भी नहीं थे। कैसे पहन भी पाता बेचारा। काँपते हाथों से उसने चाय के दो ग्लास हमारी ओर बढ़ाए– "आज आप लोग भी पी लीजिए, ठंड काफ़ी ज़्यादा है, रेगिस्तानी ठंड बहुत नुकसान करती है। यह 'कालकादी' है, सेहत को अच्छा रखता है।" चाय हमारी ओर बढ़ाते हुए मानो वह हमारी खैरियत चाह रहा हो। उस वक्त उसे इनकार करना मुनासिब नहीं था, फ़िर हमने चाय ली और दस गिनी का नोट उसे दिया। वह अत्यंत ही खुश हुआ। शायद हमने ज़्यादा दिया था। बाज़ार में यह चाय आम जगहों पर एक-दो गिनी में मिलती है। कुछ समय के बाद हम जैसे-तैसे अपने निवास को चले गए। हमारा निवास वहाँ से ज़्यादा दूर नहीं था। हम गीजा ओरमान में रहते थे और नील नदी हमारे सामने से बहती हुई मानो हमेशा हमें बुलाती रहती थी। उस रात सचमुच ठंड बहुत ज़्यादा बढ़ गई। गरीबों पर उसका बहुत बुरा असर पड़ा।

अगले रोज़ शुक्रवार था। सुबह हम दोनों फ़िर नील के सफ़र पर निकले। घर से निकलने के दो मिनट के बाद उससे साक्षात्कार हो जाता था। धीरे-धीरे घूमते, नील की स्वच्छ और सुवासित हवा का आनंद उठाते हुए हम सौ मीटर आगे पहुँचे तो देखा उस मंदिर-से पड़ाव में काफ़ी भीड़ लगी हुई थी। भीड़ तो काहिरा का अभिन्न अंग है। हर हमेशा भीड़। पर शुक्रवार सुबह भीड़ होना स्वाभाविक नहीं था। ज़रूर कोई बड़ी बात है सोचकर हम भी वहाँ ठहर गए। मैंने कोशिश की भीड़ के पीछे से झाँककर देखने की। लगता था कुछ बुरा हो गया था क्योंकि सारे लोग दुखी एवं शोकाकुल नज़र आ रहे थे।

"क्या कोई हादसा हुआ है ?"– मैंने अपनी टूटी-फूटी अरबी में पूछा।

एक सीधा-सादा इंसान जो गलवैहा (एक अरबी लिबास जो गले से पैर तक रहता है) पहना था, उसने कहा– "शायद मर गया है।"

"कौन ?"– मैं विस्मित हुआ। कौन बड़ा इंसान इस तरह मर गया है जहाँ आम लोग भी आँसू बहाने पहुँचे हैं मन में धैर्य नहीं रहा। मैं आगे बढ़ नहीं सका। उषा को भी वहीं रोक लिया।

"देखूँ क्या हुआ है ?" हम दोनों वहीं ठिठक गए। एक आदमी ज़ोर से रोता हुआ भीतर से बाहर निकला।

"अल्लाह उसे जन्नत बख्शे !"– कहता हुआ वह बगल में बैठकर रोने लगा। धीरे-धीरे भीड़ छँटने लगी तो मैंने उस मृतक को देखने की कोशिश की। जब उस पर मेरी दृष्टि पड़ी तो लगा जैसे एक साथ एक हज़ार बिच्छुओं ने डंक मार दिया हो। बिजली से तेज़ी से झटका लगा। मैं तो मानो शून्य हो गया।

"ओह !"– मैं कराह उठा।

"क्या हुआ ?"– उषा मेरे पास आई और विस्मय से मुझे देखा।

"वह सलीम है, मर गया बेचारा ! बदन पर पतले कपड़े हैं बस। शायद ठंड बरदाश्त नहीं कर सका।" पता नहीं क्यों मन ज़्यादा दुखी हो गया। जो इंसान अपने बच्चे, परिवार के लिए इतनी मेहनत करता था, आज मृत, लकड़ी के बेंच पर पड़ा है। सब लोग जा चुके थे। वह एक इंसान जो रो रहा था, अब भी वहीं था। मैंने उसके पास जाकर पूछा– "सलीम तुम्हारा भाई था ?"

रोता हुआ वह इंसान और ज़ोर से रोने लगा। मैंने फ़िर वही सवाल दोहराया तो उसने सुबकते हुए कहा– "वह मेरा सब कुछ था। वह नहीं होता तो मैं भी नहीं होता।" उसने अपने आँसू पोंछते हुए अपने पर काबू पाने की कोशिश की। "मेरी यहाँ चाय की दुकान है, वह रात भर मेरी चाय बेचता था। शुरू-शुरू में मेरे पास कुछ भी नहीं था पर उसने ही कड़ी मेहनत से सारी चाय दौड़ दौड़के बेचकर मुझे अमीर बनाया। आज मेरे पास घर, परिवार, खेत है।" उसने और बताया– "सलीम के दो बच्चे लड़ाई में मारे

गए। घर कच्चा था, वह नष्ट हो गया, पत्नी बीमारी से मर गई और छोटा बच्चा भूख से मर गया। यह तब से पागल-सा हो गया और अपना जीवन दूसरों की सेवा में लगा दिया। मेरी चाय बेचता था और मुझसे ज़्यादा पैसे भी नहीं लेता था। कहता था कि क्या करेंगे। खाने को थोड़ा दे दो। रात इसी लकड़ी के बेंच पर सोकर काटता था। इस तरह से उकी ज़िंदगी चलती थी। मेरे दिए हुए थोड़े से पैसे के बदले ही बेहतर काम और सेवा करता था।"

इतनी बातें बताकर वह चला गया। मुझे अब कुछ नहीं सूझ रहा था क्या करूँ। हम भी आगे घूमने के लिए बढ़ गए पर मन एकदम अशांत था। घूमना पता नहीं क्यों, अच्छा नहीं लग रहा था। हम दोनों खामोश आगे बढ़ते रहे।

कुछ समय आगे बढ़कर फ़िर लौट आए क्योंकि आगे जाने का मन नहीं हो रहा था। याद आ रही थी कि कल रात को ही इसने हमें बचाने के लिए दो ग्लास चाय दी थी।

"कल इसने हमें चाय पिलाई थी।"– उषा ने अपने मन की बात कही।

"हाँ, मैं भी यही सोच रहा हूँ।"

"बेचारा ! ठंड बरदाश्त नहीं कर सका।"

"लेकिन यह अपने पैसे से कपड़े तो खरीद सकता था फ़िर भी इसने अपनी ज़िदगी असहाय की तरह बिताई। लगता है, घर-परिवार के समाप्त होने से अपने जीवन से निराश हो गया था।"

ऐसी ही बातें सोचते सोचते हम फ़िर उसी पड़ाव तक आ पहुँचे और देखा कि एक लड़का झोला में कुछ सामान और हाथों में कुछ गिनी लिए सलीम के मृत शरीर के पास सर रखे ज़ोर-ज़ोर से रो रहा था।

"अब यह कौन है ?"

अनायास हम वहाँ फ़िर रुक गए। वह लड़का चुप होने का नाम ही नहीं ले रहा था। हमे बहुत आश्चर्य हुआ। सलीम का तो सारा परिवार खत्म हो चुका है फ़िर यह लड़का कौन है ? क्यों इस तरह रो रहा है ? लगता है कोई गहरा संबंध रहा है इसका सलीम के साथ।

हम वहाँ काफ़ी देर तक नदी की रेलिंग पर बैठे रहे। जब वह लड़का चुप हुआ तो मैंने पूछा– "क्या यह तुम्हारा पिता है ?"

"नहीं, मगर पिता से भी बढ़कर।"– सुबकते हुए उसने कहा।

"क्यों रो रहे हो ?"– मैंने पूछा।

"मैं उसका पैसा लौटाने आया हूँ, जो उसने मुझे दिया था। मैं एक अनाथ हूँ। सड़क पर चोरी करता था और कचरे में से खाने की चीज़ें निकालकर खाता था। इसने मुझे पैसे दिए और सामान खरीद दिए, वह मैं रोज़ बेचता और हिसाब देता था उसे। अब मैं उसका हिसाब किसे दूँ और उसका पैसा किसे लौटाऊँ ? उसने मेरे जैसे आठ लड़कों को पाला है। सारे पैसे हमें देता था ताकि हम काम कर सकें और चोरी न करें और कचरे से जूठन निकालकर न खाएँ। आज यह चला गया, मेरा सब कुछ चला गया। मैं फ़िर अनाथ हो गया।"

अनायास हम दोनों की आँखों में आँसू आ गए। अल्लाह इसपर करम करना ! मन में यही खयाल आया।

अनुवादक : लेखक स्वयं

कहानी

ब्रेक अप

लक्ष्मी उप्रेती

"सरिना, जीवन में कितने दोस्त मिले, अलग हुए लेकिन जिसके साथ दिल मिले, वैसे दोस्त से तो ऊपर वाला ही मिलवाता है, है न ?"– ऊँचाई चढ़ते हुए सरिना को अपने आगोश में भरकर प्रणय बहक गया।

"प्रणय तुम कितने उतावले हो रहे हो, आसपास के लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे ? कुछ तो लिहाज करो।"– उसकी उच्छृंखलता से असहज महसूस कर प्रणय को धकेलते हुए सरिना थोड़ी दूर हट गई।

"सॉरी ! तुम्हें यों देखकर खुद पर काबू न रख सका, प्लीज नाराज़ मत होना।"– प्रणय ने अपनी गलती मान ली।

"अब कुछ समय खुद को कंट्रोल करना होगा प्रणय, तो ही हमारा प्यार पवित्र और सुंदर होगा।"– थोड़ी असहज महसूस करते हुए सरिना ने कहा। दोनों हाँफते हुए ऊँचाई चढ़ रहे थे।

सरिना और प्रणय एक ही गाँव में पैदा हुए और पले बढ़े थे। पढ़ाई के साथ ही उनके बीच दोस्ती बढ़ती गई और यही दोस्ती धीरे-धीरे प्यार में तब्दील हो गई। उनकी प्रेम यात्रा ने भी पाँच साल पूरे कर लिए हैं।

प्यार के सुंदर रंगों में रंगते हुए दोनों ने एमए कर लिया और नौकरी की तलाश में जुट गए। संयोग से प्रणय ने बैंक के शाखा अधिकारी की परीक्षा पास कर बैंक में नौकरी कर ली और सरिना कॉलेज में पढ़ाने लगी। काम अलग, पारिवारिक माहौल अलग, अपनी-अपनी ज़िम्मेदारी भी अलग-अलग होते हुए भी बचपन की ही दोस्ती से ऊपर उठकर दोनों का मन पिछले पाँच सालों से एक हो चुका है। इस दरमियान दोनों के परिवार वाले भी उनकी भावनाओं को समझते हुए सहमति भी जता चुके हैं। अब तो बस शुभ मुहूर्त देखकर दोनों का गठबंधन ही बाकी रह गया है। इसके लिए वे दोनों तैयार भी हैं।

शनिवार को दोनों की छुट्टी का दिन। लगभग हर शनिवार को यह प्रेम जोड़ी अनुशासित होकर कोई न कोई नई जगह घूमने के लिए जाती है। आज शनिवार ये लोग सुंदरीजल में हैं। सुंदरी जल की ऊँचाई चढ़ते हुए प्रणय की उतावली हरकत को देखकर सरिना थोड़ी असहज हो गई। रास्ते में कुछ उतावली जोड़ियों को देखकर भी शायद प्रणय बहक गया होगा। सरिना यही सोचती है।

ऊँचाई पर चढ़ते हुए साँस की गति बढ़ जाने से सरिना को ज़रा मुश्किल हो रही है। वहीं प्रणय को ऊँचाई चढ़ने की आदत होने के कारण वह सरिना को हौसला देते हुए आगे बढ़ रहा है। प्रणय थकान से सरिना का ध्यान बँटाने के लिए हरी-भरी मनमोहक वादियों के बारे में बताए जा रहा है। सरिना भी उसकी बातों से रोमांचित हो रही है।

इस समय वह सपना के क्षितिज में पहुँचने का मार्गचित्र खींच रही है। सारी बातों को भूलकर हृदय भर उल्लास की सप्तरंगी भरकर वसंत खिला रही है। इसीलिए इस नई जगह की यात्रा में थककर भी प्रणय के साथ-साथ सरिना भी आनंद का अनुभव कर रही है। इस समय वे लोग ऊँचाई के तीन घुमाव पार कर रास्ते के किनारे तख्ते से बनाए गए एक आराम बेंच पर बैठे हुए हैं।

दोपहर के तीन बज चुके हैं। चैत का महीना, हवा के झोंके रह-रहकर उनकी एकाग्रता को भंग किए जा रहे हैं। काठमांडू की प्यास मिटाने के लिए बड़ी-बड़ी लोहे की पाइप बिछी हुई है, चढ़ाईदार रास्ते के किनारे। पैदल यात्रियों को ऊँचाई चढ़ने में मुश्किल बेशक हो रही है पर फ़िर भी प्रकृति के

मनोरम दृश्य उन्हें आह्लादित बनाए हुए है। वे थकान को भूल-से गए हैं। चढ़ाईदार जंगल को चीरकर बने हुए रास्ते और प्रकृति के मनोरम नज़ारे की बात ही अलग। हरियाली से सँवरी हुई पहाड़ी श्रृंखला की गोद में पानी के मनमोहक झरना को देखकर सरिना अनायास मोहित हो उठी। उस खूबसूरत नज़ारे को नज़दीक से देखने की ख्वाहिश से सरिना प्रणय का हाथ खींचकर पास की मेंड़ पर बैठ गई। पहाड़ी चोटी से बह रहे झरने की स्निग्धता के साथ-साथ हवा के साथ मिलकर सिमसिम उड़ रहे पानी की बारीक बूँदों के स्पर्श से वे दोनों आनंद विभोर हो रहे हैं। इस अनुभव के साथ सरिना कल्पना के आकाश में प्रणय के साथ ही खो जाती है। तभी– "सरिना, अपना मोबाइल देना ज़रा।"– कहते हुए प्रणय ने सरिना को पीछे से पीठ पर हल्का-सा धप्पा देकर उसकी रूमानी एकाग्रता को भंग किया। झरने की मोहकता में डूबी हुई सरिना ने अपने हाथ का मोबाइल प्रणय को देती हुई वापस झरने में खोकर अनेक कल्पनाएँ सँजोने लगी। सरिना का मन बेशक झरने के स्निग्ध पानी की तरह है लेकिन प्रणय के मन में एकाएक कलुषित भावनाएँ उमड़ने लगीं, जिसके कारण वह सरिना के मोबाइल के मैसेज बॉक्स में झाँकने लगा। मोबाइल में विवेक के नाम से भेजे गए कई सारे मैसेज हैं, जो कि रात दिन अलग-अलग समय में भेजे गए हैं। जवाब में सरिना ने भी कई मैसेज भेजे हैं रात दिन किसी भी समय। उसमें अनेक विषय हैं– काम, घर-परिवार और जीवन के विविध हास-परिहास। कई शब्दों का तो समझकर भी अर्थ लगाना मुश्किल-सा है। कई अंदाज़े की बदौलत ही अनुमान करने लायक। पर यह बात प्रणय बिल्कुल न समझ सका। मोबाइल के ही इनबॉक्स और आउटबॉक्स के शब्दों को पढ़कर उसके मन में शंका की ज्वारभाटा हिलकोरने लगी।

विवेक सरिना के कॉलेज में एक ही विषय पढ़ाने वाला दोस्त है। दोनों ने एक ही साथ पढ़ाना शुरू किया था। विवेक के सहयोग, सद्भाव और सहानुभूति से सरिना हमेशा खुश रहा करती। प्रणय के सामने भी वह विवेक की तारीफ़ करके थकती न थी। एक असल दोस्त के दायरे में रहकर ही विवेक के साथ सरिना का व्यवहार था। लेकिन यह बिल्कुल सच है कि विवेक के साथ सरिना की जितनी ही नज़दीकी हो, हँसी-मज़ाक हों, वह प्यार प्रणय से ही करती थी। विवेक की अच्छी दोस्त होते हुए भी सरिना उसके साथ प्यार को लेकर कभी संजीदा नहीं हुई। लेकिन मैसेज को देखकर प्रणय के मन में विवेक और सरिना के प्रति शंका ने डरावना रूप ले लिया। शक की आग में प्रणय बुरी तरह झुलस गया। इसी वजह से वह घर लौटने को आतुर हो गया। दाएँ-बाएँ कुछ देखे बगैर वह रूखेपन के साथ कहने लगा– "चलो घर चलते हैं।" सरिना को मोबाइल वापस करते हुए वह उठ खड़ा हुआ।

"क्या हुआ ?"– उसके बरताव को हल्के में लेते हुए सरिना ने उतना ध्यान नहीं दिया। "तुम चलोगी या नहीं ? अगर तुम्हें नहीं जाना है तो बेशक तुम रहो, मैं चलता हूँ। तुम्हें तो मोबाइल में मैसेज करने में मज़ा आ रहा होगा न ?"

विवेक की रूखी बोली को ताड़कर भी सरिना उसकी शंका के रहस्य को समझ नहीं पाई। वह कहने लगी– "बिल्कुल, इतने सुहाने माहौल के तानेबाने कल्पना में बुनकर मैसेज करने का तो मज़ा ही अलग है।"

सरिना के भाव का और भी गलत मतलब निकालकर– "मैं चला, तुम्हें जो मर्ज़ी हो करो।"– कहकर प्रणय तमतमाए हुए चल दिया।

प्रणय मज़ाक कर रहा है सोचकर उसकी तरफ़ देखे बिना ही वह बैठी रही। पर उसे तब हैरानी हुई जब उसने देखा कि सचमुच प्रणय नीचे उतरा जा रहा है। उसे लगा कि कुछ देर पहले उसने प्रणय को अपने से अलग किया था, शायद उसी बात का बुरा मान गया हो, या हो सकता है कि अचानक उसकी तबीयत बिगड़ गई हो। वह जल्दी-जल्दी उठी और कपड़े संभालती हुई– "क्या हुआ प्रणय, क्या तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है ?" हैरान होती हुई प्रणय के पीछे-पीछे जल्दी-जल्दी नीचे उतरी सरिना भी।

सरिना के सवाल को नज़रअंदाज करते हुए प्रणय जल्दी-जल्दी नीचे उतरकर मोटरसाइकिल पर कपड़े मारने लगा। प्रणय के पीछे-पीछे आई सरिना ने फ़िर पूछा– "प्रणय, आखिर हुआ क्या है ?"

इतने में मोटरसाइकिल स्टार्ट कर चुके प्रणय ने कहा– "कुछ नहीं, मुझे एक ज़रूरी काम याद आ

गया, जल्दी जाना होगा, चलो।"– सरिना की तरफ़ देखे बिना ही उसने फ़िर बेरुखी दिखाई। उसके इस अस्वाभाविक व्यवहार से सरिना को और आश्चर्य हुआ, अचानक इस आदमी को हो क्या गया ? फ़िर भी प्रणय की बात पर यकीन कर सरिना बिना कुछ बोले स्टार्ट की हुई मोटरसाइकिल पर बैठ गई। निःशब्द प्रणय ने तेज़ गति से मोटरसाइकिल चलाते हुए कुछ देर में ही सरिना के घर के आगे रोक दिया।

रुकी हुई मोटरसाइकिल से सरिना के उतरते ही– "ठीक है, मैं चलता हूँ मुझे जल्दी है।"– कहकर उसके जवाब का भी इंतज़ार किए बिना प्रणय निकल गया। सरिना हैरत के साथ उसके बदले हुए बरताव को देखती ही रह गई। बात क्या है, वह बिल्कुल भी समझ न सकी।

उस दिन के बाद कई दिनों तक तो व्यस्तता का अभिनय करके प्रणय सरिना के साथ फोन पर भी ठीक से बात नहीं की। सरिना के ही फोन करने पर होने वाली बातचीत के कुछ अंश में भी विवेक का प्रसंग आते ही शक से चूर होकर प्रणय अंदर ही अंदर तड़प उठता। फ़िर भी सरिना यही समझती रही कि प्रणय व्यस्त होगा।

इसी तरह हफ्ता गुज़र गया। हमेशा की तरह इस शनिवार को भी कहीं घूमने जाने की सोच बनाए बैठी सरिना को निराश होना पड़ा। व्यस्तता का स्वांग रचाकर प्रणय सरिना के साथ घूमने न जाकर घर में पूरा दिन बिताया। इस बात को स्वाभाविक समझकर सरिना कॉलेज के दोस्तों के साथ पिकनिक पर चली गई। पिकनिक में मस्ती, नाच-गाने का प्रोग्राम हुआ। नाच-गाने की कई तसवीरों को दोस्तों ने टैग भी किया। इस घटना ने प्रणय के मन में और भी कलह की आग में घी डालने का काम किया। विवेक के साथ नाचती हुई सरिना की तसवीर को देखकर प्रणय के मन में अग्नि ज्वाला धधक उठी।

सरिना पर अपने मन की भड़ास उँडेलकर मन की आग को ठंडा करने की मंशा से प्रणय ने अब के शनिवार को बाहर जाने का प्लान बनाया। उधर सरिना शनिवार के इंतज़ार में मीठे-मीठे ख्वाब सजाने लगी।

आज शनिवार थोड़ी देर करके प्रणय मोटरसाइकिल लेकर सरिना के घर के पास आया। पहले से ही तैयार होकर बेसब्री से प्रणय का इंतज़ार कर रही सरिना खुश होकर झट से मोटरसाइकिल पर बैठ गई। सरिना की व्याकुलता पर बिना कोई प्रतिक्रिया जताए प्रणय ने मोटरसाइकिल आगे बढ़ाई।

चलती मोटरसाइकिल पर सरिना की एकतरफ़ा बातचीत चलती रही। प्रणय निःशब्द मोटरसाइकिल चलाता रहा। काफ़ी देर तक प्रणय के कुछ न बोलने पर– "आज क्यों कुछ बोल नहीं रहे हो, तुम्हें क्या हुआ है प्रणय ?"– सरिना ने बड़े ही प्यार से पूछा।

"आज कहाँ चलना है ? तुम्हारी ही पसंद की जगह पर चलेंगे बोलो।"– सरिना के सवाल का जवाब न देकर रूखे लहजे में प्रणय ने प्रतिप्रश्न किया।

"ओ ! ऐसा है, तो फ़िर शंख पार्क चलते हैं, वह जगह काफ़ी अच्छी है, गेट तक ही मोटरसाइकिल ले जाई जा सकती है।"– उत्साह के पंख फैलाती हुई सरिना खुश हो गई।

वहीं कड़वाहट की कशमकश में डूबे हुए प्रणय के खुश होने का कोई सवाल ही नहीं था। कहीं जाकर भी उसे ज़हर ही तो उगलना था। इसीलिए "ठीक है।" कहकर छोटी-सी प्रतिक्रिया देते हुए मोटरसाइकिल को उसने शंख पार्क के रास्ते की तरफ़ मोड़ लिया। कुछ ही देर में शंख पार्क के गेट के पास पहुँचकर उसने सरिना से उतरने को कहा और मोटरसाइकिल को पार्किंग में खड़ा कर दिया। सरिना हमेशा की तरह अपनी ही धुन में आगे बढ़ी और प्रणय पीछे-पीछे।

शंख पार्क के भीतर जाकर दोनों एक खाली बेंच पर बैठे। "उस दिन हम लोग विवेक के कहने पर यहाँ पिकनिक के लिए आए थे। उसी वक्त मैंने सोचा था कि एक बार तुम्हारे साथ यहाँ आती तो कितना मज़ेदार होता।" सरिना के बातचीत के पहले प्रसंग से ही प्रणय खौल उठा। लेकिन सरिना से मोबाइल माँगकर फ़िर से मैसेज पढ़ने की ताक में वह गुस्से को दबाकर चुपचाप बैठा रहा। थोड़ी देर बाद सरिना से मोबाइल माँगकर मैसेज इनबॉक्स में भरे हुए और सेंट बॉक्स के संदेशों को पढ़ा। ज़्यादातर विवेक के भेजे हुए और अलग-अलग समय में विवेक के साथ आदान-प्रदान किए गए संदेशों को पढ़ लेने के बाद प्रणय ने आव देखा न ताव और अचानकर उत्तेजित होकर बोलने लगा– "प्रेमी-प्रेमिका के नाम पर तुम कलंक

हो। मेरे साथ प्यार का नाटक करके डेटिंग पर विवेक के साथ गुलछर्रे उड़ाती फ़िरती हो। प्यार का नाटक करके मेरे जज़्बात के साथ खिलवाड़ करने वाली तेरे जैसी जूठी के साथ आगे बढ़ने की बात मैं सोच भी नहीं सकता। इसलिए आज से तेरे साथ मेरा कोई रिश्ता नहीं है।– गुस्से में आपे से बाहर हो चुका था वह।

प्रणय की बात से कुछ देर तो सरिना सन्न रह गई। जिससे उसने प्यार किया है, उस आदमी के मुँह से अचानक कभी न सोची हुई लांछना सुनकर वह मौन होकर प्रणय को विस्फारित नज़रों से देखती रह गई। लेकिन एकाएक वह भी अपना आपा खो बैठी। बरदाश्त की हद नाँघने पर सरिना भी आवेग में आई और झट से उठ खड़ी हुई और अपनी तर्जनी दिखाते हुए कहने लगी– "तुझ जैसे ओछे इंसान को समझने में मैंने थोड़ी देर कर दी। लेकिन समय रहते तूने अपनी औकात दिखा दी और मैं बरबाद होने से बच गई। एक सच्चे दोस्त के साथ पवित्र संबंध को गलत समझने वाले तुम्हारे मन में अभी इतनी खोट है तो शादी के बाद और क्या होता ? मैं भी शक कर सकती थी जब तुम अपने ऑफ़िस की लड़कियों को अपनी मोटरसाइकिल पर बिठाकर घूमते थे। लेकिन मैंने शक नहीं किया क्योंकि मैंने तुमसे प्यार किया था और तुम्हें ही अपना जीवनसाथी बनाने की सोची थी। अपनी पत्नी बनने जा रही प्रेमिका पर मोबाइल के मैसेज की वजह से बात समझने की कोशिश किए बिना ही महज शक के बिना पर तूने इतना संगीन आरोप लगाया, तूने मेरे साथ विश्वासघात किया है। इतना हो चुकने के बाद तू क्या, मैं ही तुझे छोड़ती हूँ, अभी इसी वक्त से। अब कभी भी मुझसे संपर्क करने की कोशिश भी मत करना, गुड बाई।" काली का रूप धारण की हुई सरिना प्रणय के हाथ से अपना मोबाइल झपटती हुई फटाफट वहाँ से निकल गई।

इससे पहले कभी भी सरिना के इस रूप को नहीं देखा हुआ प्रणय अवाक् होकर सरिना को जाते हुए देखता रहा।

पार्क में घूमने आई कुछ जोड़ियाँ चुपचाप उन्हें देखती रहीं। थोड़ा हटकर पिकनिक में आए हुए लोगों में से कुछ अल्हड़ नौजवानों के आपस में खुसफुसाने की आवाज़ प्रणय के कानों तक पहुँची– "बाप रे ! इतनी मेच्योर्ड जोड़ी का भी ब्रेक अप हो गया यार।" प्रणय मूर्तिवत् खड़ा रहा। वह कुछ न बोल सका। उसने देखा कि आगबबूला हुई सरिना काफ़ी दूर निकल चुकी थी।

अनुवादक : मुकेश कुमार मिश्र

कहानी

यह मन

विन्दु सुवेदी

१

वैशाख महीने की गर्मी। सूर्य की तप्त राप से साँस लेने में भी कठिनाई महसूस कर रही हूँ। हाल ही में बुल्डोजर से कुरेद कर छोड़ा गया मध्य पहाडी लोकमार्ग ऐसा लगता है जैसे अजगर अपना आहार निगलकर आराम कर रहा हो। पेड़, पौधे, खेत बारी, बाँस का जंगल, नदी तालाब सब निगलकर पसरा हुआ। मध्याह्न होने के कारण से शायद रास्ते में पैदल यात्री नहीं। चलते चलते मैं रुक जाती हूँ। गर्दन से गरम पसीने की धारा तीव्र गति से निकलती है, गुदगुदी लगाते हुए। कुछ पल आँख बंद कर तपे हुए संसार में अपने आपको समर्पण करती हूँ। उपाय ही नहीं है।

कुछ समय के लिए गर्मी से ध्यान को भंग करती हूँ और फ़िर लोकमार्ग के बाईं तरफ़ से छोड़ते हुए घर की ओर जाने वाली नदी के ओर चलती हूँ। बड़ी-बड़ी चट्टानों के बीच से निकला हुआ एक रास्ता एक नदी की ओर उतरता है। ये नदी पहाड़ी नदी है। कुछ वर्ष पहले तक पानी अमला, निगुरो, लहरे झाड़ आदी इत्यादी झारपात से ढकी नदी से संगीत की तरंग जैसी उठती कलकल - कलकल की आवाज़ से मिलनी वाली शीतलता की कल्पना करती हूँ। ऊपर की तरफ़ मोटर चलने वाला रास्ता बनने के बाद पानी का स्रोत शायद बिगड़ गया। अभी नदी शिशिर ऋतु की नई नवेली चिड़िया की तरह चुपचाप है। बाँस के खपटे और सूखे पत्ते नदी में जमा हो गए हैं। फ़िर भी रक्त कोशिका सूखकर कृषकाय शरीर जैसे एक मक्खी को भी नहीं भगा सकता वैसे ही नदी आपनी छाती पर लदे वे पत्ते हटा नहीं सकते। मैं नदी के उस बहते हुए रूप को याद करती हूँ और खुद ही आश्चर्यचकित होती हूँ।

नदी के किनारे नीचे गाँव तक पहुँचने के इस छोटे से रास्ते का यह पत्थर अब पहले के जैसा सजीव नहीं। विकास के चपेट में पड़ा है। वर्षों तक मानव कदम पड़ने के कारण इन पत्थरों ने भी सीढ़ियों का रूप ले लिया है। कोई भी वस्तु सजीव हो या निर्जीव, परस्पर के संसर्ग से रूप परिवर्तन कर लेता है। जंगली जानवर भी आदमी के साथ रहते हुए घरेलु बन जाता है। झाड़ पात और जंगल भी मानवीय हाथ के संसर्ग में आने से उपवन बन जाते हैं।

सुधरा हुआ एक बाँस जितनी लंबी चट्टान पार कर मैं रुकती हूँ। शीतलता पाने के लिए यह एक अच्छा स्थान है। बड़े-बड़े सदाबहार पेड़ों से ढकी हुई, थोड़ी झुकी हुई और समतल आकार की चट्टानों वाले इस पड़ाव पर पहुँचने के बाद गर्म शरीर शीतल अनुभव करता है। दाईं तरफ़ आधा दर्जन मजदूर कोशिश करने बाद भी नहीं हटा सके एक चट्टान को। एक समय बरसात की बात है, ऊपर के जंगल से बहकर आए हुए पानी का वेग इस चट्टान पर गिरता था तो नीचे गाँव के लोग आतंकित हो जाते थे। उस समय इस पहाड़ी नदी ने जो प्रलय लाया था अभी भी उजाड़ देखकर अनुमान लगाया जा सकता है। अभी देखती हूँ, चट्टान में लगी काई सूखकर निकल गई है। अचानक देखती हूँ चट्टान के बगल से चींटियों का एक लाइन यात्रा पर निकल रहा है। शायद बारिश होगी। गर्मी भी बहुत ज्यादा है। मन में आशा लिए बहुत देर तक चींटियो का लाइन देखती रहती हूँ। ओह, गिनना ही भूल गई।

पास ही में रहे गाँव में प्रवेश करने वाली गली से बड़ी दिदी अचानक निकलती है। गोरी, हंसता हुआ चेहरा, माथे पर सिक्का जितनी बड़ी बिंदी, नाक में नथिया, सुरीली और लयात्मक बोली वाली बड़ी

दीदी गाँव में सबको अच्छी लगती है। मैं भी जब गाँव जाती हूँ तो उनसे मिले बगैर वापस आने को मन नहीं करता। लेकिन इस समय मुझे देखकर उसने न तो स्वागत किया न तो मैं भी मन खोलकर कुछ कह सकी। मेरे मन में अचानक सभी शब्द खेलने लगे।

२

उनसे किस लय में बात करु मैं असमंजस में हूँ। इस समय उनके दुख के घाव कुरेदना अच्छा होगा या नहीं कहूँ तो बेगाने होने का परिस्थिति बनी है। पता तो है ही। धन कमाकर माँ बाप को सुख देने की इच्छा से विदेश गया बेटा एक वर्ष न बितते ही बक्से में बन्द होकर लौटा था। देखती हूँ, पहाड़ी नदी और बड़ी दीदी दोनों की आँखों में उजाड़ है। उनकी सुंदर आँखें पीड़ा के काले तालाब में डूबी है। पहाड़ी नदी की आँख को भी तो झारपात ने ढक कर रखा है। एकाएक हम दोनों की आँखें भर आती हैं। अपनी पीड़ा को आँसू में निकालते हुए बड़ी दीदी एकाएक बोलना शुरू कर देती है। और फ़िर एक ही साँस में एक युग का वर्णन कर शांत हो जाती है। उसके बाद सामान लेने के लिए वह चौराहे की दुकान की ओर जाती है। आँख से ओझल नहीं होने तक मैं उनको देखती रहती हूँ।

शहर का जीवन तो वैसे भी व्यस्त रहता है। काम हो तो नहीं हो तो भी। घर टूट जाने की खबर कुछ पहले ही आई थी। अभी समय मिलाकर टूटा हुआ घर देखने के लिए आई हूँ। जितना नजदीक पहुँचती हूँ, टूटा हुआ घर देखना पड़ेगा सोचकर अच्छा नहीं लग रहा है।

घर किस तरह से टूटा होगा, कितना टूटा होगा रहने लायक ही नहीं होगा या थोड़ा बहुत मरम्मत करने के बाद होगा या सिर्फ ऊपर का भाग ही टूटा होगा या किसी एक साइड से टूटा होगा। कुछ वर्ष बिल्कुल ठीक घर अचानक ऐसे कैसे टूट गया या बनाकर भी नहीं बनने के अवस्था में पहुँच गया है। खाली भी तो नहीं था फ़िर भी कैसे टूट गया घर। जिस घर को हराभरा छोड़कर निकली थी कैसे टूटा हुआ देख सकती हूँ। जो हो मन को थामकर रखना है मुझे। ऐसे बहुत तर्क मन में आ जा रहे हैं। जल्दी से उठकर चलने का मन भी तो नहीं करता है टूटा हुआ घर देखने के लिए।

शहर में जन्मी, वहीं पली बढ़ी, अभी भी शहर में ही रहती हूँ। ऐसे में यह गाँव के घर के बारे में इतना क्यों सोचना ? ऐसा भी लगता है कभी कभी। लेकिन पता नहीं क्यों यथार्थ और भावना भी अजीब होती है। यथार्थ तो यथार्थ है। अकाट्य होता है। आदमी अपने यथार्थ से दूर जाकर, यथार्थ को भूलकर या यथार्थ को महत्व नहीं दूंगा, ऐसा कह सकता है लेकिन वह यथार्थ से भाग नहीं सकता। वैसे ही भावना शब्द की तरंग जब मन में उठने लगती है तो पहाड़ी से निकलने वाले बादल की तरह घनी होती जाती है। आकार, प्रकार, आयतन, तौल कुछ भी न हो लेकिन मन के तालाब को वह ढक देता है। भावना नामधारी वह चेतना का तरल स्वरूप है जो एक महीन सी लकीर की याद में बड़ा होकर पेड़ और वटवृक्ष की तरह हृदय में खड़ा हो जाता है। मेरे लिए अभी यथार्थ ऐसा ही है। ये घर भावना के हिसाब से जीवन स्पन्दन जैसा है।

ये मेरा कर्मघर। एक आधार स्तम्भ जिससे मैं अपना अस्तित्व प्रकट कर सकती हूँ, अपना अधिकार छीनकर ले सकने वाली जगह। अपने वंश को पहचान लेने वाली मेरी गली।

जीवन में पहली बार इस घर के आंगन में कदम रखते हुए मुझे एक अजीब सा उन्माद पुलकित बना रहा था और लाल, सफेद और काले पहनावे में शृंगार किया हुआ, घर के ऊपर में त्रिशूल, चन्द्र और सुई, काठ का कलात्मक बारामदा, धुरी में टंगा हुआ मक्के का घोगा और धुरी में गर्दन निकालती हुई कबूतर की जोड़ी। छोटी तितली की तरह शृंगारित सुंदर घर को देखकर मैं चकित थी।

३

आंगन से कुछ ही दूर पर बँधी हुई गाई-भैंस, उसके गोबर की गन्ध, कभी इधर उधर कुदती हुई बकरियाँ, तरह तरह के फूलों से लदा बगीचा, अम्लिसो का हरा वृक्ष, बाँस और निगालो का जंगल, दूसरी तरफ़ बड़ा बरगद का पेड़ और उसके नीचे जैसे आँख की पुतली चमक रही हो। ये सभी परिदृश्य एक ही आँख में आने पर मुझे लगा जैसे कण्व ऋषि का आश्रम ऐसा ही रहा होगा।

बहुत देर तक ठंडे पत्थर पर बैठ कर अतीत के पन्ने उलटने के बाद मैं घर की ओर मुड़ती हूँ। रास्ते

पर खड़ा चिलाउने (एक जंगली वृक्ष) के पेड़ में अडेस लगकर घर को निहारती हूँ। घर तो ठीक ही है। आश्चर्य ! ये भ्रम तो नहीं, मेरा मन जिस चीज़ को देखना नहीं चाहता, यथार्थ को भ्रम के जाल ने ढक तो नहीं दिया है सोचकर फ़िर से निहारती हूँ। उखड़ा हुआ रंग, कहीं कहीं दीवार पर दीमक की लाइन। नीचे से ही देखती जाती हूँ। आँख से खिंची हुई लकीर उर्ध्व होते हुए घर की धुरी पर रुकती है। दक्षिण पश्चिम सुर की धुरी के एक खण्ड में बड़ा सा छेद देखती हूँ। और देखती हूँ, सबसे ऊपर में रखे टायल पर निर्मित चिड़िया तीन टुकड़ों में बँट चुकी है। एक लंबी साँस नाभि से नासिका होते हुए हवा में मिल जाती है। शहर से लेकर आई कठिनाई और खिन्नता को बड़ी आसानी से भूल जाती हूँ। कल्पना और यथार्थ में फर्क बोध करती हूँ। खबर देने वालों ने जब 'घर टूट कर खत्म हो गया और तुमलोगों को कोई मतलब नहीं है' कहा था तो मन बहुत दुखी हुआ था। लेकिन एक टुकड़ा मात्र टूटा हुआ देखकर मन आश्वस्त होता है।

अब पैरों में फुरती सी आ गई है। जल्दी जल्दी अपने घर के आंगन में कदम रखती हूँ। आंगन के तीन दिशाओं में तीन तरह के घर हैं। मूल घर पूर्वी मोहडा में है जिसकी धुरी का एक भाग अभी टुटा हुआ है और घर अपाँग हो गया है। दक्षिण मोहड़ा पर धनसार है, जहाँ मेहमान के लिए कोठली और अनाज रखने का भण्डार है। पश्चिम मोहडा वाले घर के नीचे गाई भैंस बांधने वाला जगह, ऊपर के खण्ड जलावन, और घास रखनेके लिए प्रयोग होता है।

घर के मुख्य सदस्य सास ससुर के जीवन काल के उस घर के वातावरण को स्मरण करने को मन अभी भी ललायित है।उस समय इस घर के लिए मैं अनोखी थी। अभी ये घर मुझे अनोखा लग रहा है। पूरे आंगन में घास हो गया है। बरामदा भी खाली। धुरी में कही कही डोरी बँधी हुई है। जगह जगह पर काठ गिर जाने से ऐसा लगता है जैसे बिन दाँत का थोता बूढ़ा हँस रहा हो। घर के पीछे निरंतर बहने वाली नदी सुख चुकी है। बरगद के नीचे झिलमिल झिलमिल करते हुए आँख नचाने वाला जोर मकरे के जाल से भरा गया है। गाई भैंस बांधने वाले जगह में चूहों का राज हो गया है। अम्लिसो, ईलायची, कफी, निम्बु, तिमुर जैसे बहुत सारे वृक्षों का नामो निशान नहीं। संतरे का बगीचा भी सुखकर देखने लायक नहीं है। नासपाती, दाडिम, अमरुद, आँवला जैसे फलों के पेड़ भी उचित देखभाल न होने के कारण अब फल देना बंद कर चुके हैं। मैं चुपचाप यह दृश्य देखती हूँ। किसी को दोष नहीं दिया जा सकता है।

ठीक उसी समय अपने टोपी से पसीना पोछते हुए साइला आता है। मुझे देखकर वह आश्चर्य के साथ खुश हो जाता है। उसकी ही जिम्मेबारी में है घर आजकल। घर जल्द नहीं बनाया तो बरसात में किसी रोज एक ही बार गिर जाएगा इस बात को विश्वस्त बनाने के लिए वह बहुत बार कहता है। फ़िर वह घर भीतर से पानी लेकर आता है। मैं पानी पीती हूँ। वह भी एक लोटा पानी एक ही साँस में पी लेता है। घर की मरम्मत फ़िर से होगी इस बात से वह खुश है। लेकिन बारी पहचानते ही वह वापस आता है और कहता है- एक चीज़ मांगनी थी।

क्या चीज़, बोलो।

पिताजी और माँ बूढ़े हो गए हैं। हमने तो प्रणामी धर्म को अपना लिया, मृत्यु के बाद समाधी बनाना पड़ता है। इस बारी का एक छोटा सा टुकड़ा मिल जता तो समाधी बनाता।

उसकी बात सुनकर मैं आश्चर्य में पर जाती हुँ। सामने वाले गाँव में उसका अपना पैत्रिक स्थान है। उसका धर्म यदि समाधी बनाने को कहता है तो अपनी ही जमीन का एक टुकड़ा क्यों नहीं उपयोग करता। कितनी असानी से कह गया कि समाधी के लिए जमीन का एक टुकड़ा दे दीजिए, कैसी मानसिकता है ये ?

४

देखो सभ्फले। तुम्हारा धर्म क्या कहता है मैं नहीं जानती। ऐसी बात मानने को मैं बिल्कुल तैयार नहीं। मेरा उत्तर सुनकर वह थोड़ा हिचकिचाया और अपना रास्ता पकड़ लिया।

उसकी बातों से मेरे मन में दूसरा प्रसंग जन्म लेता है। कुछ वर्ष पहले गाँव को सरकार ने खुला शौच मुक्त क्षेत्र घोषणा करने की तैयारी की थी। सरकार ने शौचालय बनने के लिए आवश्यक सामग्री निःशुल्क उपलब्ध भी कराई थी। उस समय उसने शौचालय बनाने के लिए ध्यान ही नहीं दिया। वह

चाहता था कि सब व्यवस्था हम लोग ही कर दें।

बाहर रखे खटिया पर बैठकर बरगद के पेड़ को निहारने लगती हूँ। मंद मंद सी हवा चलने लगी है। बरगद के पत्ते से निकली आवाज़ मेरे मन को आनन्द के तरंग में धकेल देता है। इस समय प्रकृती के सामिप्य में अपने आपको अकेले पाकर इतना आनन्द मिल रहा है जैसे अथाह जलराशि में डुबकी मारने से मिलता है। अपने मन के साथ एकल संवाद में मग्न होकर समय कितना बीत गया पता ही नहीं चला।

अचानक आई आवाज़ से ध्यान भंग होता है। मैं घर के पीछे जाती हूँ। सुखी नदी अपने बांध को तोड़कर बह रही है। शून्यता को चिरते कितनी जल्दी मौसम परिवर्तन हो गया। कोलाहल पूर्ण आँसू की नदी जल्द ही किसी परिवेश में ठंडा हो गया जैसे लगता है। आँखें विस्मय के साथ फैल जाती है।

थोड़ा काला, बड़ी बड़ी आँखें, सुडौल शरीर, काले लंबे बाल, आत्मविश्वास और चरित्र से भी निडर तुलसा सिर से पैर तक निर्झर आँखें भीगी हुई है।

इसी घर के परिवेश में जन्मी, पली बढ़ी दुख और ताप के छाया से दूर रही तुलसा। इसी घर से विवाह कर अपने घर भेजी हुई तुलसा। सुना था तुलसा घर छोड़कर कर मायके आई है अपने बच्चों के साथ। इधर ही काम करके रह रही है। सुख कर काटा हुई तुलसा को सुखे नदी में अचानक क्षणिक वर्षा के कारण बाढ़ की तरह आँसू बहाते हुए देखा तो मैं आश्चर्य में पड़ गई।

मैं चुपचाप उसके अश्रु धारा को देखती हूँ। फ़िर कहती हूँ - हो गया, अब मत रो। भाग्य का लिखा कोन बांट सकता है। धरान तक पहुँच कर, सुट सिलकर आनेवाला लडका ढूंढा था तुम्हारे लिए। बाज़ार में कपड़े सिने वाली मशीन रखकर कमाई कर जिन्दगी चलाओगी ऐसा सोचा था। लेकिन तुम घर थाम न सकी।

मेरा वाक्य पूरा हुआ भी नहीं था कि तुलसा ने मिट्टी वाली अपनी हाथों से आँसू पोछा और गुस्साये हुए अन्दाज में बोली।

एक वक्त भर पेट खाना नहीं खाया। बच्चे लोग भूख से रोते हैं। दिनभर खेत में काम करती हूँ। घर में आकर पानी जैसा खोले खाना परता है। उल्टे मुझे कहता है कि मैंने कुछ नहीं किया, मर क्यों नहीं जाता है वह। जिसने एक वक्त चावल खाने नहीं दिया उस गजेडी का मुँह देखकर मैं बैठती। चूहे भी घर छोड़कर निकल गए। मैं क्यों रहती ? मशीन खरीदने के लिए कान का मुन्द्रा खोलकर दिया लेकिन वह दारु पीके खत्म कर दिया, दिनभर तास खेलता रहता है.....

वह फ़िर बोलने लगी। मैं थोड़ी सहमी। कुछ ही देर पहले वह ऐसे आँसू बहा रही थी जैसे नदी बह रही हो और अभी जैसे आग हो गई हो। कुछ देर पहले जब वह रो रही थी तो मैं अपने आपको असहज महसूस कर रही थी। सोच रही थी कि उसका जीवन बर्बाद हो गया, कुछ शिकायत कर रही होगी, कुछ आक्रोस भी। लेकिन उसे मुभसे कोई शिकायत न थी, न तो सौतन लाने वाले पति और न सौतन से ईर्ष्या ही है।

कितनी शक्तिशाली होती है भूख। जन्म से ही खानपीन और दूध दही में पली थी तुलसा। सत्य है। लेकिन अभी दो सन्तान की माँ होने के बावजूद खाना न मिलने के बहाने उसने अपने पति को छोड़ दिया ये सोचकर मैं आश्चर्य में हूँ। चावल के अभाव में प्रेम, कर्तव्य का क्या लेखाजोखा ? पेट की भूख अन्य बातों को गौण बना देती है। ऐसी बातों में कौन और कैसे तर्क करे। जिसने भुगता है वही समझता है।

पति से प्रेम नहीं है तो क्यो रोती हो, मैने थोड़ा मजाक करते हुए पूछा।

५

अरे ! मैं उसके प्रेम के कारण थोड़े ही रो रही हूँ। उस बेवकूफ की याद में क्यों आँसू बहाऊँ ? अपने बच्चों को पालने का दम है मुझमें। मुझे तो दो वक्त खिला नहीं सका वो बदमाश, और अब दूसरी को ले आया है, कहाँ से खिलायेगा। निकम्मा आदमी है वह।

तो फ़िर ऐसे क्यों रो रही हो ? थोड़े जोर से मैंने जब पूछा, वह शांत हो गई। उदास होकर बोलने लगी - अपने मन की बात किसको कहूँ ? किसके आगे जाकर आँसू बहाऊँ ? अपनी समस्या किसे बताऊँ ? आप आईं। अब पता चलेगा आपको मेरी समस्या। रहने के लिए कोई जगह नहीं। चौतारी साइली के मवेशीखाने के ऊपर रह रही हूँ। एक गाय

है जो कल बच्चा देने वाली है उसको दूसरे की बारी में रख रही हूँ। रात-बिरात क्या होगा सोचती रहती हूँ। आँधी तूफान आ जाए तो रात भर सो नहीं पाती। साहस कितना भी हो, बाजुओं में कितना भी दम क्यों न हो व्यवहार ठीक नहीं तो कुछ नहीं किया जा सकता। आगे जाकर बच्चे शाप देंगे सोचकर मन घबराता रहता है।

इसी घर के आंगन में बचपन बिता था तुलसा का यहीं पली बढी, अभी वह माँ बनकर बच्चों के भविष्य की चिंता कर रही है। इस घर के परिवेश और पालन पोषण ने उसको इतनी स्वाभिमानी बना दिया देखकर मुझे खुशी हुई। तुलसा के बोली में अभी भी पूर्ण विराम नहीं।आँखभर आँसू लिए वह लगातार अपने मन की पीडा बाहर निकाल रही थी लेकिन मैं उलझन में परती जा रही थी।

संयोग कहूँ या विधि का विधान, मेरी आँखें सीधे आगे के चदरे की छत वाले एक घर पर जाकर रुकती है, कुछ देर मैं अपने आप में खोई रही। फ़िर अचानक एक निर्णय लिया। बिना कुछ सोचे समझे मैंने तुलसा को कहा- अब तुम निश्चिन्त हो जाओ। ये घर आज के बाद तुम्हारे जिम्मे। ऊपर में रहना और नीचे गाय बांधना। चौतारा की तरफ़ जो खेत है वह भी तुम ही उपयोग करना। खेत से आनेवाली थोड़ी बहुत कमाई से तुम्हारे परिवार का खाना हो जाएगा। बेटा-बेटी को स्कूल भेजना। मैं जब दूसरी बार आऊँगी तो तुम्हारा साहस परीक्षण करूँगी।

मेरी अप्रत्याशित बात सुनकर तुलसा जो अभी तक लगातार बोले जा रही थी अचानक रुक जाती है। वह विस्मित और निशब्द होकर कुछ देर मुझे देखती रही। और फ़िर घूमते हुए घर को निहारने लगती है। पश्चिम से तीर जैसे गिरती सूरज के किरणों की प्रकाशित आवास तुलसा को वैसे ही छोड़कर मैं अपने वास गन्तव्य की ओर निकलती हूँ।

कुछ दिन के बाद घर व्यवहार, भेंटघाट, टूटे हुए घर की मरम्मत कर मैं लौटने की तैयारी करती हूँ। सोचती हूँ घर की एक फोटो ले लूँ।

घर का मुख्य दरवाजा बंद है। धनसार घर के प्रवेश द्वार की भी मरम्मत करवा दी गई है। लोग काम पर गए हैं स्पष्ट दिख रहा था। नज़र तुलसा को दिए घर की तरफ़ जाती है। ऊपर का तला जहाँ जलावन और फूस रखे जाते थे, उसमें बड़ा छेद था लेकिन वह और मिट्टी से पोत दिया गया है। भीतर प्रवेश करने वाले दरवाजे पर नया ताला लटक रहा है। नीचे शरीर भर सफेद बूंद वाली कैली गाय आराम कर रही थी। गोबर की सुगन्ध हवा में मिलकर वातावरण को जीवंत बना रही है। ऊपर बाँस के खम्बे में एक काला कुत्ता बाँधा गया है। बाँस के लठ से बनाई गई दीवार, आराम कर रही गाय, लाल मिट्टी से पुता हुआ आंगन मन में आत्म संतुष्टि का अनुभव दे रहा है।

घर टूटने की सूचना ने मन को भारी बना दिया था। लेकिन अभी घर टूटने से भी अलग घर बना इस अनुभूति से अभिभूत है मेरा मन।

अनुवादक : कंचना झा

कहानी

पुस्तक

विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला

संपूर्ण गाँव ही कोसी नदी की बाढ़ की चपेट में आ गया। गाँव के गाँव बाढ़ की तेज धार में बह गए। कई लोग अकाल मृत्यु के शिकार हुए तो कई भूख के कारण मर गए। रोग-व्याधि ने जो विभीषिका फैलाई वह अलग। सरकार की ओर से वहाँ के असहायों के लिए पहुँचाई गई सहायता के अतिरिक्त अन्य संघ-संस्था भी अपने-अपने स्वयंसेवक भेजने में आगे आ रहे थे। मैं भी स्वयंसेवकों की टोली के साथ कुनैन, क्लोरोडाइन, पोटाश पर्मेगनेट जैसी दवाईयाँ लेकर एक गाँव में पहुँचा।

बनारस से चलते समय ही हम लोगों ने सारी योजनाओं के ऊपर विचार-विमर्श कर लिया था। एक इलाके में पहुँचकर वहाँ के विभिन्न गाँवों में जाते हुए दवाइयाँ बाँटने और प्रत्येक स्वयंसेवक के आवश्यकता की सामग्री लेकर जाने की योजना बनी। मैंने दवाइयाँ रख ली, मच्छरदानी भी ले ली। पर दुर्भाग्यवश पुस्तक रखना भूल गया।

जब हम बाढ़ग्रस्त इलाके में पहुँचे तो हर ओर पानी ही पानी था। कुछ झाड़ियाँ पानी के ऊपर सिर उठाए खड़ी थी, जो कीड़े-मकोड़े, चीटियों और अन्य परजीवियों के लिए आश्रय-स्थल बना था। एक-दो टीले, जो पानी में डूबने से बच गए थे, के ऊपर महिला-पुरुष, बालक-बालिकाएँ चीटियों की तरह झुण्ड में उपस्थित थे। रोग और भूख से आकुल-व्याकुल वे लोग इधर-उधर इस तरह गिरे पड़े थे मानों चिता पर लिटा दिए गए हों। इन लोगों में से कई तो सुसुप्तावस्था में ही भगवान को प्यारे हो गए थे, पर पड़ोस में ही चिपककर लेटे हुए अन्य जीवित लोगों को इस बात की सुध कहाँ ? एक व्यक्ति तो उल्टी करते-करते ही पानी में गोता खा गया। बीच-बीच में कुछ लोगों के विलापने की आवाज़ें कानों में पड़ती थीं। यह तो मैंने उस जगह का वृत्तांत बताया जहाँ बाढ़ का अत्यंत प्रकोप था। सरकारी विज्ञप्ति से प्राप्त सूचना के अनुसार उस स्थान पर लगभग दश हजार लोगों की मृत्यु हुई थी।

हम लोगों ने यहीं पर काम करना उपयुक्त समझा। ज़ोर-तोड़ के साथ काम करने लग गए। हम लोगों का काम था मृतकों के अंतिम संस्कार की व्यवस्था करना, भूखे लोगों को भोजन उपलब्ध कराना और रोगियों को दवा एवं पथ्य प्रदान करना। हम लोगों ने सबसे पहले मृतकों को निकालने का काम किया। इसके बाद जीवित लोगों में से रोगी और निरोगियों का पहचान करने का काम पूरा करने में लग गए। जिन्हें ढोकर निकट के गाँव तक पहुँचाया जा सकता था उन्हें वहाँ पहुँचाया गया और उनके लिए भोजन एवं दवा की व्यवस्था की। अन्य लोगों को बाँध पर ही भोजन पहुँचाने लगे। इस प्रकार अनेक लोगों के प्राण की रक्षा कर पाने पर आश्वस्त होते हुए हम लोग भूख-प्यास की परवाह किए बगैर अथक रूप से दिन-रात काम करते रहे। बाँध पर एकत्रित लोगों को हटाने का हमारा काम तब तक जारी रहा जब तक अंतिम व्यक्ति को वहाँ से निकाल न लिया। इधर बाढ़ का पानी भी घटने लगा। पानी में वह तीव्रता भी नहीं रही, मानों वह भी थककर गतिहीन हो गया हो। जल प्रवाह के पहले का वेग और उधम की तुलना में वर्तमान दृश्य कोई ताल-तलैया की भाँति सुखद दिख रहा था।

हम लोगों का काम पूरा हो जाने के कारण यहाँ से रवाना होने का समय हो चुका था। विगत की दौड़धूप के बाद जो शांति व्याप्त हुई थी, वह हमें उद्विग्न करने लग गई थी, क्योंकि अब कोई काम बाकी नहीं था। बिना किसी काम के रहना असाध्य होता है। मेरे कई सहयोगी लौट चुके थे। कुछ अन्य दूसरे गाँवों में चलायमान थे।

अभी मैं अकेले एक छोटे से गाँव में हूँ। दो-तीन दिन बाद जब सभी उपस्थित होंगे, तभी एक

साथ लौटने की बात हुई है। मैं गाँव में बेकार बैठा हूँ। गाँव में एक प्रकार की शांति होती है, जो हम लोग जैसे शहरी बाबुओं के मन-मस्तिष्क पर एक दवाब का सृजन करती है। एक चिड़िया फुदकते हुए इस डाल से उस डाल पर जाती है। पर यह दृश्य भी दिमाग में एकाकीपन की उग्रता उत्पन्न करता।

मैं एक बूढ़े किसान का अतिथि बना बैठा था। एक जामुन के पेड़ के नीचे खटिया डाल दी गई थी। उसी पर लेटकर मैं दिन बिता रहा था। अपनी कृतज्ञता प्रकट करने हेतु वह मेरे सामने आ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर कहने लगा- 'मैं आप लोगों के लिए कुछ भी नहीं कर पाया बाबू। गाय-भैंस जो भी थी, वह बाढ़ बहाकर ले गई। दूध-दही कुछ भी नहीं है।'

उसके भोलेपन और आतिथ्य भाव से मैं गदगद होकर कहने लगा-'बाबा, आपने अपने आतिथ्य से हमें सदा के लिए ऋणी बना लिया है। मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है।'

पर वह भला मेरी बातों को क्यों मानता। कहने लगा- 'यह कोई निर्धन गाँव नहीं है बाबू। यहाँ आने जाने-जाने वालों को भर पेट खिला सकने की हैसियत रखता है। मेरी दो दुधारु गाएँ बाढ़ में बह गईं। मुझ बूढ़े को अपने लिए भला क्या चाहिए ? अब तो ऊपर जाने के दिन भी आ गए हैं। आने-जाने वालों को कुछ न कर पाने पर दुख पहुँचता है। जब तक वह थी, सब कुछ था, पर अब तो वह भी चल बसी।'

इतना कहते-कहते बूढ़ा बाबा चुप हो गया। मैं कोहनी के सहारे सिर उठाकर उसकी ओर देखता रहा। बूढ़ा बाबा अपनी झोपड़ी की ओर चल पड़ा और कुछ देर बाद झोपड़ी की दहलीज के पास बैठ गया।

मैं फ़िर आकाश को निहारते हुए जामुन के पेड़ के पत्तों को गिनने लगा। आलस्य महसूस हो रहा था। जम्हाई आ रही थी। शाम तक एक-दो मित्रों के आ पहुँचने की भी संभावना है। दूर-दूर तक जहाँ तक नज़र पहुँचती, पानी ही पानी था। उस पर सूरज की रोशनी झिलमिल कर रही थी। विरक्तिपूर्ण वातावरण था। मैं पुस्तक लाना भूल गया था। पुस्तक होती तो समय बीतने का अहसास ही न होता। कभी-कभी घर की याद आती। उधर वह बूढ़ा झोपड़ी के दरवाज़े पर बैठकर एकटक से एक ओर देख रहा था।

कहीं जाने पर भी एक-दो पुस्तक ले चलने की मेरी आदत है। पर इस बार भूल गया। रोमाँ रोला का जीन क्राइष्टोफर पढ़ने की इच्छा थी। एक-दो अध्याय पढ़ भी चुका था। आजकल उस किताब की काफ़ी चर्चा है। पुस्तक की याद आने पर तो मैं और अधिक विचलित होने लगा। समय बिताना अब और अधिक मुश्किल होने लगा। पुस्तक होती तो पन्ने पलटते हुए समय बिताना कठिन नहीं होता। पर इस निरक्षर गाँव में पुस्तक कहाँ मिलती ? मैं कभी उठकर बैठता तो कभी लेटकर आँखें मूँद लेता। बूढ़ा काफ़ी देर तक मुझे देखता रहा और मेरी बेचैनी समझकर फ़िर मेरे पास आया। मैंने कहा- 'बाबा, दिन काटना कठिन हो रहा है।'

बूढ़ा ने कहा- 'हाँ बाबू, अब तो कुछ काम भी रहा नहीं। कहीं घूमने निकलने की सोचें तो हर ओर अभी भी पानी ही पानी है, नहीं तो यहाँ सैर करने के लिए बहुत ही बढ़िया जगह है। वो जो सखुआ का पेड़ है न, उसके पास एक तालाब है।'

मैंने कहा-'पुस्तक होती तो बैठकर पढ़ता रहता।'

मेरी बातों से उसका चेहरा खिल उठा। कहने लगा-'हाँ, एक पुस्तक तो मेरे पास भी है। हरिहर जिस साल वह पुस्तक लाया था, उसी साल वह चल बसा।'

इतना कहते हुए वह पुस्तक लेने के लिए झोपड़ी के अंदर घुसा। मेरी जिज्ञासा बढ़ने लगी। उत्साह का भी संचार होने लगा। मैंने किसी अच्छी पुस्तक की कल्पना तो नहीं की थी, पर साधारण कहानी की पुस्तक होने पर भी उसके अक्षरों पर नज़र तो दौड़ा ही सकता था। शायद शाम तक कोई न कोई मित्र भी आ जाए।

काली स्याह से पुती पुस्तकाकार एक वस्तु लेकर बूढ़ा मेरे पास आया और मुझे देते हुए कहने लगा- 'हरिहर यह पुस्तक ले आया था, लेकिन उसी वर्ष उसकी मौत हो गई। वह बड़ा ही होशियार लड़का था, हमेशा पुस्तक पढ़ता रहता और इसे देखता रहता। मुझे उससे बहुत उम्मीदें थीं। पर ऊपर वाले ने उसे मुझसे छीन लिया। उसकी याद में मैंने यह पुस्तक छज्जे के नीचे दबाकर रख दी थी। आज मेरे बेटे द्वारा लाई गई पुस्तक काम आ ही गई।'

बूढ़ा हाथ जोड़कर यह सब बखान कर रहा था। मैं सिर झुकाते हुए पुस्तक पर नज़र दौड़ा रहा था। डॉ. एस.के. बर्मन (डाबर) के द्वारा तैयार की गई वह १९२६ साल का सूचीपत्र था। दम के लिए श्वासारी, मलेरिया के लिए जूड़ीताप.....।

अनुवादक : प्रकाश प्रसाद उपाध्याय

कहानी

संझली भाभी

शशी चालिसे

छोटा परिवार सिर्फ़ दो घरवाला-घरवाली भैया हमेशा अपने समय पर ऑफिस जाते। बच्चे-बच्ची नहीं थे। सझली भाभी का दैनन्दिन घर का काम काज करना और माल-मवेशी की देखभाल करना मात्र था। भैया तो थोड़ा-बहुत अक्षर भी पहचानते थे पर भाभी तो बहुत ही भोली और निरक्षर थीं। भोलेपन का लाभ आहिस्ता-आहिस्ता औरों ने भी उठाना शुरू कर दिया। बेचारी सझली भाभी के दुख के दिन शुरू होने लगे। सुबह जल्दी ही उठकर घर का काम-काज पूरा करके पति को खिला-पिलाकर घर के काम समापन पश्चात् खेती-बारी के काम में जाना, गाय-मवेशी के लिए घास-पात की जुगाड़ करना उनकी दैनिकी थी। दिन बीतता गया। भैया के अन्दर क्रमिक रूप से परिवर्तन आने लगा। वे पहले-पहले सज्जन थे। सझली भाभी को बहुत प्यार करते थे। आहिस्ता वे नशे की लत में पड़ने लगे। बेवजह शाम के वक्त ऑफिस से घर लौटने पर भाभी को बेधड़क गाली-गलौज करना मारना-पीटना उनकी दैनिकी जैसी थी।

समाज जलती हुई आग ही सेंकती है। उस पर भी पितृसत्तात्मक समाज में तो महिला को और भी समाज के सभी की अवहेलना सहनी ही पड़ती है। उस पर भी पति द्वारा अवहेलित पत्नियां सझली भाभी की दिनचर्या कठिनाईपूर्ण बीतने लगी। उस घर से उन्हीं की देवरानी, जेठानी उन्हें निकालने का प्रपंच रचने लगी। सझली भाभी की मझली जेठानी किस प्रकार उन्हें वहाँ से निकाला जा सकता है, ऐसे बहाने ढूँढ़ने में एकदम सिद्धहस्त थीं। वही मझली जेठानी ने अपने मामा की बेटी को सौतन के रूप में अपने देवर के साथ गांठ बांधी। जब एक महिला सौतन के रूप में प्रवेश करती है, वह अपना चरित्र घर के अन्दर प्रवेश करते ही दिखाना शुरू कर देती है। उस हँसते-खेलते शांतिमय घर के अन्दर दैनिक अकारण झगड़ा होने लगा। भैया का पहली पत्नी को बेवजह पीटना चोटी खींचना, दूसरी पत्नी की बातें सुनकर मनमाने तौर पर गाली-गलौज करने पर नजदीक की ही एक दयालु माँ का मन बहुत ही व्यथित हुआ। वे उस निष्ठुर बने भैया को कितना समझाने की कोशिश की। पर भैया सिर्फ़ दूसरी पत्नी के सिवा किसी की भी बातें सुनने के ही पक्ष में नहीं हुए। दूसरी पत्नी का पहले पति से एक बेटी है और यहाँ पर भी एक बेटी को जन्म देती है। बिना संतान के घर में संतान जन्माने का मूल्य ही अलग होता है। उस पर भी छोटी अब तो भैया को कौन छू सकता है। वे दिन-प्रतिदिन सझली भाभी को जंगली व्यवहार दिखाने से पीछे नहीं पड़ते। रात-दिन उस शान्त घर में होने वाले कलह की असहनीय चर्चा-परिचर्चा गाँव में शुरू होती है। फ़िर भी भैया को उसकी परवाह नहीं है। हमेशा शाम हुई नहीं कि कोलाहल, रोना-धोना, गुहार आदि शुरू हो जाते। बेचारी सझली भाभी, उन्हें तो घर में टिकना ही मुश्किल हुआ। फ़िर वे सभी दुखों-कष्टों को सहकर भूखे-प्यासे खुद ब्याहकर आए हुए घर में खाने-लगाने तक की किल्लत के बावजूद दिन काट रही थीं।

एक दिन की बात है शाम को भैया ऑफिस से घर आए। सौतन की बातें सुनकर निर्दयी बने हुए भैया सझली भाभी के प्रति और क्रूर होते जा रहे थे। उसी दिन की शाम सझली भाभी की सौतन ने भैया को सझली भाभी की नाना प्रकार की कही-अनकही बातें लगाकर पहने हुए कपड़ों को चिथड़ा-चिथड़ा कर नंगा करके उन्हें उस घर से निकालने के लिए कहा। वे पहली पत्नी को पीटने पर गर्व करने लगे उस पर भी घर से ही घर निकाला कराने पर पास-

पड़ोस, इष्ट-मित्र को बुलाकर दावत देने की योजना बनाई। कहते हैं– 'पाप छप्पर फाड़कर बोलता है' सो दूसरी पत्नी की कोख से दूसरी संतान का जन्म हुआ। लेकिन वह बच्चा अपांग निकला। पहले बड़ी को पीटने वाले भैया नशे में धुत्त छोटी को भी पीटने से बाकी नहीं रखा। उसने दिन-दहाड़े शराब-दारु पीकर गाँव-घर, आस-पड़ोस सभी को सताने लगा। आखिर उसे सभी गाँव वालों ने मिलकर पुलिस के हवाले कर दिया। एक को खाने वाला बाघ दूसरे को भी खाता है। न खाकर भी क्यों छोड़े। सझली भाभी को जिस प्रकार घर से निकलना पड़ा भैया की भी वही गति हुई।

अनुवादक : पूनम झा

कहानी

सोलह साल बाद

संध्या पहाडी

'बाढ़ में सब कुछ बहा जा रहा है, बचाओ..... बचाओ..... कोई तो मदद करो !'

रात के बारह बजे चिनीमाया अचानक नींद में चिल्लाई। नौ साल की उमर में कदम रखने के समय से ही वह घर और उसी मंदिर के भीतर बसने वाले उनके देवता– घर से ही जुड़ा हुआ मवेशीखाना, उसके अंदर के मवेशी, थोड़ा-सा हटकर मुट्ठी बोकर ढकिया उपजने वाला गोरहा खेत, सब कुछ पल में बहाकर बाढ़ ने रेतीला मैदान बना दिया। उनके सपने के समान कुछ बाकी न रहा, सब समाप्त।

चिनीमाया के साथ ऐसा अकसर होता है। उनके गाँव छोड़कर इस शहर में आए हुए पिछले फागुन में पंद्रह साल पूरे हो गए। इस बीच में उन्होंने उस गाँव और वहाँ के सगे-संबंधियों को जागती आँखों से अगर याद किया है तो बस नफ़रत से। अपने अंदर की श्रद्धा, प्रेम, ममता सब कुछ उन्होंने बहा दिया अपने आँसू की धारा के साथ। अब तो वे यादें बस पुराने घाव की तरह ही बाकी हैं। मगर सपना क्यों अपने वश में नहीं है ? जिन्हें जागते हुए कभी भी याद न करने और न देखने की सोची, वे ही क्यों आ जाते हैं सपने में सताने के लिए ? क्यों वही गाँव और रिश्तेदार, जो किसी समय दिल के टुकड़े की तरह थे, सपना बनकर छलावा करने आ जाते हैं ? क्यों देखती हूँ मैं ऐसा सपना ? चाहे कुछ भी हो जाए, उनकी और उस गाँव की मुझे कोई परवाह नहीं है– चिनीमाया उठकर एस सुर में बड़बड़ाती हैं।

"चिनी दीदी, क्या हुआ ? फ़िर कोई बुरा सपना देखा क्या ?"– बड़बड़ाने की आवाज़ सुनकर बगल के कमरे से आवाज़ देती हुई झटपट सम्झना चिनीमाया के कमरे में पहुँची।

"सीने में तकलीफ़-सी है सम्झना।"– आँखों से बहते हुए आँसू पोंछती हुई चिनीमाया ने कहा– "बहन मुझे यहाँ सुकून है, मैं उन पापियों और उनके गाँव को याद तक नहीं करना चाहती, फ़िर क्यों इस कदर वे सपना बनकर.... ?"

टेबल पर रखे लोटे से चिनीमाया को पानी पिलाते हुए सम्झना कहती है– "दीदी, आप चाहे जितना भूलने की कोशिश कीजिए, वह गाँव और वहाँ के लोग आप के अपने हैं, आपकी नातेदारी है उनके साथ, संयोग यही है। इसीलिए चाहे जितना भुलाने की कोशिश कर लीजिए, घृणा कर लीजिए, आपके अवचेतन मन में वे चिपककर बैठे हुए हैं, यह मन 'वहाँ क्या हो रहा है, कुछ बुरा तो नहीं हो रहा ?' यही सब सोचता है, इसीलिए बार-बार ऐसा सपना आपको दिखाई देता है और आप डर जाती हैं। इसी हफ़्ते मेरा पश्चिम विज़िट का कार्यक्रम है, आपको भी लेकर जाऊँगी। आपका गाँव भी रास्ते में ही है। वहीं जाकर एक बार अपनी आँखों से सब कुछ देख लेने पर ज़रूर आपको राहत मिलेगी।"

"लेकिन सम्झना, मुझे नहीं देखना उन पापियों का मुँह....।"– इससे पहले कि चिनीमाया अपनी बात पूरी करती, सम्झना ने ज़ोर देते हुए कहा– "मैंने कई बार कहा लेकिन आपने नहीं माना, इस बार आप ना नहीं कर सकतीं। चलिए रात बहुत हो चुकी है, अब सो जाइए। फ़िर कोई मुश्किल हुई तो मुझे बुलाइएगा।"– कहती हुई सम्झना अपने कमरे में आकर पलंग पर लेट गई और आँख बंद करके सोने की कोशिश करने लगी लेकिन १६ साल पुरानी यादें सिनेमा के दृश्य की तरह उसकी बंद आँखों के इर्दगिर्द घूमने लगे।

उस दौरान सम्झना और सरोज का ब्याह हुए ४ साल बीत चुके थे और इस दरमियान सम्झना के

दो बच्चे हो चुके थे– एक बेटा और एक बेटी। काठमांडू का शिक्षित, सुसंस्कृत परिवार। एक स्त्री को विवाह के बाद ससुराल में प्राप्त होने वाले सभी सुख-सुविधा सम्भ्रना को प्राप्त थे। कोई कमी नहीं थी। लेकिन इन सब के बावजूद उसके भीतर एक उदासी ने जड़ें जमा रखी थीं और धीरे-धीरे वह डिप्रेशन का शिकार हुए जा रही थी। पति, सास, ससुर, ननद, माँजी सबका प्यार, बच्चों का सुख, इन सब चीज़ों को ही सुख माने जाने वाले समाज में उसे अलग ही सुख की खोज थी, प्यास थी, जीवन में कुछ करने की, अपना अस्तित्व स्थापित करने की।

ऑस्ट्रेलिया से सोशल सर्विस में मास्टर्स करके नेपाल लौटने पर सम्भ्रना ने बहुत सारे सपने सँजोए थे। बचपन से ही कुछ अलग और खास करने की सोच वाली सम्भ्रना ने समाज सेवा में खुद को समर्पित करने का मन बना रखा था लेकिन उसके माता-पिता दूसरे माँ-बाप की तरह ही वयस्क हो चुकी बेटी के बोझ को हटाकर निश्चिंत हो जाना चाहते थे। "अच्छा लड़का है, शिक्षित परिवार है, शादी के बाद भी तुम्हारे मन मुताबिक काम करने में कोई रोक-टोक नहीं करेंगे, उन्होंने खुद कहा है। आखिर शादी एक दिन करनी ही है तो इतना बढ़िया मौका भला क्यों चूकना ?– माता-पिता के मनुहार के आगे सम्भ्रना का पालक की तरह गल जाना भी अस्वाभाविक न था।

विवाह के बाद सब कुछ अच्छा ही चल रहा था। किसी बात का बंधेज तो नहीं था मगर एक बात सास ने शुरू में ही साफ़ कर दी थी – "हम पोते-पोती का मुँह देखकर ही मरना चाहते हैं और इसलिए तुम लोगों को हमारी इच्छा पूरी करनी होगी।" ससुर ब्लडप्रेशर और शुगर की चपेट में थे और सास आस्थमा की। बावजूद इसके भरसक दूसरों को तकलीफ़ न देने का स्वभाव था दोनों का। पति सरोज शर्मा सरकारी दफ़्तर में इंजीनियर, कभी पूरब तो कभी पश्चिम, काठमांडू में रहने पर भी सुबह ८ बजे से रात के ८ बजे तक दफ़्तर के कामों में ही व्यस्त। सम्भ्रना को घर की देखभाल न करते बनता न छोड़ते बनता। कशमकश के हालात बने हुए थे। फ़िर भी उसने 'चेतना' नाम से एक सामाजिक संस्था अपने ही नाम पर दर्ज कराकर समाज सेवा के क्षेत्र में काम करना शुरू किया था। लेकिन अपने अंदर की सृजन शक्ति ने उसे ममता के सरोवर में सराबोर कर दिया। वह बेटी की माँ बन चुकी थी। 'सिर्फ़ बेटी से नहीं होगा, बेटा भी चाहिए'– सास का कथन, 'जो भी हो एक साथी तो चाहिए न'– ससुर का विचार और पति भी इसी पर सहमत थे। आखिरकार दूसरी संतान के रूप में बेटे का भी आगमन हुआ। सबकी मुरादें पूरी हुईं। लेकिन घरायसी कामों में सम्भ्रना की व्यस्तता और बढ़ गई। बीमार सास-ससुर, छोटे-छोटे बच्चे सब उसी के ज़िम्मे थे। भले ही सास-ससुर कुछ बोलते नहीं थे मगर उनके मन की इच्छाओं को वह बखूबी समझ लेती। मायके में बार-बार खुद सम्भ्रना की माँ भी उसे समझाती– "देखो बेटा, घरायसी ज़िम्मेदारियों को छोड़कर समाज सेवा करता फ़िरना ठीक नहीं होगा, नौकरों के भरोसे छोड़ना सही नहीं है, कुछ सालों के लिए अपने करियर को भूल जाओ, दो-चार साल के बाद अपना काम भी कर लेना। इस तरह सम्भ्रना के लिए कोई रोक-टोक न होने पर भी वातावरण खुद-ब-खुद प्रतिकूल बनता जा रहा था।

एक मन कहता कि वह कुछ साल घर-परिवार को ही दे लेकिन समय के साथ न चल पाने की फ़िक्र से वह अंदर ही अंदर चिढ़ती रहती, सुलगती रहती। धीरे-धीरे वह खोई-खोई-सी रहने लगी, कम बोलने लगी। सम्भ्रना में आए बदलाव से सरोज भी कुछ दिनों से चिंतित था। इस बार गुल्मी जाते वक्त सम्भ्रना को भी साथ लेकर गया ताकि वह थोड़ी ताज़ा हो जाए। दो दिन गुल्मी में रहने के बाद काठमांडू लौटते वक्त रास्ते में एक महिला मिलीं, जिन्होंने सम्भ्रना के असहज जीवन को सहज बना दिया, वही महिला हैं चिनीमाया दीदी। रुरु क्षेत्र का बखान सम्भ्रना ने सिर्फ़ किताबों में पढ़ा था और उसी क्षेत्र में खुद को पाकर सम्भ्रना का मन थोड़ा आनंदित हुआ। कालीगंडकी में नहाकर ..... के दर्शन कर सरोज के साथ सम्भ्रना पाल्पा होते हुए काठमांडू की यात्रा में थी। अनायास उनकी कार के आगे एक महिला रोती-चिल्लाती हुई आ पहुँची। उनके आगे-पीछे लोगों की भीड़ खदेड़ती हुई आ रही थी। ड्राइवर झुंझलाया– "कैसी पागल औरत है, अभी गाड़ी ने नीचे आ जाती, मैंने झटपट ब्रेक लगा दी इसलिए, वरना....।"

"मुझे मत मारो, मुझे जीनें दो, मैंने किसी का कुछ नहीं विगाड़ा है। मैं डायन नहीं हूँ, मैंने किसी को नहीं मारा। मुझे वचा लीजिए, ये लोग मुझे मार डालेंगे।"– सम्झना जल्दी-जल्दी कार से वाहर निकली और उस महिला को आगोश में भर लिया। इतने में ही लोगों की भीड़ वहाँ आ पहुँची और ईंट-पत्थर वरसाने लगी। "इसे गाँव से निकालना ही होगा, मल-मूत्र खिलाना होगा ऐसी पापिन को।" दूसरी चिल्लाई– "शक तो पहले से ही था इस औरत पर लेकिन आज उस ओझा ने दूध का दूध और पानी का पानी कर दिया। अपनी ही बहू को मारने की साज़िश कर रही थी यह बीमार बना बनाकर। मुझसे ही तो बकवाया था ओझा ने। मुझे काँपते हुए खुद इसके बेटे ने देखा था, यकीन न हो तो पूछ लीजिए।"

बातों से ही साफ़ हो रहा था कि चिल्लाने वाली औरत उसकी बहू थी और पास खड़े होकर यह सब देख रहा करीब तीस-बत्तीस साल का युवक उसका बेटा, जो मूक दर्शक बने सब देख रहा था। उसे देखकर ऐसा लगता था कि माँ ने ऐसा क्यों किया सोचकर दुखी था लेकिन ओझा पर उसका गहरा विश्वास भी था। "चलो इसे विष्ठा खिलाकर गाँव से निकाल दो।"– कहती हुई एक औरत आगे बढ़ी। सम्झना कार से निकलकर उस पीड़िता को बाजुओं में जकड़ लिया। कितना दर्दनाक दृश्य ! इंसान का इंसान पर यह कैसा बरताव !

"कोई आगे बढ़के दिखाए, मैं काटकर रख दूँगी।" कहते हुए सम्झना ने अपने बैग से छोटी-सी छुरी निकाली और गरजने लगी– "किस आधार पर आप लोग इनपर इतना संगीन इल्ज़ाम लगा रहे हैं, क्या सुबूत है ? एक कथित ओझा पैसे के लिए कुछ भी बोल सकता है। कोई बिना प्रमाण कुछ कह दे तो क्या मान लिया जाएगा ?"– सम्झना आपे से बाहर हो गई।"

"मैं इसकी बहू हूँ, मेरे ही शरीर पर सवार होकर यह बकी है। प्रमाण यही है"– वही महिला चिल्लाई।

"आपके मन में यह बात घर कर गई है कि आपकी सास डायन है और ये ही आपकी बीमारी की वजह हैं, इसीलिए आप खुद यह बात बोलीं।"– सम्झना समझाने की कोशिश करती है।"

"रहने दीजिए, इतनी रहम खाती हैं तो अपने ही घर ले जाकर क्यों नहीं पालतीं इस डायन को। हम तो इसे किसी भी हालत में अपने घर में नहीं रहने देंगे।"

उसके बाद सम्झना ने उस महिला को अपनी कार में बिठाया और ड्राइवर से चलने के लिए कहा। सरोज यह सब कुछ चुपचाप देख रहा था। ऑस्ट्रेलिया में ही स्कूल के बाद की पढ़ाई पूरी कर नेपाल लौटी हुई सम्झना को नेपाल में समाज सेवा के क्षेत्र में काम करने की इच्छा थी। दुखी, पीड़ितों के लिए कुछ करने का मन तो था लेकिन इतनी पीड़ित महिलाएँ नेपाल में मौजूद हैं, इस बात का तो उसे खयाल तक न था। उसी दिन उसने अपनी इच्छा को संकल्प में बदला, महिला हिंसा के विरुद्ध दृढ़ता के साथ आगे बढ़ने की ठान ली।

डायन के आरोप में कई दिनों से भूखे पेट तड़पती रही चिनीमाया सम्झना की देखभाल और पालन-पोषण की बदौलत एक महीने में ही कुछ और ही दिखने लगी। वह बेचारी बस भूख और शोक के कारण ही वास्तविकता से अधिक बूढ़ी दिख रही थी। हाल ही में ५० की उम्र को पार किए हुए चिनीमाया धीरे-धीरे सम्झना के घर के काफ़ी सारे काम-काज संभालने लगीं। सम्झना के बीमार सास-ससुर और बच्चों की देखभाल से लेकर घर के बाकी कामों में भी चिनीमाया के आने से सम्झना ने राहत की साँस ली।

"दीदी, मैं यहाँ आपको घर में काम करने के लिए नहीं लाई हूँ। इतना ज़्यादा काम मत कीजिए। इसकी बजाए बारहखरी की किताब मैंने आपको दी है, उसे पढ़ा कीजिए।" सम्झना खुद उन्हें फ़ुर्सत में बारहखरी पढ़ाया करती थी।

सम्झना बहन तुम्हारी वजह से मुझे पुनर्जन्म मिला है, ऐसी दरिया दिल इंसान के घर में मैं अगर थोड़ा-बहुत हाथ बँटाती हूँ और उस इंसान को उसके अपने कामों में आसानी होती है तो भला मैं क्यों न करूँ ? तुम इसे गलत न समझो, बल्कि मेरे ही जैसी हज़ारों पीड़ित महिलाओं की मदद के लिए आगे बढ़ो। और उस समाज सेवा के लिए अगर घर में मैं तुम्हारी थोड़ी-बहुत मदद कर लूँ तो उस सेवा में मेरा भी कुछ योगदान हो जाएगा।"

चिनीमाया की बातें सुनकर सम्झना हैरान रह गई। उसने सोचा, अनपढ़ और अजीब-से गाँव में पैदा होकर भी इतना भला विचार पालना ही बहुत

बड़ी बात है।

उसके बाद से सम्झना को कभी भी पीछे मुड़कर नहीं देखना पड़ा। सम्झना शर्मा और उसकी संस्था 'चेतना' ने दुनिया भर में शोहरत हासिल की। काफ़ी सम्मान दिलाया। अपनी इस कामयाबी के पीछे सम्झना जिस नाम को हमेशा याद करती रही, वह हैं चिनी दीदी। किसी वक्त मायूस होकर तनाव में आ चुकी सम्झना में और प्रसिद्धि का शिखर चूम रही आज की सम्झना में ज़मीन आसमान का फ़र्क था। उसकी सामाजिक संस्था चेतना की शाखाएँ नेपाल के सभी ज़िलों में हैं। ज़िलों के काम संबंधित ज़िलों की ही महिलाओं पर सौंप दिए गए हैं। ऐसा करने पर स्थानीय स्तर पर क्या हालात हैं और क्या किया जा सकता है, ये सारे विवरण आसानी से प्राप्त किए जा सकने का विश्वास है सम्झना को। उसे तो आजकल कभी अमरीका तो कभी यूरोप, कभी महिला से संबंधित सेमिनार में तो कभी क्लास लेने जाने से ही फुर्सत नहीं है। मगर इस बार सम्झना पश्चिमांचल की शाखा का निरीक्षण करने की यात्रा में चिनीमाया को भी साथ ले गई है।

'चिनी दीदी के बहू-बेटे, पोता-पोती सभी उसी गाँव में होंगे। उन्होंने एक बार भी क्यों इनकी खोज-तलाश नहीं की ? क्या अभी भी वे पहले की तरह ही बरताव करेंगे ? इतने सालों के बाद तो ज़रूर उनके मन से अंधविश्वास हट चुका होगा।' यात्रा भर चलती गाड़ी के साथ ऐसे ही सवाल सम्झना के मन में कौंधते रहे। रोशनी के घूँघट हटाने से पहले ही शुरू हुई यात्रा उसी भंज्यांग (चारों ओर पहाड़ उठे हुए स्थान) के पास जाकर रुकी, जहाँ सोलह साल पहले सम्झना को चिनीमाया मिली थीं। उनके वहाँ पहुँचने तक रात ने आहिस्ता अपना साम्राज्य फैलाना शुरू कर दिया था। रास्ते भर मौन साधी हुई चिनीमाया के शब्द सहसा फूटने लगे– "वहाँ, उस चबूतरे वाली जगह से ऊपर की तरफ़ जाना पड़ेगी, ऊपर तो गाड़ी जाएगी नहीं।"

ड्राइवर को उसी चबूतरे के पास गाड़ी साइड लगाने के लिए कहकर सम्झना चिनीमाया के साथ गाड़ी से उतरी। एक रस से आती हुई पतिंगे की आवाज़ के साथ धीरे-धीरे ससर रही रात की गति में दूर-दूर तक भी कोई अन्य ध्वनि सुनाई नहीं देती लेकिन चिनीमाया अपने भीतर के कोलाहल को थामे सम्झना के साथ उतराई पार करती रही। थोड़ा नीचे आने के बाद एक पनघट पर पहुँचकर वे कुछ महसूस करके अटक गए। पनघट से पानी की आवाज़ के साथ मिलकर एक और ध्वनि सुनाई दे रही थी, जो संभवतः किसी इंसान की सी लग रही थी।

"इस सुनसान पनघट पर इस समय भला कौन रो रहा है ? देखो तो रामु, वहाँ कोई इंसान है शायद।"– सम्झना ने ड्राइवर से कहा। सभी उस आकृति के समीप पहुँचे।

"कौन हो तुम, क्यों इस तरह रो रही हो ?" सम्झना के ऐसा पूछने पर वह और फूटफूटकर रोने लगी– "मुझे सबने मिलकर घर से निकाल दिया। अब मैं इस उम्र में कहाँ जाऊँ। बेटा मर गया, बहू ने डायन की लांछना लगाकर घर से निकाल दिया। गाँव वाले भी डायन कहकर मुझसे नफ़रत करते हैं। मेरा तो मायका भी नहीं है। कहाँ जाऊँ, क्या करूँ ?"

चिनीमाया चौंकी, उन्हें यह आवाज़ जानी-पहचानी-सी लगी। उन्होंने झट से बैग से छोटा-सा टॉर्च निकाला और उसके चेहरे पर रोशनी की।

"उई माँ ! रमा तुम ?"– चिनीमाया ने हैरत भरे लहजे में पूछा। वह महिला और कोई नहीं, बल्कि चिनीमाया की ही बहू थी, जिसने सोलह साल पहले चिनीमाया को ऐसी ही लांछना लगाकर गाँव से खदेड़ दिया था। मगर आज वह खुद .....।

"माँ जी !"– रमा भी सन्न रह गई।

"कैसे हुई तुम्हारी यह हालत, बहू ?"

"माँ जी, गाँव वालों ने मुझे डायन का आरोप लगाकर गाँव से भगा दिया।"– रमा बिलखती रही।

"क्या करोगी अब ? मुझे डायन कहकर तुमने ही मुझे गाँव से निकलवाया था और आज तुम्हें भी लोगों ने इसी कलंक के साथ खदेड़ दिया।"

"हे भगवान ! इतने साल बाद भी यहाँ का समाज वैसा का वैसा ही रह गया।"– सम्झना बोली।

उस महिला के रोने की मात्रा और बढ़ती गई। सम्झना एकटक देखती रही, कभी चिनीमाया को और कभी उनकी बहू को।

अनुवादक : मुकेश कुमार मिश्र

कहानी

गली की खिडकी

सुषमा मानंधर

"तू कितनी भाग्ईशाली है, काठमांडू में घर, इतनी सारी सम्पति, कमानेवाला पति और दो प्यारे प्यारे बच्चे। तुझे किस बात की चिंता है ?" तृष्णा की बहुत सी सहेलियाँ उसे ऐसा ही कहती हैं। देखने वालों की आँखों में उसे किसी बात का दुःख नहीं है। खाने पीने की कोई कमी नहीं। बड़े परिवार के झंझट भी उसे झेलना नहीं पड़ता है। काठमांडू के सीने में बना हुआ चार मंजिला आलिशान घर में आराम से रहती है वह। चार जनों का छोटा सा परिवार, किसी भी चीज़ की कोई कमी नहीं। फ़िर भी उसे लगता था, जैसे पीछे कुछ छूट रहा हो। भौतिक उपलब्धियों को ही सब कुछ मानने वालों की इस दुनियाँ में सभी चीज़ें प्राप्त होने पर भी आखिर उसे किस चीज़ की कमी है... बहुत कोशिश करने के बावजूद वह पता नहीं लगा पाई है।

वॉशिंग मशीन से लेकर डिशवॉशर तक, और बहुत सारे अत्याधुनिक सर-सामानों से घर भरा पड़ा है। उसे अपने घर में कोई भारी काम भी नहीं करना पड़ता है। सुबह शाम घर में अगर खाना भी नहीं बनाती तो करने को कुछ भी नहीं था। इसलिए रिश्तेदारों के बहुत कहने पर भी उसने अभी तक घर में काम वाली बाई नहीं रखी है।

उसका लड़ का दो साल से कनाडा में और लड़की यहीं पर बारहवीं में पढ़ रही थी।

पति बड़ा व्यापारी होने के कारण दिन भर अपने बिजनस फर्म पर व्यस्त रहता था। सुबह खाने के बाद, तृष्णा पूरी तरह से फुर्सत में रहती थी। सिर्फ़ घर के कामों से कितना दिल बहलता ? 'लोगों को सिर्फ़ पैसों से ही सबकुछ मिलता नहीं है', वह अकसर सोचती थी।

"कौन सी मुश्किल है। किसी क्लब, सामाजिक संस्था का सदस्य बन लेना, वक्त यूँ ही कट जाएगा। हम लोगों को यही दो घड़ी का वक्त न मिलने का रोना है।" कभी-कभी अपने दिल की बात कहने पर उसका पति उसे ऐसा ही कहता था। उसके कहे जैसा वक्त आसानी से कट जाएगा, यह सोचकर तृष्णा ने किसी संस्था में काम करने की भी सोची थी, लेकिन बाद में जब चाहा तब वक्त न निकाल पाने के डर से उसने काम नहीं किया। एनजीओ में काम करने वाली अपनी दो-चार सहेलियों को उसने देखा है, जिन्हें हर घड़ी जल्दबाज़ी रहती थी। हर हफ़्ते जैसे पिकी नक, पार्टी और वक्त बेवक्त की मीटिंग और सेमिनार.. जब कभी उन लोगों को आराम से बातें करने घर में बुलाती तो "मीटिंग में जाना है" कहकर भाग जाते थे। हरवक्त भागदौड़ की ज़िंदगी भी उसे अच्छी नहीं लगती थी।

घर में यूँ ही निठल्ली बैठने से अच्छा है कि कोई काम कर लें, यह ठानकर उसने नौकरी भी ढूँढ़नी चाही, "तुम्हें किस चीज़ की कमी है जो तुम नौकरी करना चाहती हो। मैं कमा ही तो रहा हूँ। जो जी में आए खाओ, पियो।" उसके पति का हमेशा यही जवाब होता था।

घर में कोई किराएदार भी नहीं था, जिससे बातें करके वक्त कटता। 'टीवी, पत्रपत्रिकाएँ, खरीददारी और ऐशोआराम...क्या सिर्फ़ यही जीवन है ?' ऐसे शौक की नीरस निरन्तरताओं से वह अब ऊब रही थी।

उसका पति काम से सवेरे ही निकला था, बेटी अभी कॉलेज से लौटकर नहीं आई थी। वह ज़्यादातर सड़क की ओर सटे कमरे में ही होती थी। कभी कभार बाल्कनी और कभी बगीचे में। आज पता नहीं क्या हुआ, वह रसोईघर की गली की तरफ़ खुलने वाली खिड़की साफ़ करने लगी।

पैदल चलने वाले दो-चार लोगों के अलावा वहाँ कभी कभार बाइक के चलने की आवाज़ सुनाई पड़ती

थी, नहीं तो ज़्यादातर उस गली में सन्नाटा ही छाया रहता था।

हाथों में हाथ डालकर घूमने वाले लैला-मजनुओं की जोड़ियाँ सन्नाटे का फायदा उठाकर अपनी माशूका का चुम्बन लेने की चाह में उस तंग गली की ओर आती रहती थीं। खिड़की साफ़ करके जम्हाई लेकर वह खिड़की के पास खड़ी हो गई। छोटी और तकरीबन सुनसान गली अकेली नीचे पसरी हुई थी। आजुबाजु बन रही बड़ी-बड़ी इमारतों के कारण, शहर की बहुत सी गलियाँ दिन के उजाले में भी ठंडी और अंधेरी होती गई हैं। उसके रसोईघर के नीचेवाली गली भी इसका अपवाद नहीं थी।

सच कहें तो, वह गली आगे वाली सड़क का विकल्प मात्र थी। वह गली को अपने जीवन से तुलना करने लगी.... ठंडी, अंधेरी और खुद में खोई हुई अकेली। घड़ी देखी, साढ़े नौ बज गए हैं। लम्बी साँस लेती हुई वह खिड़की से हटने ही वाली थी तब देखा, गली में दूर से कोई लगभग दौड़ता सा आ रहा था। उसने रुककर ध्यान से देखा तो पाया कि अकेला बैग लटकाकर आता हुआ वह युवक बार-बार अपनी घड़ी की तरफ़ देख रहा था। उसका चलने का रंग-ढंग और हड़बड़ाहट देखकर तृष्णा को हँसी आ गई। कम से कम घर से वक्तपर निकलता तो उसे ऐसी जल्दबाज़ी नहीं करनी पड़ती। वह उस नौजवान को तब तक देखती रही, जब तक वह उसकी आँखों से ओझल नहीं हो गई। बहुत दूर तक वह अब भी उसी तरह दौड़ता जा रहा था।

इस से पहले उसने उस युवक को कभी देखा ही नहीं था। 'आज पहली बार वह इस रास्ते से गुज़रा है या और दिन भी गुज़रा हो मगर उसकी नज़र न पड़ी हो '- वह सोचने लगी।

"व्यर्थ की बातें क्यों सोचने लगी हूँ," तृष्णा मन ही मन हँसी और सर झटककर खिड़की से दूर हो गई। बेटी कॉलेज से लौटी नहीं थी। वह उसके वापस लौटने पर साथ खाना खाने के इंतज़ार में बैठ गई। बेटी को घर आते-जाते साढ़े ग्ईारह-बारह तो बज ही जाते थे। अभी तो ग्ईारह भी नहीं बजा, और आगे का आधा दिन अभी और बाकी है। ऊपर से, करने को कोई खास काम भी बचा नहीं था।

क्या करूँ, क्या न करूँ की द्विविधा में उसने टीवी खोला, लेकिन सिरियलों में भी वह अपना दिल लगा नहीं पाई। वह टीवी को वैसे ही खुला छोड़कर बागिचे की तरफ़ चली गई।

"मम्मी खाना खा लिया ?" बेटी के अचानक पीछे से बुलाने पर वह चौंक सी गई। घड़ी की तरफ़ देखा तो पाया की बारह से ऊपर का समय हो चुका था। "नहीं तो, तुम्हारा ही इंतज़ार कर रही थी। आज तुमने आने में देर कर दी।" उसने बेटी से कहा।

"हाँ, कुछ देर के लिए लाइब्रेरी गई थी। मैंने तो कैंटिन में चाउमिन खा लिया है। आप भी खा लीजिए न।"

"कैंटिन का खाना ? अरे उस से क्या होगा ? चलो बैठकर साथ खाते हैं। जितना चाहो खा लेना।" वह बेटी के साथ खाने के लिए बैठ गई।

"खाना खाने के बाद, सुबह का काम भी खत्म हो गई। अब क्या करूँ ?' उसने सोचते हुए सहेली को फोन लगाया। बहुत देर तक रिङ्ग बजने के बाद भी दूसरी तरफ़ से फोन नहीं उठा तो तंग आकर दूसरी सहेली को फोन लगाया। उधर से फोन उठते ही वह शुरू हो गई "क्या बात है ? न फोन, न मुलाकात। तुम लोगों से बातें करने को भी तरस गई हूँ।"

दूसरी ओर से शायद उसकी सहेली फोन का मुँह ढककर आहिस्ता से बोल रही थी, "तृष्णा, अभी मैं एक छोटी सी मीटिंग में हूँ। थोड़ी देर बाद फोन करूँगी।"

फोन रखकर वह सोचने लगी 'सबसे बेकार तो मैं ही हूँ। सभी एक से एक व्यस्त, अपनी-अपनी दुनिया में भूली हुई हैं। किसी के पास भी दूसरे को सुनने के लिए वक्त बचता ही नहीं। पता नहीं आखिर सभी क्यों और किस बात के लिए ऐसी भागदौड़ में लगे हैं।' वह अपने आप से पूछती हैं।

जिस किसी को भी देखो, दौलत के पीछे भाग रहा है। खुद उसके पास दौलत तो है, लेकिन क्या सचमुच वह खुश है ? अपने ही सवाल का उसके पास जवाब नहीं है।

रात में बिस्तर पर बैठकर टीवी देख रहे अपने पति को सुनाते हुए वह बोली, "आज सुबह गली में एक आदमी जिस तरह सरपट भाग रहा था, उसे देखकर बड़ी हँसी आई।" टीवी चैनल में व्यस्त उसके पति को ऐसी बातों में कोई दिलचस्पी नहीं थी। बिस्तर पर दूसरी ओर मुँह फेरकर निँद न आने तक वह मनहीं मन हँसती रही।

उसके बाद हर दिन उसी समय उसका ध्यान अचानक खिड़की की ओर जाने लगा। ठीक साढ़े नौ के आसपास देर सवेर वह युवक उसी गली से गुज़रता था। किसी भी काम में कितना भी व्यस्त क्यों न हो, वह वक्त से थोड़े पहले ही खिड़की के पास खड़ी होना नहीं भूलती।

'यकीनन वह किसी दफ्तर में काम करने वाला होगा' उसका अन्दाजा था। क्योंकि सार्वजनिक छुट्टी के दिन वह उस गली में दिखाई नहीं पड़ता था। 'शक्ल-सूरत से तो मासूम और भले घर का दिखता है, पता नहीं शादीशुदा है या किसी के साथ प्यार-व्यार के चक्कर में फँसा है। कभी नज़र उठाकर तक नहीं देखता, न तो कभी किसी लड़की के साथ आता दिखाई पड़ा है।' तृष्णा उस युवक के बारे में तरह-तरह की कल्पना करने लगती।

अधेड़ हो चुकी तृष्णा के मन में भी आजकल मीठी-मीठी तरंगें उठने लगी हैं। अब उस युवक को दूर से गली की तरफ़ आता हुआ देखते ही उसकी भावनाएँ रंगीन होने लगती हैं। गालों पर गुलाबी रंग चढ़कर दिल की धड़कन अचानक बढ़ जाती है। उसे आजकल बेवजह यूँही सब कुछ अच्छा लगने लगा है। पहले उसका वक्त कटे नहीं कटता था, अब वक्त कैसे निकल जाता है, उसे पता ही नहीं चलता।

काम से वक्त निकालकर वह फुरसत के क्षणो में उस युवक के पहनावे और चेहरे को याद करकर के खयालों में खोई रहती है। तन्हाई में खुद के भीतर कल्पनाओं की उड़ान भरने को कोई मिल गई था उसे।

आज, दस बज चुके थे, लेकिन वह युवक दिखाई नहीं पड़ा है। कहीं आज छुट्टी का दिन तो नहीं, यह पता लगाने के लिए वह रसोई में लटके कैलेंडर को भी दो बार देख चुकी है। अब तो, साढ़े दस भी बज गए। पता नहीं, क्या हो गई।" वह घड़ी देखकर गली में दूरतक झाँकती है।

'कहीं आज कोई बन्द-वन्द तो नहीं, अगर बन्द होता तो बेटी कॉलेज से लौटकर आ चुकी होती, वह तो अभी तक लौटी नहीं है।' तृष्णा उलझन में पड़ गई। अपनी खुल्दुली मिटाने को वह बाहर निकलने को तैयार पति से पूछती है, "सुनिए तो, आज कोई हड़ताल या बन्द तो नहीं है न ?"

"क्या कहती हो, कब से बन्द और खुले का हिसाब रखने लगी तुम ? किस चीज़ का बन्द ? किस बात की हड़ताल ?" उसके सवाल से उसका पति भी अचरज में पड़ गई।

वह बहुत देर तक गली का रास्ता देखती रही...मगर वह युवक नहीं आई। बेटी ने कॉलेज से आकर खाने को पूछा। "आज खाने का दिल नहीं है।" वह डायनिंग टेबल से उठकर फ़िर उसी खिड़की की ओर एक उदास नज़र डालती है। अचानक उसका चेहरा चमक उठा। बाहर गली में वही युवक मोबाइल कान में लगाकर आता हुआ नज़र आई।

उसे देखने की जल्दबाज़ी में वह खिड़की के पल्ले से टकरा गई। "उई माँ..!" सिर को सहलाती हुई वह उस युवक की तरफ़देखने लगी। खिड़की के ठीक नीचे आ चुके युवक ने उसकी आवाज़ सुनी और सर उठाकर ऊपर उसकी तरफ़ देखा। तृष्णा का मन धक से रह गया। उसने दिलपर हाथ रखा तो पाया कि उसका सीना धौंकनी की तरह चल रहा था। उसे यूँ लगा जैसे युवक की पैनी नज़र उसे भेदकर दिल की गहराइ तक उतर गई हो। वह खिड़की से हट गई। मोबाइल पर बात करता हुआ युवक ने मोबाइल बन्द किया और जाते-जाते ऊपर की ओर देखा। 'कैसा भोला और मासूम दिखता है। कितने बरस का होगा।' वह युवक की उम्र का अन्दाजा लगाती हुई खुद को आईने के सामने खड़ी करती है। सोचते-सोचते वह खुद को युवक का हमउम्र कल्पना करने लगी। बारबार उसे युवक की नज़र पीछा करती-सी लगने लगी। पलटकर उसकी ओर देखता हुआ युवक का चेहरा उसकी आँखो के सामने नाचने लगा। वह रात भर सो नहीं पाई, करवटें बदलती रही। पति की बाहों में भी वह उसी युवक को देखने लगी। थोड़ी-बहुत नींद आई भी तो रंगीन और छेड़खानियोंसे भरे सपने... वह खुदबखुद लजा गई।

शनिवार का दिन याद करती है तो, उसका दिल डूबने लगता है। छुट्टी के दिन वह युवक उस रास्ते से नहीं आता था। अगर किसी दिन उसे देख नहीं पाती तो तृष्णा दिनभर बेचैन रहती। वह सोचती थी, कितना अच्छा होता अगर दफ्तरों में छुट्टियाँ नहीं होती...या वह भी उसी युवक के साथ उस दफ्तर में काम करती ...। तब उसकी आँखो के सामने बहुत सारी कामनाओं की रोशनियाँ झिलमलाने लगती थी।

तृष्णा के अंदर उसकी ढली हुई जवानी अंगड़ाइयाँ

लेने लगी। "लगता है, मम्मी को फ़िरसे जवानी चढ़ी है।" एक दिन तृष्णा के डाई किये हुए काले बालों को देखकर बेटी ने छेड़ते हुए कहा।

"ओहो ! बूढ़ी घोडी लाल लगाम, क्या बात है, फ़िर से जवान दिखने की चाह उमड़ आई है।" अपने पके हुए बालों को सहलाते उसके पति भी छेड़ने से बाज नहीं आए।

"अपनी खुशी के लिए क्या इतना भी न करूँ ?"उसने उसी दिन पार्लर जाकर बाल छोटा करवाया। चालिस पार कर चुकी तृष्णा स्टेपकट बाल और आधुनिक कपड़ोंमे अपनी उमर से आधी दिखने लगी।

अब गली की वह खिड़की उसे बहुत भाने लगी, खास कर सुबह जब वह युवक उस रास्ते से गुज़रता था। शाम को उसे वहाँ से गुज़रते हुए उसने कभी नहीं देखा। वह उस युवकसे बोलना चाहती थी, पर तृष्णा के पास उससे बोलने को कोई बहाना भी नहीं था, न ही वह युवक उससे बोलने की कोई कोशिश कर रहा था। वह नज़र भर देखता था बस और चुपचाप अपने रास्ते लग जाता था। तृष्णा हर दिन उसका इंतज़ार करती और उसे आते-जाते देखती रहती। इसी तरह दिन गुज़रते गए।

एक बार हफ़्ता दिन हो चुका था, मगर वह युवक उस गली से नहीं गुज़रा। राह देखते-देखते उसकी आँखे पथराने लगीं। वह कहीं चला गया हो, बिमार पड़ गया या किसी दुर्घटना का शिकार हो गया हो...। मन में अनेक आशंकाएँ एक के बाद एक घर करने लगीं। वह किसी से पूछ भी तो नहीं सकती। न ही घर में ऐसी बातें कर सकती है। घर के सारे काम करते हुए भी उसके भीतर एक खालीपन भरता जा रहा था। बेटी उसे अपनी बातें सुनाती रहती थी, मगर उसके कानों में कुछ भी घुसता नहीं था। पति के साथ निभाने वाले दायित्वों को भी वह केवल औपचारिकतावश पूरा कर रही थी। उसके अंदर आए इस बदलाव से उसका पति भी अंजान न था। उसका कुछ दिनों से मुरझाया चेहरा देखकर वह हैरान तो था, पर न जाने क्यूं इस बात को लेकर उसने टोकने की कोशिश कभी नहीं की।

आज भी वह घर में अकेली थी। पति अभी-अभी बाहर निकला था। बेटी आज कॉलेज में होने वाले प्रोग्राम की वजह से देरसे लौटने वाली थी। उसे भूख नहीं थी, इसलिए रसोईघर की खिड़की के सामने खड़ी होकर गली की तरफ़ देखने लगी। थोड़ा अन्धेरा लगने से गली में ज़्यादा ठंड महसूस होने लगी थी। धुँधले-से उजाले में उसने देखा, गली बिलकुल सुनसान थी। दूर-दूर तक कोई भी दिखाई नहीं दे रहा था। उसका मायूसी भरा दिल डूबने लगा, और आँखे भर आईं। धूमिल नज़रों में उसे लगा कि गली में कोई आ रहा है ... क्या, वही युवक ? उसे विश्वास ही नहीं हुआ। हाँ...वही था ! मगर उसके साथ आज एक और शक्ल भी नज़र आरही थी। वह आँखें फाड़कर देखने लगी। नई नईशादीशुदा जोड़ी की तरह, एक दूसरे का हाथ पकड़कर लाल बूटे वाली साड़ी पहनी वह लड़की कभी इतराती कभी शर्माती उस युवक के साथ आ रही थी। अचानक उसे सीने में जलन महसूस होने लगी। उसका गला भर आया और फूटफूटकर रोने का दिल करने लगा। वह तुरन्त थोड़ा पीछे हट गई और ऊपर से उन दोनों को छिपकर देखने लगी। खिड़की के ठीक नीचे से गुज़रता हुआ युवक अपनी पत्नी से कहरहा था, "डार्लिंग तुम्हें पता है ? इस घर की बुढ़िया मुझे हमेशा ऑफिस जाते वक्त ऐसे निहारती थी जैसे निगलना चाहती हो।" उसके बाद दोनों की हँसी गरम लावे की तरह उसके कानों में पड़ने लगी। उसे लगा जैसे किसी ने खौलता हुआ पानी उसपर उँडेल दिया हो। अचानक उसे अपने अंदर कुछ पिघलता सा महसूस हुआ। काँपते हाथ-पैरों में खड़े रहना भी उसे दुभर लगने लगा। बहुत देर तक वह खिड़की का पल्ला पकड़कर हवा में टकटकी लगाए शून्य में देखती रही। फ़िर न जाने किस भावना के वशीभूत होकर वह गली की उस खिड़ की के ऊपर पुराने अखबारों की परत चढ़ाने लगी। और फ़िर उसपर मोटा पर्दा भी टाँग दिया।

"क्यों, क्या हुआ ?" पति ने पूछा। "गली से काफी ठंड आने लगी है, इसलिए।" तृष्णा बन्द खिड़की को देखती हुई उदास मन से बोली। घड़ी पर नज़र डाली, साढ़े नौ बज गए थे।

उसने बाल रँगाने को एक दिन पहले वर्तन में तैयार रखी मेहन्दीउठायी और बेसीन में ले जाकर उँडेल दिया। न चाहते हुए भी उसकी आँखो के कोने फ़िर भर आए और आँसू लुढ़क पड़े।

अनुवादक : डा'. रामदयाल राकेश

कहानी

चतुरे बन गया नेता !

हिरण्य कुमारी पाठक

चतुरे ने आज फ़िर गोल-मटोल चूहे को चूँ-चूँ कर बुलाया। मोटे ने सोचा बाहर खेलने के लिए बुलाया होगा। बिल से ही चिल्लाया -"क्यों बुलाया चतुरे ? मुझे तो देखो न पढ़ रहा हूँ"।

"अच्छा आ जा न गोलू-मटोलू आ जा। आज फ़िर उस बड़े घर में भोज है क्या, मजे से हम भी भोज का लुत्फ उठाएँगे।"

भोज खाएँगे सुनकर गोलू-मटोलू भी अपना लघू शरीर अकड़ते हुए चतुरे के घर की ओर चल दिया। रास्ते में छोटे चूहे से उन लोगों की मुलाकात हुई और "हम तो आज उस घर में जहाँ बहुत सारे लोग हैं, भोज खाने जाएँगे।"

छोटे ने कहा -"हाँ, उस घर के पास बहुत सारी गाड़ियाँ हैं मैंने भी देखा मैं भी जाऊँगा हाँ।" "हाँ हाँ होगा, आ जाओ हम साथ ही चलेंगे आ जाओ।" तीनो जने भोज वाले घर में गए। अन्दर कमरे में सोफे और कुर्सीयाँ लोगों से खचाखच भरी थी। बीच-बीच में टेबल पर गिलास में लाल-लाल रस भरी थी। प्लेट में प्रचुर मात्रा में प्रकार-प्रकार का जायका पड़ोसा हुआ था।

चतुरे ने चारों ओर आँख घुमाई। उसे अच्छी-अच्छी खुश्बू भी आई। मोटू तो मांस की महक से कब खाने को मिलेगा कहकर छटपट करने लगा। पर छोटे ने "हल्ला मत करो हाँ, हमलोगों को देख लिया तो ये बड़े लोग झपट पडेंगे। चुप करो।" उसी वक्त चतुरे के बगल में बैठपे एक मोटे आदमी ने खाते-खाते मांस का एक टुकड़ा गिरा दिया।चतुरे आश्चर्यचकित होते हुए मित्रों के साथ मिलकर खाने लगा। मोटू ने आहिस्ता कहा- "किन-किन बातों में इस प्रकार विचार-विमर्श किए हुए हैं।" छोटे ने कहा- " सुनो तो ! ये लोग संविधान बनाएँगे कह रहे हैं। क्या है ? संविधान का मतलब मैं तो समझा नहीं न ?" क्या पता मुझे भी नहीं पता है। संविधान का मतलब मैं तो नहीं समझा न ?" क्या पता मुझे भी नहीं पता है। संविधान का मतलब क्या है ?" मोटू ले पूँछ हिलाई। "अच्छा तुम लोगों को जानकारी नहीं है संविधान का मतलब क्या है ?" चतुरे ने आँख घुमाई। "नहीं पता है, कहो तो क्या है संविधान ? हमें नहीं पता है।" दोनों ने कहा।

"अच्छा लो सुनो। इतने वर्षों से हमलोग कभी कहाँ-कभी कहाँ ऐसे भोजों में खाते आए। यह संविधान बनाने का ही तो विचार-विमर्श है न !"

"यह तो बहुत साल हो गया न ! है न चतुरे भैया। तो फ़िर क्या है तो ? तो कभी न खत्म होने वाला विचार-विमर्श ? मोटू ने मांस खाते हुए पूछा। " अच्छा जल्दी खत्म कर दिया तो इस प्रकार विचार-विमर्श कर कैसे पैसा खा पाएँगे तो ? इसीलिए ये लोग खुद ही मिलकर झगड़ने जैसा करते हैं जो कभी भी खत्म नहीं होगा। कहते हुए चतुरे ने दूसरा मांस का टुकड़ा उठाया।

"पर ऐसी बात क्या है तो चतुरे भैया ?"

"क्या है ? अब इन लोगों को अपनी-अपनी पहचान चाहिए।

इसके लिए सभी प्रकार की जोतियाँ जो आज तक मिलकर रहते आ रहे हैं उन्हें टुकड़ों में बाँटना पड़ा। सबको अलग-अलग जातीय पहचान चाहिए कहकर हल्ला कर रहे है।" कहकर चतुरे ने विचार-विमर्श की बातें सुनने लगा। छोटू भी विचार-विमर्श की बातें सुनते हुए निरन्तर डूबता रहा। मांस भी नहीं खाया। यह देखकर मोटू ने -" अरे ! छोटे क्यों मांस नहीं खाया, खाओ।" पर छोटे मुँह लटकाए मात्र विचार-विमर्श की बातों पर ध्यान दे रहा था फ़िर

चतुरे ने भी छोटे को मांस खाने को कहा। पर छोटे विचार-विमर्श में डूबा हुआ था। अचानक छोटे ने कहा -" अच्छा लो सुनो। इन लोगों की बातें सभी ब्राह्मण, क्षत्री, नेवार, मधेशी, लगायत सभी ने जुलूस निकाल लिया है। अपनी पहचान के लिए।"

"हाँ ये मात्र यही लोग हैं क्या, जंगल में रहने वाले राउटे तक अपनी पहचान मांग चुका, पता है तुम लोगों को ?" चतुरे ने मांस चबाते हुए कहा।

"अच्छा तो फ़िर केवल हम क्यों पीछे पड़े हैं तो ? हमें भी तो अपनी पहचान के लिए लड़ना पड़ा, है न चतुरे भैया।" छोटे ने धौंस जमाते हुए कहा।

चतुरे और मोटू ने कुछ ही क्षण के लिए छोटे की बातों पर ध्यान देकर कहा -"हाँ हाँ हम भी जुलूस निकालेंगे और नारा लगाएँगे।"

फ़िर छोटे, मोटू ने चतुरे को अपना नेता बनाकर सभी चूहों को एकत्रित कर अपनी पहचान के लिए संविधान सभा में आवाज़ उठाने का निर्णय किया।

अनुवादक : पूनम झा

कहानी

दुःस्वप्न

ज्ञानू पाण्डे

मन में भूचाल मचा हुआ है एक घटना की स्मृति को लेकर। एक अजीब-सा स्मृति बोध लिए सड़क पर चल रही थी मैं, चुपचाप। अगर स्पष्ट कहा जाए तो उस वक्त मैं सड़क पर नहीं, बल्कि अपने भीतर दौड़ रही थी। मेरे दाएँ-बाएँ, आगे-पीछे चल रहे असंख्य लोग मानो अदृश्य होते जा रहे थे और समूची सड़क पर मैं ही बस अकेली चली जा रही थी, बिल्कुल अकेली। मन-मस्तिष्क में गूँज रही थी एक अनूठी व विभीषिका भरी धुन, मैं चुपचाप उस धुन को निगल रही थी। घुटती हुई, सहमती हुई मैं आगे बढ़ रही थी। यों कहें, विडंबना की लपटों में लिपटते हुए निरर्थक मैं अपने ही भीतर एक विभीषिका का सृजन कर रही थी उस क्षण। इंसानों से भरे पड़े उस मार्ग में मैं स्वयं एकाकी बन रही थी। विभीषिका के उस सुरंग में मैं स्वेच्छा से प्रवेश कर रही थी। बिना लक्ष्य, बिना गंतव्य की एक विचित्र यात्रा में मैं आगे बढ़ रही थी। कहीं पहुँचने के लिए नहीं, बल्कि केवल चलने के लिए ही मैं चल रही थी शायद।

"अरे फलाँ ! सब कुशल मंगल ?"– कोई पूछता है मुझे। या कहें कि मैं ऐसा बोध करती हूँ कि इस अस्तित्व के प्रति भी जिज्ञासा है किसी को।

मेरी आंतरिक व्यस्तता (व्यर्थता) में लगा जैसे उसके इस निरर्थक प्रश्न ने व्यवधान सृजित कर दिया हो। फ़िर भी अनसुना नहीं कर सकती उसे। सामाजिक प्राणी जो ठहरा इंसान। सामाजिकता निर्वाह करने के लिए बेवजह भी दूसरों से पूछ बैठते हैं कभी-कभी। और उत्तर देने की बाध्यता भी बन ही जाती है, सामाजिकता निर्वाह करने लिए ही सही। मैं कुछ देर अपने ही भीतर तरंगित होती हुई लंबी निच्छ्वास छोड़ती हूँ और उसे कहती हूँ, कहने भर के लिए–

"हाँ सब ठीक ही कहना चाहिए, अपनी कहो।"

जवाब में वह कुछ नहीं बोलता, 'ठीक हूँ' के भाव में बस सर हिला देता है। वातावरण में पुनः मौनता व्याप्त होती है।

मेरे चेहरे पर छाई निराशा और अभिव्यक्ति की शैली में उभरे हुए उच्चाट की प्रतिध्वनि से शायद उसके भीतर जिज्ञासा उमड़ी होगी मेरे प्रति, यानी मेरे क्षण के प्रति– आखिर इस निराशा का कारण क्या होगा ? क्यों इस तरह का उच्चाट ?

वह मुझे एकटक घूरता है। मैं भी उसे उसी अंदाज़ में घूरती हूँ। मानो हम एक दूसरे के लिए अजनबी हों।

वातावरण में एक व्यर्थता प्रतिध्वनित होती है, और शून्यता आँखों से आँखों तक।

मुझे लगता है ये इंसान कहलाने वाली जात इतनी दरिद्र मानसिकता में जी रही है कि जीवन के नाम पर वह हमेशा प्रतीक्षा कर रही होती है लेकिन उसकी प्रतीक्षा कभी समाप्त नहीं होती। बस इंसान ही है कि प्रतीक्षा पर प्रतीक्षा कर रहा होता है। मगर प्राप्ति के नाम पर हाथ लगता है सिर्फ़ शून्य ही। रिक्त आँखों और रिक्त प्रतीक्षा के उच्छ्वास को झेलते हुए इंसान हमेशा खुद को धोखा दे रहा होता है।

जी हाँ, जीवन के उद्यान में हर व्यक्ति किसी पल यों ही जनम जाता है, बिना अपनी स्वीकृति के। पलता है, बढ़ता है और अनेक सपनों से घिर जाता है अनायास। सपनों के ही घरौंदों में निर्लिप्त होकर खोकर जीता है। फ़िर अचानक किसी पल से टकराता है, जहाँ से वह वापस सपनों में लौट नहीं पाता। जहाँ अंकुरित हुआ एक दिन वह उसी उद्यान में वह झड़ जाता है, मर जाता है। जन्म के बाद मरने की अनिवार्यता ! यह कैसी नियति है मनुष्य की ? जन्मो

और फ़िर मर जाओ ! क्या मरने के लिए ही जन्मा है इंसान ? मृत्यु नामक सत्य को जिताने के लिए हारना ही पड़ेगा, क्यों ? नियति की शक्ति के आगे कितना दुर्बल बेचारा इंसान ! नियति द्वारा तय किए गए साँचे से एक रोआँ बराबर भी इधर-उधर किए बिना जीना पड़ता है इसे। जीवन भर नियति के इशारे पर ही नाचना पड़ता है इसे। और उसी के आदेश पर एक दिन इस जीवन से हाथ धोना पड़ता है इसे। मगर आश्चर्य कि नियति के विरुद्ध कोई विद्रोह नहीं करता। कहीं नियति ने इंसानों को सम्मोहित तो नहीं कर रखा है ? वरना क्यों इसके जितना ही दुख पहुँचाने पर भी इंसान चूँ तक नहीं करता ? जीने के नाम पर कदम-कदम पर तमाम भूकंपों से टकराते हुए भी इंसान बढ़े जा रहा है, चले जा रहा है। नियति के निर्धारित आयु तक हर हाल में खुद को घसीटता जाता है। आयु से पहले खुद को मार भी नहीं पाता इंसान। किसी भी हालत में मनुष्य प्रकृति के विरुद्ध नहीं जा सकता।' सोचते सोचते बीच में ही अनायास भटक जाती हूँ मैं–

'लेकिन..... लेकिन...., उसने तो खुद को ही मिटा दिया न ! आत्महत्या कर ली न उसने तो ! खुदकुशी का फैसला इंसान की हार है या जीत ?'

जवाब में सवाल बरसाने लगता है वह मेरे ऊपर– "क्या बोल रही हो तुम ? किसने खुदकुशी कर ली ? क्यों तुम इतनी उदास हो जीवन के प्रति ? आखिर क्यों ?"

मुझे लगता है उसके सवालों का अंत नहीं है कोई। अंतहीन उसके प्रश्नों से ऊब जाती हूँ मैं। कहती हूँ– "रहने दो, रहने दो, बहुत हुआ। अब और सवाल खड़े न करो मेरे सामने। अपने ही अंदर के अनगिनत अनुत्तरित प्रश्नों से मैं पहले से ही गड़ी हुई हूँ। अपने ही मन के सवालों से बुरी तरह दबी हुई हूँ इस समय। ऊपर से और तुम भी मुझे न दबाओ सवालों के नीचे.... ।

मगर वह नहीं रुकता। मुझे आग्रह करता है वह, उसके आगे मैं खुद को उद्घाटित कर डालूँ ! मन की सभी गाँठें खोल दूँ और खुद को हल्का कर लूँ ! वह इतना ज़ोर देता है कि मैं टाल ही नहीं सकती उसे। टाल नहीं सकती उसके सवालों को। इसलिए असलियत को उसके आगे उँडेलते हुए कहती हूँ–

"मेरे घर के सामने की मंगली... ।" मैं थोड़ी देर स्तब्ध हो जाती हूँ। और फ़िर कहना शुरू करती हूँ– "उसने तो अपने ही बेडरूम में बीम से लटककर आत्महत्या कर ली। सुबह-सुबह बाहर खूब हल्ला हुआ। मैं भी बाहर निकली। मंगली जिस घर में रहती थी, उसके कंपाउंड में लोगों की भीड़ जमा थी। किसी तरह अंदर गई। उसके कमरे में गई। लेकिन उफ् ! कितना भयावह दृश्य था ! लगा जैसे आँखें ही चनककर फूट जाएँगी। कैसे बताऊँ मैं तुम्हें उस अप्रिय और भयानक दृश्य के बारे में। मंगली मर चुकी थी। बीम से झूल रहा था उसका मृत शरीर बीम की तरफ़ खुली हुई उसकी आँखों में स्पष्ट दिख रही थी– जीवन की व्यर्थता ! अस्तित्व के अभिमान की सीमा ! नियति की क्रूरता ! और मनुष्य की निरीहता ! और .....! और ..... ! ..... और..... !

इसके बाद मैं कुछ नहीं बोल नहीं पाती। मैं फटाफट आगे बढ़ती हूँ वहाँ से। मंगली की दोनों मृत आँखें मेरा पीछा करती रहती हैं। किसी तरह मैं घर आ पती हूँ। वह रात गहरी कशमकश और पशोपेश में गुज़रती है मेरी। देर से नींद तो आती है लेकिन साथ-साथ भयानक सपना भी साथ लेकर आती है–

मंगली का पार्थिव शरीर पिघलकर मुझ तक आ पहुँचता है और मेरे भीतर समा जाती है वह तरलता। मैं मंगली बन जाती हूँ। आत्महत्या से पहले की उसकी मनोदशा मुझे खसोटती है, चिथोड़ती है। जीवन के दोराहे पर खड़ी हो जाती हूँ। मैं कुछ महसूस नहीं कर पाती, सिवा विवशता बोध के। मुझमें घोर असमंजस छा जाती है क्रमशः। मेरे भीतर के समूचे आकाश में धुआँ और घना कोहरा मंडराने लगता है। कसकर आँखें मूँदती हूँ और उत्कटता की तीखी धार से धुएँ और कोहरे की सघनता को चीरने की कोशिश करती हुई अपने और भीतर, भीतर के भी भीतर घुसती जाती हूँ। वहाँ मैं पाती हूँ कि एक अजीब आकृति मुझे आगोश में भरने के लिए आगे बढ़ रही है। और बोल भी रही है– "मैं हूँ तुम्हारा असल नातेदार हूँ, अर्थात् जीवन का सन्नाटा। तुम लाख कोशिश कर लो मुझसे उबरने की, मगर तुम

सफल नहीं होगी। क्योंकि हर मनुष्य के जीवन का पहला और अंतिम परम सत्य मैं ही हूँ, मैं यानी सन्नाटा ! हर इंसान अकेला है जीवन में। वह ठगता है, धोखा देता है, भागने की लाख कोशिश करता है जीवन के एकाकीपन से। लेकिन किसी भी हालत में सफल नहीं होता वह अपनी कोशिश में। हर इंसान को यह समझ लेना चाहिए कि जीवन के सन्नाटे को छलने की कोशिश करना व्यर्थ में दुख को न्योता देना है, जिस तरह इतने समय तक तुमने दुख पाया मुझे छलने की कोशिश करके। अब सही जगह पहुँची हो तुम। आओ मेरे आगोश में आ जाओ। मैं उस तक पहुँचने में तुम्हारी मदद करूँगा। मैं तुम्हें जीवन के महासत्य यानी मृत्यु के दर्शन करा दूँगा। मृत्यु अर्थात् चिर आनंद ! जहाँ न छल है, न किसी कपट का खेल बस आनंद ही आनंद, केवल आनंद। आओ.... आओ मेरे आलिंगन में बँध जाओ।

मैं अनायास पीछे लग जाती हूँ सन्नाटे के और प्रविष्ट होती हूँ एक निष्कपट घनघोर अंधेरे सुरंग के भीतर उसके साथ ही। मन में एक अजीब-सा त्रास है। ऐसा लग रहा था जैसे बड़ी ऊँचाई से गिर चुकी हूँ मगर ज़मीन तक नहीं पहुँच पाई हूँ। मैं स्वयं को एक विभीषिकापूर्ण मनस्थिति में महसूस कर रही थी। चारों ओर घबराहट भरे दृश्य को देखकर मेरे दिल के ज़ोर-ज़ोर से धड़कने का आभास होता है। मगर हैरान करने वाली बात ये कि उस हालात में भी सवालों की एक कतार मेरा पीछा नहीं छोड़ती– 'मैं ज़िंदा हूँ या मर गई ? मैं अपने वश में हूँ या नियति के अंकुश में पड़ गई ? ..... ? ..... ? ..... ? मगर जवाब में उफ् ! वही सन्नाटा, वही एकाकीपन की विभीषिका। बस अर्थशून्य साँसों का कंपन।

अनायास मेरी नींद खुलती है। शरीर थरथर काँप रहा है। पसीने से तरबतर हो चुकी हूँ मैं। चारों ओर नज़रें दौड़ाती हूँ। कोई नहीं है यहाँ, बिलकुल अकेली हूँ। स्वयं को और अपने उस उच्चाटपूर्ण परिवेश को निहारने लगती हूँ–

बिस्तर पर अकेली मैं इतनी निरीह ! विशाल सागर के भीतर एक बूँद पानी की तरह मूल्यहीन ओस मैं ! मैं मन ही मन बुदबुदाती हूँ अनायास– ज़िंदगी ? कैसे भला संतुष्ट होकर स्वीकार किया जाए इसे ? उपाय नहीं है कोई ऐसा जो इसकी निरर्थकता वहन कर सके ! मैं फ़िर सपने के सन्नाटे को याद करती हूँ। लगता है मानो सन्नाटा मेरा प्रेमी है। मैं अलग नहीं होना चाहती उसके सम्मोहन से। वह भी मुझसे अलग नहीं होना चाहता शायद। हम दोनों एक दूसरे से अति निकट हो जाते हैं, बड़ी बेबाकी से मिल जाते हैं उस घड़ी में।

'उफ् कितनी लंबी रात !' अचानक मेरी कशमकश भंग होती है। मैं एक ग्लास ठंडा पानी पीती हूँ और फ़िर परिवेश का मुआयना करने लगती हूँ गहराई के साथ–

चारपाई, ऊपर से बिस्तर, तकिया, रजाई आदि।

फर्श, ऊपर से कालीन, सोफा, टी-टेबल आदि।

कुरसी और टेबल। टेबल के ऊपर डायरी, कलम और कुछ किताबें।

दीवार और उसके एक छोर पर कैलेंडर, दूसरे छोर पर आईना लटका हुआ।

आईने में मैं झाँकती हूँ–

एक तरफ़ नींद न आने से कसमसाती हुई मैं।

दूसरी तरफ़ कुरसी पर बैठकर टेबल की किताबों को सहेजती हुई मैं।

कुछ लिखने की कोशिश करती हुई मैं। लिखने में असमर्थ होकर खोई खोई-सी मैं।

और इन सभी 'मैं' को झाँकती हुई मैं।

मन में सवाल कौंधते हैं– उफ् ! मैं कौन ? मैं क्या ? मैं क्यों ? ..... ?

अंतर्उच्चाट में कसमसाते हुए अनायास मेरी नजरें बीम से टकराती हैं। तत्क्षण मुझे एक फीकी आस्था आकर्षित करती है। लगता है यह बीम मेरा सहयोगी हो सकता है। लगता है मानो वह बीम मेरा स्वागत कर रहा हो। मैं अनायास उठती हूँ बिस्तर से। हाथ अनायास ऊपर उठ जाते हैं। बीम को छूते हैं।

ओहो ! मैं बुरी तरह चौंक जाती हूँ। बदन भर पसीना उभर आता है। हाथ-पैर सुन्न हो जाते हैं। धम्म से ज़मीन पर बैठ जाती हूँ। मगर .... मगर.... ये आँखें बीम पर ही लटक रही हैं, जहाँ मुझे मंगली की गतिशीलता स्पष्ट होती महसूस होती है– मेरी साँसों से मंगली की स्मृति पुनः साकार होकर दृश्य में

उतर रही है। वह जीवन की चरम घड़ी में खड़ी है। उसके दोनों हाथ बीम में रस्सी बाँधने में तल्लीन हैं और साथ ही साथ वह बड़बड़ा भी रही है–

ज़िंदगी मुझे माफ़ कर दे। आज मैं तुझे खत्म कर रही हूँ। आखिर क्या दिया तूने मुझे सिवा दुख, सिवा तकलीफ़, सिवा धोखा के ? तेरा शास्त्र, तेरी दासता सब कुछ अंगीकार करके भी आखिर कौन-सी शाबाशी मिल गई मुझे ? जीने तक ऊब और बेचैनी ! और ऊपर से कदम कदम पर मृत्यु का संत्रास ! 'मैं' विलुप्त जीवन मुझे स्वीकार नहीं। तेरे नियमों के आगे कायरता स्वीकार कर भला क्यों जिऊँ मैं ? तूने अपनी हुकूमत के आगे मुझे जीने नहीं दिया, कोई बात नहीं। अब मैं मौत के लिए अपनी हुकूमत चलाना चाहती हूँ। मैं अपनी मरज़ी की मौत मरना चाहती हूँ। ज़िंदगी, मुझे माफ़ कर दे। आज मैं तुझे खत्म कर रही हूँ। मैं आत्महत्या कर रही हूँ ..... !

वह बीम से कसकर रस्सी बाँधती है, गाँठ लगाती है। रस्सी की गोलाई में अपनी गरदन प्रविष्ट कराती है। चारों ओर एक बार फ़िर आँखें घुमाती है और खुद चढ़ी हुई कुरसी को पैर से पीछे को धकेल देती है। और..... ! और ..... लटक जाती है।

ओहो ! मैं फ़िर ज़ोर से चौंक उठती हूँ। अपनी हथेलियों को उलटपलटकर देखती हूँ। हाथों को अनायास झटकती हूँ। खुद को कसकर दबोचती हूँ। अपनी गरदन को सहलाती हूँ। अपनी गरदन को गर्म और सुलगता हुआ पाती हूँ। मन में अपार ममता जागृत हो उठती है जीवन के प्रति। बेचारा यह जीवन ! कितना निरीह ! कितना विवश ! कितना निरर्थक ! कितना निस्सार !

अनुवादक : मुकेश कुमार मिश्र

कहानी

इतरा का पुत्र ऐतरेय

माधवप्रसाद लामिछाने

भक्ति के महान् आचार्य हारीत ऋषि के वंश में कालान्तर में एक ऋषि हुए जिनका नाम था माण्डूकि। उनकी पत्नी का नाम इतरा था। इतरा में वे सभी सद्‌गुण विद्यमान थे जो एक साध्वी में हुआ करते हैं। भक्ति के महान् आचार्य हारीत ऋषि के वंशपरम्परा में होनेके कारण माण्डूकि और इतरा दम्पति में सहज ही भक्ति की भावना लहराती रहती थी। पति एवं पत्नी दोनों अनुकूल और पावन जीवन बिता रहे थे। उनके जीवन में एक ही कमी थी, वह कमी थी संतान का न होना। साध्वी इतरा से कोई संतान नहीं हो रही थी। इसलिए संतानप्राप्तिके लिए ऋषि ने घोर तप का आश्रय लिया। फलस्वरूप उनके घर में एक पुत्र का जन्म हुआ। उस बालक को सब लोग उसकी माँ के नाम पर ऐतरेय कहकर पुकारते थे। स्वाभाविक ही था कि एक महान् वंश में महती तपस्या के प्रभाव से जिस शिशु ने जन्म लिया, वह भी महान् ही था। आगे चलकर ये बालक ऐतरेय ब्राह्मण का रचनाकार हुआ। इसके अतिरिक्त ऐतरेय में सारे वेद प्रतिभासित हो गए। ऐतरेय में बचपन से ही चमत्कारपूर्ण घटनाएँ घटने लगीं। जब बोलने का समय आया, तो उसके मुख से पहला शब्द निकला - 'वासुदेव'। उच्चारण बिलकुल स्पष्ट था और मिठास से भरा था। लोगों के लिए यह विस्मय की बात थी। लोगों में यह विस्मय तब और भी बढ़ गया, जब आठ वर्षों तक यह बालक निरन्तर 'वासुदेव-वासुदेव' नाम का कीर्तन करता रहता। आठ वर्षों तक 'वासुदेव' शब्द को छोड़कर और किसी शब्द का उच्चारण ऐतरेय ने नहीं किया।

ऐतरेय की इस स्थिति ने लोगों में कुतूहल भर दिया तो उन के माता-पिता के हृदय में आनंद। माता-पिता सोचते थे कि हमारे कुल में एक महाभागवत ने जन्म लिया है, जो अनेक पीढियों को तार देगा परंतु पीछे चलकर यही बात ऋषि माण्डूकि के लिए चिन्ता का विषय बन गया। जब बालक ऐतरेय आठ वर्ष का हुआ तब पिता ने उसका यज्ञोपवीत-संस्कार कराया और उसे वेद पढ़ाना चाहा परंतु वह बालक 'वासुदेव' नाम कीर्तन को छोड़कर न कुछ सुनता था और न बोलता ही था, वेद पढ़ना तो दूर की बात। उनके सारे उपाय व्यर्थ हुए। वे पढ़ाते पढ़ाते थक गए। अंत में वे अपने पुत्र से बहुत निराश हो गए।

विवशतावश उन्होंने दूसरा विवाह किया। विवाह के पश्चात् दूसरी पत्नी पिङ्गासे उन्हें कई संतानों की प्राप्ति हुई। ये सभी संतान वेद के पारङ्गत विद्वान हुए और कर्मकाण्ड में बहुत ही कुशल। ऋषि की इन संतानों की सर्वत्र पूजा होने लगी। साथ ही ऋषि माण्डूकि भी अपने उन पुत्रों और उनकी माँ को भरपूर प्यार और सम्मान देते थे। धीरे धीरे ऐतरेय और उनकी माँ इतरा दोनों उपेक्षित होते चले गए।

पति की उपेक्षा ने इतरा का जीना मुश्किल कर दिया। एक दिन बड़े निराश हृदय लेकर वह मंदिर में जा पहुँची और वहीं रहने लगी। इतरा का पुत्र ऐतरेय सारा समय मंदिर में ही व्यतीत करता था। उसका एक ही काम था वासुदेव का नाम संकीर्तन करना। एक दिन इतरा ने वासुदेव के नाम संकीर्तन में तल्लीन अपने पुत्र की तल्लीनता भंग करते हुए कहा –'तुम्हारे कारण हम उपेक्षित हैं और तुम तो उपेक्षित हो ही। अब तुम ही बताओ हमारे जीने का क्या प्रयोजन है ?'

ऐतरेय ने अपनी माँ को समझाते हुए कहा– 'माँ ! अब तुम संसार में आसक्त होती जा रही हो। संसार तो निःसार है, इस निःसार संसार में केवल भगवान का नाम ही सार है। मान और अपमान ये दोनों ही माया हैं, फ़िर भी मैं तुम्हारी अभिलाषा को पूर्ण करूँगा। तुम दुखी मत होओ। मैं तुम्हें उस पद

पर पहुँचाऊँगा, जहाँ शताधिक यज्ञ करके भी नहीं पहुँचा जा सकता।'

अपने पुत्र ऐतरेय का विवेकपूर्ण आश्वासन पाकर माँ इतरा का हृदय सन्तोष से प्लावित हुआ। इस बीच भगवान विष्णु अर्चा-विग्रह से साक्षात् प्रकट हो गए। भगवान के दर्शन पाकर इतरा भावविह्वल हो गई और अपना जन्म लेना सफल समझने लगी। विष्णु के दर्शन पाकर ऐतरेय की आँखों में आँसू छलक आए। उसका शरीर रोमाञ्च से भर गया। उसने गद्गद् हृदय से और सुरीले स्वर से भगवान की स्तुति की। भगवान ने ऐतरेय को अपने आशीर्वाद से प्रफुल्लित कर दिया। अंत में उसकी माता की इच्छा की पूर्ति भी करनी चाहिए, यह सोचकर भगवान ने ऐतरेय को आदेश दिया कि 'तुम अब वैदिक धर्मों का आचरण करो। सभी काम निष्काम-भाव से करो और मुझे समर्पित करते जाओ। माता की इच्छा की पूर्ति मे बाधक न बनो, विवाह करो, यज्ञों द्वारा भगवान की आराधना करो और माता की प्रसन्नता को बढ़ाओ। यद्यपि तुमने वेदों का अध्ययन नहीं किया है, फ़िर भी सम्पूर्ण वेद तुम्हें प्रतिभासित हो जाएँगे। अब तुम कोटितीर्थ में जाओ। वहाँ हरिमेधा का यज्ञ हो रहा है। वहाँ जाने पर तुम्हारी माता की सम्पूर्ण इच्छाएँ पूरी हो जाएँगी।'

भगवान के दर्शन और अपने ऊपर उनका स्नेह देखकर इतरा का हृदय गद्गद् हो गया। जिस पुत्रको वह जड मानती थी, उनका महान् प्रभाव देखकर वात्सल्य की जगह उसमें श्रद्धाका भाव भर गया।

भगवान के आदेश के अनुसार माता इतरा और पुत्र ऐतरेय हरिमेधा के यज्ञ में पहुँच गए। वहाँ ऐतरेय की विद्वत्ता देखकर हरिमेधा सहित उस यज्ञ में उपस्थित सारे विद्वान् चमत्कृत हो गए। सभी ने ऐतरेय को उँचे आसन पर बैठाकर उनकी विधिवत् पूजा की। ऐतरेय ने वेद के उस भाग को भी सुनाया, जो वहाँ के विद्वानों को ज्ञात था और वेद के उस भाग को भी सुनाया, जो अभी पृथ्वी पर उपलब्ध नहीं थे और वेद का वह भाग था– ऐतरेय ब्राह्मण। हरिमेधा ने ऐतरेय से अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। तब ऋषि माण्डूकि ने यज्ञसभा के बीच में ऐतरेय का घोर अपमान किया। अपने पुत्र की इस अपमान को माता का हृदय सह न सका। इतरा भगवान को पृथ्वी माता के रूप में उपासना करती थी। अतः उसने अपनी उसी इष्टदेवी की स्मरण किया। पृथ्वीमाता दिव्यमूर्ति धारण कर उस सभा में उपस्थित हो गईं। स्वयं पृथ्वीमाता ने वहाँ एक ऐसा सिंहासन रखवाया, जिसे किसी ने कभी देखा न था। उसी दिव्य आसन पर पृथ्वी माता ने ऐतरेय को बिठाया और सबके सामने घोषित किया कि ऐतरेय के पाण्डित्य के समान किसी का पाण्डित्य नहीं है। पृथ्वी ने कहा– "इसको मैं वरदान देती हूँ कि यह वेद के किसी ब्राह्मणभाग का द्रष्टा हो जाए। वरदान देते ही ऐतरेय को ४० अध्यायों वाला ब्राह्मण प्रतिभासित हो गया जो 'ऐतरेयब्राह्मण' के नाम से जाना जाता है। शिवमस्तु।

अनुवादक : लेखक स्वयं

कहानी

दो गज जमीन के नीचे

शिव शंकर प्रसाद रौनियार

दो गज.....

हाँ, जी ! केवल दो ग़ज ज़मीन ..... ! जिसकी वजह से राम और लक्ष्मण जैसे भाईयों के बीच दरार पड़ गई । वैसे इस दुराव के लिए दो ग़ज ज़मीन की बात तो सिर्फ कहने भर की थी ...। वस्तविकता तो कुछ और ही थी । दुनिया में कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो औरों की उन्नति देख नहीं पाते हैं ,अब वो आदमी अपना ही क्यों न हो । ऐसे ही लोगों में उमाशंकर था जो 'मुख में राम, बगल में छूरी' वाले मुहावरे को चरितार्थ करता था । बात यह थी कि मोहन के बड़े भाई महेश ने, जो एक दयालु, और सीधे स्वभाव के व्यक्ति थे,मोहन की ग़ैरहाजिरी में अपने पड़ोसी को दो ग़ज ज़मीन देने का वचन दे डाला था । और इसके साथ ही साथ उसके लिए कुछ बैना भी ले लिया था । जिससे उसके पड़ोसी का मकान, जो ज़मीन के अभाव में खराब हो रहा था, बहुत अच्छा हो गया, सुन्दर हो गया । लेकिन उमा शंकर और उनके सहयोगियों को यह बात अच्छी नहीं लगी । इसलिए मोहन के आते ही उन लोगों ने उसका कान भर डाला,-'आज जो आदमी वगैर पूछे, दो गज ज़मीन दे डाली, वह कब सब हड़प कर जाय, इसका कोई ठिकाना नहीं । बुद्धि ही कितनी है .....! समझाने बुझाने वाला भी कोई नहीं .... एक भाभी थी, जिन्हें वह माँ की तरह मानता था , मायके चली गई थी । बस वह यही रट लगाने लगा कि मैं तुम्हारे साथ नहीं रहूँगा । उसके पास कोई उपाय ही नहीं बचा, मजबूर होकर अपना घर द्वार सबकुछ उसे देकर दूसरे घर में चला गया ।

अब मोहन उस बड़े घर में अकेला ही रहने लगा । गुस्से की विजह से दो चार दिन तो कुछ एहसास नहीं हुआ । मगर जब अकेलापन काटने लगा,तब उसे अपनी गलती का एहसास होने लगा । विवेक जाग उठा । वह सोचने लगा ,-' भैया तो ऐसे नहीं हैं जो मेरे साथ बेइमानी करेंगे । अगर ऐसा होता तो वे इस तरह वगैर कुछ कहे-सुने एकबारगी घर छोड़कर नहीं चले जाते । इसमे उनका क्या स्वार्थ है ? फिर उसके मन में दूसरी बात उत्पन्न हो गई,-' कहीं ऐसा तो नहीं कि भाभी के चले जाने से उनका दिमाग बदल गया हो । भाभी..... । वह दुःखी हो गया । 'आज ... आज वो भी बदल गई हैं , इसीलिए तो मायके चली गई हैं । काश ! भाभी पहले की जैसी होतीं , तो ऐसा कुछ नहीं होता । वो भैया को समझा-बुझा देतीं । आह ! भाभी कितनी स्नेहमयी थीं .....। घर में पाँव रखते ही उन्होंने घर का सारा बोझ अपने ऊपर उठा लिया था । खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने से लेकर बाहर की चीजों की भी व्यवस्था वे ही देखा करतीं । ऐसे ही उसे कुछ याद आया और उसने अपना एक हाथ जेब में डाल दिया । हाथ निकालकर बाहर किया, देखा उसके हाथ में सोने की चमचम करती चूड़ी थी । चूड़ी देखते ही उसकी आँखों से आँसू बहने लगे । जब आँखों के आँसू ज़मीन पर पड़े, तो वह जगह आईने की तरह चमकने लगी, सबकुछ नज़र आने लगा । उसकी आँखों में पहले की एक घटना प्रतिविम्बित हो आई । उसे याद आया कि वह किस तरह टयूशन पढ़ा-पढ़ाकर अपनी भाभी के लिए इस चूड़ी को बनवाया था । बड़ी मुश्किल से इसके लिए रोयपे जोड़ सका था ।

००

उस शाम .....।

जब मोहन कोई किताब पढ़कर अपनी भाभी को सुना रहा था । अचानक दो चार ईंटें उसके सर पर गिरने लगीं । लेकिन वाह रे भाभी ! गिरती हुई उन ईंटों

को झट से अपने हाथों में ले लिया। वह उसे तो बचा ली, मगर उसका हाथ कलाई की चूड़ी फूटने से लहूलुहान हो गया। वह तो देखते ही रह गया। और वह पीड़ा को छूपाकर मुस्कुराने लगी .....।

वाह ! भाभी ! आज अगर आप नहीं होतीं, तो जाने मेरा क्या हाल होता ! उसने जब अपनी भाभी के रक्त से सने हाथों को देखा तो कराह उठा, -' हाय ! यह क्या भाभी ? यह क्या किया आपने ? ....इतना सारा खून और वह भी मुझे बचाने के लिए ....आह ! भाभी ! अरे ! आपके हाथों में तो चूड़ी के टूकड़ें गड़े पड़े हैं !

-'यह तो कुछ नहीं है, बाबू। मेरे होते अगर मेरे देवर को कुछ हो जाता, तो मैं कहाँ की रहती ? मै तो मर ही जाती ना ! सबकुछ विरान-सा हो जाता , चारों तरफ शून्यता फैल जाती , फिर मैं अपना चेहरा कैसे देख पाती ? फिर..कौन सुनाता मुझे कहानियाँ...किस्से ! उसकी भाभी बोलती जा रही थी। इतने में मोहन ने उसके हाथ पर एक पट्टी बाँध दी, लेकिन उसके चेहरे से उदासी की पट्टी नहीं हटी।

-' क्या हो गया है आपको बाबू ? इतनी अधीरता क्यों ? मर्द होकर बेचैन हो रहे हैं। मर्द तो हिम्मती होता है, तकलीफों में भी धैर्य नहीं खोने वाला। और वैसे भी आप मेरे देवर हैं। यह शोभा नहीं देती। ' उसकी भाभी ने कहा।

-देवर तो अपने भाभियों की रक्षा करते हैं न भाभी ? लक्ष्मण जी भी तो एक देवर ही थे, जो अपनी भाभी की रक्षा के लिए जंगल गए। अगर वे भी विपत्ति में अपना धैर्य खो देते, तो रामायण की रचना कैसे होती ? हाँ, एक बात और, प्रत्येक व्यक्ति लक्ष्मण नहीं हो सकता है न भाभी ! लक्ष्मण-रेखा को तो रावण भी नहीं पार सका था। और एक मैं हूँ, मैं कुछ नहीं कर सका। मेरे होते हुए आपकी यह हालत हो गई।'

-'इतना प्रेम करते हैं मुझे ? अगर यह काँच का टूकड़ा नहीं गड़ता, तो खून नहीं निकलता।' उसकी भाभी ने कहा।

-'ठीक कह रही हैं भाभी। अगर यह चूड़ी काँच की नहीं होती, तो आपकी यह दशा नहीं होती ....। '

-' कोई बात नहीं देवर बाबू, आप हैं न ! आप मेरे लिए सोने की चूड़ी बनवा दीजिएगा।' उसकी भाभी मुस्कुराती हुई बोली।

-'आप पहनेंगी न भाभी ? '

-'क्यों नहीं !'

-'तब तो मैं अवश्य बनवाऊँगा।' वह पूरे जोश में आकर बोला,-' और वह भी अपनी कमाई से।'

-'लेकिन आप काम कैसे करेंगे ? अभी तो आप पढ़ रहे हैं ! उसकी भाभी ने कहा।

-'बिल्कुल, आप देखेंगी, मेरे अन्दर कितने गुण भरे पड़े हैं।' उस दिन बस इतनी ही बात हुई।

००

उसकी भांभी ठीक हो गई। वह इन बातों को भूल भी गई। लेकिन उसने नहीं भूला। वह अपनी पढ़ाई के साथ-साथ ट्यूशन भी पढ़ाने लगा। उसके जेहन में यह बात घर कर गई थी, चाहे जिस तरह से भी हो, भाभी के लिए इक सोने की चूड़ी जरूर बनानी है। और उसका परिणाम आज उसके हाथ में चूड़ी की शक्ल-सूरत में हाजिर है। उसकी मित्र मंडली में इस बात को लेकर काफी बातें हुईं। कुछ मित्रों को तो शंका भी होने लगी थी। उसके मित्र यह सोचते कि जिस भैया भाभी को यह इतना मानता है, वो इसके हो पाएँगे भी कि नहीं ? जब वह यहाँ आया, उमाशंकर ने इसी बात को उसके मन में इस तरह बैठा दिया कि वह दिग्भ्रमित हो गया और उसके सर पर शैतान सवार हो गया। वह यह सोचने पर विवश हो गया कि जब भैया इतने बदल गये हैं, तो भाभी .... वो भी ...तो ...।

.... इस जमाने को क्या। जमाने को तो अपनी खुदगर्जी से मतलब है, अपने काम से काम ...केवल अपनी स्वार्थ से मतलब। अब कोई दुःखी हो, तो हो। इसकी कोई परवाह नहीं। अपने पड़ोसी महेश को उसने दो गज जमीन के लिए कई बार टोक दिया। महेश तो बस सत्य हरिश्चन्द्र। वह तो बस किसी भी तरह मोहन को राजी करके ज़मीन बेचना चाहता था। इसी वजह से वह एक पड़ोसी के साथ मोहन के घर गया, लेकिन मोहन घर पर नहीं था। मुलाकात नहीं हुई। पता चला कि वह कहीं गया हुआ है। इच्छा नहीं होने पर भी उसने कहा कि आप यहाँ से दो गज जमीन नाप लें। लेकिन हुआ यह कि अभी महेश की बात पूरी भी नहीं हो पाई थी, मोहन कहीं से आ गया।

-' एक इंच ज़मीन नहीं दूँगा , मैंने सारी बातें सुन ली । ' वह गरजते हुए बोला ।

-' मोहन ! ' महेश भी गरजकर बोला ।

-'अब आप ज्यादा कर रहे हैं भैया, अब मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता ।'

-'क्या ? ' वह चिल्ला पड़ा और मोहन के गाल पर एक थप्पड़ जड़ दिया ।

-' भैया ! मैं सिर्फ भाभी के लिहाज से आपको कुछ नहीं कह रहा हूँ ...वरना ....। लेकिन आप यह बात सुन लीजिए , आप यह ज़मीन किसी भी हालत में नहीं दे सकते ।'

-'दूँगा और अभी दूँगा ...।'

-' मैं कह रहा हूँ, भैया आप मान जाइए वरना ठीक नहीं होगा ।'

-'क्या करेगा ?'

-' अभी बताता हूँ ....। कहते वह घर में इक हवा की तरह गया और जब बाहर आया तो उसके हाथ में बंदूक थी ।

हँस ही पड़ा महेश ... तुम मुझे मारोगे ? तुम मेरी जान लोगे ? ' मोहन बोलने को तो कुछ नहीं बोला, लेकिन बंदूक तान दी । ' आप क्या देख रहे हैं, चलिए दो गज ज़मीन नाप लीजिए । किला खूँटा गाड़ लीजिए ।

-'किसकी मजाल है कील खूँट गाड़ने की ?' वह बंदूक तानकर सामने खड़ा हो गया ।

-' चलो फिर मैं ही गाड़ता हूँ, देखूँ तो मेरे भाई के पास कितना मोट करेजा है । '

-'भैया ! इस बात का मेरे ऊपर कोई असर नहीं पड़ेगा , कहे देता हूँ । '

-' कोई असर हो न हो, आज तो यही देखना है कि एक भाई अपने दूसरे भाई के खून से किस तरह अपना हाथ रंगता है ?'

महेश के पड़ोसी इस बिगड़ी हुई हालत को देखकर काफी परेशान हो गया और महेश को समझाने और रोकने की काफी कोशिश की । लेकिन महेश नहीं माना और आगे बढ़ गया ।

-'भैया !..... मगर उसके कदम नहीं रूके ।

-'खबरदार' .....!

फिर भी कदम नहीं रूके । अचानक मोहन की बुद्धि ने काम करना बंद कर दिया और उसका हाथ काँप गया....एक आवाज निकली . -'धाँय' .....।

-' आह ' इक चीख निकली और महेश वही नीचे लड़खड़ाते हुए गिर गया । गोली उसकी छाती में लगी थी । तमाशा देखने वाले घबराकर भागने लगे । ठीक उसी समय, एक टमटम आकर रूका और उसमे से एक औरत नीचे उतरी । ज़मीन पर पाँव रखते ही वह भौचक्का हो गई । उसको कुछ समझ में नहीं आया, क्या करे, क्या न करे ! उसने देखा कि एक तरफ उसका ही देवर हाथ में बंदूक लिए खड़ा है । दूसरी तरफ तो वह देख ही नहीं सकी । दहाड़कर छाती पिटती हुई वही गिर गई । उस औरत की आवाज सुनकर मोहन चिहुँक गया ,-' अरे भाभी ! आप ! मोहन को जब होश आया, वह पछताने लगा, -' यह क्या होगा...?.यह क्या कर दिया मैंने ? मेरे ही हाथों भाई का खून ! घोर अनर्थ...महा पाप... । उसका विवेक लौट आया और उसकी आत्मा उसे धिक्कारने लगी.... देवता समान भाई को .... दो गज ज़मीन के लिए .....!

तभी, अचानक उसको एक आवाज ने झकझोर दिया..... बाबू ! देख रहे हैं न मेरे हाथ । कितना सुन्दर लग रहा है ....। इतना कहकर उसकी भाभी अपनी कलाई की चूड़ियों को वहीं ज़मीन पर पटक-पटककर फोड़ने लगी । आप तो मुझे सोने की चूड़ी पहनाना चाह रहे थे न । मगर अब... अब तो सोने की चूड़ी का क्या , काँच की चूड़ी भी नहीं पहन सकती ।' और छाती पिट-पिटकर रोने लगी । मोहन का चेहरा उतर गया । अब वहाँ बदले या गुस्से की भावना नहीं थी, अब तो केवल पश्चाताप की लकीर खींची पड़ी थी । आँखों में आँसू भरे हुए थे । उसकी भाभी बोलती जा रही थी,-' बाबू ! आपको याद है न, आपने एक बार मुझसे कहा था, भाभी ! छोटा भाई अपने बड़े भाई और भाभी का केवल सहारा ही नहीं होता, बल्कि रक्षक भी होता है । क्या रक्षा की है आपने बाबू ? क्या रक्षा की है ? कितने बड़े रक्षक हैं आप कि सिर्फ दो. गज ज़मीन के लिए अपने भाई की जान ले ली ।' वह बिल्कुल लाश बन गया था । कोई हरकत नहीं ....बिल्कुल शान्त.... । उसकी भाभी ने फिर कहा, - ' आपको तो याद ही होगा, आपने कहा था कि भाभी देखना, मेरे में कितना गुण है । देख ली बाबू , आज मैं आपके गुण भी देख ली । इसी गुण को छिपा रखे

थे क्या ? ' वह काँपने लगा। वह पागल-सा बोलती जा रही थी,-' देखिए, बाबू ! जरा मेरे खून से सने इन हाथों को देखिए, इन्हीं हाथों से मैं आपके भैया का तर्पण कर रही हूँ... खून भरे हाथों से। अच्छा लग रहा है ....! वह तो जैसे काटो तो खून नहीं।

-' याद है, एक दिन जब आपने मेरे इन हाथों में थोड़ा-सा खून देखा था तो, तिलमिला गये थे। आपकी आँखों से आँसू टपकने लगे थे। आपने थोड़ी भी देर न करते हुए मेरे हाथ में पट्टी बाँधी थी। कितनी प्यारी भाभी थी मैं, उस घड़ी। आज भी मैं आपकी वही भाभी हूँ बाबू, ...आइए न, आज एक बार फिर मेरे हाथ में एक पट्टी बाँध दीजिए ....मोहन क्या बोलता, उसके पास बोलने के लिए कुछ था भी तो नहीं। अपनी भाभी के हाथ में खून देकर अन्दर ही अन्दर टूटता जा रहा था .... सामने भाई की लाश पड़ी थी। उसकी भाभी ने कहा,-' कुछ कहने-सुनने की हिम्मत नहीं हो रही है न, कैसे होगी ? चलिए ठीक है, आप की इच्छा थी आप मेरी इन कलाइयों में सोने की चूड़ियाँ पहनाते...अब वह इच्छा तो अधूरी ही रह गई ...चलिए आप मेरी एक इच्छा पूरी कर दीजिए...आज मेरी इच्छा है आपके हाथ से गोली खाने की...और अपने पति के साथ मर जाने की ....बाबू ! देखिए, आप ना नहीं कहिएगा ...मेरी इस इच्छा को पूरी करके मुझ अभागिन पर एहसान कीजिए ....!

-' नहीं...नहीं... भाभी .. ऐसा मत कहिए ... मैं नहीं सुन सकता। देवर भाभी के पवित्र रिश्ता पर कलंक मत लगाइए। मुझे पाप लगेगा ....पाप .... '

-'बाबू ! अब आप यह तो भूल ही जाइए कि आपकी कोई भाभी भी है। मुझे माफ कर दीजिएगा ....आप जहाँ रहें, खुश रहें, यही मेरी दुआ है, यही मेरा आशीर्वाद है .....!' इतना कहकर उसकी ने जोर से दहाड़ मारक अपनी छाती पीटी और अपने पति के सीने पर गिर गई....बेहोश हो गई ...यह बेहोशी कुछ क्षणों की नहीं) थी ....सदा की थी ....वह अपनी बेहोशी से वापस नहीं लौटी।

'खबरदार ! रूक जा शैतान, एक कदम भी आगे मत बढ़ो।' एक आवाज सुनाई दी। वह थथमकर वहीं रूक गया। कोई नजर नहीं आ रहा था। ऊपर आकाश की ओर देखा, लगा वहीं से यह आवाज आ रही है। चारो तरफ सन्नाटा ही सन्नाटा था ....घोर सन्नाटा।

-'किधर देख रहे हो शैतान ? मैं तो तेरे अन्दर हूँ। ' वास्तव में यह उसकी आत्मा की आवाज थी। उसका हाथ उठा का उठा ही रह गया। 'छी : ' धिक्कार है ! यह तुम्हारे हाथ कटकर गिर क्यों नहीं जाते जो अपनी भाभी की लाश छूकर अपवित्र करना चाहते हैं। ' वह भौचक्का-सा खड़ा रह गया। अपनी छाती सहलाने लगा। शायद सीने में दर्द हो रहा था। -' इतने में कहीं से आवाज आई,-' दूर हट शैतान, मुझे छूने की कोशिश भी मत करना....। सारे रिश्ते खत्म। ' वह कुछ कर न सका। कर भी क्या कर सकता था। उसका सपना पूरा नहीं हो सका था। उसने अपनी भाभी की कलाई को सोने की क्या काँच की चूड़ी तक भी पहनने के लायक नहीं छोड़ा था। जिस भाभी को वह अपनी जान से ज्यादा मानता था, श्रद्धा करता था, पूजा करता था, आज वही भाभी लाश बनी पड़ी थी। भैया के मृत शरीर से लिपटी पड़ी थी। उसने सिर्फ अपने भैया और भाभी की लाशों को ही नहीं दफनाया, बल्कि एक भाई के प्रेम, एक भाभी की तपस्या को भी दफना दिया ,....उसी दो गज ज़मीन के नीचे।

अनुवादक : गोपाल अश्क

कहानी

जाल

विनीत ठाकुर

भोला की बेंच पर रमा के आकर बैठने पर पूरी कक्षा के विद्यार्थी हँसने लगे। वह शौक से नहीं, बल्कि मजबूर होकर हमेशा उस बेंच पर अकेले बैठता था। यों कहें कक्षा के सभी छात्रों ने मिलकर आगे की एक बेंच को ही उसके लिए बिरादरी से अलग कर रखा था। भोला के दोस्त लोग भी भोला के साथ कुछ खास बातचीत नहीं करते। उसके साथ बोलने के नाम पर सभी औपचारिकता भर पूरी करते। कोई उसके हालचाल पूछता तो वह भी 'अच्छा हूँ' जवाब देता। कोई उसका जवाब सुनता भी तो कोई सुना अनसुना कर जाता।

पिता के तबादले के साथ खोटांग से सिरहा के ज़िला मुख्यालय सिरहा आई हुई रमा का कॉलेज में आज पहला दिन था। पहले ही दिन कॉलेज की क्लास में सहपाठियों के इस तरह हँसने पर रमा को बड़ा अजीब लगा और थोड़ी झेंप भी महसूस हुई थी। वह सोचने लगी कि कहीं उसका यूनिफॉर्म तो कहीं से बिगड़ा हुआ नहीं है। रमा ने सबसे नज़रें छुपाकर सबसे पहले अपने यूनिफॉर्म का मुआयना किया था। उसे अपना यूनिफॉर्म बिल्कुल दुरुस्त लगा। फ़िर उसने सोचा, 'हो न हो, मेरे माथे के काले टीके को देखकर लोग हँसे होंगे। पर, यह काला टीका तो मैं बचपन से ही लगाती आई हूँ, और फ़िर इतने छोटे-से टीके पर एक साथ सबकी नज़र गई कैसे होगी! नहीं, इनके एक साथ हँसने की वजह कोई और ही रही होगी।'

क्लास में नेपाली विषय के प्राध्यापक केशव गुरुजी के प्रवेश करते ही सब लोग शांत हो गए। "तुम लोग कॉलेज को हिला देने के अंदाज़ में इस तरह क्यों हँस रहे थे?"– गुरुजी ने पूछा। कोई कुछ न बोला। फ़िर उन्होंने कहा– "तुम लोग अब बच्चे नहीं हो, बीए में पढ़ रहे हो। होशियार होकर पढ़ो और देश का एक सक्षम नागरिक बनने की कोशिश करो।" हमेशा की तरह उपदेश देने के बाद गुरुजी ने अपने झोले से किताब निकाली और पढ़ाना शुरू किया। छात्र ध्यानपूर्वक उनका लेक्चर सुनने लगे। छात्रों से भरी क्लास में गुरुजी की नज़र भोला पर पड़ी। हमेशा बेंच के बीच में अकेले बैठने वाला भोला आज बेंच के एक छोर पर बैठा था। उसी बेंच के दूसरे छोर पर बैठी हुई रमा को भी गुरुजी पहचान गए क्योंकि प्रिंसिपल सुबह ही ऑफ़िस में नई छात्रा के बारे में अध्यापकों को बता चुके थे।

कॉलेज में छुट्टी होने पर रमा ने सबसे पहले अपना मोबाइल स्वीच ऑन करके अपने पिताजी को फोन करके पूछा– "पापा, आप कहाँ हैं?" जवाब मिला– "बेटा, मैं क्वार्टर में ही हूँ।" फ़िर रमा ने कहा– "मुझे लेने के लिए ऑफ़िस की गाड़ी मत भेजिएगा, मैं पैदल ही आ रही हूँ।" इतना कहकर रमा ने फोन काटा और अकेले कॉलेज से निकलकर क्वार्टर की तरफ़ जाने लगी। कॉलेज के गेट से क्वार्टर पैदल करीब १५ मिनट की दूरी पर होते हुए भी बीच में कोई घर वगैरह न होने के कारण जिला विकास का ऑफ़िस और क्वार्टर साफ़ दिखता था।

रमा पहली बार अपने पिता के साथ ऑफ़िस की ही गाड़ी पर क्वार्टर से बाहर निकलकर कॉलेज गई थी। पहाड़ों में ही पैदा हुई और पहाड़ की ही गोद में पली-बढ़ी हुई रमा तराई-मधेश के हरी घास के मैदान और लहलहाती फसलों से भरे खेतों को देखकर आश्चर्यित हो गई। वह कुछ देर सड़क के किनारे खड़ी होकर नज़ारों को निहारती हुई सोचने लगी– 'मैंने पत्र-पत्रिकाओं में जितना पढ़ा था, उससे कहीं अधिक सुंदर और मनमोहक है तराई-मधेश। जहाँ

देखती हूँ खेत ही खेत हैं और उसमें उमड़ती फसलें। सच में तराई तो स्वर्ग ही है और हमारे देश के लिए अन्न का भंडार भी।'

वह फ़िर आगे बढ़ी। उसने देखा, पक्की सड़क बीच-बीच में जगह-जगह टूटी हुई है। थोड़ा और आगे जाने पर तो पीच उखड़ा हुआ ही नहीं, बल्कि छोटे-बड़े गड्ढे भी मौजूद थे। उसे बड़ी हैरत हुई। 'ओह ! स्थानीय नेता क्यों विकास में इतनी कंजूसी करते हैं ! यहाँ की जनता भी कितनी भोली है, क्यों चुपचाप इतने जोखिम भरी यात्रा करने को वाध्य हैं ?' यही सब सोचती हुई रमा आगे बढ़ रही थी कि अचानक उसे दूर से धूल उड़ाते हुए आती हुई एक बस दिखाई दी और देखते ही देखते वह बस रमा के यूनिफॉर्म को धूल से सराबोर करती हुई तेज़ गति में निकल गई। वह अपनी जेब से रुमाल निकालकर अपने यूनिफॉर्म और चेहरे पर लगी धूल को साफ़ करती हुई गंतव्य की तरफ़ बढ़ी। रमा क्वार्टर के कंपाउंड के नज़दीक पहुँचने ही लगी थी कि पीछे से साइकिल की घंटी की टिन टिन आवाज़ आई। घंटी की आवाज़ सुनकर उसने रास्ते के किनारे होकर पीछे मुड़कर देखा। साइकिल पर भोला था। वह अपनी धुन में साइकिल चलाता हुआ आगे बढ़ गया। रमा ने मन ही मन सोचा, 'दूर से ही मेरे पीछे साइड माँगने को इसने घंटी तो बजाई मगर पलटकर एक बार देखा तक नहीं। शायद साइकिल पुरानी होने की वजह से वह झेंप गया होगा।' रमा भोला की साइकिल के हालात देखकर उसकी गरीबी को साफ़ दिल से ताड़ चुकी थी।

क्वार्टर में पहुँचते ही पिता ने रमा से पूछा– "तुम्हारे कॉलेज का पहला दिन कैसा रहा बेटी ? शिक्षकों की पढ़ाई हुई बातें अच्छी तरह समझ पाई या नहीं ?" रमा ने कहा– "कॉलेज में सब कुछ अच्छा था पापा, शिक्षक भी बहुत अच्छे हैं। उनकी पढ़ाई हुई बात मैं अच्छी तरह समझ गई।" माता-पिता दोनों ने अपनी इकलौती बेटी को शाबाशी देते हुए अपने लक्ष्य में निडर होकर आगे बढ़ने का आशीर्वाद दिया।

उसके पिता तैयार होकर अपने ऑफ़िस चले गए। रमा ने भी फ्रेश होकर खाना खाया और थोड़ी देर आराम करके अपने कमरे में कॉलेज के गृहकार्य करने लगी।

अगली सुबह रमा मॉर्निंग क्लास शुरू होने से करीब १५ मिनट पहले ही कॉलेज पहुँच गई। क्लास में पहुँचते ही मीना ने उसे बुलाया और कहा कि आज से वह मीना के साथ ही बैठे। रमा भी 'ठीक है' कहकर उसके साथ बैठ गई। क्लास शुरू हुई। टिफ़िन ब्रेक में मीना व और लड़कियों के साथ रमा भी कैंटीन में नाश्ता करने गई। जलेबी, पूरी और सब्ज़ी के साथ चाय पीते हुए सब लोग बातचीत में मशगूल हो गए। जल्द ही सबसे घुलमिल जाने वाली व्यवहार चतुर रमा ने मौका पाकर अपनी दूसरी सहपाठी अनीता से पूछ लिया– "बेंच पर मेरे बैठते ही कल तुम लोग क्यों हँसने लगी थी ?" अनीता कुछ बोलती, उससे पहले ही मीना ने जवाब दिया– "कल हम नहीं, लड़के हँसे थे।" यहाँ पर लड़के और लड़कियाँ अलग-अलग बेंचों पर बैठते हैं। और फ़िर तुम तो महादलित भोला की बेंच पर जा बैठी थी।

थोड़ी देर गंथन मंथन के बाद वे लोग नाश्ता करके कैंटीन से बाहर निकल आए। कॉलेज के कंपाउंड में बड़े पीपल के पेड़ के नीचे बने चबूतरे पर बैठकर चाय पीते हुए भोला को देखकर रमा ने फ़िर अनीता से पूछा– "एक बात बताना, जिस तरह क्लास में भोला अकेले बेंच पर बैठकर पढ़ता है, क्या उसी तरह वह कैंटीन में भी अकेले बैठकर चाय नहीं पी सकता ?" अनीता ने कहा– "नहीं पी सकता।" रमा ने फ़िर पूछा– "क्या इस समाज में उसका पानी नहीं चलता ?" अनीता ने जवाब दिया– "नहीं यार, वह महादलित है, उसका पानी चलना तो दूर, अगर गलती से उसने किसी कुएँ को छू दिया तो यहाँ का समाज या तो उस कुएँ को भर देगा या फ़िर कुएँ से सभी पानी को निकालकर उसे अंदर से ही अच्छी तरह साफ़ करके बड़ा होम-जाप करवाकर ही वापस प्रयोग करेगा शायद। रमा ने अंदर ही अंदर सोचा कि यहाँ के रहन-सहन और रीति-रिवाज के बारे में पूरी जानकारी हासिल किए बिना इनके साथ यों इस तरह बहस करना बेकार है। ब्रेक खत्म होने पर सभी लोग वापस क्लास में चले गए।

कॉलेज की छुट्टी के बाद गेट के बाहर भोला और रमा की मुलाकात हुई। रमा ने भोला से कहा–

"भोला, मैं तुमसे क्लास में ही कहने वाली थी, मगर लोग फ़िर से हँसने लगेंगे सोचकर मुझसे कहा नहीं गया। क्या तुम अंग्रेज़ी सर के पहले लिखाए हुए नोट मुझे दोगे ?" भोला ने हामी भरते हुए तुरंत अपने झोले से नोट निकाला और रमा को दे दिया। रमा ने 'धन्यवाद' कहते हुए नोटबुक अपने झोले में रख लिया।

रात को कमरे में नोट को अपने नोटबुक में उतार लेने के बाद रमा सोचने लगी, 'क्लास में सबसे हट्टा-कट्टा होशियार नौजवान होकर भी इस समाज में निरीह प्राणी होकर जी रहा है बेचारा भोला। जो भी हो, भोला को उसका अधिकार मिलना ही चाहिए और भोला को इस समाज को कुछ करके दिखाना होगा। इसके लिए मुझसे जो बन पड़ेगा, मैं मदद करूँगी। अब भोला को समाज के आगे एक सबल व्यक्ति बनाकर ही मैं चैन की साँस लूँगी।'

शनिवार को रमा अपनी माँ के साथ सब्ज़ी लेने बाज़ार गई। दोनों माँ-बेटी के लिए सिरहा बाज़ार बिल्कुल ही नया था। बाज़ार में जहाँ देखो, लोगों की बड़ी भीड़ और ज़मीन पर प्लास्टिक बिछाकर रखे व्यापारियों के सामान। बाज़ार में इधर-उधर टहलते हुए रमा की माँ की नज़र बाज़ार के दूसरे छोर पर बाँस की कमची से बनी डगरी, टोकरी, बेना वगैरह बेच रहे एक इंसान पर गई। रमा के साथ वह वहाँ पहुँचीं और डगरी और बेना के भाव पूछे। वह व्यापारी कोई और नहीं भोला ही था। भोला के मुँह से '२५० रुपए' निकला ही था कि रमा और भोला की नज़र एक दूसरे पर पड़ी, दोनों मुस्कुराए। "यह मेरी क्लास का सबसे होशियार छात्र है" कहकर रमा ने माँ का परिचय भोला से कराया। भोला ने 'नमस्ते' कहते हुए, सामान मुफ़्त में ही ले जाने का आग्रह किया। लेकिन रमा की माँ ने नहीं माना और आखिरकार १५० रुपए लेकर भोला ने बेना और टोकरी दोनों दे दिए।

बाज़ार से लौटते वक्त रमा ने भोला के साथ कॉलेज में हो रहे सभी बरतावों के बारे में अपनी माँ को बताया। माँ हैरान रह गईं और रमा से कहा– "देखो बेटी, ऐसे दुखी लोगों की मदद करना पुण्य का काम होता है। मैं तुम्हारे पापा से इस बारे में बात करूँगी। जैसे भी हो हमें भोला की मदद करनी चाहिए। बेचारा भोला पुश्त दर पुश्त से इस सामाजिक परिवेश और अंधविश्वास में दबकर जी रहा है। धन्य हैं उसके माता-पिता, जो इतने दमन और ज़िल्लत सहकर भी बेटे को बीए पढ़ा रहे हैं।"

समय गुज़रता गया। भोला बीए की फाइनल परीक्षा में भी अव्वल हुआ। रमा दूसरे स्थान पर रही। इस सुखद खबर से रमा के माता-पिता खुशी से गद्गद् हुए। कुछ दिनों के बाद लोक सेवा आयोग में अधिकृत दर्जे के लिए नौकरी का आह्वान हुआ। रमा ने अपने पिता की सलाह पर भोला को भी पूर्वांचल क्षेत्रीय निर्देशनालय धनकुटा से आवेदन भरने को कहा। आवेदन देने के बाद दोनों ही लोकसेवा परीक्षा की तैयारी में जुट गए। परीक्षा के विविध चरण पार करते हुए रमा ने महिला कोटे में अपना नाम निकाला, वहीं भोला भी दलित कोटे के पहले नंबर में ही अपना नाम निकालने में कामयाब रहा। भोला इस समय सिरहा के सीडीओ कार्यालय में अधिकारी है, जबकि रमा भी सिरहा के ही नापतौल विभाग में अधिकारी है। सीडीओ कार्यालय अपने आप में ज़िले का एक न्याय विभाग जैसा होने के कारण दलित और भेदभाव के विरुद्ध दर्ज शिकायतों को भोला खुद देखता है और जनचेतना फैलाने के अभियान में जुटा हुआ है। आखिरकार रमा ने मधेशी समाज में सिकुड़े हुए एक भद्र दलित को सही रास्ता दिखाकर आत्मनिर्भर बनाने में बहुत बड़ा सहयोग किया।

अनुवादक : मुकेश कुमार मिश्र

कहानी

मशीन हैं क्या !

डा. रीना तुलाधर

आधी रात बीत जाने पर भी प्रभा सो न सकी और सोए भी कैसे । एक ही दीवार से घिरा और दीवार के पास के ही कमरे में उसके पति और सौतन मौज-मस्ती कर रहे हैं । उन दोनों की कानाफूसी और बातचीत उसके कान में कनसुत्ली की तरह घुस रही है । उस कमरे में उसका पति केशव और उसकी नई पत्नी अर्थात उसकी सौतन दुर्गा । उन लोगों के बीच रात-रात में होने वाली मौज-मस्ती आँखों से न देखने पर भी कानों से सुनते रहने की पीड़ा को झेलते रहने को महीनों हो गया । उससे बच्चा न होने के बहाने समस्त परिवार मिलकर उस पर सौतन लाद दी । संतान न होने का दुख था ही । दूसरी ओर पति के कोमल आलिंगन में बीताए स्मृतियों से छाती ही फट जाएगी जैसा लगता है । नई-नवेली पत्नी के साथ सोने का कमरा नहीं हुआ कहते हुए प्रभा के ही कमरे को आधा करके घेर दिया । उसका नारी हृदय किस हद तक सहन करे ।

उनके बीच की क्रीडारत ध्वनि उच्च होते हुए आने पर प्रभाव को आग से तपने की जगह गर्म पानी डालने जैसा हुआ । सहन न कर सकने पर छत पर खड़ी हो गई । चाँद की शीतल किरण से शरीर कुछ हल्का हुआ । मोढ़े पर थच से बैठी । सौतन लाने की कांइकुंइ चलने पर अपनी जान-पहचान तक की जगह पर जाकर इलाज न करवाया हो, ऐसा भी नहीं । अपने जेवरात तक बेचकर कृत्रिम गर्भाधान का उपाय भी अपनाना चाहा पर सफल न हो सकी । फ़िर दुबारा करने के लिए पैसा नहीं जुटा पाई । आज सौतन को झेलते हुए रहना पड़ेगा । मन के अन्दर के आर्तनाद से उसकी आँखें नम हो गईं । प्रभा की उसी आँखों में क्रोध की ज्वाला दहकने लगी ।

देखते ही देखते उसकी सौतन दुर्गा के गर्भवती हुए भी चार महिना हो गया । डॉक्टर के वेड रेस्ट लेना होगा कहने पर सौतन की देख-भाल करने वाली प्रभा खैराती नौकरानी बनी ! एक दिन दुर्गा को खाना पहुँचाने गई प्रभा के कदम कमरे के बाहर ठिठक गए । अन्दर पति-पत्नी लड़ रहे थे ।

बेईमान, ज़मीन की दलाली की तरह मेरे जीवन की भी दलाली की है न । दुर्गा की आवाज़ को ढकने के लिए पति भी ज़ोर से चिल्ला रहा था । प्रभा बात क्या है समझ न सकी । अचानक दरवाज़ा खोलकर केशव कमरे से निकला । वह अपराधी है । पर उसके चेहरे पर पश्चाताप का निशान नहीं है ।

मुझे चावल परोसो । आँफ़िस जाने के लिए देर हुई । प्रभा को इतना कहकर फटाफट केशव ऊपर गया । पहले पेट वाली को खिलाएँ कि आँफ़िस जाने वाले को खिलाएँ, मुझे ही सिर्फ़ चार हाथ हैं क्या ? प्रभा का कड़क जवाब आया ।

तेरी तो बेहूदी, चावल परोसो तक कहना नहीं है तुम्हें ! जल्दी मरने के लिए आ जाओ ।

पति को अनदेखा करती हुई प्रभा सौतन के कमरे में प्रवेश की ।

उसे देखते ही सौतन ने रोते हुए कहा-प्रभा दीदी, मुझे रहने का मन नहीं है । मैं चली जाऊँगी दीदी । दुर्गा प्रभा के साथ आगे पीछे की तरह वही बातें करने लगी । पहली पत्नी लकवाग्रस्त हो गई कहकर धोखे से दुर्गा को ले आए हैं । प्रभा को घर का काम करने वाली कहककर परिचित कराया गया है ।

मेरी बड़ी दीदी अच्छी नहीं है कहकर कोई कहने ही नहीं आया । छोटी दीदी को संतान नहीं हुआ कहकर मायका लौटा दिया । दीदी-बहन को पाल रखकर नहीं रह सकते कहकर दोनों भैया ने भी विवाह पश्चात् घर छोड़कर चल दिया । सौतन बनकर स्वीकार

करना मेरी कमज़ोरी हुई। माँ बाप का दुख न देख सकने के कारण मेरा किया गया निर्णय ही गलत हुआ, दुर्गा ने सदा की भाँति इसी प्रकार दुखड़ा उड़ेल दी पहली के समक्ष।

कितनी बातें करे, जो होना था हो गया। तुम नहीं तो कोई और ले आते बेईमान लोग। नदी के दो किनारे की तरह सौतन-सौतन के बीच पुल बनाने का प्रयास जारी है।

समय बीतते कितनी देर लगती है। बच्चा जन्मा। छठी के दिन घर में भीड़ है। गोद में बेटा रखकर दही का सगुन बर्शाते हुए केशव अपनी मर्दानगी का प्रदर्शन किया जैसा लग रहा है। दादी बनी बेटीमाया फूले नहीं समा रही है। दुर्गा का चेहरा दीप्त है। माँ होने का सुख जो मातृत्व प्राप्त कर चुकी है सिर्फ़ वही जानती है।

बच्चा न होना तो कहें पाप ही है। छठी के भोज में आने वालों के नाना प्रकार से की गई बातें प्रभा को कचोटती रही।

प्रसूता को देखने आने वालों का सत्कार करो, खिलाओ-पिलाओ। प्रभा को फुर्सत नहीं है। मन रो रहा है वह तो है ही। थाली में और शक्कर डालती हुई सास ने प्रभा को आकर झपाड़ा इतनी देर हो चुकी, प्रसूता को चावल खिलाने का समय नहीं हुआ है? प्रसूता को तो समय पर ही खिलाना चाहिए! बच्चा जन्माई हो तब तो जाने।

सौतन के बच्चा जन्माने के साथ ही प्रभा तो सास के लिए आँख के काँटे की तरह हो गई। मैं सिर्फ़ मशीन हूँ क्या? हाड-मांस से बना शरीर है मेरा भी। प्रभा भी बोलने से डरी नहीं।

इसकी मुँह लगाने की आदत देखो तो, बेटीमाया का स्वर और भी ऊँचा हो गया। सास-बहू के चिल्लाने की आवाज़ सुनकर केशव आया। सत्य तथ्य बिना समझे-बूझे उसने भी प्रभा को दोषी मान लिया।

आज-कल कहते-कहते बच्चे का अन्नप्राशन भी नज़दीक आ गया। एक सुबह नित्यकर्म समापन पश्चात बारामदे में बैठकर बेटीमाया पोते का प्रतिक्षा कर रही थी। उसी वक्त आकर दुर्गा ने सास से कहा- मैं मायके जाऊँगी।

अन्नप्राशन नज़दीक आ गया है। अभी मायके क्यों जाना पड़ा। नहीं जाना है। सास ने आदेश दिया।

दुर्गा निर्भीक दिखाई दे रही है। मानो उसके अन्दर और बातें क्रीड़ा करने की भाँति। सास को बिना कोई उत्तर दिए झनककर लौट गई।

कितनी अकड़ गई है! एक बच्चा क्या हुआ पाँव जमीं पर नहीं है। दुर्गा सास के आदेश की प्रतीक्षा में नहीं रुकी। कमरे में जाकर थोड़ी देर के लिए गम्भीर हुई। इसके बाद पोटली में बाँधकर रखे हुए कुछ सामान कमरे के बाहर रखी और बिस्तर पर से बच्चे को उठाई। बाहर टैक्सी टोककर रखी हुई है। उसने रिजर्व करके बुलाई है। सभी चीज़ों की पोटली टैक्सी की डिक्की में रखी।

इतने सामान लिए कितने दिन रह सकेगी! अन्नप्राशन के लिए बहुत दिन नहीं बचा है। खिड़की से ही सास चिल्लाने लगी। दुर्गा ने ऐसे घर की ओर मुड़कर भी नहीं देखा। टैक्सी में बैठकर चली गई।

ज़मीन की दलाली के काम में सुबह जल्दी निकले हुए केशव ने घर में आते ही पूछा - माँ और बेटा कहीं दिखाई नहीं देता।

वही तो, अन्नप्राशन आ गया मत जाओ बोली हूँ। बिना कुछ बोले मायके चल दी। सास ने सास के तेवर दिखाते हुए कहा।

खुद के खोदे गड्ढे में खुद ही गिरना इसे ही कहते हैं। दुर्गा अगर भाव खोजती है तो दूसरी समझदार बहू खोजकर लाना पड़ा। सौतन के बाद फ़िर दूसरी सौतन। हा.....हा..... । मेरे कहे अनुसार धर्मपुत्र पाल लेता तो यह टन्टा ही साफ़ हो जाता। प्रभा ने मौके पर सास और पति को सुनाई। उसके कटाक्ष से माँ और बेटा उत्तरविहीन हुए।

कुछ दिन तक तो क्रोध के कारण बहू के मायके किसी को बुलाने भी नहीं भेजी। कल अन्नप्राशन होने पर मात्र बुलाने भेजी। केशव बुंगमती जाने वाली बस में बैठकर ससुराल की ओर चल दिया।

वहाँ पहुँचने पर उसे पता चला- दुर्गा तो मायके गई ही नहीं है। केशव को झटका लगा। खाना खा रहे दुर्गा के माता-पिता के गले में भात अटक गया। चेहरा उड़ गया। मायके जा रही हूँ कहकर निकले हुए आज दस दिन हो गए, कहते हुए केशव का चेहरा विह्वल हो गया।

दुर्गा यहाँ आई ही नहीं है, लो न अब क्या करें! दुर्गा के माता-पिता फूट-फूटकर रोने लगे। दुर्गा की

बहनें भी क्या हुआ कहती हुई आई और सभी चिन्तित हुए। मन में नाना प्रकार की बातें खेलने लगीं, सभी दुखी हुए।

दुर्गा लापता हुई, बच्चा सहित। पूछताछ शुरू हुई। कहीं पता नहीं चला। दुर्गा का अता-पता नहीं चला। कहते-कहते आठ दिन बीत गए।

सुबह के अखबार में छपी गुमशुदा लोगों की सूचना में दुर्गा और बालक की तसवीर देखते हुए झल्लाता रहा केशव। बेटीमाया भी अखबार में बालक की तसवीर देखती हुई रोने लगी। मेरे पोते तुम कहाँ हो ?

प्रभा भी चिन्तित है। बालक कहने पर ममता होना तो लाजमी है। दुर्गा के प्रति उसके मन में किसी भी प्रकार की दुर्भावना नहीं है। सौतन होने पर पर भी उसने सौतन की भाँति व्यवहार कभी नहीं किया।

टिरिंग -टिरिंग फोन की घंटी बजने से चाय बना रही प्रभा ने दीवार से टंगी हुई फोन उठाई।

हैलो, कौन बोल रहे है ?

प्रभा दीदी मैं। मैं दुर्गा, दुर्गा की आवाज़ सुनाइ दी।

दुर्गा ! कहाँ हो तुम दुर्गा ? प्रभा अनायास ऊँचे स्वर में चिल्लाई। आवाज़ सुनकर बेटीमाया और केशव भी चौंक गए।

फोन में दुर्गा की आवाज़ सुनाई दी- दीदी मैं सकुशल ही हूँ, बाबू भी ठीक ही है।

दुर्गा की बात पूरी नहीं हुई थी। यहाँ लाओ तो कहते हुए केशव ने प्रभा के हाथ फोन फोन खींच लिया।

हैलो दुर्गा, तुम कहाँ हो ? बाबू कहाँ है ? केशव उच्च स्वर में चिल्लाया।

बेटीमाया भी नज़दीक जाकर बच्चा कहाँ है, बच्चा लेकर आने को कहो, कहती हुई चिल्लाने लगी। माँ बेटे का ढंग देखकर प्रभा को हँसी आ गई।

दुर्गा का सब ठीक है सुनकर उसका चेहरा प्रफुल्लित हुआ।

फोन में दुर्गा की आवाज़ सुनाई दी - मेरी तसवीर अखबार में छपाने वाला कौन है। किसकी हिम्मत।

बच्चा कहाँ है ? बच्चे को ठीक तो है ? केशव सिर्फ़ बच्चा के ही बारे में पूछताछ करता रहा। कितना बच्चा, बच्चा ! अरे दलाल ! तुम्हें तो सिर्फ़ बच्चे से मतलब था न ? बेईमान ! दलाल जैसे औरों को धोखा देते हैं उसी तरह तुमने मुझे भी बुरी तरह छला, संतान के लिए ही न ! बच्चा न होने तक महारानी की तरह बरताव किया। और बाद में तो..... ! मुझे ढूँढ़ने का प्रयास मत करो। बच्चा प्राप्त करने की आशा भी मत करो। तुम लोगों का काल आएगा, होश करो। तुमने क्या समझा नारी को ? संतान उत्पादन करने की मशीन ?

प्रभा दीदी को फोन दो तो जल्दी। दुर्गा का ही फोन है। बिना कुछ बोले केशव ने फोन दिया।

हैलो प्रभा दीदी। मैं काठमाडौं से बाहर हूँ। एक साथी के यहाँ रहती हूँ। काम भी मिल गया। दीदी मेरी चिन्ता मत कीजिए। मेरी योजना सफल हुई। मेरी दूसरी भी योजना बाकी है। उसके लिए आपकी मदद की आवश्यकता है।

हाँ.....हाँ..... कहकर प्रभा सुनती रही। और इसके पश्चात् बोली- होगा। दुर्गा, होगा मैं सहमत हूँ। तुम्हारे कहने के अनुसार ही करूँगी। अच्छा लो बाद में बात करेंगे। प्रभा ने फोन रख दिया। उनके बीच क्या-क्या बातें हुई पूछना ज़रा मुश्किल लगा।

पोते की याद में चिन्तित होती रही बेटीमाया को अस्वस्थ हुए भी महिनों गुज़र गए। आज थोड़ी तबीयत ठीक होने से बारामदे में चावल खाने गई। टनन किसी के घंटी बजाने की आवाज़ सुनाई दी।

नीचे कौन कहकर खिड़की से देखने पर प्रभा का चेहरा प्रफुल्ल दिखाई दिया।

कौन है ? चावल खाते हुए केशव ने पूछा।

अड्डे से आया है, मुकदमे का कागज।

मुकदमा ? खाना छोड़कर केशव नीचे गया। मन न मानने पर बेटीमाया भी नीचे गई।

अड्डे से आए आदमी ने कहा- अदालत में हाजिर होने जाना इसमें दी गई तिथि में।

प्रभा और दुर्गा मिलकर केशव पर मुकदमा दर्ज किया था, यह उसी का कागज था। पहली पत्नी सर्वसम्पन्न होते-होते धोखा देकर दूसरी शादी करने के सामाजिक अपराध का मुकदमा। बेटीमाया और केशव को तड़ातड़ पसीना आया।

अनुवादक : पूनम झा

कहानी

यांचा का घर

राजा शाक्य

"आरे यांचा ! तुम्हारी तो शादी हो गई, ऐसा सुना है, है ना ?

अब क्या करें तो, एक् बार शादी करूँगा तो कितना हो गया, जैसे-तैसे तो हुई ।

!..... आ हा आहाहाहा..... आंक !

यांचा ने मुँह बनाते हुए बकलाहा ढंग से हँसा । हँसने से उसकी गर्दन मुड़ गई । सिर ऊपर उठाये हुए था । मुँह से लार टपक रहा था । इस प्रकार प्रफुल्लित होकर हँसते-हँसते उसके गले से निकली आवाज़ गले के अन्दर ही खिंचकर 'आएंक कुइंक' जैसा सुनाई देती । पत्थर पर घिसे टिन के पत्ते की आवाज़ जैसी ।

उसकी प्रफुल्लित खुशी उसकी चीम-चीम करती भोटिया आँखों के कोने से आँसू बह रहे थे । उस वक्त टोल में बैठकर हमेशा गप्पें हाँकने वाला कबूतरबाज़ भाईराम ने बात को आगे बढ़ाया ।

तो फ़िर तो तुम्हारी सुहागरात भी हो गई होगी, है ना ? सुहागरात में तुम अपनी बीवी के साथ सोए या नहीं ? अपनी पत्नी का हाथ पकड़कर खींचा कि नहीं खींचा ? ना, ना कहने पर भी गले लगाकर प्यार से रखना चाहिए..... तुम्हें पता है कि नहीं ?"

पता नहीं, क्या करूँ ! 'नहीं , नहीं होगा, नहीं होगा मात्र कहकर..... उसकी माँ पर गुस्साती है ! पता नहीं क्या करें ।

यांचा की पत्नी उसी की तरह अर्धअपांग । श्वेत मुखमण्डल । ढल जाने पर यौवना दिखाई देती थीं । सासु माँ के टोल के देवी-देवता के मन्दिर में पूजा हेतु भेजने पर देखने से लगता जैसे अपने बस में कर लेगी । फ़िर उनकी भी संतानके नाम पर वह एक मात्र बेटा था । फ़िर जन्म से ही रोगी । हाथ-पाँव दोनों से ही असमर्थ है । श्रीमान के गुजरे भी बहुत हो गया था । अर्ध अपांग । इसीलिए चलने पर उसकी चाल टेढ़ी-तिरछी अनियन्त्रित जैसी थी ।

कभी इधर कभी उधर । मानो पूरी सड़क ही उसकी अपनी । वह जब चलता उस वक्त हमें खुद किनारे लगकर रास्ता छोड़ देना पड़ता । फ़िर भी यांचा के पिताजी लोकरत्न साहू ल्हासा के व्यापार में संलग्न रहे थे । एक पुत्र प्राप्ति के ऊपरान्त ल्हासा जा रहे थे वे वहीं स्वर्गीय हो गए थे । उस वक्त से यांचा की माँ अपनी दुख की गठरी बाँधे जीवन व्यतीत कर रही थी ।

यांचा की माँ ने यज्ञ, होम, पूजा करने से जन्म होने के कारण उसका नाम ही 'यज्ञरत्न' रख दिया था । उसकी माँ यज्ञरत्न को स्नेह और ममता सहित संक्षिप्त मे "बाबू यान" कहकर सम्बोधन करती आ रही थी ।

"है भी 'यांचा' कहकर उसे सभी पहचानते हैं । विवाह पश्चात् वो पाँव लड़खड़ाते हुए स्वयम्भू की ऊँचाइ पार कर लौटता । पर कभी-कभार रास्ते में नाक से टेकने पर गिरते वक्त पूजा से लौटते भक्तगण पकड़ लेते । कोई-कोई तो उसकी माँ की देखभाल का तरीका देखकर आलोचना करते हैं ।

"इतने कमज़ोर बच्चे को भी इधर-उधर भेजते हैं क्या ! कैसी ममता विहीन माँ ।"

वास्तव में इतने भेजते रहने के कारण भी वह पहले से अब थोड़ा अधिक हिल-डोल कर सकता होगा । पर हमेशा इस प्रकार नहीं भेजा करती थी । भोज-भात में जाने पर उसकी माँ 'धाव्व:' -पहले-पहले माताओं को अपने साथ निमन्त्रण न होने पर भी एक जने को ले जाने का चलन था । ले जाते । हाथ पकड़-पकड़ ऐसे विकलांग को चलाकर ले जाती थीं । सिर्फ़ उसे अकेले घर में छोड़कर नहीं जाती थीं ।

माँ को आय के लिए ज़मीन-जायदाद अधिक ही थी । अपने ही घर के नीचे दो-तीन दुकानें थी । किराया आता । फ़िर भी समय गुजारने के लिए कभी-

कभार दारु रखने के कारण टोल के अर्धवयस्क युवक सटाक से अन्दर घुस जाया करता। उस वक्त उसकी माँ थोड़ी चंचल दिखाई देती। उस वक्त उसकी छोटी झोली भरी रहती।

यांचा पूरी तरह निरक्षर बिल्कुल नहीं है। देवनागरी और ए, बी, सी, डी तक पढ़ने आता है। पर हथेली थोड़ी कमजोर होने से काँपते रहने के कारण अक्षर लिखने में थोड़ी कठिनाई होती है।

पहले उस टोल के शिक्षित तथा जागरुक युवकों द्वारा खोली गई पाठशाला में वह भी पढ़ा था। फ़िर भी वे शैक्षिक उन्नती नहीं कर सके। स्वर कहें तो बहुत ही तेजपूर्ण था उनका। पाठशाला द्वारा आयोजित सरस्वती पूजा में ले जाने वालों में सबसे अधिक उच्च स्वर में समूह गान गाया जाता।

हम वीर हम धीर
हमें छोटा न समझो
हम बीज पौधे का
हम फूल डाली का
बच्चे हम माँ के

वास्तव में उन्हें तो पूरी तरह बावला भी नहीं कहा जा सकता और न ही पूरी तरह दुरुस्त ही। वह बात करते वक्त खूब हाँकता है। किसी के तारीफ करने पर वह खुद खुशी से आकाश में उड़ने लगता। किसी के उकसाने का भी उसे पता नहीं। मजाक उड़ाने का भी पता नहीं। जिसने जो कहा वही उसे ठीक लगता है। बातों ही बातों में उसे हाथी चढ़ाते रहता। उस ऊपर हँसी-मजाक करते हुए समय बिताता रहता। फ़िर भी उसके सहन के बाहर खिझाने पर उसकी टोपी छीनकर हूक से अड़काकर धागे से बांध खिझाने पर भू चाल आने के समान चिल्लाकर बोलने लगता और इधर-उधर दौड़ते रहता है। तब उस वक्त उसकी माँ खिड़की से चिल्लाया करती है।

आरे बाबू आओ न! ऐसे लोगों के साथ मत बैठो, जल्दी से ऊपर आओ।"

उस वक्त यांचा प्रतिक्रिया व्यक्त किया। करता

"देखती नहीं उसके बाप की टोपी छीनकर खिझा रहा है रण्डी का बेटा लोग!"

टोपी बिना लगाए वह गंजा कभी भी घर नहीं घुसता। थोड़े ऊपर टांगकर रखी टोपी को लोमड़ी की तरह झपटता रहता है।

यांचा प्रभात के समय में और रात के समय में हमेशा भगवान दशबल का स्तोत्र पाठ करता तो पूरे टोल गुञ्जायमान हो जाता। स्तोत्र वाचन करने पर स्पष्ट सुनाई देता इस प्रकार उसे देखने पर किसी का भी तोतला या हकला कहना शोभा नहीं देता। एक एक अक्षर का उच्चारण स्पष्ट होता।

... सुबह विहार स्तोत्र पढ़कर पूजा करते तो वह भी हमेशा अग्रिम पंक्ति में हाज़िर हो जाता। कभी-कभी पंडित लोग अनुपस्थित होते भी पर वो कभी भी नहीं होता।

भोज खाते वक्त भी सभी व्यंजन का लुत्फ के ऊपरान्त मात्र पहले समाप्त करता। उस वक्त सिर्फ़ चिरवा पात की थाली में डाला जाता पाँचो उँगलियों से उठाकर मुँह में डाला जाता।

माँ लज्जा से कोहनी से घोंच-घोंच कर उसे बिना देखे गुस्सा करती आरे"! चाण्डाल विष्ठा खाने वाले अलच्छ, पात की थाली में इस प्रकार सभी समाप्त कर एक ही खाना समाप्त करना होता भला? देखो तेरे बाबू लोग देख लेंगें।"

यांचा पहले बिना कुछ जाने किसी तरह उठा फ़िर बाद में बेढंग से मर-मर कर हँसा।

क्या हुआ तो, क्या हुआ तो क...क...क....हाँ!

दिन में यांचा का मन न खेलने पर अपने घर के आगे के जवारा के साहूजी के यहाँ जाकर खड़ा रहता। दुकान के चौकोड़ दरवाज़े का ओट लिए उसके मन मस्तिष्क में बातें तरंगित होता रहता।

"क्या खा रहे हैं, बेखालाल भैया? खाना अच्छा है। उस वक्त उसका खाली हाथ फैला-फैला कर कुछ माँगने की मंशा से उत्सुक होता रहता। बेखालाल भैया का जवाब न लौटाने तक वह लुभाने के ढंग से बातें निकालता रहता। बेखालाल भैया का किसी बात का लाभ लिए बिना उसके हाथ में कुछ भी डाल देने की तो बात ही नहीं है। बेखालाल भैया ने पहले उससे किसी बात का लाभ उठाने की बात चलाई।

"है न आरे यांचा ' तुम्हें शादी किए इतने दिन हो चुके। तुम अपनी पत्नी के साथ कितनी बार सोए हो बिना झूठ बोले कहो तो।" यांचा ने बावलेपन से उनसे कुछ हाथ लगने के लोभ से अपने गुह्य रहस्य खोल दिया।

"पता नहीं क्या कहूँ.... उसके माँ-बाप बच्चा

नहीं पैदा करना चाहिए कहते थे। साथ सोने पर पत्नी गर्भवती हो जाएगी। बल्कि पीछे से मात्र चिपक कर रखने के लिए कहते। इसीलिए पत्नी हमेशा मात्र पीठ दिखाकर सोती है.....। पता नहीं क्या करें ? क्या करें ? मेरी माँ एक पोते की लालसा लिए बैठी है.....। बेखालाल भैया के कितने बच्चे बच्ची हो गए ?

हानि-लाभ से अन्जान अल्हड़ यांचा को ठगना बेखालाल को अब कुछ भी मुश्किल नहीं हुआ। उस यांचा का अबोध ग्राहक की तरह शोषण किया।

'पता नहीं यांचा ! तुम्हारी अथाह सम्पत्ति देखकर शहद लगाकर मक्खी पकड़ने के दाँव से तुम्हें बेटी दिया जैसा तुम्हारे ससुराल वालों ने।..... ए....ए..... यांचा, एक बात पूछें गुस्सा मत होना। नहीं, तुम्हारे यहाँ बुद्धिमान और ज्ञानी लोग मदिरा शराब पीने आते हैं हाँ ? फ़िर तुम्हारी माँ के साथ क्या-क्या बातें करते हैं।

"क्या पता, नहीं जानता। वे लोग बात करते वक्त मुझे आगे ही नहीं रहने देते। मुझे देखते ही दरवाज़ा बन्द कर ले आते हैं। यांचा ने अपना स्पष्टीकरण मात्र क्या दिया बेखालाल भैया ने अपनी हँसी रोक न सका और वह खि खि करके हँस पड़ा। उस वक्त यांचा ने अपने हाथ की पाँचो उँगलियों को साँप के फन की तरह फैलाकर थर-थर काँपते हुए झिड़कता रहा।

"बेहूदे ! ऐसी-ऐसी बातें करते हैं साले तुम्हारे बाप को कहें !"

वास्तविकता तो यांचा का भाग्य कहें या अभाग्य कोई भी बेटी देने की बात ही नहीं करने वालों में भी उसका सास-ससुर बेटी देकर लॉटरी ही पा लिया था। यांचा की माँ स्वर्गीय होने के उपरान्त उसकी पूरी सम्पत्ति ज़मीन-जायदाद उपभोग करने वाला कोई नहीं था। स्वयं स्वर्गीय होने के उपरान्त सम्पत्ति और ज़मीन-जायदाद उपभोग करने वाला कोई नहीं होगा। खुद के बाद अकेले बेटे की देख-भाल करने के बहाने ही सही और फ़िर बावली होने पर भी केवल स्वयंवर करके उसकी माँ ने सटाक से गृह प्रवेश कराई थी। अपनी बहू को समझा-बुझाकर लुभा न पाते ही अचानक उनका स्वर्गवास हो गया। वे पोते-पोती का मुँह नहीं देख पायीं।

आजकल अल्हड़ यांचा को एक सुर में खोया-खोया रास्ते पर चलते हुए यांचा से कभी-कभार मिला करता हूँ। फ़िर भी उसके ससुर और सासू माँ कुछ दिन पहले पहले मात्र कमीज-पायजामा लगाने वाला यांचा को सफारी-सूट के साथ ही ढाका टोपी भी लगा दिया करते हैं। उसी समय से यांचा को यांचा साहू कहा जाने लगा। यांचा साहू सन्तुष्ट नहीं दिखाई देते। उस के गले से सिसकियाँ निकल रही हो जैसा महसूस होता। किसी ने 'यां साहू' कहने पर 'किस चीज का साहू मैं। मैं तो सीढ़ी के नीचे का साहू मात्र हूँ। राहू मैं राहू। वास्तव में साहू तो वे लोग। क्या करे सब उन लोगों के हाथ में। उनके खिलाने से खाता हूँ। नहीं तो ...।

बुढ़ापा स्वभाव सिसकी लेने पर भी आजकल यांचा की देखभाल करने वाला कोई नहीं उसी के बहाने उसे ससुराल में ही रखने की खबर सुना हूँ।

उसका अपना पूरा घर किराये पर दे दिया गया है। आजकल वो अपने टोल में नहीं रहता। कभी कभार उसे उसके ससुराल के टोल में एक-दो बार धूप सेंकते वक्त रास्ते पर भेंट करता रहता हूँ। कभी-कभार उसी टोल की चाय दुकान वाले फुटपाथ पर बैठे.... कहा करता.....

"अरे नृपेन्द्र ! तुम कहाँ होकर आए ? तुम्हारे बच्चे-बच्ची कितने हैं। तुम्हारी तो पत्नी भी है। तुम्हारे बेटे की भी शादी हो गई, है ना ? उनके बच्चे हो गए, पता नहीं, मेरे तो कर्म में ही नहीं लिखा है। एक कप चाय पिलाओ ना मुझे, कल से कुछ भी नहीं खाया है।"

उस वक्त यांचा की खिल्ली उड़ाकर चिढ़ाने की हिम्मत किसी की भी नहीं थी। अब पहले-पहले के जैसा उसे मज़ाक करना सब गया, हवा निकली पुरानी बैलून की तरह। ओहो ... उसे ... उसके ससुराल वाले ... !

एक महीने बाद एक मित्र ने बताया। तुम्हें पता है ? यांचा का स्वर्गवास हो गया ! सुने- कहे अनुसार यांचा की अकाल में ही मृत्यु हुई।"

हाँ आजकल उसकी अथाह जगह-ज़मीन और आय स्रोत समस्त झपटमार हो गया। गुठी समावेश दुकान वाले घर तक मधेशी साहूकार ने खरीदकर एक भव्य महल बना लिया।

अनुवादकः- पूनम झा

कहानी

घर

संजोग 'लाफा' मगर

सन्ते ठेला गाडि के ऊपर बस पार्क के एक कोने में बैठा हुआ था जहाँ से बसें गन्तव्य स्थान की तरफ़ आती जाती थीं। जोगी मारा में रास्ता बन्द होने से बसों की उतनी आवाज़ाही नहीं थी। इसलिए सन्ते को आज काम नहीं मिला था। कम्मर में डोरी को बाँधकर गालों पर हात रखकर नीली हाफ पैंट, कंधों पर फटा हुआ पुराना सफेद सर्ट, तितर-बीतर बाल, भारी उठाते-उठाते यत्र तत्र जकडा। १७,१८ वर्ष का सन्ते की एकाएक आँखें भर आईं। काठमांडू आते समय का दुख संघर्ष गिट्टी कुटते-कुटते फटे हाथ, ठेला ठेलकर भी सुबह-शाम पेट भरना मुश्किल हो रहा था, जैसी बातें मन ही मन सोच रहा था। शायद ! इसलिए होगा, वह दुबला-पतला दिखता था। खान-पान ढंग से नहीं मिलने पर ४,५ दिन सिर्फ़ पानी पीकर ही भूख मिटाना पड़ता था। रहने के लिए बस पार्क का ठंढा सिमेंट का चबूतरा होता था। उसका घर भी अब वही है।

बाल्यावस्था में ही माँ-बाप का संबंध विच्छेद को जाने के कारण माँ दूसरे पुरूष के साथ शादी करके चली गई थी। बाप भी भरी जवानी में अकेले बेटा के लिए जीना नहीं चाहा। उस पर से पत्नी छोड़कर चली गई। भूख की छटपटाहट में भी कर्ज लेकर बैंडबाजा बजाके १ महीने के अंदर ही छोटी माँ को लेकर आ गया था। लेकिन सन्ते को क्या पता उसका भविष्य। धीरे-धीरे सन्ते दोनों घर की धड़कन बन गया। कभी माँ चुराकर ले जाती थी तो कभी पिता। माँ से पीछा छुड़ाने के लिए बेटा को दूर ले जाकर के झापा जिल्ला के एक गाँव में पहुँच गया। जहाँ तीन लोगों का परिवार दुख सुख से गुजारा चला रहा था। छोटी माँ ही है न। जब तक अपना बच्चा नहीं है, तब तक दूसरों के बच्चों से प्रेम करें, अपना बेटा-बेटी मानें। "सौतेला बेटा दिल का काँटा" जैसा ही धीरे-धीरे स्कूल पढ़ने के लिए जाने वाला सन्ते सौतेली माँ की घृणित दृष्टि, रूखे व्यवहार से एकान्त में जाकर रोता था। लेकिन छोटी माँ के आगे उसकी बोली नहीं फूटती थी। पिता घर में दिन भर न होने के कारण शाम में घर आने पर बेटा के साथ अच्छा ही दिखता लेकिन अंदर की पीड़ा पिता समझ न सका।

एक दिन बगैर खाना खाए स्कूल चला गया सन्ते। शाम को लौटने पर भूख से छटपटाते हुए- "माँ मेरा खाना कहाँ है ?" सिर्फ़ इतना ही बोला था कि उग्रचण्डी रूप लेकर सौतेली माँ पृथ्वी का बोझ, खाना का भार और न जाने क्या-क्या अनाप-शनाप बोलने लगी। कमाकर लाया है तू जो तेरा खाना ? इतना सुनने के बाद सन्ते थर्रा के बैठ गया। भूख सहन नहीं हो सका और जाँड़ (हस्तनिर्मित शराब) की सुराही से जाँड़ निकालकर पीने लगा। भूखा होने के कारण जाँड़ का नशा वह सहन नहीं कर सका और भूमी पर ही उल्टी करने लगा। वह देखने पर सौतेली माँ को और क्या चाहिए था ? शाम को पिता के आने पर बढ़ा चढ़ाकर कान भर दिए, इसलिए उसे पिता के हाथों बेरहमी से मार खानी पड़ी। उस समय अपनी माँ को याद करके खूब रोया। भागकर जाऊँ तो वहाँ पहुँच नसकूँगा। इसी तरह वह बहुत रातें रोकर ही बिताया था।

पढ़ने में तेज़। सबसे होनहार, अच्छा। दूसरी क्लास से लगातार प्रथम होते हुए पाँचवीं क्लास में पहुँच गया। गाँव के लोग जब सौतेली माँ से कहते तुम्हारा बेटा पढ़ने में अव्वल है तो वह नाक भौं सिकोड़कर बोलती-पढ़ के हाकिम बनेगा वह बदमाश ? सन्ते ऐसी बातें समान्य रूप में पचा देता। एकदिन छोटी माँ पाँच रूपया कुछ करते हुए कहीं पर गिरा दी

फ़िर सन्ते पर चोर का आरोप लगाते हुए- तुमने ये पैसा नहीं चुराया है तो और किसने चुराया कहते हुए बाँधकर मुँह पर थुकते हुए खूब पिटाई की। ऐसा अभाभी हो, तभी तो तुम्हारी माँ तुम्हें छोड़कर चली गई बोलती हुई डंडे से मारती रही तवतक जवतक वह थकी नहीं। नीली निशान और घाव को सहलाते हुए भरने में महीनो दिन लग गया। भूखा तो कितने ही रातें सोना पड़ा। पिता ही शत्रु के समान हो जाने पर अपना भाग्य को धिक्कारते हुए श्राप देता था। मर भी जाता तो ठीक रहता लेकिन मरे कैसे ? घर में एक काला भोंटे कुत्ता था सोने के लिए कभी सूखी घास तो कभी भोंटे कुत्ता के साथ सोना पड़ता। शायद ! उसे सिर्फ़ एक भोंटे कुत्ता ही पहचानता था। उसे वह महसूस करता था। जितना भी उसे दुख मिला और शुष्क बातें सुनने को मिला फ़िर भी उसने पढ़ना नहीं छोड़ा। कलान्तर में पिता, छोटी माँ, भाइ सब विवाह का योजना बनाकर पुराने घर में लौट गया। बचपन से वही पला-बढ़ा, मिट्टी और उसी हवा-पानी के साथ अपनापन हो जाने के कारण कहीं और जाने का मन ही नहीं हुआ। ठीक उसके एक महिना बाद बड़ी माँ उसे लेने के लिए आई। समझाते हुए बोली बेटा सन्ते तुम्हारी माँ बिमार है। माँ से मिलने चलो। सन्ते हक्का-बक्का हो कुछ नहीं बोल सका। दो-तीन वर्ष के उमर से ही माँ से अलग हो चुका था और उसपर से ऐसी खबर सुनकर वह कुछ सोच ही न सका ऐसे भी सन्ते को छोड़कर भागने के बाद (उसकी पिता से) वह बहुत बिमार हो चुकी थी। आखिर में सन्ते, माँ से मिलने का निश्चय कर घर का समान सब सुरक्षित स्थान पर रख द्वार पर ताल्चा लगाके पड़ोसियों से मैं जबतक नहीं आऊँगा घर का मेरा ध्यान रखिएगा। बोलते हुए सुबहबड़ी माँ के साथ निकल गया। भोटे सन्ते को पीछा करने लगा। भोटे कुत्ता को समझा-बुझाकर निकलने पर भी पता नहीं क्यों कुत्ता ने पूँछ हिलाते हुए आँखों में आँसू भर के देखता रहा। सन्ते को और जिस रास्ते से गया था, उस रास्ते को.....।

भारी मन से सन्ते माँ से मिल भी पाएगा या नहीं सोचते हुए बस की यात्रा करते हुए बड़ी माँ के साथ शाम को माँ के घर पहुँचा। माँ बिमार विसतर पर बेटा की प्रतीक्षा कर रही थी। बहुत दिनो बाद मुलाकात होने पर भी सन्ते ने माँ को पहचान लिया। माँ बोलते हुए सन्ते ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा.....। माँ भी वर्षों बाद बेटा से मिलने पर खुशी से बाँहों में भरकर रोने लगी। "बाबा ! सन्त तुम ठीक हो।" ठीक हूँ माँ....। कोई चिंता की बात नहीं है। सन्ते आँसू पोंछते हुए हिचकी लेते हुए बोला। "अब से बेटा मुझे छोड़कर कभी नहीं जाना। तुम्हें माँ से प्यार नहीं है.....?" चौदह वर्ष का उस लड़का में जवाब देने की हिम्मत नहीं थी। वह माँ को सहलाते हुए बैठा रहा बड़ी माँ ने समझाते हुए बोली-"देखो बेटा तुझे तेरे पिता ने जब भगाके ले गया, तब महीनों तक तेरी माँ तेरा कपड़ा देख-देखकर मेरा सन्तु क्या कर रहा होगा। सौतेली माँ का व्यवहार उसके साथ कैसा होगा ? सोचते हुए झर-झर आँसू बहाती थी। उस समय तु, तुतलाकर भी बोलना नहीं जानता था। कितने दिनो तक बगैर खाना के रही। इस तरह से तुम्हारी माँ कमज़ोर होती गई। अभी देखो तुम्हारी माँ.....। सच्च में माँ दुबली-पातली कमज़ोर, बिखरे हुए बाल में विचित्र लगी। सन्ते अकबका गया। माँ का लगाव बेटा के साथ कितना होता है देखा ? माँ अब से मैं कभी भी दूर नहीं जाऊँगा। माँ आपके साथ ही रहुँगा माँ को सानत्वना देते हुए सन्ते ने कहा। कुछ ही दिनो में माँ के स्वास्थ्य में लाभ होने लगी इधर-उधर घूमने-फ़िरने लायक हो गई। सन्त को अपना पला बढ़ा स्थान साथी भाइ सब, भोंटे कुत्ता और घर की याद सताने लगा। और पढ़ाई ने तो उसे और दुखी बनाया। माँ ने सन्ते को उसी जगह पर दाखिला दिलवाया दिया और कल से स्कूल जाओ इसपर सन्ते ने सिर्फ़ सर हिला के बोला। उस स्कूल अपरिचित साथियों के साथ पढ़ते हुए अपने-आप को अकेला महसूस करने लगा। उसका दिल दुखा.....। अपने घर जाऊँ और साथियों से मिलुं छटपटाहटसी होने लगी। माँ का मन ही तो है, बेटा-बेटी बिगड़ने न पाए इसलिए भला-बुरा पिटना, कभी दुलारना। एकदिन सन्ते स्कूल पढ़ने नहीं गया। वह बात जानने के बाद माँ ने गुस्सा होते हुए, गालियाँ दी "तु आज स्कूल क्यों नहीं गया ? बोल।" सन्ते ने धीरे से शोला मुझे स्कूल जाने का मन नहीं हुआ। किसी को मैं पहचानता नहीं। सब मुझे देखकर हँसता है। "जो हो स्कूल जाना नहीं ?" बोलती हुई माँ ने दो थप्पड़

जडदी सन्ते को अपनी माँ द्वारा दो थप्पड़ मार खाते हुए बहुत मन में दुख हुआ। विधाता को दोष दिया। वह अपना मन को रोक न सका। छोटी माँ के जैसा ही धारणा बन गया माँ के बारे में। उस दिन दिनभर रोकर ही बीता था। बाल हृदय और कुछ भी न सोच सका। वहाँ से भागकर पहले वाला घर में ही जाने का निश्चय किष। उसके कल सुबहहीं सन्ते निकल गया। सुबहसन्ते को कहीं नहीं दिखने पर माँ ने सब से पूछ-ताछ की लेकिन सन्ते का कुछ पता नहीं चला बेटा को दो थप्पड़ लगाने का पश्चाताप भी हुआ। इस तरह से सन्ते भाग जाएगा पता होता तो उसे कभी मारती भी नहीं सोचती हुई वह आत्मग्लानी से भर गई।

सन्ते माँ के घर से भागकर शाम में घर आ पहुँचा। गेट खोलने पर सड़ा – बिखरा हुआ माँस का गंध आया। घर के दीवारों में छेद, ही छेद भाडा-वर्तन बिखरा हुआ देखकर आश्चर्य चकित रह गया। वह पड़ोसी के घर गया। बूढ़ा पड़ोसी विस्तार से सब कहने लगा। एक महीना तक मैंने अच्छे से घर की देखभाल कर दी। अपने कामसे मैं दोपहर को नहीं रहता था। गाँव के पशुओं सब दीवारों पर धक्का देते हुए गिरा देता था। नज़र पड़ने पर भगा देता था। तुम्हारे जाने के बाद भोंटे कुत्ता ने भी कुछ नहीं खाया। मेरा दिया हुआ खाना भी नहीं खाता था। रात होने पर रोते हुए भुकता था। तुमने आने में देर कर दी। आज सात, आठ दिन हो गया। कुत्ता मरने वाला दिन, भी तुम जिस रास्ते से गए थे उसी ओर बहुत देर तक देखकर रोता रहा। गाँववालो ने कैसा अशुभ संकेत है कहकर भगा दिया। सुबहतो कमरे के अंदर मरा हुआ था। हमलोगों ने मिलकर वहीं पर गाड़ दिया। सन्ते के आँखों में पानी भर आया। अपना सुख,दुख में बात समझने वाला अपना करीबी कुत्ता भी मरजाने पर इस संसार में अपने आपको अकेला महसूस कर ने लगा था। उस रात उढास चेहरे के साथ कुछ भी नहीं खाया और रात भर मन में अनेक बातों को सोचता हुआ माँ की याद आई। पिता, छोटी माा और भाईयों को भी याद किया। सारे नाते-रिश्ते, खून के रिश्ते नहीं होते जैसा महसूस किया। सबसे दूर जाकर रहने का निश्चय अपने दुख, सुख में जिने का निर्णय लेकर कल सुबहमुर्गा के बाण के साथ ही "अपना घर अपना विरान" जैसा ही समय ने जिस रास्ते के ओर ले गया उसी तरफ़ चल पड़ा। और काठमांडू बसपार्क में पहुँचा। अभी वही बसपार्क का ज़मीन और खुला आकाश उसका घर बना हुआ है। उसके पीछे से कोई व्यक्ति "ए भइया !यह सब उठाओगे क्या ?" आवाज़ से वह चौंका। जल्दी–जल्दी आँसू पोछते हुए ठेला गाड़ी से उतरकर समान उठाके उस व्यक्ति के पीछे-पीछे कदम बढ़ाना शुरू किया।.....क्रमशः खट्-खट्--खट्--।

अनुवादक : मौसमी सिंह (तिवारी)

कहानी

उसके बाद मुझे नींद आ गई

रमेश कुमार तामाङ

दीवार घड़ी का पेण्डुलम लगातार दस बार बजकर चुप हो गया था। पति समेत बच्चे सो चुके थे। मुझे पता नहीं क्यों बिल्कुल भी नींद नहीं आ रही थी। मुझे लगता है, १९ वर्ष बाद आज दोपहर शारदा के साथ एकाएक मुलाकात के कारण ही ऐसा हुआ है। बाल्यकाल के अविस्मरणीय, खट्टे–मीठे पल मेरे मानसपटल पर एक के बाद दूसरा नाच रहा था। ऐसे में मैं कल्पना के आकाश में तेजी से अपना प्यारा जन्म स्थान 'दुबे' में जा पहुँची।

स्वाभिमान का प्रतीक खड़ा 'थामडाँडा' दुल्हन ने हरा घुँघट ओढी हो जैसे दिखता स्याङल्याङ्ग ओखर बोटे और लुकुवा के हरा पाखा उसी की गोद में अवस्थित अति मनोहर और सुंदर गाँव 'दुबे' के सिरहाने ही शारदा का घर था। मेरा देउराली डाँडाँ में। घर–आँगन साथ–साथ न होते हुए भी सुबह–शाम घास और जलावन लेने और दोपहर स्कूल में हमारी मुलाकात होती थी।

स्कूल में मैं उनसे एक वर्ष जूनियर थी। वह सोह्र वर्ष में ही प्रथम श्रेणी में एस.एल.सी. (मैट्रिक) पास कर चुकी थी। वह पढ़ाई में अव्वल, सुशील और चरित्रवान थी। उनका सौंदर्य वर्णन शायद शब्द में करना असम्भव था। इस तरह से कहा जा सकता है, योग्य चित्रकार द्वारा कैनवस पर उतारा गया परम् सुन्दरी जैसी, वे युवाओं की कल्पना, युवती के हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न करानेवाली सच में अनुपम सुंदरी थी।

एक सुबह की बात है, घास काटने वाली जगह पर हमारी मुलाकात हुई। उनका चेहरा असामान्य ढंग से बुझा हुआ था। ऐसा देखकर सशंकित होते हुए मैंने पूछा–"शारदा तुम्हारा चेहरा उतरा हुआ क्यों है ?" शारदा ने एकाएक मेरे गले से लिपटकर रोती हुई बोली –"सरला मैं बहुत ही अभागन हूँ। मैं अब कॉलेज नहीं पढ़ पाऊँगी।"

गाँव में सबसे धनी वे लोग ही थे। अच्छे डिविजन से पास हुई पिता–माता की अकेली बेटी कैसे वह पढ़ न पाई ? मैं अचम्भे में थी। इसलिए मैंने उनसे पूछा–"तुम कैसे पढ़ नहीं पाओगी, शारदा ? मैं कुछ समझ नहीं पाई।" शारदा ने झरझर आँसू गिराती हुई बोली–"बात क्या है सरला ! भोजपुर से कल मेरा हाथ माँगने के लिए आए हैं, मेरे लिए लाई गई मँगनी की सौगात भी भी माता–पिता ने स्वीकार कर ली। अब तीन महीने के बाद मेरा विवाह होना है।"

शारदा ने कहा था–मैं अकेली क्या कर सकती हूँ ? पिता–माता, छोटी बुआ, बड़ी बुआ सब ने मुझे हराकर वैसे ही उन लोगों ने जीत हासिल कर ली। वे लोग मुझे खूब बहला–फुसला रहे थे। बेटी की जात एक रोज़ दूसरे के घर जाना ही पड़ेगा। अभी लड़का भी धनी घर का मिला तो ऐसे में इतना अच्छा मौका हात से जाने देना ठीक नहीं है, यह उनलोगों का तर्क था। मैंने लगातार उनसे पूछती गई –"लड़का पढ़ा लिखा है कि नहीं ? देखने में कैसा है ? तुम्हें पसंद आया कि नहीं ? शारदा ने उस समय जमिन को पैर के अँगूठे से कुरेदते हुए जवाब दिया था–एस.एल.सी पास किया हुआ है, चेहरा और शरीर भी अच्छा है। मैं भी उनका मनोविज्ञान समझ गई। उसने अपनी बात इस तरह से सुना दीया।" तुम मत रो ! विवाह के पश्चात भी दोनों जने मिलके कॉलेज पढ़ने जाएँगे होगा न।

मेरे इतना कहने पर भी उसका रोना नहीं थमा। उस के बाद उनके कहने के मुताबिक ही तीन महीना पश्चात् उनकी शादी हो गई। उसके एक वर्ष पश्चात् मैं भी मैट्रिक पास करके आइ.ए. पढ़ने के

लिए धरान की तरफ़ गया। उसके बाद हमारी मुलाकात नहीं हुई। यह सारी बातें कल, परसों हुई हो जैसा लगता है। लेकिन समय तो पता नहीं कैसे फिसल के १९ वर्ष बीत गया।

आज दोपहर बानेश्वर के तरकारी बजार में हमारी मुलाकात हुई थी। साग–सब्जी खरीदते हुए मैं घर की तरफ़ लौट ही रही थी कि पीछे की तरफ़ से अचानक किसी ने मेरा नाम लेकर पुकारा। पीछे मुड़कर देखने पर शारदा थी। भेटघाट के बाद हमारी बातचीत इस तरह से आगे बढ़ी थी।

"सरला तुमने मुझे पहचाना ?"

"पहचान गई तुम सरला ही हो न ?"

"लो तो भूली नहीं हो ?

"तुम्हारी–हमारी मुलाकात को भी १९ साल से अधिक हो गया ? उससे कम तो बिल्कुल भी नहीं। "तुम कहाँ हो ? क्या कर रही हो ?"

यहीं बानेश्वर में रह रही हूँ। थोड़ी देर कमरे तक चलकर बातें करो न जैसे- तैसे तो इतने दिनों बाद मिली हो, खड़े-खड़े ही क्यों बातें करें। ए ! लो चलो न ! क्यों थोड़ी देर ? बात ही करनी हैं तो इत्मिनान से लंबी-चौड़ी बातें कर लेंगी।

उसके बाद हम लोग अपने कमरे की तरफ़ चले जहाँ मैं रहती थी। रास्ते में मैंने अपने बारे में समान्य जानकारी इस तरह से दी- "मेरे पति का नाम विजय है। धरान कॉलेज में मेरे और उनके बीच पवित्र संबंध स्थापित हुआ था। ऐसा होते कुए भी हम लोगों की शादी बी.ए. पास करने के बाद ही हुई। उसके बाद काम ढूँढ़ने के लिए हम सब काठमांडू आ गए। जनता मा.वि. में हम दोनों को शिक्षक का काम मिला। उसके बाद लगातार १४ वर्ष हुआ। उसी स्कूल में काम कर रहा हूँ। हमारी दो बेटीयाँ ८ औ ६ में उसी स्कूल में पढ़ रही हैं।"

थोड़ी देर बाद हम अपने कमरे में पहुँचे। पापा बेटियों को स्वयम्भू घूमने के लिए निकले थे। सो लौटे नहीं थे साथी को वेटिङ्ग-रूम में रखकर मैं तुरंत चाय बनाने के लिए किचन की तरफ़ गई। हम लोगों के विछड़ने के बाद की गतिविधि संक्षेप में मैंने उनको बताया और शारदा भी अपनी बीती खट्टी-मीठी यादें मुझे संक्षेप में बताई। मैं भी सुन रही थी।

विवाह के सात दिन पश्चात्। रात को श्याम बहुत ज़्यादा शराब पीकर आया था, नशे में चूर होकर आया था। उस समय उनके लाल-लाल डरावनी आँखे देखकर मेरे होश उड़ गए थे। द्वार पर अंदर आते समय लड़खडाए मैंने उनको संभालना चाहा तो मुझे ज़ोर से घसीटा और एकाएक बिस्तर पर धम्म से गिरे। थोड़ी देर बाद वे वहीं पर उल्टी करने लगे। उसको पोंछकर फेकी। पानी पिलाकर जुत्ता खोलकर विस्तर पर सुला दिया। मैं रात भर सो न सकी। अपने भाग्य को धिक्कारते हुए रातभर रोती रही। शारदा अंर्तमन की पीड़ा को निकाल रही थी।

"उस समय तुम्हारे सास-ससुर नहीं उठे थे ?" मैंने पूछा था।

"नहीं उठे-वे लोग भी इसी तरह से नशे में चूर होकर सोते थे, कैसे पता चलता और उठते। श्याम का यह व्यवहार भी दिन प्रतिदिन बढ़ता गया। बाद में वे दोपहर को भी नशे में चूर रहने लगे। मैंने डरते-डरते उसे ऐसा नहीं करो मना करने पर वह बोला मैं किसी और का नहीं अपने बाप का पी रहा हूँ। किसी का क्या जा रहा है। तुम अधिक माहिर हो" बोलते हुए मेरी ओर लाल-लाल आँखें दिखाते हुए डाँटे। शारदा ने बुझते हुए चेहरे के साथ कहा।

श्याम को शराब पीने से सास-ससुर नहीं रोकते थे ? मैंने पूछा.....।

उसके बाद तो सास-ससुर और उन्हें और अधिक पीड़ा हुई और भी ज़्यादा पीने लगे। इस तरह से पीते-पीते काफ़ी खेत-बारी भी एक वर्ष के अंदर ही समाप्त हो गए। उसके बाद संपत्ति के नाम पर गोरहा खेत ही बाकी था। विवाह के तीन वर्ष पश्चात् ही मैंने दो बच्चों को जन्म दिया। मैं दो बच्चों की माँ होकर भी घर के अंदर और बाहर का सारा काम मैं ही देखती थी। ऐसी असक्त अवस्था में भी मर-मर के सारा काम करने पर भी एक वार भी कोई नहीं बोलता था बेचारी !" मुझे निराश भाव में देखती हुई. शारदा ने कहा था।

"तुम उसे रोकते थे, क्योंकि उन लोगों के पुश्त दर पुश्त से आती हुई चीज़ बोलते हुए उन लोगों को वचपन से ही यह पीने के लिए सिखाया गया है। रोक लगाने की तो बात ही छोड़ो, उन लोगों के साथ ही नशा चढ़ने तक बैठकर पीते थे। नशे में धुत् श्याम गाँव-घर में झगड़ा और दंगा फसाद भी मचाने लगा

था। उसके बल और मूर्खता का मूल्यांकन करते हुए कुछ बदनाम राजनीतिज्ञों ने उनके विपक्षियों को दबाने के लिए श्याम को हथियार के रूप में प्रयोग करने लगा। इसी तरह के प्रयोग के क्रम में एकदिन उन्होंने भोजपुर कॉलेज में पढ़ने वाला एक विद्यार्थी का पैर तोड़ डाला। गाँव की जनता ने उनके ऊपर जानेलेवा प्रहार को मुद्धा चलाया। उस मुद्धा से निकलने के लिए हम लोगों को कटारे का खेत वेचना पड़ा" लम्बी साँस लेती हुई बोली.....

"उसके बाद क्या हुआ ?" मैंने पूछा।

शराब से हमारी संपत्ति, स्वास्थ्य और इज्जत सब नष्ट हो जाता है इसे हमें छोड़ना पड़ेगा, बोलने पर वे लोग नाराज हो गए थे। वे बोली थी। "और उसके बाद क्या हुआ ?" फ़िर मैंने पूछा।

और विवाह के तीन वर्ष पश्चात्, सास-ससुर ६-६ महीने के अंतराल में स्वर्गीय हो गए। उस के वाद उस घर में हम चार लोग ही बचे। श्याम दारू-पानी से आगे बढ़ते हुए गाँजा और क्या-क्या नशीले पदार्थ खाने लगे थे। एकदिन मेरे लिए नहीं तो कम से कम अपनों बच्चों की खातिर वह नशीली चीज़ को छोड़ दीजिये, मैंने विनम्रतापूर्वक आग्रह किया था। इसकी प्रतिक्रिया में उन्होंने मुझे कुलक्षणी, कुलकलंक इस घर में आते ही मेरे माता-पिता को खा गई, सारी सम्पत्ति नष्ट हो गई और न जाने कितने आरोप लगाते रहे। शारदा रोआँसी होती हुई बोली थी।

"इतने सारे आरोपो को भी तुम चुपचाप सह गई ?" मैंने पूछा।

"उस रोज़ मैं भी चुपचाप बैठ नहीं सकी नशा पानी करके सारी संपत्ति खुद तुम लोगों ने नष्ट किया है और आरोप मेरे ऊपर ? नशा पानी करते हो और मेरे ऊपर अशुभ का आरोप लगाते हो ? बोलते हुए मैं दृढ़ता के साथ अपना वचाव करती रही। लेकिन दुख की बात, श्याम ने मेरी बातों का जबाव दिया, कहते हुए गाई को पीटनेवाली छड़ी से तीन बार मेरी कमर पर बजारते हुए गाँव की ओर चल दिया। मैं ज़मीन पर गिर गई। बड़ा लड़का सुमन मेरे साथ चिल्ला-चिल्लाकर रो रहा था। इसी हल्ला से शायद पालने में सोया हुआ छोटा-बेटा भी उठकर रोने लगा था। इस तरह से हम तीन कमज़ोर मन में पीड़ा भरेके रो रहे थे। शारदा के आँखों में नमी उतर आई थी यह कहते हुए। "इस तरह से मारपिट होती थी तो छुड़ाने के लिए कोई नहीं आता था ?" मैंने पूछा था।

"पहले-पहले तो आता था लेकिन घर का मामला है किसी ने हस्तक्षेप किया तो वे भी पिटाई खाँएगे कहकर घोषणा करने पर गाँव के लोग पिटाई के डर से कोई नहीं आता था। इतना होते हुए भी देउराली से सरिता दिदी छिपती-छिपाती मुझसे मिलने के लिए आती थी। मैं बिमार होने पर दवा भी वह ला देती थी। उस दिन भी जब श्याम ने मुझे पीटा था तो जानकारी मिलने पर शाम को मुझे मिलने के लिए आई थी। मैं उनके सामने बहुत देर तक रोई। उस वक्त उनके आँखों से भी आँसू गिर रहे थे। मैंने उनको इस घर में मैं नहीं रह सकती वाली बातें बताई। अगर मैं ही होती तो मर-जीके जो भी करना होता, करलेती, लेकिन इन बाल-बच्चों के भविष्य के लिए मुझे यह घर छोड़ना ही पड़ेगा। इसलिए इनलोगों को लेकर मायका जा रही हूँ। कैसे भी करके मुझे एक साथी ढूढ़ं दीजिये कहकर सरिता दिदी से शारदा ने अनुरोध किया।

"उन्होंने साथी ढूंढ़ा तो ?" मैंने सवाल किया।

"आरम्भ में तो इस तरह से घर नहीं छोड़ो जैसे बातों पर अडिग रही लेकिन मैंने बच्चों के भविष्य के लिए तत्काल यह घर छोड़ना चाहती हुँ, सदा के लिए नहीं न। मेरे बहुत अनुरोध करने पर उसके कल होकर सुबहनिकलने के हिसाब से एक महिला साथी ढूंढ़ के ला दी। सुबह–शाम दारू पीने के लिए जब बाहर निकाला तो इसी मौके का फायदा उठाते हुए बच्चा को उठाती हुई दो दिनों के पश्चात् मायका दुबे पहुँची थी। शारदा ने कहा।

"उसके बाद क्या हुआ तो ?" मैंने फ़िर से पूछा।

"घर पहुँचने के बाद माता-पिता को सारी बातें विस्तारपूर्वक बताई। सारी बातें जानने के बाद वे लोग बहुत रोए। छोटी बुआ भी काठमांडू से आई थी। वे भी मेरी सारी बातें सुनने के बाद दुखी हुई। उन्होंने मुझे ऐसी घड़ी में हिम्मत से काम लेना पड़ेगा जैसी सलाह दी। जबतक साँस तबतक आस के जैसा ही जीवन में कभी भी निराश नहीं होना चाहिए। उन्होंने समझाते हुए कहा। मुझे उनके साथ ही काठमांडू जाना पड़ेगा और गलैंचा फैक्ट्री में काम भी मिलेगा।"

"जी उस बातचीत के पाँच दिन बाद हम लोग काठमांडू आ गए थे और बुआ जी की कालीन फैक्ट्री के ऑफिस में काम करने लगा था।" शारदा ने जवाब दिया। "बेटा-बेटी को स्कूल में दाखिला दिलाया तो ?" मैंने पूछा था।

काठमांडू आते ही बुआ जी ने सुमन के घर के पासवाली स्कूल में दाखिला दिलवाया था। शारदा ने जवाब दिया।

"उसके बाद तुमने श्याम के बारे में कोई खोज-खबर नहीं ली।" मैंने पूछा।

"जी काठमांडू आने के चार-पाँच महीने बाद बुआ के आदेशानुसार श्याम की खबर जानने के लिए एक व्यक्ति को भोजपुर भेजी थी। श्याम घरबार सारा नीलाम कर चुका था। खानपान के अभाव में वह जीने-मरने की अवस्था पहुँच चुका था हमारी जानकारी के मुताबिक। उसके बाद हर महीने रू १००० के हिसाब से भोजपुर बैंक में ड्राफ्ट भेजती हूँ। उसी से अच्छी तरह घर में खर्च करो कहकर सरिता दिदी के हाथों श्याम को चिठ्ठी भेजती थी। चिठ्ठी में मानव जीवन बहुत ही सुन्दर जीवन है, यह फ़िर दोबारा नहीं मिलेगा, इसे बरबाद मत करो। चिठ्ठी में लिखकर मैं भेजती थी।" शारदा ने कहा था।

"और वह ड्राफ्ट भेजी तो ?" मैंने पूछा।

"हाँ, भेजी। चिठ्ठी में लिखी हुई मुताबिक ड्राफ्ट हर महीने भेजती रही। खुशी की बात इस तरह से पैसा भेजने के १ वर्ष पश्चात् श्याम की चिठ्ठी मिली। उसमें, उन्होंने मेरे साथ बड़ा अन्याय और अत्याचार किया। उसमे लिखा था हो सके तो मुझे माफ़ कर देना। इस चिठ्ठी को प्रेमपूर्वक जी कड़ा करके सीने से लगा ली। अनायास ही मेरी आँखे हर्ष के आँसू से भर गईं। मेरा मन खुशी से नाच रहा था। यह खबर मैंने तुरन्त बुआजी और फुफाजी को सुनाया। वे लोग भी वहुत खुश हुए और समय मिलने पर एकबार भोजपुर जाने की सलाह दी। इसी के मुताबिक १ महीने बाद भोजपुर आ रही हूँ यह बात चिठ्ठी में मैंने लिख भेजा।" शारदा का जवाब था।

"और तुम भोजपुर गए तो ?" मैंने पूछा था।

"जी चिठ्ठी में लिखा अनुसार ही मैं १ महिना बाद प्लेन से भोजपुर गई। मुझे लेने के लिए श्याम एयरपोर्ट आया था। डेढ़ वर्ष के बाद मुश्किलों से हमारी मुलाकात हुई थी। पहल से वे कुछ दुब्ले हो गए थे। मैंने उनको श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। उन्होंने प्रणाम का उत्तर दिया। हम दोनों के आँखो में हर्ष के आँसू छलक रहे थे।" शारदा ने मन की गहराई में डूबती हुई बोली थी।

"और तुम भोजपुर में कितने दिनो तक रुके ?" मैंने पूछा।

"वहाँ करीव एक महीना रुका। अच्चभ की बात, श्याम ने सब तरह के मादक पदार्थ सेवन करना पूर्णतया छोड़ चुका था। उनसे ही क्या पता चला कि भोजपुर मा.वि के शिक्षक श्री आङ्गदोर्जे तामाङ ने मादक पदार्थ तथा कुलत में फँसे युवा-युवतीयों को सुधारने के लिए एक समाजिक संस्था स्थापना किए हैं। उसी संस्था के प्रयास से वे इस तरह सुधर गए। में अंदर ही अंदर खुशी से गदगद हो गई। भोजपुर से १ महीने बाद हम दोनों काठमांडू लौट चुके।" शारदा ने वहुत ही प्रसन्न्ता के साथ बोली थी।

"उसके बाद न उसके..... ।" अत्यन्त उत्सुकता के साथ मैंने पूछा था।

"काठमांडू आए हुए करीब एक महीना हो चुका था। बुआजी ने हम दोनों को आई.ए. पढ़ने के लिए कॉलेज में दाखिला दिलवा दिया। पर कॉलेज हम दोनों का अलग-अलग था। श्याम त्रिचन्द नाइट कॉलेज में पढ़ते थे ओर मैं पद्मकन्या मर्निङ्ग कॉलेज में। दोपहर को हम दोनों बुआजी के गलैंचा फैक्ट्री में काम करते थे।"

"और तुम लोगों की पढ़ाई ?" फ़िर मैंने प्रश्न किया।

"कलेज जीवन में हम लोगों को अत्यन्त कठिन परिश्रम करना पड़ा। हमारे सामने दो बच्चो का पालन-पोषण कारखाना में काम करना और कॉलेज में पढ़ने जैसा चुनौतिपूर्ण काम था। लेकिन हम लोगों में स्पष्ट कर्तव्य बोध होना और फूफा- बुआ के असीम प्रेम के कारण वह सब सरल और सहज हो गया था। एक के बाद दूसरी सारी समस्याएँ हम लोग बगैर हड़बड़ी के परिपक्व ढंग से समाधान करते हुए जा रहे थे। इसी के फलस्वरूप हो सकता है कॉलेज में दाखिला के चार वर्ष में ही हम दोनों बी.ए. पास कर चुके थे।" शारदा ने स-विस्तार बताया था।

"अरे। वाफ रे..... " मैं अपने जगह से

उछलकर शारदा से हाथ मिलाते हुए बी.ए.पास करने की खुशीयाली में बधाईयाँ दी थी। उनके बचपन का ख्वाब पूरा होने पर मैं अत्यन्त प्रसन्न थी। उनसे आगे मैंने पूछा था। "और उसके बाद अभीतक दिन कैसे गुजर रहा है तो .....।"

शारदा बोलती गई "बी.ए.पास के बाद हम दोनों ने जन-जागृति मा.वि में शिक्षण का काम करने लगे। अभी तक उसी काम में हूँ। हम दोनों की कमाई से हम चार जनों का सुबह-शाम की आवयकता असानी से चल जाता है। बेटा दोनों सुशील और चरित्रवान है। वे दोनों ही प्रथम श्रेणी में मैट्रिक पास हुए। फिलहाल अमृत साइंस कॉलेज में बड़ा आई. एससी. द्वितिय वर्ष और छोटा आई.एससी. प्रथम वर्ष में पढ़ रहा है। बच्चों को इस तरह से लगनशील हो के पढ़ते हुए देखते हैं तो हमे बहुत ही खुशी मिलती है। यह सब याद करने पर अंदर हृदय में आनंद की अनुभूति होती है।"

थोड़ी देर रुककर कुछ याद आया हो, जैसे वह बोली थी- "सरला! श्याम और मैंने अबतक के भोगे हुए सुख और दुख यही है। व्यक्तिगत रूप में धन संपत्ति कमाने हम लोग धनवान नहीं बन पाए। लेकिन बाल बालिका को अच्छी शिक्षा -दीक्षा देते और जनता से प्रेम करने वाला सुशील और सभ्य नागरिकों की संख्या बढ़ाते हुए देश को संपन्न बनाने वाला काम में हम लोग लगे हुये है और निरंतर लगने का प्रण भी किए है।"

कम उमर में दुख पीड़ा की कठोर हवा ने उड़ाते-उड़ाते शारदा को अपने लक्ष्य के शिखर पर पहुँचने पर सुनके देश और जनता के बारे में उनकी धारणा अपने साथ बिल्कुल भी नहीं मिलने पर उस समय मैं हर्षविभोर हो गई थी। अभी भी शायद उसी क्षण के आनंदमय अनुभूति ने मेरे मानसपटल को छुआ, मैं टकटकी लगाते निद्रादेवी के मुलायम गोद में लेटने की तैयारीकरने लगी।

अनुवादक : मौसमी सिंह (तिवारी)

कथा/भारत (India)

सत्ताको खोजीमा

डा. सुधा पाण्डे (Dr. Sudha Pandey)

'म कश्मीरको धर्तीकी एउटी पुरानी कथा हुँ। बर्गैंचाभरि सुगन्ध छर्ने क्यानरी र नन्दनवनकी अमरगाथा पनि हुँ.। साथै राजपथ र राजसत्ताको गल्लीमा भट्किने राजनीतिक दूर अभिसन्धि, राजविप्लव र आफैँआफैँमा लडाइँ झगडा गर्ने सत्ताधारीहरूबाट उत्पन्न तलमाथि भएकी कश्मीरकी व्यथा पनि हुँ।'

अनन्तदेव नाम गरेका राजा राजनीतिक त्रासदीहरूका एउटा मानिएका अवतार नै थिए। राजमाता श्रीलेखा सत्ताको यही खेलबाट प्राप्त आफ्नो प्रशिक्षालाई प्रयोग गरेर सत्ता कसरी हात लगाउने भन्ने दाउमा थिइन्। घात र प्रतिघातमा सदैव लीन उनको मन यही उत्कण्ठामा व्यस्त रहन्थ्यो कि अवसर कहिले प्राप्त होला ! म आफ्नो प्रयासमा कहिले सफल हुँला ? राजमाताको यो स्वेच्छाधारी स्वभावबाट सबै क्षुब्ध थिए। राजमाताका आफ्नै छोरा अनन्तदेव, महाराज हरिराज र उनका सबै मन्त्रीहरू पनि क्षुब्ध थिए।

त्यो कालरात्रि नजिकै थियो। राज्यपदकी लोभिनी श्रीलेखाले 'मारक मन्त्र'को प्रयोग गरेर नै सुखको सास फेरिन्। राजाको प्राण लिएर मात्र उनलाई सुखचैन प्राप्त भयो। सानो उमेरको छोरो र बिचराको दुलही (बुहारी)लाई छोडेर राजा अनन्त यात्राका यात्री भइसकेका थिए। राजभवन र राज्यको सर्वत्र क्षेत्रमा दुखको लहर फैलिएको थियो। राजाको मृत्यु शोकमा सबै डुबेका थिए तर राजमातालाई अलिकति पनि शोक थिएन। राजलिप्साको मदमा अन्धी भएकी ती राजमाताले अलिकति पनि विलम्ब गरिनन्। उनी आफैँले राज्याभिषेकको सम्पूर्ण व्यवस्था गरेर स्नान गर्न गइन्। तर उनको क्रूर व्यवहार देखेर राज्यभरि करुणामय क्रन्दनको ज्वाला उठ्यो।

मानवमनको भन्दा पनि प्रबल छ दैवको गति। उसको शासनको अगाडि कसको के लाग्न सक्छ ? उसको रहस्य जानिनसक्नु छ। स्नान गरेपछि राजमाता शृङ्गारका लागि अन्तःपुरमा जान लागेकी थिइन्। यसैबीच केही विश्वासिला सेवकहरूले स्वर्गवासी राजाको उमेर नपुगेको छोरा अनन्तदेवको राज्याभिषेक गरिदिए। पश्चात्तापको ज्वालामा राजमाता एक्लै जलिन्...। पुत्रघातिनीको अपवाद र राजपदको लोभले गर्दा यस्तो कुकर्म...। राजा त गुमाइन् नै तर छोरो पनि गुम्यो। मात्र रह्यो अपजसको संसार। आफ्नो हातबाट उम्केको राजपीडाले रानीलाई निरन्तर रूपमा सताइरह्यो। लोकलाज बचाउनका लागि उनले मन्दिरहरू पनि बनाइन् तर आक्रोशले हाहाकार गरिरहेको उनको हृदय निरन्तर राजद्रोह गर्ने हेतुले छटपटाइरह्यो। खरानीको पहाडमा लागेको आगो जस्तै उनी अनुकूल अवसरको प्रतीक्षामा व्यस्त भइन्।

नयाँ राजा अनन्तदेवको कथा यसै आरोहअवरोहले भरिएको सङ्घर्षबाट सुरु भयो। नाबालक राजाले देशको शासनभार समाल्दासमाल्दै राजपदको सम्पूर्ण सुख ऐश्वर्य उनलाई प्राप्त भइसकेको थियो। राज्य सञ्चालनका लागि चाहिने जनताभन्दा टाढा भइसकेका राजा गलत काममा धन खर्च गरे र ऐशआराममा डुब्न लागिसकेका थिए। अनेक सुखसुविधा र राजकोषबाट तलबभत्ता पाउने शाही राजवंशमा जन्मिएका रुद्रपाल अनन्तदेवका प्रियपात्र भइसकेका थिए। तर राजाबाट प्राप्त सुखसुविधाहरू रुद्रपालका लागि कम भएको थियो। राजकोष रित्तिसकेको थियो तैपनि रुद्रपालले गलत काम गर्नेहरूलाई टाउकामा चढाउँदै थिए। यिनै चाटुकारहरूमध्ये विद्यापाल र अनङ्गपाल पनि थिए। उनीहरूका आँखा राजकोषमाथि लागिरहेको हुन्थ्यो। अकुत धनसम्पत्ति पाएर पनि उनीहरूलाई चैनको निद्रा लाग्दैनथ्यो। जनता त्रस्त थिए। जहाँतहीँ जनताको प्राण र धनसम्पत्ति हरण

भइरहेको थियो । अपराधी र चोरडाँकाहरूलाई कुनै प्रकारको डर थिएन । राजाका अन्तरङ्ग सहयोगी रुद्रपाल उनको प्रमुख अङ्गरक्षक पनि थियो । राजाका सबै विश्वासी सेवकहरू पनि जनताका समस्याहरू बढाइदिने खालका मात्र थिए ।

शिथिल शासन, रसरङ्ग र भोगविलासको चरमोत्कर्ष र कहिल्यै नसिद्धिने रुद्रपालको कुटिल नीति । फलतः शत्रुहरूले शिर उठाउन थालेका थिए । राजाका नजिक देखिने र महत्त्वपूर्ण पद पाउनेहरूको रुद्रपालले जरो नै काटेर फ्याँकिदिन्थ्यो ।

ब्रह्मराज आनन्ददेवका प्रिय साथी थिए । उनलाई महत्त्वपूर्ण पद दिएर राजाले गर्वको अनुभूति गरेका थिए । राजनीतिको कलुषित आत्माका प्रतीक रुद्रपालका दुष्ट चालका कारण ब्रह्मराजले पदत्याग गर्नुपऱ्यो । 'मैले उससँग बदला लिएर छोड्छु' यो सङ्कल्प गरेर ब्रह्मराजले सात म्लेच्छ राजाहरू र अन्य जातिका जनतालाई आफ्नो पक्षमा लिए । कश्मीरको सीमाका सबै सरदारहरूले आफ्नो शक्ति बढाएका थिए । उनीहरूको प्रभावले गर्दा आक्रमण बढ्दै गइरहेको थियो । जनता धर्म परिवर्तन गर्न विवश थिए । ब्रह्मराजले युक्तिपूर्वक दरदराजलाई आफ्नो पक्षमा मिलाए र राजा अनन्तदेवका विरुद्ध आक्रमण गर्न तयार भए । दरदराज अगाडि बढ्नेबित्तिकै यो समाचार रुद्रपालकहाँ पुगिसकेको थियो । युद्धको उत्कण्ठाले भ्रजदण्ड भड्कियो । दुवैतिरबाट युद्धको घोषणा भयो । सूर्यको पहिलो किरणले हिमाच्छादित पर्वतहरूलाई स्वर्णिम बनाइसकेको थियो । दरदराज आखेटकको भेष धारण गरेर पिन्डारक नागकुण्डसम्म पुग्यो ।

सेनाले सम्झे कि युद्धको निर्धारित व्यवस्था भङ्ग गरिएको छ । त्यसकारण शत्रुले हामीमाथि नै हमला गर्ने हो कि भन्ने आशङ्का उठ्नेबित्तिकै अर्को पक्षको सेना पनि युद्ध गर्न निस्क्यो ।

दुवै पक्षका बीच भयानक युद्ध भयो । अस्त्रशस्त्रको सङ्घर्षबाट विकराल अग्निज्वालाहरू बल्न थाले । युद्धमा वीरगति प्राप्त गरेका वीरहरूलाई स्वर्गलोकको परिचरहरूद्वारा स्वागत गर्न लागियो ।

भयङ्कर युद्ध भयो । दरदराजको टाउको काटियो । कैयौँ म्लेच्छ राजाहरू मारिए । कतिलाई बन्दी बनाइयो । रुद्रपालले आफ्नो मालिक अनन्तदेवलाई दरदराजका काटिएको शिर भेटी चढायो । महाराज अनन्तदेवलाई अकुत धर्नराशि प्राप्त भयो । चतुरो रुद्रपालको कीर्ति फेरि एक पटक सर्वत्र फैलियो । आफ्नो मित्र राजाका लागि मित्रताको सोपान पूरा गऱ्यो उसले । राजाको झन् ठूलो कृपापात्र बन्यो रुद्रपाल । राजशासनको यस अनुक्रममा राजाको क्लेश अझै समाप्त भएको थिएन । समयचक्रको क्रममा कहिले राजाकै भाइको प्रेरणाबाट कहिले ब्राह्मणहरूको उपद्रोको सामना गर्नुपर्थ्यो भने कहिले अर्को उपद्रो आइलाग्थ्यो । रुद्रपाल नराम्रोसँग अस्वस्थ हुन थाल्यो । केही समयपछि उसको मृत्यु भयो । रुद्रपालका मृत्युको साथै अन्य शाही पुरुषहरूको पनि अस्तित्व समाप्त भयो ।

रुद्रपालको मृत्युले अनन्तदेवलाई ठूलो चोट पऱ्यो । रुद्रपालको स्नेह र राजनीतिको दुष्चक्रमा फसेका उनी आफ्नी रानी सूर्यमतीलाई पनि विर्सेजस्तै अवस्थामा पुगेका थिए । निर्दयी रुद्रपालको मृत्युपछि मात्र रानीले पतिको हृदयमा ठाउँ पाउन सकिन् । उनी बुद्धिमान् थिइन् । उनले लोग्नेको अनैतिकपूर्ण कार्यहरूको प्रायश्चित्तस्वरूप कश्मीरमा धेरै धर्मकर्म गरिन् ।

राजाको दुर्बलता प्रजाबाट छिपेको थिएन । उनीहरूलाई यो मनपरी तन्त्रबाट फाइदा उठाउने अवसरको खोजी थियो । राजालाई घोडसवारीको सोख थियो । यसैको लाभ उठाएका अश्वशालाका कैयौँ कर्मचारीहरूले जे भन्थे त्यही हुन्थ्यो । उनीहरू धनी हुँदै गए । मनोरञ्जन कलाको खप्पिस एउटा सेवकले जनतालाई खुब लुट्यो ।

राजालाई कुनै होस थिएन । अर्थव्यवस्था जर्जर भएको थियो । पद्मराज नाम गरेको एउटा व्यापारीले राजालाई ऋण दिन थाल्यो । राजमुकुट र राजचिह्न पनि वन्धकीम पऱ्यो । पद्मराजको कारणले गर्दा राजकोष नै रित्तिन लाग्यो । रानी सूर्यमतीको मन शान्त भएन । उनले आफ्नो निजी कोषबाट पैसा निकालेर राजमुकुट र राजबन्धकीबाट उनले छुटाइन् । उनले कर्मचारीहरूको आतङ्क पनि शान्त गराइन् ।

रानीले आफूलाई नयाँ रूपमा प्रस्तुत गरिन् । उनले राज्य सञ्चालन आफ्नै हातमा लिइन् । राजा पनि रानीको अधीनमा बस्न थाले । उनको निर्देशन र नयाँ मन्त्रीहरूको कार्यदक्षताको सहयोगस्वरूप राजकोष फेरि समृद्ध हुन थाल्यो । हलधर नामको एक जना रानीका निजी सेवक थियो । आफ्नो बुद्धि र बर्कतका

कारण ऊ सर्वाधिकारी हुन सफल भयो । आफ्नो बुद्धिले गर्दा ऊ कैयौँ राजाहरूलाई आफ्ना पाल्तु जनावर जस्तै बनाउन सफल भयो । राजा र रानी पनि हलधरको अधीनमा पर्दै गए ।

सेवकबाट सर्वाधिकारी हुन पुगेको हलधरले राजाका धेरै अधिकारहरू आफ्नो हातमा लियो । प्रजाको धन लुट्ने र महिलालाई अपहरण गर्ने कर्मचारीहरूलाई उसले दण्ड दियो । उसले प्रजालाई शान्त तुल्यायो ।

यसबीच रानीको राजनीतिले भने झन् निकृष्ट रूप लिन थाल्यो । सङ्कटग्रस्त त्यस राज्यमा बाहिरबाट शान्ति देखिए पनि भित्र शान्ति थिएन । राजसिंहासनमा रानी थिइन् र राज्य शासनमा हलधरको आदेश चल्थ्यो । राजा सङ्कटमा थिए । उनी कठपुतली मात्र भएका थिए । शासन थियो भने रानी सूर्यमती र हलधरकै थियो । रानीको अनुकम्पाको पात्र हलधर राजभवनलाई कलङ्कित गर्ने पात्र हुनबाट बचेन । राजा अनन्तदेवको काथरताको सर्वत्र चर्चा हुन थाल्यो । हलधरसँग आक्रोशित भएका राज पुरुषहरूले उसलाई बन्दी बनाए । राजाले उसको सर्वस्वहरण गरे । हलधर जेलमा बसेर अपसोच मान्न थाल्यो ।

यसैबीच हलधरको भाग्यले फेरि एक पटक नयाँ मोड लियो । दया गरेर राजाले उसलाई कैदमुक्त गरिदिए । रानीको कृपा पनि उसमाथि पहिलेकै जस्तो थियो । जनताले पनि उसका दुष्कर्महरू बिर्सिसकेका थिए । राजारानीले उसको निर्देशनबिना केही गर्न नसक्ने अवस्थामा पुगेका थिए । स्वास्नीको अधीनता स्वीकार गर्नु नै राजाका लागि विपत्तिको सागरमा डुब्ने कारण बन्न पुगेको थियो ।

अब रानीका अगाडि उनका छोरा कलश थिए । पुत्रस्नेहका कारण राजा जिउँदो हुँदाहुँदै रानीका मनमा छोरालाई राजा बनाउने दुराग्रह पलाउन थाल्यो । मन्त्री र सेवकहरूले जति सम्झाए पनि नमानेर राजाले छोराको राज्याभिषेक गराए । त्यति गरेर पनि रानीलाई शान्ति प्राप्त भएन । राजा कलश नाम मात्रका राजा भए श्र सत्तासुखका लोभी छोरा कलशलाई पनि उनले सुख दिन सकिनन् । बुहारीहरूको वैभव उनले सहन गर्न सकिनन् ।

फलस्वरूप कलशको राज्यकाल पनि सङ्कटग्रस्त भयो । उता महाराज अनन्तदेवलाई पश्चात्तापसिवाय केही भएन । पत्नीको वशमा परेर 'मैले स्वाभिमान, यश, राज्यभोग, बुद्धि र धनसम्पत्ति सबै गुमाएर निर्वासनको पीडा भोग्दै छु । उसले त मलाई...तर छोराले पनि...। मैले यस कलङ्किनीको आचरण बुझेर पनि यसको इज्जत थामेँ । मेरा सारा सम्पत्ति यसले नष्ट गरी । अब परालोकको सुख पनि यसले गुमाइदिनेछ । यसको भाउँतोमा लागेर मैले 'कलश'लाई राजा बनाएँ ।' राजाको मनभित्र लुकेको क्रोध प्रकट भयो ।

राजाको कुरा सुनेर रानी सूर्यमती पनि आवेशमा आइन् । 'यो राजभ्रष्ट, मूर्ख, विवेकशून्य, अभागी बूढाको जीवन व्यर्थ छ । यसले कतै गएर प्रांयश्चित्त गरोस् ।' उनले भनिन् ।

राजसत्ता प्राप्त गर्नासाथ छोराले उनलाई निर्वासित गऱ्यो । पत्नीले धिक्कारिरहेकी छिन् । त्यस्तो लोक अपवाद र स्वास्नीको दुष्ट वचन सहन गर्न नसकेर आफैँलाई धिक्कार्दै राजाले आत्मघात गरे ।

अनुवाद : रामबहादुर पहाडी

कथा/जापान (Japan)

माकुराको धागो

ऱ्युनोसुके अकुतागावा (Ryunosuke Akutagawa)

(१)

एक दिन बुद्ध स्वर्गक कमलपोखरीको डिलमा एक्लै घुम्दै थिए। पोखरीमा फक्रिरहेको कमलका फूलहरू हीराजतिकै निक्खर सेता थिए र तिनका मध्यभागमा रहेका सुनौला गर्भकेसर तथा पुङ्केसरले त्यहाँका वायुलाई अवर्णनीय सुगन्धले भरिपूर्ण गरिरहेका थिए।

यो स्वर्गको बिहानी थियो। पोखरीके डिलमै निस्तब्ध उभिएकै बेला पानीके उपल्लो भाग छोपिरहेका पातका च्यापबाट बुद्धले निम्न वर्णित दृश्य देखे।

नर्कको सतह स्वर्गको कमलपोखरीको सोझै तल पर्न गएकाले तीनपत्रे पथको अन्त्यहीन अन्धकारमय अवस्था र भेदनशील चुचुरा भएका सियोरूपी पर्वत कञ्चन पानीबाट छर्लङ्ग देखिएका थिए।

तत्काल बुद्धका आँखा कान्डाटा नाम भएको व्यक्तिमाथि परे जो अन्य पापीहरूसरह नर्कको सतहमा छटपटाएको थियो। यो कान्डाटा, मान्छे मार्ने, घरहरूमा आगजनी गर्नेजस्ता घोर अपराधहरू गरेको डाँका थियो, जसले एक मात्र राम्रो काम गरेको थियो। एक दिन घना जङ्गलबाट पार हुँदै गर्दा उसले बाटाको छेउमा एउटा माकुरो घस्रँदै गरेको देख्यो।

अति छिटो आफ्नो खुट्टा उचालेर उसले त्यस माकुराको अन्त्य गर्न आँट्नासाथ उसको मानसपटमा एउटा भाव जागृत भयो। 'अहँ, अहँ, यो अति सानो प्राणी भए तापनि यसमा आत्मा छ। विचारै नपुऱ्याई यसलाई मार्नु लाजमर्दो हुनेछ।' अनि उसले त्यो माकुरोलाई जीवन दान दियो।

नर्कतिर हेरिरहँदा बुद्धले यही कान्डाटाले माकुरोलाई जीवन दान दिएको कुरा सम्झे। त्यो एउटा असल कामका लागि, सम्भव भएसम्म उसलाई नर्कबाट मुक्ति दिलाउने सोच गरे। उनले चारैतिर आफ्ना आँखा घुमाइरहेका बेला भाग्यवश स्वर्गको एउटा माकुराले कमलपत्रहरूमा एक सुन्दर चाँदीरङ्गी धागो बुनिरहेको देखे।

बुद्धले विस्तारै त्यो माकुराको धागो आफ्ना हातमा लिए। अनि उनले त्यो धागोलाई मोती जस्ता चम्कने कमलका फूलका च्यापच्यापबाट तल नर्कको पींधसम्म पुग्ने गरी सोझै झारे।

(२)

कान्डाटा यहाँ नर्कको सतहमा अरू पापीहरूसरह भकभक उम्लिरहेको रगतको तालमा माथि उत्रने र डुब्ने गरिरहेको थियो। जताततै अलकत्रा घोप्टिएजस्तो अन्धकार थियो। अनि बेलाबेला माथि उठ्दै झुलुक्क आँखा पर्ने एउटा दृश्य देखिन्थ्यो। त्यो अरू नभई उही डरलाग्दो भेदनशील चुचुराको चमक थियो। जताततै चिहानको जस्तो सुनसानपनले राज्य गरिरहेको थियो, अनि यदाकदा केही सुनिन्थ्यो भने त्यो मात्र पापीहरूको मधुरो क्रन्दन थियो। यसो किन थियो भने त्यहाँ पुग्नभन्दा अघि नर्कका विभिन्न खाले प्रताडनाहरूका कारणले उनीहरूका स्वर भासिई चिच्च्याउनै नसक्ने भइसकेका थिए।

त्यसैकारणले त्यो ठूलो डाँकु कान्डाटा पनि रगतको तालमा केही गर्न नसकी एउटा मर्न लागेको भ्यागुतो जस्तै निसासिरहेको थियो। तर उसको समय आयो। यसै दिन जब कान्डाटाले मौकावश आफ्नो टाउको रगतको तालबाट उठाएर माथि आकाशतिर हेऱ्यो, उसले त्यो अन्धकारमय गर्ततिर मानिसको आँखासँग डराएझैं गरी माकुराको चम्किलो धागो स्वर्गबाट बिस्तारै आफूतिर झर्दै गरेको देख्यो।

यो धागो देख्नासाथ उसका हातहरू खुसीले तालीको आवाज दिन पुगे। यदि यो धागोलाई समातेर जहाँसम्म पुग्छ, त्यहींसम्म झुन्डिने हो भने ऊ अवश्य

पनि नर्कबाट उम्कन सक्ने थियो । अहँ, त्यति मात्र होइन, यदि सोचेजस्तै भइदियो भने ऊ स्वर्ग प्रवेश गर्नसमेत सक्ने थियो ।

तत्पश्चात् ऊ कहिल्यै पनि ती भेदनशील पर्वततिर लगिने थिएन अथवा त्यो उम्लिरहेको रगतको तालमा डुब्ने थिएन । उसको मनमा यस्ता विचार आउनासाथ उसले त्यो धागोलाई आफ्ना दुवै हातले कसिलो पाराले समात्यो । अनि आफ्नो सम्पूर्ण शक्ति लगाई माथिमाथि चढ्न सुरु गऱ्यो । डाँकु भएकाले पनि लामो समयदेखि यस्ता काममा ऊ अत्यन्त अभ्यस्त थियो । तर नर्कस्वर्गबाट असङ्ख्य टाढा भएको हुनाले उसले जति नै कोसिस गरे पनि सजिलै उक्लन सकेन । केही क्षणको प्रयासपछि अलिकति माथि उक्लनासाथ ऊ लखतरान भयो । अनि एक इन्च पनि माथि चढ्न सकेन ।

माथि चढ्न नसकेपछि विश्राम लिन रोकियो र धागोमा झुन्डिँदै तलसम्म हेऱ्यो । ऊ धेरै माथिसम्म आइपुगेको हुँदा रगतको ताल, जहाँ पहिला ऊ थियो, आश्चर्यलाग्दो गरी अँध्यारोमा लुकेको थियो । भयावह भेदनशील पर्वत भने धमिलो रूपमा चम्किरहेको थियो । त्यही गतिले माथि उक्लन सके, आफूले सोचेभन्दा छिट्टै ऊ नर्कबाट मुक्त हुने थियो ।

माकुराको धागोमा बेरिएका उसका हातसितै कान्डाटाले नर्कमा प्रवेशपछि कहिल्यै नसुनिएको चर्को आवाजमा उल्लासित हुँदै चिच्च्यायो–'सफलता ! सफलता !' तर अकस्मात् त्यही धागोमा असङ्ख्य पापीहरू व्यग्रतासाथ कमिलाका ताँती जस्तै उसका पछि, माथिमाथि आइरहेको देख्यो उसले ।

यो दृश्य देख्नासाथ, आश्चर्य र त्रासपूर्ण भावका साथा कान्डाटाले उसको निन्याउरो मुख आँ...आँ...गर्दै आँखा झिमझिम पाऱ्यो ।

कसरी उसको एक्लो शरीरको भार थाम्दा मात्र पनि छिन्ला जस्तो त्यो माकुराको झीनो धागोले त्यति धेरै मानिसको भारी थाम्ला ?

यदि यो हावामौ छिन्यो भने त्यति कष्ट गरी यहाँसम्म आएको ऊ एकैचोटि नर्कमा फेरि पुग्नेछ । तर सयौँ तथा हजारौँ पापीहरू छटपटाउँदै रगतको तालबाट सकिनसकी त्यो पातलो, चम्किलो धागो समाती उक्लँदै थिए । तसर्थ कान्डाटा अत्यन्त चर्को आवाजमा करायो, 'हे पापीहो ! या माकुराको धागो मेरो हो । तिमीहरूलाई यसमा चढ्ने अनुमति कसले दियो ? ओर्ल ! ओर्ल !'

त्यसै समयमा अहिलेसम्म छिन्ने कुनै सङ्केत नदेखिएको त्यो माकुराको धागो कान्डाटा झुन्डिएकै ठाउँबाट छिन्यो । चिच्च्याउनसमेत नमिल्दै ऊ एक्कासि भुरुङ घुमेझैँ घुम्दै अन्धकारतिर सुइँकियो ।

यसपछि त्यो स्वर्गबाट झरेको माकुराको झीनो धागो केवल चन्द्र तथा तारारहित आकाशमा झुन्डिरह्यो ।

(३)

स्वर्गको कमलपोखरीको डिलमा उभिएर सम्पूर्ण घटना नियालिरहेका बुद्ध, कान्डाटा पुनः नर्कको रगतको तालमा ढुङ्गोझैँ खसेको देखी मलिन अनुहार पार्दै फेरि घुम्न थाले ।

निःसन्देह कान्डाटाको सङ्कीर्ण मनअनुसार ऊ एक्लै आएको भए आफूलाई मात्र बचाउने थियो, तर उसको फेरि नर्कमा भएको खसाइले बुद्धका आँखालाई अत्यन्त दयापूर्ण पारे । स्वर्गको कमलपोखरीका कमलका फूललाई भने यस्ता कुराले कुनै प्रभाव पारेनन् ।

हीरा जस्ता सेता फूलहरू बुद्धका खुट्टावरिपरि झुलिरहेका थिए । ती फूलहरू झुलिरहँदा, तिनको माझका सुनौला गर्भकेसरले अवर्णनीय अन्त्यहीन सुगन्ध हावामा प्रसारित गरिरहेका थिए ।

यस वेला स्वर्गमा मध्यान्त हुनै लागेको थियो ।

अनुवाद : खेमलाल पोखरेल

कथा/अजरबैजान (Azerbaijan)

बम

अब्दुराजिम बेक अख्भरदोभ (Abdurajim Bek Akhverdov)

हबलदार कार्बलैजलले प्रहरी सेवामा २५ वर्षभन्दा बढी बिताएको थियो ।

'तिम्रो दारीसँग यो टोपी पटक्कै सुहाउँदैन, अनि यो तरवार पनि ।' उसकी पत्नीले भन्थी, 'प्रहरीको जागिर छोडिदेऊ । बरु एउटा किराना पसल खोलेर आफ्नै मनखुस तालमा चलाऊ...।'

'हेर बूढी ।' ऊ जवाफ दिन्थ्यो, 'तिमी बुझ्दिनौ शक्तिको आकर्षण कस्तो हुन्छ । तिमीलाई प्रहरी बनाइदिए भने त झन् हजार वर्षमा पनि जागिर छोड्ने थिइनौ । अझ म त पच्चिस वर्षभन्दा बढी समयदेखि प्रहरी मै सेवा गरिराछु । अब एक दुई वर्षमै पेन्सन पनि पाक्छ । त्यसपछि त आराम भैहाल्छ नि हामीलाई ।'

'त्यसो त तिमी नै समझदार छौ ।' उसकी पत्नीले सहमति जनाउँथी ।

एक दिन कार्बलैजल घर आइपुग्दा निकै उदास थियो । उसलाई जिल्ला प्रहरी निरीक्षकले बोलाएका थिए । 'म तिमीसँग पटक्कै सन्तुष्ट छैन कार्बलैजल ।' उनले गम्भीर देखिँदै परिहासपूर्वक भने, 'तिमी प्रहरी बलको पुरानो र अनुभवी सदस्य हौ । रसियाबाट भर्खर यहाँ आएका युवा प्रहरीहरूले बम, राइफल अनि कारतुस भेट्टाएको भेट्टायै गर्छन् । उनीहरूको चौकीले नाम कमाउँछ अनि उनीहरू आफैले पनि पुरस्कार पाउँछन् । तर तिमीले भने अहिलेसम्म भाँचिएको बन्चरोको टुक्रोसम्म फेला पारेका छैनौ बा ! कि त तिमीले घुस खाने गरेका छौ कि नभए तिमी बुढो भएछौ, आफ्नो कामै ढङ्गसित गर्न नसक्ने गरी । यस्तै ताल भैरहने हो भने तिम्रो सेवा हामीलाई आवश्यक नपर्ने पनि हुन सक्छ बुझ्यौ ।'

ती शब्दहरू वाणझैँ कार्बलैजलको मुटुमै रोपिए ।

घर पुगेपछि उसकी पत्नीले उसलाई किन उदास भएको भनी सोध्दा उसले टाउको अलि दुखेको छ मात्र भन्यो ।

उसकी पत्नीले एक कचौरा आबगस्ट (मासुको लेदो परिकार) उसको अगिल्तिर राखिदिइन् । कार्बलैजलले अलिकति खायो, कचौरा छेउतिर सारिदियो अनि सुत्न भनेर गयो । तर लाख कोसिस गर्दा पनि उसलाई निद्रा लागेन । अन्त्यमा ऊ उठ्यो, एक ग्लास चिया खायो अनि बाहिर निस्किएर आफ्नै कार्य इलाकातिर लाग्यो ।

क्रोवावाया र नेश्चास्तनाया मार्गको छेउमा उभिएर कार्बलैजल निरीक्षकका शब्दमाथि घोरिएर विचार गर्न थाल्यो ।

मध्यरातअगि नै कटिसकेको थियो । अकस्मात् कार्बलैजलले एक जना मानिस एउटा घोडालाई लगाम समातेर डोऱ्याउँदै फलामको काम गर्ने फैजुल्लाको घरतिर आइरहेको देख्यो । घोडाको पिठ्युँमा गोलो किसिमका वस्तुहरूले भरिएका दुईवटा बोरा लादिएका थिए । फैजुल्ला र त्यो घोडा डोऱ्याउने मान्छेले सावधानीपूर्वक बोरा झिकेर घरभित्र लगे ।

यी सबै देखिरहँदा कार्बलैजलले मनमनै सोच्न थाल्यो, 'बल्ल आएर मेरो भाग्य उदाएजस्तो छ...मध्यरातमा गोलो वस्तु भएको बोरा...मज्जाको कुरा छ...!'

अरू कुनै झमेला नगरी उसले आफ्नो सिटी बजाइहाल्यो । नजिकै गस्तीमा भएको स.इ. पोताप दौडिँदै ऊ भएको ठाउँमा आइपुग्यो ।

'पोताप, यहाँ एउटा बम छ ...।'

'कहाँ ?'

'उनीहरूले भर्खरै बोकेर फैजुल्लाको घरभित्र लगे ।' पोतापले तत्कालै यो खबर स.इ. इभानलाई सुनायो । इभानले वरिष्ठ प्रहरी निरीक्षकलाई सुनायो र उसले पनि जिल्ला प्रहरी निरीक्षकलाई त्यो खबर दियो । जिल्ला प्रहरी निरीक्षकले एस. पी. लाई सुनायो ।

एस.पी.ले फेरि जेनदार्म (सशस्त्र प्रहरी) को कर्णेललाई भन्यो । आधा घन्टाभित्रै फैजुल्लाको घर वरिपरि कस्सक (सैनिक सिपाही), जेनदार्म र प्रहरीहरू जम्मा भए । उनीहरूले ढोका ढकढकाए । 'को हो तल ?' निद्राले लट्ठ परेको स्वरमा फैजुल्लाले सोध्यो ।

'ढोका खोल !'

ढोका खोल्नेबित्तिकै डरले फैजुल्लाको वाक्य नै फुटेन ।

बल्लबल्ल उसले यति मात्र भन्यो, 'के भयो ?'

'बोल्ने होइन, खानतलास हुँदै छ ।'

उनीहरूले फैजुल्लाका पत्नी र छोराछोरीलाई उठाए, कोठाभरीको सामान छरपस्टै पारे तर केही भेटेनन् ।

अर्को कोठामा छिर्नेबित्तिकै भने उनीहरूले दुईवटा पुट्ट परेका बोरा देखे ।

'एस. पी. सा'ब ऊ त्यहाँ छ बम !' कार्बलैजल खुसीले चिच्च्यायो ।

सबै जना जडवत् भए । कसैले पनि बोरानजिकै जाने आँट बटुल्न सकेन । 'यो पड्कियो भने त हामी सबै धुलोपिठो हुन्छौँ ।'

दुवै हात बाँधिएको बिचरा फैजुल्ला भने एकातिर उभिएको थियो ।

खानतलास व्यर्थ हुने देखेर फैजुल्ला जसोतसो आफ्नो चेत बटुल्यो र अकस्मात् भन्यो, 'हजुरहरू नडराउनु भए हुन्छ ! मेरो हात खोलिदिनुस्, बोराको सामान म आफैँ खन्याउँछु ।'

उसको अनुरोध स्वीकृत भयो । ऊ बोरानजिक गयो र संयमतापूर्वक बोरामा रहेका वास्तविक सामानलाई त्यहाँबाट बाहिर निकाल्यो । बोराभित्रका खरबुजाहरू वरिष्ठ प्रहरी अधिकारीका खुट्टातिर गुड्न थाले ।

भोलिपल्ट हबलदार कार्बलैजल प्रहरी सेवाबाट निष्कासित भयो ।

अनुवाद : ऋचा शर्मा

कथा/भारत (India)

पेट : एक सिँढी

अविनाश शास्त्री (Avinash Shastri)

त्यस निर्णायक र विधिनियोजित दिन, भाग्यले केही कोल्टे फेऱ्यो, जब बिहानबिहानै भीखू फुटपाथबाट सुतेर उठ्यो त पाँच भारतीय नागरिकहरूले उसको पेटलाई देखे । भीखूको पेटलाई उसका पीठसँग प्रेम भएको थियो र सम्भवतः यसैकारणले दुवै, पेट र पीठ, प्रगाढ रूपमा आलिङ्गनबद्ध थिए । प्रेम कतिसम्म गहिरो थियो भने प्रत्येक श्वासप्रश्वासको उच्छ्वासका साथ जब पेटलाई पीठसँग केवल एकछिनका लागि विलग हुन परे, अतिशय विरहको पीडाले सन्न हुन्थ्यो । स्थिति कतिसम्म आइपुग्थ्यो भने भीखूका प्रत्येक अङ्गलाई एकआपसमा प्रेम बसेको थियो, जस्तो– छालालाई फोक्सोसँग, दाहिने गालालाई बायाँ गालासँग, आँखालाई, जुन अतीव धसिएका थिए, आफ्नाआफ्ना धसिएको हड्डीयुक्त खोपिल्टासँग अनि शरीरका प्रत्येक भागका छालालाई त्यसका हड्डीसँग । यति गहिरो पारस्परिक प्रेमबन्धनलाई देखेर भीखूका मांसपेसीहरू अतीव लज्जाबोधले खुम्चिएका थिए । प्रेम यदि कसैलाई थिएन भने त्यो केवल भीखूको कपडालाई थिएन । नाम मात्रको झुत्राझुत्रा कपडा, जुन उसको शरीरलाई अँगाल्न पनि उतसिंदै कुनै पनि अङ्गसँग प्रेम स्थापित गर्न नपाएका कारण, भीखूलाई त्याङ्गर सम्झेर उसमाथि लत्रिरहेका थिए ।

जुन पाँच नागरिकहरूले भीखूको पेटको सरसरती हेरेका थिए, निरीक्षण गरेका थिए; तिनमा एक लेखक थिए, दोस्रो राजनीतिज्ञ, तेस्रो पत्रकार, चौथो कार्टुनिस्ट र पाँचौं भावी फिल्म डाइरेक्टर थिए । सबै आफ्नाआफ्ना क्षेत्रमा खुट्टा उभ्याउन प्रयास गरिरहेका थिए र भीखूको पेटलाई देखेर सबैका मस्तिष्कमा विचार उम्रिन लाग्यो ।

पहिलो नागरिक

हिँड्दाहिँड्दै मिस्टर मिश्रको शरीरका भित्र स्थित मन र मस्तिष्क कुनै विषयमाथि विचारविमर्श गरिरहेका थिए । (मिस्टर मिश्र एक लेखक हुन् र धेरै समयदेखि धेरै कुरो लेख्तै आइरहेका थिए । ठूलोठूलो पत्रिकाहरूमा छापिरहेका थिए ।) तर जसै उनका आँखा भीखूमा परे, उनको मन तथा मस्तिष्कबाट विचार केही यसरी उडेर गयो, जसरी आँधी आउँदा सडकबाट धूलो र कसिङ्गर उडेर जाने गर्थ्यो । उनले हेरे भीखूलाई अनि भीखूमा उनले उसको मुहार, हात र खुट्टासुट्टा देखेनन्, उनले देखे भीखूको पेट । भीखूको पेट ! मनमनै उनले त्यस पेटलाई कुनै उपमा दिने उपक्रम गर्न थाले । अनि उनको मस्तिष्कमा आयो एक ब्लाडर । फुटबलका ब्लाडर । फुटबलको एक यस्तो ब्लाडर, जुन क्रिकेटको सिजन आरम्भ भएका कारण एक कुनामा त्यसै परेको थियो । हावा निस्केका कारण चपक्क टाँसिएको थियो र स्वयम्मा हावा भर्न हुने कुनै वस्तु पनि थिएन उससँग ।

यस उपमा मस्तिष्कमा आउनासाथ उनको मस्तिष्कमा एक कथा जन्मिन लागेको थियो र उनले के सोचे भने यदि यस कथालाई उनले लेखेमा कथा धेरै प्रभावशाली रहने थियो । मर्मस्पर्शी पनि रहने थियो । तुरुन्तै उनी बिहानको आफ्ना सम्पूर्ण प्रोग्राम छोडछाड गरी घर फर्किए ।

घर जाँदै गर्दा मिस्टर मिश्र के सोच्तै थिए भने यस कथाद्वारा उनी गरिबीविरुद्ध युद्ध गर्न सक्थे । गरिबी यस समय हाम्रा अगाडि सबैभन्दा ठूलो समस्या थियो, अन्ततः कहिलेसम्म लाखौं जनहरूका पेट यसरी भोका रहन सक्थे ? कहिलेसम्म ? अनि बुझाइमा के आउँदैनथ्यो भने अन्य सबै जन गरिबीका पक्षबाट एकदमै अनजान थिए । सबैलाई जगाउनुपर्दथ्यो । आफ्नो

लेखनीबाट जनहरूलाई के देखाउनुपर्थ्यो भने भारतको गरिबी कति भयङ्कर ! कति विशाल समस्या थियो । आफ्ना लेखनीका माध्यमबाट जुधिरहनु थियो । मेरो लेखनीद्वारा सामान्य जनहरू उठेमा गरिबीका विरुद्ध युद्ध गरिदिने थियौँ । यसरी अनेक विचार मिस्टर मिश्रका मस्तिष्कमा उठ्न लागेका थिए । उनलाई एक्कासि के लाग्न थाल्यो भने उनको काँधमा एक उत्तरदायी बोझ थिया । जिम्मेवारी थियो । अनि उनी यस जिम्मेवारीलाई पालना गर्न द्रुत गतिमा घर हिँडे । घर पुगेर अनि कथा लेखेर मिस्टर मिश्रले निस्सङ्कोच आफ्नो जिम्मेवारी निर्वाह गर्न आरम्भ गरिदिए । आफ्नो कथाको शीर्षक धेरै शोधखोज, धेरै सोचचिन्तन गरेर राखेका थिए उनले : पेट ।

दोस्रो नागरिक

चुनावको दिन थियो र मिस्टर चौहान कतै भाषण गर्न गइरहेका थिए । लगभग पाँच वर्षअगाडि मिस्टर चौहानले आफ्नो राजनीतिक जीवन आरम्भ गरेका थिए, तर अहिलेसम्म उनलाई 'बताशा' प्राप्त भएको थिएन । अतः कारको अभावमा बिचरा पैदल नै हिँडिरहेका थिए । हिँड्दाहिँड्दै मिस्टर चौहान गहिरो सोचमा डुबेका थिए । एक चिन्ताले उनलाई सताइरहेको थियो । अनि चिन्ताको विषय थियो, नारा । धेरै समयदेखि उनी कुनै सशक्त नाराको खोजमा थियो, तर नारा भने कुनै रीतिकालकी नायिकाको कम्मरसरह हातमा आइरहेको थिएन । पुराना जति पनि नारा थिए, ती त सबै घिसिँदैपिटिँदै चिप्ला भइसके । नयाँ नारा हेर्नु थियो, खोज्नु थियो, तर गन्तव्य त उनका अगाडि आउँदैजाँदै गर्दै थियो र नारा मस्तिष्कदेखि अहिले पनि त्यति नै टाढा भएर बसेको थियो । उनी बिस्तारैबिस्तारै निरास हुन लागेका थिए । उनको आशाको टचुबबाट हावा बिस्तारैबिस्तारै फुस्किँदै गइरहेक थियो र जब उनको आशाको टचुब च्याप्टिन नै चाहन्थ्यो, एक्कासि त्यसमा कसैले पम्प भरिदियो । हावा फेरि फुलेर आयो । भयो के भने उनले भीखूलाई देखे । अनि उनले हेरे– भीखूको पेट, च्याप्टिएको पेट ।

मिस्टर चौहान एक्कासि के सोच्न लागे भने आजको भाषणमा उनले सामान्य जनहरूलाई पेटको यस्तो हालबारे अवगत गराएर यसबाट मुक्ति पाउनका लागि आश्वासन दिनुपर्ने होला । अनि गरिबी भगाउन प्रत्यक्षतः स्वयम्माथि लेख्नुपर्ने होला, सत्ता प्राप्त भएपछि । उनको मस्तिष्कबाट एउटा नारा वगेर निस्क्यो :

गरिबी हटाऊ, पेट फुलाऊ

हिँड्दाहिँड्दै एकचोटि उनले आफ्नो पेटतिर हेरे अनि फेरि मुस्कुराएर अगाडि बढ्यो । त्यस दिन मिस्टर चौहानले बारम्बार यस नारालाई दोहोऱ्याए । जनता धेरै आश्वस्त भयो र तिनले भाषणको समयमा बारम्बार ताली बजाएर आफ्नो समर्थन जनायो । जिन्दाबाद गऱ्यो ।

तेस्रो नागरिक

मिस्टर भोगेले, जो एक पत्रकार थिए, जब भीखूलाई देखे त पहिला त देखेर पनि नदेखेझैँ गर्न चाहेका थिए, तर यतिमै भीखूको पेटलले मानौँ हात बढाएर उनका आँखा समाइदियो । मिस्टर भोगेका आँखाले हेरे–भीखूको पेट । केही समयसम्म त उनको बुझाइमा केही पनि आएन, यो पेट थियो वा पीठ । धेरै सोचेपछि उनले निर्णय के लिए भने या पीठ थियो, पेट थिएन, तर तुरुन्त नै के सम्झना भयो भने यदि उनी यसलाई पेट मान्न लागे भने जीववैज्ञानिक चिन्तामा पर्ने थिए, किनकि यदि यो पीठ मानिए त फेरि पेट कहाँ थियो ? अनि बिनापेटले त कुनै पनि मान्छे जिउँदो रहन सक्तैन । कम्तीमा अहिलेसम्म रहेका थिएनन् । उनी फेरि गहिरो सोचमा डुबे । अब भने उनले निर्णय लिए, यो पेट नै थियो, पीठ थिएन, तर मस्टिष्कले फेरि जोरका साथ झट्का दियो–यो पेट थियो भने पीठ कहाँ थियो ?...पीठ ? अनि धेरै समयपछि मिस्टर भोगेको बुझाइमा के आयो भने यो पेट-पीठ दुवै मिलेर एक थिए ।

यो देखेर मिस्टर भोगे द्रवित भएका थिए । शिथिल पाइलाले उनी आफ्नो अफिसतिर बढे । क्यामेरा गर्दनमै झुन्डिरहेको थियो । जिन्दगीमा पहिलोचोटि उनले पेटलाई यसरी देखेका थिए । उनलाई के लाग्न थालेको थियो भने अन्य जति पनि रिपोर्ताज उनले लेखे-लेखे, तर पेटमाथि पनि एक रिपोर्ताज उनलाई लेख्नु पर्थ्यो । एक्कासि उनलाई यसरी एक रिपोर्ताजको खाँचो बोध हुन लाग्यो ।

अनि त्यस दिन मिस्टर भोगेले एक रिपोर्ताज लेखे–इन्डियाज स्टमक (भारतको पेट) । लेखेपछि उनी के सोच्न लागे भने उनले गरिबीका विरुद्ध युद्ध आह्वान

गरिदिए र यस विचारबाट उनमा वीररसको सञ्चार हुन लाग्यो ।

चौथो नागरिक

मिस्टर राम एक कार्टुनिस्ट थिए, जो अब त प्रसिद्धितिर बिस्तारैबिस्तारै उक्लँदै थिए ।

मिस्टर रामको सदैव के मान्यता रह्यो भने कार्टुनिस्टका लागि आफ्ना वरिपरिको निरीक्षण गर्नु आवश्यक थियो । आफ्नो मान्यताका अनुसार त्यस दिन जब उनी घुम्न निस्किए त उनका अगाडि देखा पऱ्यो भीखूको पेट, खाल्डो जस्तो पेट ।

भीखूको पेटबाट प्रभावित भएर आफ्नो विलक्षण अभिव्यक्ति प्रतिभा (जुन कि एक कार्टुनिस्टका लागि आवश्यक थियो)को पूर्णतः उपयोग गरेर उनले एक कार्टुन बनाए । कार्टुन केही यस प्रकार थियो :

एकातिर भीखू लम्पसार थियो । उसका सम्पूर्ण शरीर त ठीक थियो, तर पेटको ठाउँमा एक गहिरो खाल्डो थियो । सँगै एक बिल्डिङ बनिरहेको थियो । एक कर्मचारी भीखूको पेटको ठाउँमा बनेको खाल्डोलाई खनीखनीकन बालुवा-सिमेन्ट आदि निकालिरहेको थियो र अर्को कर्मचारीलाई दिँदै थियो । त्यहीँ एक माननीय नेताज्यू उभिएका थिए, जा आफ्नो भवनको प्रगति देखेर धेरै हर्षित देखिँदै थिए ।

कार्टुन बनाएपछि मिस्टर रामलाई बडो सन्तोष भयो । उनलाई के लाग्यो भने सम्भवतः यस मानसिक धक्काले, जुन कि यस कार्टुनबाट जनतालाई लाग्ला, स्थितिमा केही त सुधार अवश्य नै होला ।

पाँचौँ नागरिक

मिस्टर राय पैदल त्यसै प्रभात भ्रमण गर्न हिँडिरहेका थिए, एक्कासि उनले भीखूको पेटलाई देख्यो । मिस्टर राय धेरै नै ओरिजिनल मस्तिष्कका व्यक्ति थिए र भीखूको पेट देखेपछि उनको मौलिकता उत्तेजित भयो । सम्पूर्ण मार्ग उनी पेटकै बारेमा सोच्तै रहे । आँखा, कान, नाक र अन्य सबै इन्द्रियहरू, जुन त्यसमा हुन सक्थे, बाँकी सबै कुराहरूका लागि बन्द भए ।

मिस्टर राय फिल्म जगत्मा धेरै नै परिचित थिए । केही त नातेदार नै थिए । धेरै समयदेखि मिस्टर राय के अनुभव गरिरहेका थिए भने उनी स्वयम् पनि एक राम्रो डाइरेक्टर हुन सक्थ्यो । अनि आज भीखूको पेट देखेर, उसका बारेमा सोच्तैसोच्तै उनले पक्कै पनि निश्चय के गरे भने यस विषयलाई लिएर एक फिल्म बनाउने, जसको निर्देशन उनी स्वयम्ले गर्ने । अनि फिल्म जगत्मा यति परिचय हुनुको कारण यो काम कुनै खास अप्ठेरो हुनु पर्दैन । घर पुग्दा नपुग्दै उनको यो निर्णय अरू पनि पक्का भयो ।

दुई साढे दुई महिनाभित्र सबै काम आरम्भ पनि भएको थियो । एक प्रोडचुसरलाई यस फिल्ममा सम्भावनाहरू पनि देखा परे । ठूलाठूला अभिनेता बिलकुल अपवादस्वरूप भीखूको रोल निर्वाह गर्नका लागि लालायित थिए । कथाको जुन समस्या थियो, त्यो मिस्टर मिश्रको कथाले पूर्ण गरिदियो । मतलब के भने लगभग सबै मैदान जितिएको थियो । अडचन केवल के थियो भने सबै जना फिल्ममा केही भए पनि मसला भर्नका लागि उत्सुक थिए । केही छलफलपछि मिस्टर राय यसका लागि पनि राजी भए ।

फिल्म प्रदर्शित भयो र हिट पनि भयो । सबैको लाभ भयो । मिस्टर रायलाई फेरि पनि सन्तोष के थियो भने उनले गरिबीको समस्यालाई प्रत्येक वर्गका व्यक्तिसामु ल्याइदिए । फिल्म सबैद्वारा प्रशंसित भएको थियो, आलोचकहरूबाट बाहेक । तर तिनीहरू त सबै फिल्मको धज्जी उडाइदिन्थे । यो त उनीहरूको बानी नै भयो । अतः उनीहरूको प्रतिक्रिया कुनै महत्त्वका थिएन ।

पाँच नागरिकहरूको भाग्य

मिस्टर मिश्रका कथा यस्तै एकदुई महिनामा कुनै ठूलो पत्रिकामा प्रकाशित भए । रचना प्रकाशित हुनासाथ तहल्का मचियो । मुक्तकण्ठले यस मर्मस्पर्शी कथाको प्रशंसा गरियो । मिस्टर मिश्रबारे प्रशंसाको पुल बाँधिएको थियो । कथा यति प्रसिद्ध भयो, एक्कासि साहित्यका क्षेत्रमा मिस्टर मिश्रबारे सोधखोज धेरै हुन थाल्यो । उनको कथामा पेट एक आन्दोलन पनि बन्यो । मिस्टर मिश्र अब माथि उक्लिएका थिए ।

मिस्टर चौहानले जुन नारा भीखूका पेटबाट प्रेरणा लिएर बनाएका थिए, त्यो कति अचुक वाण सिद्ध भयो भने उनी चुनावमा भारी बहुमतले विजय भए । दल बदलेर सत्ताधारी दलमा गएपछि उनलाई मन्त्रिमण्डलमा पनि समावेश गरियो । उनका ठूलाठूला वक्तव्य प्रत्येक पत्रिकामा छापिन लागे । ठूलाठूला

फोटोहरू लगभग दैनिकजसो नै छापिन लागे । मिस्टर चौहान अब धेरै माथि उक्लिए ।

'इन्डियाज स्टोमक' देशका कुनाकुनामा कति मन पराइए भने अन्ततः यस रिपोर्ताजमा उनलाई 'बेस्ट रिपार्टर अव् द इयर'को पुरस्कार प्रदान गरियो । मिस्टर भोगे अब एक साधारण रिपोर्टरबाट बढेर एकदम माथि पुगे । उनको स्थानान्तरण राजधानीतिर भयो । उनी देशका सबैभन्दा उत्तम रिपोर्टरहरूमध्ये एक मानिन थालियो ।

मिस्टर रामलाई आफ्नो कार्टुनबाट एक्कासि अन्तर्राष्ट्रिय ख्याति प्राप्त भयो । दुनियाँका अग्रगण्य कार्टुनिस्टहरूमा उनलाई गन्न लागियो । उनी महँगो मूल्यमा बिक्न लागे र माथि नै पुगेका थिए ।

सबैलाई के थाहा थियो भने फिल्म हिट भएपछि त पैसा बाटामा त्यसै फालिएका ढुङ्गाहरू जस्तो उपलब्ध हुन थाल्दथ्यो । मिस्टर रायलाई त झन् चाँदी नै चाँदी भयो नै, सँगै मिस्टर मिश्रलाई पनि धेरै नै लाभ भयो । एक्टरहरू र प्रोडचुसरहरूको पनि भाग्य मानौँ जाग्यो । मिस्टर रायले धेरै पैसा अर्को उद्योगमा पनि लगानी गरे र कति अन्य फिल्महरूका डाइरेक्टर त बने नै ।

यी पाँच नागरिकहरूसँग आज आफ्नोआफ्नो कारहरू थिए, जसमा घामबाट बच्नका लागि मोटोमोटो सनग्लासेज लगाइएको थियो । यी काँचबाट घाम त रोकिन्थ्यो नै, सडकबाट दृश्य पनि ओझेल हुन्थ्यो ।

छैठौँ नागरिक

यस घटनाका मूक साक्षी म, आज पनि भीखूलाई सधैँ देख्तछु । यी पाँच नागरिकहरूलाई माथि उक्लनमा सहायता दिँदै गर्दा आफ्ना पेटमा उनको सम्मिलित भार सहँदै उसको अवस्था अब के भयो भने उसमा अब उभिन पनि कुनै क्षमता रहेन । उसको अवस्था त्यससरह नै भयो, जस्तो कि पुरानो भऱ्याङको, मान्छेहरूलाई माथि उकल्दाउकल्दा हुन जान्थ्यो । ठाउँठाउँमा सिमेन्ट प्लास्टर उप्किन्थ्यो र त्यो जीर्ण जर्जर हुन्थ्यो । प्रत्येक चढ्ने मान्छे माथि पुग्दथ्यो, सिँढीहरू जहाँको त्यहीँ छुट्तथे । माथि पुग्ने कुनै मार्ग तिनका लागि हुँदैनथ्यो । यस्तैयस्तै अवस्थामा म भीखूलाई आज पनि देखिरहेकै थिएँ । कुन आशामा भने सम्भवतः ऊ कहिले कति शक्ति जुटाओस् भने जुरुक्क उभियोस् र म पनि फुर्तीले उसको पेटलाई आफ्नो भऱ्याङ बनाएर ती पाँच नागरिकहरूका समक्ष पुग्न सकूँ ।

अनुवाद : रोशन थापा 'नीरव'

कथा/अस्ट्रिया (Austria)

परफर्मेन्स

हरबर्ट कुनर (Herbert Kuner)

एउटा 'सो'को प्रिमियर थियो ।

के आश्वासन दिइएको थियो भने बडो असाधारण नाटक हुनेछ । हामीलाई नाटकको नाउँ भनिएको थिएन, न त कलाकारहरूको नाउँ र न निर्देशककै नाउँ भनिएको थियो । भित्तामा तस्बिरहरू पनि टाँसिएका थिएनन् र न कुनै विवरण पत्रिका नै बाँडिएको थियो ।

हलका बत्तीहरू मधुरो भएपछि मलाई सबै कुरा रहस्यमय लाग्न थाल्यो । सास रोकियो, जब अगाडिको पर्दा उघ्रियो । पूर्णरूपमा चकमन्नता छायो । मञ्च एकदम खाली थियो । कुनै कुर्सी वा मेज–वा केही पनि, वस्तुहरू थिएनन् । अनि मलाई के लाग्यो भने मञ्चलाई यसरी नै खाली कति मिनेट बितेर गयो ।

फेरि जसै हावामा केही सन्यो–पाइतालाको आवाज !

एक केटी, सामान्य गल्लीकी केटीहरू जस्तो कपडा पहिरेर, मञ्चमा चलिरहेकी थिई, हराएकीहराएकी जस्तो लाग्दथी । मानौँ उसलाई यो थाहा थिएन, ऊ कहाँ छ–अनि फेरि ऊ मञ्चको ठीक बीचमा उभिन पुगी ।

दर्शकहरूमा एक प्रकारले छटपटीको अनुभूति थियो । उनीहरू कुर्सीहरूमा बसेर अधीर जस्तो भइरहेका थिए । कतैकतै, कोहीकोही खोकि पनि रहेका थिए । सम्भवतः यही आधुनिक नाटक थियो, जसमा केही नभएको होस् ।

हाम्रा गल्लीमा केही अट्किरहेको जस्तो थियो, जब अर्को पात्र मञ्चमा निस्केर आयो । ऊ तालुखुइले थियो–भैँसीको जस्तो गर्दन भएको, अधबैँसे । ऊ कुनै सर्कसको पहलमानसरह दरिलो देखिँदै थियो । ऊ केटीका सामु पुग्यो र उसका अगाडि गएर उभियो । अनि फेरि उसले केटीलाई चटाक्कले एक थप्पड हान्यो । केटी, लाग्दथ्यो, अहिले नै भुइँमा पछारिनेछ, तर उसले आफूलाई समाली र हडबडाएर उभिरही ।

पहलमान जस्तो मान्छेले लुछीलुछीकन केटीका कपडा चातिदियो, अनि फेरि झट्टसँग उसको भित्री कपडा पनि धुजाधुजा गरिदियो । हातको एक धक्काबाट उसले केटीलाई भुइँमा पछारिदियो, अनि उसमाथि चढ्यो । बलात्कारको यो बडो बीभत्स दृश्य थियो । मलाई आफ्ना आँखाको विश्वास भइरहेको थिएन । यी सबै यति सत्य थिए । यदि मलाई यो चेतना नभए यी सबै कुरा मञ्चमा भइरहेको छ, त म दौडेर गई त्यस केटीलाई बचाउने थिएँ । म जस्तै अरूले पनि यस्तै सोचिरहेको होलान् ।

अनि ऊ जब सबै कुरा पूरा गरेपछि उसले केटीको गर्दनमा हात राख्यो मानौँ केटीको घाँटी थिच्न लागेको हो र फेरि उसको टाउको भुइँमा बजारिदियो । अनि अन्त्यमा उसले त्यहीँ त्यसै अवस्थामा छोडिदियो र त्यो केटी कुक्रिएर त्यसरी नै बसिरही–अनि त्यो मान्छे मञ्चको छेउ भागमा गएर उभियो । ऊ केही तलतिर झुक्यो त केही चिर्पटको आवाज आयो–उसले काठका टुक्राहरूको भुइँबाट एक टुक्रा भाँचेको थियो, अनि त्यस चिर्पटलाई थाम्दै त्यस केटीतिर फर्कियो र त्यस केटीलाई त्यस चिर्पटले पिट्न लाग्यो ।

पर्दा खस्यो । के यो एक दृश्यको अन्त्य थियो वा नाटकको अन्त्य ?

हलमा तालीको ध्वनि थिएन, न कोही कुर्सीबाटै उठेका थिए, न हल्लिएका थिए ।

म अर्को दृश्यको पर्खाइमा पर्दा उठ्ने प्रतीक्षा गरिरहेका थिएँ र सोचिरहेको थिएँ–यदि कुनै अर्को दृश्य भएन भने त यस नाटकका पात्र बिदा लिन त आउने नै छन् ।

पर्दाको पछाडि एक मान्छे साँझको पूरा कपडा लगाएर अगाडि आयो । सम्भवतः निर्देशक थियो । भन्न लाग्यो–

'महानुभाव ! तपाईंहरूलाई केही भन्न चाहन्छु । यदि यस समय मेरो ठाउँमा यस नाटकका पात्र तपाईंहरूका अगाडि आए भने तपाईंहरू हलमा हलुका मनले जानुहुनेछ र घरमा पुगेर यस नाटकलाई बिर्सिनुहुनेछ, अनि यो नाटक पनि अन्य नाटकहरू जस्तै हुनेछ, तर हामी चाहँदैनौँ । हामी के चाहन्छौँ भने तपाईंभित्रको हिंसाको भयानक रूप तपाईंका आँखामा अडेर उभियोस् । जुन अत्याचार र हिंसाको विहङ्गम प्रचार गर्दछन्, हामी उनीहरूसँग सहमत छैन । जुन तपाईंले आफ्ना आँखाबाट देख्नुभयो त्यो एक उग्र रोष हो । यो दृश्य केवल खेलिएको होइन, साँच्चै नै घटित भएको छ । यो बलात्कार र मारपिट वास्तविक हो, अनि यसैले पात्रहरूको यस समय, यस दशामा, तपाईंहरूका अगाडि आउनु सम्भव छैन । हामी केवल के आशा गर्दछौँ भने त्यस केटीको बलिदान व्यर्थ जाने छैन । जानुहोस्, घर जानुस्, अनि केही कमलो मुटुको मान्छे भएर जानुस् ।'

अनुवाद : रोशन थापा 'नीरव'

कथा/जर्मनी (Germany)

अनुहार

हेनरिख बोल (Heinrich Bowl)

म बन्दरगाहमा उभिएर समुद्री चराहरूलाई हेरिरहेको थिएँ–तिनीहरू पानीमा डुबल्की लगाउँदै र फेरि उफ्रिएर पखेटालाई झट्कार्दथे । अनि कुनै जीवजन्तु त्यहाँ थिएन । पानीमा तेलका धब्बा तैरिरहेका थिए र त्यसका कारण सम्पूर्ण पानी हरियो जस्तै र चिल्लोझैं लाग्दै थियो । कतै कुनै जहाज देखिएको थिएन । क्रेन, मोर्चा खाएको जस्तो मुख बनाएर उभिएको थियो । सम्पूर्ण गोदाम खण्डहर भइसकेको थियो–कति भने अब त्यहाँ कुनै मूसासम्म पनि थिएन । अनौठो सुनसान थियो । म के जान्दथें भने अगिल्लो कति वर्षदेखि यस तटको बाहिरी देशहरूसँग कुनै सम्बन्ध थिएन ।

एक चरा धेरै समयदेखि पानीमा डुबुल्की मार्दै, फेरि झटपट माथि उड्दै र फेरि पानीमा डुबुल्की लगाउनका लागि पखेटालाई खुम्च्याउँथ्यो । त्यो प्रत्येक चोटि माथि आकाशमा झप्टन्थ्यो, सम्भवतः कुनै साथ खोजिरहेको थियो । मलाई लाग्यो, मलाई यदि कतै रोटीको एक टुक्रा प्राप्त भयो भने म टुक्रा पारेर यस चरालाई पनि दिन्थें र अन्य चराहरूलाई पनि । ता कि सबैलाई उड्नका लागि एक दिशा प्राप्त होस्...तर म स्वयम् भोको थिएँ; ती चरासरह, अनि थाकेको पनि । खाली खल्तीमा हात राखेर मैले ती चराहरूलाई हेरें, अनि आफ्नो दुखको एक घुँटसरि लिएँ ।

लाग्यो, कसैले मेरो काँधमा हात राख्यो । फर्केर हेरें–एक प्रहरी थियो ।

मैले काँध छुटाउने प्रयास गरें ।

'कामरेड !' उसले मेरो काँध अझ जोडले अँठ्याउँयो ।

'साव !'

'अब यहाँ कोही साव छैन, हामी सबै कामरेड हौं ।'

'तर मेरो के दोष ?'

'दोष ?' ऊ हाँस्यो र भन्न लाग्यो, 'तिम्रा अनुहार, तिम्रो उदास अनुहार ।'

मलाई पनि हाँसो उठ्यो ।

'यो हाँसोको कुरा हो ?' उसको मुहार क्रोधले रातो भयो । पहिला त मैले के सोचें भने ऊ सम्भवतः त्यसै नै बोर भएको थियो–सम्भवतः उसलाई आज चाहेर पनि पेसा गर्ने कुनै वेश्या प्राप्त भएन वा गल्लीमा पसिरहेको कुनै जँडचाहा भेटिएन वा कुनै चोरछटेल वा खल्तीमारा आज हातमा आएन । तर पनि मैले के देखें भने ऊ साँच्ची नै क्रोधमा थियो र मलाई समाउन चाहन्थ्यो ।

उसले मेरो बायाँ हातमा हतकडी लगायो । फलामको आवाजले मलाई ज्ञात भयो, म त बरबाद भएँ । चाँडै नै एकचोटि उडिरहेका चराहरूतिर र खुला आकाशलाई आँखामा भरें, अनि फेरि पानीतिर एक दृष्टि हेरें–पुलिसको हात समाउनु र फेरि कति दिनसम्म गहिरो चोट खाएपछि जेलको कालकोठरीमा सड्नु, डुबेर मर्नुभन्दा भयानक थियो । तर उसले एकै झट्कामा मलाई आफूतिर घिसाऱ्यो ।

'तर मेरो दोष, महोदय ?' म भकभकाएँ ।

'कानुनका अनुसार सबै जनालाई प्रत्येक समय हर्षित हुनुपर्दछ ।'

'म हर्षित छु ।' मैले आफ्नो सम्पूर्ण बल लगाएर भनें ।

'गलत ।'

'तर यस्तो कानुन कहिल्यै पनि सुनेको छैन ।'

'सुनेका छैनौ ? यो लागू भएको छत्तीस घन्टा भयो । घोषणा भएको चौबीस घन्टापछि प्रत्येक कानुन व्यवहारमा आउँछ ।'

'तर मलाई यसको केही पनि थाहा भएन ।'

'यो सबै पत्रिकाहरूमा छापिएको थियो,

लाउडस्पिकरमा सुनाइएको थियो । मेरो कामरेड ! तिमीले विगत छत्तीस घन्टा कहाँ बितायौ ?'

अब ऊ मलाई धकेल्दै लिएर जाँदै थियो । मलाई जबरजस्ती जाडो बोध भयो, अनि एकदमले भोक लाग्यो । आफूमाथि यसो हेरेँ–कपडा पनि टिठलाग्दो थियो, दारीजुँगा पनि काटेको थिइनँ । हुन त नियम के थियो भने प्रत्येक कामरेडलाई राम्रो कपडा लगाउनुपर्दथ्यो...।

बाटामा जति पनि मान्छेहरू भेटिए, सबैले उत्सुकताको मकुन्डो लगाएका थिए, अनि मलाई हेर्दै थिए, पुलिसलाई देख्नासाथ उनीहरूको मकुन्डो अझ झन् चम्किन्थ्यो । तर सबै जना भुइँमा द्रुतले पाइल राखिरहेका थिए, मानौँ हर्षहर्षका साथ कामबाट फर्किएका होऊन् ।

बुझ्न के सकिन्थ्यो भने सबै जना बडो सतर्कताका साथ हाम्रो नजिकबाट उम्किन्थे, मानौँ सबैको यो प्रयास रह्यो, उनीहरू चाँडोभन्दा चाँडो कुनै घर, कुनै गोदाम वा कुनै कारखानामा शरण लिन सकियोस् वा आउन लागेको मोडमा मोडियोस् र पुलिसको दृष्टिबाट यताउता हुन सकियोस् ।

केवल एकचोटि कस्तो भयो भने हामी एक चौबाटोमा पुग्यौँ, अनि त्यहाँ एक अधबैंसे व्यक्तिसँग हाम्रो साक्षात्कार भयो । उसलाई देख्नासाथ मैले थाहा पाएँ, ऊ कुनै स्कुल मास्टर हो, अब उम्केर कहीँ जान सक्तैनथ्यो, अनि जस्तो कि कानुनअनुसार जरुरी थियो, उसले पुलिसलाई बडो सम्मानका साथ सलाम गऱ्यो, अनि फेरि आफ्नो कर्तव्यअनुसार तीनचोटि मेरो अनुहारमा थुक्यो र भन्यो, 'राष्ट्रद्रोही सुँगुर ।' उसले सबै कुरा पूर्णरूपमा नियमानुसार गरेको थियो । तर म देख्न सक्तथेँ–उसको घाँटी सुकेको थियो । मैले पनि कानुनका अनुसार सबै कुरा आफ्नो कमिजको वाहुलाले पुछ्ने प्रयास गरेँ ।

मेरो ढाडमा एक जोरको मुड्की पऱ्यो र आवाज आयो, 'पहिलो सिँढी ।'–अर्थ स्पष्ट थियो, यो मेरो दण्डको पहिलो रूप थियो ।

त्यो स्कुल मास्टर तेज पाइलाबाट अब कतै गयो । बाँकी सबै बाटो, सबै जना, हामीलाई टारेर उम्किन सफल भए र फेरि त्यो स्थान आयो, जहाँ मलाई पुग्नु थियो । एक बिगुलको ध्वनि सुनियो–थाहा भयो, मजदुरहरूलाई छुट्टी हुन लागेको थियो र तिनीहरू आफ्नो अनुहार हर्षित पार्नका लागि राम्ररी हात मलीमलीकन धुँदै थिए । कारखानाबाट बाहिर आएपछि उनीहरूको अनुहारमा सन्तोष देखिनुपर्दथ्यो, तर धेरै हर्ष होइन, ता कि के नसोचियोस् भने उनीहरूलाई कामबाट छुट्टी भएपछि धेरै हर्ष भएको थियो । धेरै हर्ष केवल बिहान कारखाना जाँदै गर्दा मात्र देखिनुपर्दथ्यो । त्यस समय बाटोमा हिँड्दै गर्दा उनीहरूलाई गाउनु पनि पर्दथ्यो । ता कि थाहा भइयोस्, काममा जान उनीहरूलाई धेरै उमङ्ग हुने गर्दथ्यो ।

तर धन्न के भयो भने यो बिगुल छुट्टी हुनुभन्दा दस मिनेटअगि नै बजाइने गरिन्थ्यो–साबुनले हातमुख धुन तयारी गर्नका लागि । होइन भने यदि यी सबै मजदुर यस समय सडकमा निस्किए भने सबै कानुनका अनुसार मेरो मुहारमा तीनतीनचोटि थुक्थे ।

जहाँ मलाई पुऱ्याइयो, त्यो एक साधारण रातो इँटा भएको घर थियो र दुई सिपाही ढोकामा पहरा दिइरहेका थिए । सबभन्दा पहिला उनीहरूले कानुनअनुसार मेरो मर्मत गरे–बन्दुकका कुन्दा मेरो कन्चटमा हाने...।

भित्रको कोठामा एक ठूलो मेच (टेलिफोनसमेत) र दुई कुर्सीका अतिरिक्त अरू केही थिएन । म कोठाका बीचमा उभिएको थिएँ । मेचयुक्त कुर्सीमा फलामको टोपी लगाएको एक व्यक्ति बसेको थियो । पछाडिबाट एक अर्को व्यक्ति आयो । उसले खैरो रङको बर्दी लगाएको थियो । ऊ चुपचाप अर्को कुर्सीमा बस्यो ।

प्रश्न आरम्भ भयो :

'कारोबार ?'

'सादा कामरेड ।'

'जन्म ?'

'१. १. ०१ ।'

'विगत दिनको तपसिल ?'

'कैदी ।'

दुवैले एकआपसमा हेरे ।

'कहाँ र कहिले ?'

'जेल न. १२, कोठरी न. १३, हिजै मुक्त भएको थिएँ ।'

'प्रमाण ?'

मैले मुक्त भएको प्रमाण खल्तीबाट बाहिर निकालेँ र उनको अगाडि राखिदिएँ ।

'त्यस समयको दोष ?'

'मेरो हर्षित अनुहार ।'

दुवैले फेरि एकआपसमा हेराहेर गरे र भने– 'स्पष्टस्पष्ट बताऊ ।'

'महाशय ! तब कुनै धेरै ठूलो सरकारी अफिसर मरेका थिए, अनि सरकारको आज्ञा थियो, सम्पूर्ण राज्यमा शोक मनाइयोस् । तर एक पुलिसको दाबी के थियो भने मेरो अनुहार दुखी थिएन ।'

'सजायको म्याद ?'

'पाँच वर्ष ।'

फेरि असह्य मारपिटपछि नयाँ सजाय सुनाइयो– दस वर्ष ।

हर्षित अनुहारले पाँच वर्षको सजाय दिलायो, दुखी अनुहारले दस वर्षको । सोच्तछु–अब जब जेलबाट बाहिर आऊँ, मेरो कुनै अनुहार नहोस्– न सुखी, न दुखी...!

अनुवाद : रोशन थापा 'नीरव'

कथा/अमेरिका (America)

म जस्तो कालेका तर्फबाट

जोन होवार्ड ग्रिफिन (John Howard Griffin)

नोभेम्बर २४.

म हिचकिचाउँदै मोबिले र मोन्टगोमरीको दलदल भएको क्षेत्रका बीच पुगें । पूरा उज्यालो सुहाउँदो दिन अगाडि पसारिएको थियो ।

म केही पैदल हिँडेकै मात्र के हुन्थें कुनै अग्लो, पूर्ण हँसिलो मान्छेले आफ्नो सानो ट्रक रोक्यो र मलाई भित्र बस्नका लागि भन्यो । जसै मैले ढोका खोलें, मैले उसको घुँडासँगैको सिटमा ठडचाइएको एक सटगन देखें । एक्कासि मलाई सम्झना भयो, अलाबामामा केही यस्तो तत्त्व थियो, जसका लागि 'निगर'लाई उडाउनु सिकारको खेल थियो । त म एकदमले तल ओर्लिएँ ।

'अरे, आऊ ।' ऊ हाँस्यो, 'यो त हरिण मार्नका लागि हो ।'

मैले उसको चम्किलो अनुहारमा पुनः उड्दो दृष्टि फालें, ऊ भद्र देखिँदै आयो । म चढेर उससँगैको लेदर सिटमा बसें ।

'यता घुम्दै गर्दा तिमीले अरू पनि कुनै मोटरमा लिफ्ट पायौ ?'

'नो सर । मोबिलेबाटा हिँडेपछि तपाईंकै यो पहिलो मोटर हो ।'

चर्चाको समय थाहा भयो, ऊ विवाहित थियो, त्रिपन्न वर्षको आयुको पिता । एक परिवारको, जसले बढाएर उसलाई बाजे र हजुरबुबा बनाइदियो । कुरा गर्दा थाहा हुन्थ्यो, ऊ यथार्थमा एक निडर नेता र आफन्तमा सम्मानित सदस्य थियो । म सोच्न लागें, 'एक सुशील गोरासँग मेरो भेटघाट भयो ।'

'तिमी विवाहित हौ ?' उसले सोध्यो ।

'येस सर ।'

'कुनै बच्चा ?'

'येस सर, तीन ।'

'तिम्री सुन्दर पत्नी छ ?'

'येस सर ।'

ऊ एक क्षण रोक्यो र फेरि उसले बडो सहजतापूर्वक पैतृक कौतुकका साथ सोध्यो, 'के कहिले कुनै गोरा मान्छेसँग पनि उसले आफ्नो गर्भ बसाएकी छ ?'

मैले आफ्ना काला हातहरूतिर घुरें, बिहेको सुनौलो डामलाई सुमसुम्याएँ र केही अनर्गल बडबडाएँ । ता कि ऊ मेरो मौनतालाई बुझोस् । तर उसले मेरो भावनालाई कुल्चिदियो र वार्तालाप धेरै लम्पटमय बन्यो । उसले मलाई के भन्यो भने यस क्षेत्रका गोरा मान्छेहरू काली केटीहरूका लागि कति च्याल चुहाउँथे । उसले भन्यो, उसले आफ्नो घरेलु कामका लागि र व्यवसायमा कति लगाइरहेको थियो ।

'अनि म तिमीलाई दाबीका साथ के भन्छु भने ज्याला लिनुभन्दा अगाडि उनीहरूमध्ये प्रत्येकलाई मेरो मुनि आउनुपर्‍यो ।' एक सानो अन्तरालपछि, चर्को गर्मी सडकमा टायरहरूको ध्वनिपछि मौनता, 'यसमा तिम्रो के धारणा छ ?'

'केही त अस्वीकार गर्दी हो ।' मैले बडो समालिएर सङ्केत गरें ।

'एकदम होइन । यदि उनीहरू र उनीहरूका बच्चाहरूलाई भोको मर्न नपरे त कुरा सुन्नैपर्थ्यो ।' ऊ गुर्रायो, 'यदि तिनीहरू भुइँमा नओछिए त आफ्नो नोकरी छोड्नुपर्ने हुन्थ्यो ।'

मैले झ्यालबाहिर दृष्टि घुमाएँ । हाईवेका दुईतिर अग्लाअग्ला रूख उभिएका थिए । तिनका तारपिन बास्ना त्यस मान्छेको खाकी सिकारी कपडाको साबुनी वास्नासँग मिसिरहेको थियो ।

'तिमी यसलाई धेरै भयङ्कर सम्झन्छौ, हैन त ?' उसले सोध्यो ।

मलाई थाहा थियो, मलाई सुकेको स्वरमा बोल्नु थियो, 'किन, होइन त । यो त स्वाभाविकै हो ।' वा कुनै कुनै चलाखीले बच्नुपर्थ्यो । ता कि उसमा कुनै प्रकारको जोस उत्पन्न नहोस् ।

'हो नि ?' उसले आनन्द लिँदै अझ पछि पर्दै सोध्यो ।

'सम्भवतः हो ।'

'किन, के हो यसमा...जोकोही गर्दछ । के तिमीलाई थाहा छैन ?'

'नो सर ।'

'हुम्म ! सुन, सबै गर्दछ । हाम्रो हिसापले हामी तिमीहरूमाथि एक दया के गरिरहेको छौँ भने तिमीहरूका बच्चाहरूमा केही सेतो रगत उत्पन्न होस् ।'

म त्यस निरर्थक मिथ्याचारले तमतमाएँ । कुनै पनि निग्रोमा यस्तो नै प्रतिक्रिया हुन्थ्यो । यो नोट गर्न योग्य छ, गोरा मान्छे निग्रोहरूमा यौननैतिकताको हीनताको कुरा गर्दथे वा नस्ली घुलमिलका विषयमा शङ्काग्रस्त भएर बोल्दथे र नस्ली पवित्रतामा कतराउँथे । दक्षिणमा त नस्ली घुलमिल चारैतिर फैलिएको यथार्थ देखिन्थ्यो । दक्षिणी जिन्दगीलाई यी गोरा मान्छेकै योगदान थियो । नस्ली पवित्रताको उसको विशाल चिन्ता सम्पूर्ण जातिहरूका लागि थिएन ।

दक्षिणी जिन्दगीको यो स्वरूप समाचारपत्रहरूमा उफारिँदैन, किनकि जसै मेरो मित्रले भन्यो, 'अलाबामाका निग्रो आइमाईहरू यस मामलामा धेरै समझदार छन्...तिनीहरू जाँदैनन् पुलिसकहाँ, कहिल्यै पनि जाँदैनन्, अनि न विरोध नै गर्दछन्, किञ्चित् पनि होइन ।'

निश्चय पनि यदि तिनीहरू त्यस्तो गर्ने प्रयास गरेमा परिणाम के हुन्थ्यो !

जस्तो कि मलाई शङ्का थियो, मेरो 'होमा हो' नभएकाले चालकलाई तुस उत्पन्न गरिदियो । उसले मेरो मौनतालाई ठीक नै अस्वीकृति सम्झ्यो ।

'कहाँको हौ तिमी ?' उसले सोध्यो ।

'टेक्सास ।'

'यहाँ यति टाढा के गर्न आएको ?'

'त्यसै नै घुमिरहेको छु, कामको खोजी पनि छ ।'

'यहाँ कुनै केही गर्ने मनसुवाले त आएका होइनौ ? कसो ?'

'हे ईश्वर, होइन ।'

'तिमीले यदि निग्रोहरूमा केही सुलसुले छोड्ने प्रयास गऱ्यौ भने त हामी धेरै कुरा जान्दछौँ, तिमी जस्तालाई कसरी तह लाउने ।'

'होइन हजुर, यस्तो मेरो कुनै इच्छा छैन ।'

'तिमीलाई थाहा छ, हामी यहाँ सैतानहरूलाई के गर्छौँ ?'

'नो सर ।'

'या त तिनीहरूलाई जहाजमा कोचिदिन्छौँ या खतम गरिदिन्छौँ ।'

उसले जुन आकस्मिक, निर्दयी बोलीमा यो कुरा भन्यो, त्यसले म खिन्न भएँ । मैले उसतिर हेरेँ । उसका सुन्दर नीला आँखा पहेँला भएका थिए ।

मैले अनुमान लगाएँ । उसले के निश्चय गरेको थियो भने निग्रोहरूलाई 'पाठ सिखाउनु छ', अनि अब कुनै पनि कुरा उसलाई पगालेर उसमा दयाभाव भर्न सकिन्न । यस सोचाइको दीर्घकायाले मलाई आतङ्कित गरिदियो । तर अब यो कुरा उसलाई लम्पटबाजका लागि पाइसकेको थियो । ऊ त्यसलाई रौसमा लिइरहेको थियो । उसको स्वर तुष्टि र क्रूरताबाट लोतपोत भएको थियो । हाईवेका दुवैतिरको विस्तार दलदली जङ्गलमा पसेको थियो र क्षितिजसम्म निर्जन बिरानो थियो । सवारीको भ्यालका वारपारबाट उड्दै माथितिर उसले गर्दन घर्कायो ।

'एक निग्रोलाई मारेर उसलाई दलदलमा फालिदेऊ । कसैलाई थाहा हुँदैन, त्यसलाई के भएको हो ?'

'येस सर ।'

मैले स्वयम्लाई मौनतामा थिचेँ र त्यस मान्छेलाई राम्रैसँग हेर्ने प्रयत्न गर्न लागे । मैले देखेँ, ऊ आफ्नो नातिहरूका साथ खेलिरहेको थियो । खुल्ला प्रार्थना पुस्तकलाई हातमा लिएर चर्चमा उभियो । बिहान तयार हुनुभन्दा अगि एक कप कफी खायो र फेरि दारीजुँगा गऱ्यो र आफ्नी श्रीमतीका साथ केही पनि कुरा गरिरह्यो । आइतबारको साँझ आफ्ना मित्रहरूसँग भेट गऱ्यो । यो त्यही मान्छे थियो, जसलाई मैले ट्रकमा घुस्रिने बेला देखेको थिएँ । उसको मुखाकृतिबाट एक मिलनसार र सुशील अमेरिकन झल्किन्थ्यो । तर यो जुन म अहिले देखिरहेको थिएँ, यो प्रत्येक मान्छेको पेटबाट खस्किँदै रहस्यमय अँधेरो स्पर्श रेखा, कुनै विकृत निठुरता, स्वार्थी शक्तिका माध्यम परपीडा वा भय देखाउने वासना थियो । निश्चिय नै उसकी श्रीमती

अथवा प्रिय मित्रहरूमध्ये कसैले पनि उसलाई कहिल्यै पनि यस रूपमा देखेको छैन होला । यस पक्षलाई ऊ र कसैलाई होइन आफ्नो सिकारलाई वा उससँग आनाकानी गर्नेहरूलाई देखिने गर्दथ्यो । अन्यथा ऊ एक राम्रो पति होला, निष्ठावान् पिता र टोलछिमेकमा सम्मानित सदस्य...म आफ्नो कल्पनामा यही सबै बुनिरहेको थिएँ । उसले मलाई आफ्नो निकृष्ट देखायो र मैले उसको उत्कृष्टताको अनुमान लगाएँ ।

आफूलाई पुनः सन्तुलित गर्ने प्रयासमा उसको मुहार कसिएको थियो र त्यति बेला उसले मुख्य हाईवेबाट जङ्गलतिर मोडिएको माटोयुक्त बाटोमा सवारी घुमाएर रोकिदियो । मेरो विचारमा त्यसै समय उसले बुझिसकेको थियो, हामी दुवै एक चलाक लडाइँमा अल्झेका थियौं । उसलाई त्यसबाट उम्कनका लागि केही चाहिन्थ्यो ।

'यहाँबाट म भित्र जान्छु । तिमी सम्भवतः हाईवेबाटै अगाडि जान चाहन्छौ ।'

मैले उसलाई लिफ्टका लागि धन्यवाद दिएँ र ढोका खोलें । म बाहिर निस्कँदानिस्कँदै उसले भन्यो, 'यहो कस्तो के हो, म तिमीलाई बताइदिऊँ । हामीहरू तिमीहरूसँग व्यवसाय गर्नेछौं । हामी कुनै स्थितिमा तिमीहरूका आइमाईलाई रगड्नेछौं । त्यसको अर्कोतिर जहाँसम्म तिमीहरूको प्रश्न छ, तिमीहरूका खातामा हाम्रो नाउँको शून्य हुनेछ । अनि यस कुरालाई जति चाँडो बुझ्यौ, त्यति नै तिम्रो भलो हुनेछ ।'

'येस सर...।' म तल ओर्लिएँ र ढोका बन्द गरिदिएँ । उसले मोडिएको सडकमा सवारी बढायो र पाङ्ग्राले सुन्दर आकृति बनायो । उसको ट्रकको आवाज जङ्गलमा नहराएसम्म सुनिरहें । सडेको दलदलबाट लतपतिएको साँझको गरुङ्गो हावा बगिरहेको थियो । म हाईवेबाट जाँदै थिएँ । फेरि आफ्नो पुरानो जर्सीलाई ओछ्याएर बसें, अर्को वाहनको प्रतीक्षा गर्दै । कोही आएन । वनमा कुनै आवाज उम्रिएन । एकान्त साँझलाई रातमा परिवर्तित गरिरहेको सुनसानमा बसिरहेको एक्लो म, अद्भुतसरह आफूलाई सुरक्षित अनुभूत गरिरहेको थिएँ । धमिलो आकाश अझै पनि पहेंलो थियो, जसमा पहिला ताराहरू देखिए अनि धरतीको तातो माथितिर उड्न लाग्यो ।

अनुवाद : रोशन थापा 'नीरव'

कथा/इजिप्ट (Egypt)

पीडित

युसुफ इद्रिस (Yusuf Idris)

हाम्रा एक मित्र थिए । उनको नाउँ अब्दुल मजिद थियो । उनको सम्झना हुनासाथ मस्तिष्कमा भाङको चित्र सुर्र उम्रेर आउँदछ । यसको कारण के थियो भने उनी ती थोरै व्यक्तित्वहरूमध्येमा पर्दछन्, जो भाङ सेवन गर्दछन् । अतः भाङसँग जोडिएको उनका धेरै आहान प्रचलित छन् । जब कहिले हामी उनलाई नशामा डगमगाएका देख्तछौँ त हामीलाई के विश्वास हुन्छ भने केही भाङ अझै पनि उनको खल्तीमा बाँकी रहेको छ । समय वितिरहेछ र हामी अब्दुल मजिद र उनीसँग सम्वन्धित विचित्र घटनाहरूको कथा सुन्ने गर्दछौँ । उनको प्रत्येक कुरा चुट्किला हुन्छ र प्रत्येक उत्तरमा मान्छेहरू हाँस्तछन् । जब कहिले उनको नाउँ आउँदा मान्छेहरू अब्दुल मजिदसँग घटित दसौँ घटनाहरू वा उनीद्वारा भनिएका दर्जनौँ कथा सुनाउँदछन् । अब्दुल मजिद ठुलो अस्पतालमा डाक्टर थिए । मान्छेहरू डाक्टरका सम्वन्धमा के सोच्तछन् भने उनको शरीर होचो र मोटो छ, पेट बाहिर निस्केको छ, उनको गर्दन मोटो, अनि उनका आँखामा चस्मा होस्, अनि उनको मुहारमा आकर्षक मुस्कान होस्, तर यसका विपरीत अब्दुल मजिद अग्लो र उदास व्यक्ति थिए ।

म उनको सम्बन्धमा अझ धेरै केही भन्न चाहन्नँ, किनकि उनीसँग सम्बन्धित कथाहरू धेरै नै छन् र उनको जीवनी पनि एक विचित्र कथा । यदि मैले त्यसलाई आरम्भ गरेँ भने त्यसको अन्त्य कदापि हुने छैन ।

एक खास कुरा के छ भने एक रात उनलाई ओ. पी. डी. प्रमुख बनाइयो । अब उनलाई सम्पूर्ण रात पूरा तयारी र सजगताका साथ विउँझिरहनु थियो, किनकि नगरमा अशान्तिको वातावरण थियो र यस्तै अवसरमा पूरै चङ्ख र तयारीको खाँचो हुन्छ । अब्दुल मजिदले चुरोटको एक मात्र कस के लिएका थिए, आँखाका रङै बदलिए । अब ती न त राता थिए, न पूर्ण रूपमा चम्किला । गुलाफी र चम्किलाको बीचमा थिए । उनी आफ्नो कोठामा टेवुलमा बसे । विरामी र घाइते जनहरूको भीड कराउँदै उनीतिर आउन लागे ।

यो भीड गएपछि उनलाई एक विचित्र समस्याको सामना गर्नुपर्‍यो । एक सेना अधिकृत भित्र आए र उनका पछाडि दुई सिपाहीहरू एक दुब्लो-पातलो, होचो र च्याउँसे गाला भएको व्यक्तिलाई सँगै लिएर आएका थिउ । अधिकृतले धेरै कागजपत्र डाक्टरक मेचमा राखिदिए र सङ्क्षिप्तमा सबै कथा सुनाए । उनले भने, 'यिनीहरूले गीजा (इजिप्टको एक ठाउँ)मा हमला गरे र भागे । हामीले कए मात्र व्यक्तिलाई समात्न सक्यौँ । अनि जाँचवुझमा भाङको एक टुक्रा पाइयो । जब हामी भाग्नेहरूलाई लखेट्तै थियौँ र हाम्रो ध्यान यसका तिरबाट पन्छियो त यसले भाङको त्यो टुक्रा निल्यो र त्यो यहाँ तपाईंका अगाडि छ । यसको आँतलाई सफा गरेर भाङ निकाल्नु छ ।'

हाम्रो मित्र, अब्दुल मजिदलाई यो विचित्र वडो मनोरञ्जक लाग्यो र उनलाई धेरै नै मज्जा लाग्यो । यो त्यही रात थियो, जसले उनको जीवन परिवर्तन गरिदियो ।

उनले एक लामो फलामे डन्डी हातमा लिए र त्यस व्यक्तितिर हेरे, अनि वडो कठोरका साथ सोधे, 'मूर्ख ! तैँले त्यसलाई निलिस्, त्यसलाई किन फालिनस् ?'

त्यस व्यक्तिले अत्यन्त नम्रता, दुर्वलता र बालसुलभ अवोधपनामा उत्तर दियो ।

'म...के ?'

'मैले निलेको छु र ?'

'जे निस्किएको छ, भगवान् त्यसको साक्षी छ ।'

'हे भगवान् ! म पीडित छु ।...मान्छेहरू, म

पीडित छु ।'

अब्दुल मजिदले उसतिर हेरे, अनि उसका आँखा एक क्षणका लागि खुलाको खुल्यै रहे, उनी मुस्कुराए, मानौँ भनिरहेका होऊन् ।

'होइन, भगवान् कसम, तिमी भोका छौ ।...भगवान् तिम्रो रक्षा गरून् ।'

त्यो व्यक्ति यस मौनताले व्याकुल भयो र हत्कडी खोल्नका लागि हठ गर्न लाग्यो । केही समयको गफफदीपश्चात् रातम्मे मुहार, पहेँलो जुँगा र नीला आँखा भएका अधिकृत सहमत भए ।

नियमानुसार डाक्टरलाई नै उसको पेट सफा गर्नुपर्ने हुन्छ । यद्यपि यो कुनै अपरेसन वा त्यो जस्तो कुनै अरू कुरा होइन । यो एक यस्तो अपरेसन हो, जुन एक कम्पाउन्डर पनि गर्न सक्तछ । यसकारण डाक्टरले अब्दुस्सलामलाई सफा गर्ने तयारी गर्न आदेश दिए । त्यो व्यक्ति ती दुई सिपाहीका साथ अर्को कोठामा गयो । अब केवल अधिकृत र डाक्टर अफिसमा रोकिए ।

कठिन के थियो भने ती दुवै धेरै समयसम्म मौन मुद्रामा बसिरहे । एक पत्रिकामा छापिएको एक कन्याको सुन्दर चित्रमा कुराकानी हुन थाल्यो । फेरि धेरै यताउताको कुरा भयो । अन्त्यमा के ज्ञात भयो भने ती दुवै एकै समयमा माध्यमिक विद्यालयमा थिए र दुवै नै 'उम्मे कुलसूम'को आवाजका आकर्षी थिए । अधिकृत अब्बासियामा बस्छन्, जहाँ अब्दुल मजिदका अनेक मित्र बस्छन् । अनि दुवै कहिल्यै बिदामा गएका थिएनन् । यद्यपि अधिकृत सधैँ कामबाट भागिरहन्छन् । यसभन्दा पहिला एकआपसमा सम्बन्धित अरू कुरा थाहा होस् । अधिकृत बोले ।

'भाइ, तिम्रो यो कुरो साँचो हो...हामी दुई आज यति समयपछि पनि एकै छानामुनि बसेका छौँ, जुन यस आधुनिक इजिप्टमा धेरै नै साधारण कुरा हो ।...एक रातको कुरा हो, हामीसँगै एक प्यालेस्टाइनी मित्र बसेका थिए...म बडो प्रसन्न थिएँ...र उम्मे कुलसूमको गीत 'हल्लत लयाली अल-कमर' (जुनेली रात आयो)...बजिरहेको थियो । अकस्मात् एकले गुनगुनाउन आरम्भ गरिदियो । त्यस समय गुप्तचर विभागका एक अधिकृत हामीसँगै बसेका थिए... जसै उसले गीतको अन्तिम भाग गुनगुनायो, एक्कासि म कराउन पुगेँ...अरे...तिमी लीसा हौ...?'

डाक्टरले उत्तर दिए, 'यो कुरा शतप्रतिशत सत्य हो ।'

अनि उनले अधिकृतका सुन्दर आँखामा हेरे । उनका आँखा अब न त पूर्ण रूपले राता थिए, न चम्किला, बरु केहीकेही गुलाफी भएका थिए । डाक्टरले उसलाई यसभन्दा अगाडिका यस्तै रातहरूका कथाहरू सुनाइरहे र उनी सहमतिमा टाउको हल्लाइरहे । अब्दुस्सलाम कम्पाउन्डरले कोठामा प्रवेश गऱ्यो र हर्षले बोल्यो, मानौँ उसले अमेरिकाको खोज गरेको होस् ।

'सुन्नुहोस्...त्यस व्यक्तिले त्यसलाई निलेको छ ।...केवल दुई चक्की निलेको हो...।'

कारपोरलले उत्तर दिए, 'केवल दुई चक्की ?...म आफ्नो हात काटिदिनेछु, यदि त्यो चौथाइ छटाकको कम होस्...।'

सेनाले गहिरो सोचमा आफ्नो टाउको हल्लायो र भन्यो, 'ठीक हो...यो त सत्य थियो नै ।'

शीघ्र नै डाक्टर र अधिकृत अफिसबाट बाहिर आए । उनीहरू त्यस होचो व्यक्तितिर लम्किए, जो अग्लो बेन्चमा पल्टिएको थियो र उसको मुखबाट फीँज निस्किरहेको थियो । डाक्टरले अब्दुस्सलामतिर सङ्केत गरे र भाङका टुक्रा एक डब्बामा राखेर सिलबन्द गर्ने आदेश दिए । यो सुनेर अधिकृतका गुलाफी आँखा प्रसन्नताले चम्किए, किनकि अपराध सिद्ध भइसकेको थियो । अब रिपोर्ट दर्ता गर्न सकिन्थ्यो ।

अन्त्यमा अपराधीका हातमा फेरि हत्कडी लगाइयो । जब त्यस व्यक्तिलाई सिपाहीले लिएर जाँदै थिए, ऊ आफ्नो दुर्बल क्रोधित आवाजमा बोलिरहेको थियो, 'दाजुभाइहो ! म पीडित हुँ ! हे भगवान् ! म पीडित हुँ !'

अनुवाद : रोशन थापा 'नीरव'

ढुङ्गाको संसार

ताद्युश बोरोव्स्की (Tadeusz Borowski)

यता केही दिनदेखि मेरो गर्भभित्र बढिरहेको भ्रूणसरह एक भयावह ज्ञान विकसित भइरहेको थियो र जुन मेरो आत्मालाई अनिष्टको भयानक आशङ्काबाट भरिदिइरहेको थियो : मलाई लाग्छ, यो संसार साबुनका फोकासरह निरन्तर भयङ्कर गतिले फुलिरहेको छ। म एक कृपण व्यक्तिको दुख्तो चिन्ताले आक्रान्त हुन पुग्छु, जब पनि म सोच्तछु, यो संसार अन्तरिक्षमा विलीन भइरहेछ, जस्तो हाम्रो डाडुबाट पानी छचल्किरहेको होस्, अनि अन्ततः...सम्भवतः आज पनि, सम्भवतः भोलिसम्म होइन वा धेरै प्रकाश वर्षसम्म होइन...यो सधैंका लागि शून्यमा विलीन हुनेछ, जस्तो यो ठोस् वस्तुहरूले होइन, वरु केवल क्षणभङ्गुर आवाजले बनेको होस्।

यहाँ म तपाईंहरूलाई यो कुरा अवश्य पनि बताउनेछु, हुन त युद्ध समाप्त भएपछि नै म सम्भवतः कहिले आफूलाई आफ्ना जुत्ता पालिस गर्नलाई बाध्य गर्दछु वा आफ्ना लुगाको पत्रमा जम्मा भएको माटोलाई नै झार्दछु, के भने यद्यपि आफ्नो मुहार, चिउँडो र गर्दनलाई हप्तामा दुईचोटि दारीजुँगा काट्नका लागि मलाई धेरै नै परिश्रम गर्नुपर्ने छ, हुन त समय बचाउनका लागि म आफ्ना औंलाहरूका नङ दाँतले टोकेर सफा गर्दछु अनि कहिल्यै पनि दुर्लभ पुस्तकहरू वा केटीहरूका पछि लाग्ने छैन र यसरी आफ्नो भाग्यको स्वनिर्मित निरर्थकतालाई संसारको निरर्थकतासँग जोड्दछु। यता म गर्मीको मध्याह्नमा आफ्नो सहरको निर्धनतम क्षेत्रहरूको लामो ऐकान्तिक यात्रामा निक्लन्छु।

म खण्डहरको बासी, अतिशय शुष्क गर्दनलाई आफ्नो सासमा भर्नमा धेरै आनन्दको अनुभव गर्दछु र बायाँतिर थोरै आफ्नो शिर झुकाएर, जस्तो कि मेरो बानी हो, हेर्दछु...बमवर्षाले ध्वस्त आफ्ना घरहरूका भित्ताको सहारामा आफ्ना वस्तुहरूका वरिपरि बसेका कृषक महिलाहरूलाई, झुत्राले बनेको आफ्नो डल्लाको पछाडि फोहरहरूका बीच दौडिँदै गरेका बच्चाहरूलाई र धूलधूसरित, पसिनाले लतपत ज्यामीहरूलाई, जो निर्जन सडकहरूका छेउबाट बिहानदेखि साँझसम्म ट्रलीबसको पटरीमा हतौडा चलाउँछन्। अनि ऐनामा उम्रेको बिम्बसरह मलाई स्पष्ट देखिन्छ...भग्नावशेष, जसमा ताजा हरियो घाँस उम्रेर आएको छ, मैदाबाट बनाइएको अमिलो खुवा लिएर कृषक स्त्रीहरू र उनीहरूको दुर्गन्धित पोसाक, ट्रलीबसको पटरी, झुत्रोबाट बनेको डल्ला र बच्चाहरू, ज्यामीहरूको बाउँठो पाखुरा र थकित आँखा, सडक, चौबाटो र यसका माथि तेज हावाको झट्काले अशान्त बादलमा उठ्तै गरेका अनर्गल आक्रोशित ध्वनिहरू...म यी सबैलाई एक्कासि हावामा तैरँदै र फेरि तल, ठीक आफ्नो पाइतालामा खस्तै गरेको देख्न सक्तछु, सबै एकअर्कासँग अल्झिँदै...जस्तो पुलको तल बग्दो पहाडी तालमा रूख बिरुवा एवम् आकाशका खण्डित प्रतिबिम्ब देख्तछौं।

कहिलेकाहीँ मलाई कस्तो प्रतीत हुन्छ भने मेरो शारीरिक संवेदना पनि मभित्र धातुसरह जमेर जमट भएको छ। अतीतका वर्षहरूको प्रतिकूल जब म संसारलाई आफ्नो विस्फारित स्तब्ध आँखाले नियाल्ने गर्दछु, अनि प्रत्येक सडकमा पूरै सजगताका साथ हिँड्दथें, जस्तो कुनै युवक गोरेटोबाट हिँडिरहेको होस्, अब म सुन्दरभन्दा सुन्दर भीडबाट पनि हिँड्न सक्तछु पूर्ण रूपमा अनासक्त। कामोत्तेजक नारीदेहको घसँदो अवस्थामा निस्कन सक्तछु पूर्ण रूपमा भावशून्य...युवतीहरूद्वारा आफ्नो नाङ्गो घुँडा र आफ्नो अप्रतिम केशसज्जाबाट लोभ्याउने सम्पूर्ण प्रयासहरू भए पनि।

म आफ्ना अर्धखुला आँखाबाट सन्तोषका साथ

के देख्तछु भने एकचोटि पुनः कस्मिक झञ्झावातको एक झोक्काले भीडलाई हावामा उफारिदिएको छ, माथि रूखहरूको झुप्पामा, मानव शरीरलाइ एक हुन्डरीले तानेको छ, बाउँडिएको ओठ त्रासमा खोलिएको छ, बच्चाहरूको गुलाफी गाला पुरुषहरूको रौँ भरिएको छातीमा गएर मिसिएको छ, बाँधिएका मुठीहरू स्त्रीहरूको पोसाकमा अल्झिएका छन्, हिउँ जस्तै सेतो तिघ्रा फिँजसरह माथ उफारिदिएको छ, जसको भित्रबाट कपाल जस्तै देखिने समुद्री घाँसे डुङ्गामा अल्झिएका टोपीहरू र टाउकाको भाग चियाइरहेछ। अनि म के देख्तछु भने यो भयानक गुँथाइ, जनलहरको यो भयावह उम्लाइ सडकहरूमा, नालीमा बहन्छ र भयानक गडगडाहटका साथ दुर्गन्धित नालीमा बगेको पानीसरह आकाशमा उम्रिन्छ।

यसैले कुनै आश्चर्य छैन, म तिरस्कार र विद्वेषले भरिएको ग्रेनाइटबाट बनेको विशाल चिसो भवनमा पूरा सानले प्रवेश गर्दछु। म बल्नबाट बचाइएको सङ्मरमरको सिँढी, जसमा रातो गलैँचा बिछयाइएको छ, त्यसबाट प्रभावित नभई माथि चढ्दछु। धेरै थाकीथाकी, निरन्तर आफ्नो दुखी कथा रुँदै गरेका जमदार्नीहरूद्वारा यस गलैँचालाई नियमित प्रत्येक बिहान पुछपाछ गरिन्छ। म यस पुनर्निर्मित भवनमा राखिएका नयाँ भ्यालहरू र आलो पेन्ट गरिएका भित्ताहरूमा कुनै ध्यान दिन्नँ। म अनौपचारिक मुद्रामा यस भवनका सामान्य, तर आरामदायी सानासाना कोठाहरूमा प्रवेश गर्दछु, जसमा प्रभावशाली व्यक्तिहरूले ठाउँ लिइरहेका छन्, अनि उनीहरूसँग अत्यन्त विनम्रतापूर्वक एक सानो जस्तो प्रश्न सोध्दछु, त्यस्तै कुराहरूका बारेमा, जो अत्यन्त निरर्थक छ, तर यति भएर पनि, जसका बारेमा सोध्ने मलाई अधिकार छ...तर निश्चय पनि यी कुराले संसारको उफानलाई रोक्न सक्तैनन्, यसले एक अतिविकसित अनारसरह फुट्नबाट बचाउन सकिन्न र जुन अन्ततः आफ्ना पछाडि बस एक मुठी धुलाम्मे सुकेको खरानी छोडेर जान्छ।

प्रचण्ड गर्मी, धूलो र पेट्रोलका धुवाँ भरिएको दिनपछि अन्ततः जब स्फूर्तिदायी गोधूलिको बखत आरम्भ हुन्छ र त्यसले क्षय रोगग्रस्त ध्वंसावशेषहरूलाई कालो हुँदै गएको आकाशको पृष्ठभूमिमा एक निरापद् रङ्गमञ्चमा रूपान्तरित गरिदिएको भ्रम दिन्छ, म सडकमा लगाइएका नयाँ बत्तीहरूको उज्यालोमा हिँडेर आफ्नो अपार्टमेन्टमा फर्कन्छु, जसमा आलो पेन्टको गन्ध छ। यस अपार्टमेन्टलाई मैले धेरै महँगो भाउमा एक एजेन्टसँग किनेको हुँ र यो कुनै रेन्ट कमिसनबाट पञ्जीकृत छैन। म भ्यालसँगै आरामले आफ्नो शिर हातमा अडचाएर बस्तछु। भान्साघरको उक भागमा पत्नीद्वारा सफा गरिँदै गरेको थालहरूको ध्वनि मलाई आश्वस्त पुऱ्याइरहेछ र म सडकको त्यसपारि घरहरूका भ्यालहरूलाई एकटक हेरिरहेको छु, जहाँ एक एक गरेर रेडियो र बत्ती निभाउँदै गइरहेछ।

अन्तिम केही क्षणका लागि म दूरस्थ सडकहरूबाट आएको ध्वनि सुन्ने प्रयास गर्दछु : नजिकै चुरोट पसलमा मदमत्त अवस्थामा गाइरहेको गीत, पाइतालाको ध्वनि, स्टेसन पुगेको रेलगाडीको आवाज, यतैकतै रेल पटरीमा रात्रि बेलामा काम गरिरहेका मान्छेहरूको अनवरत हतौडाको ध्वनि...र मलाई आफूभित्र उठ्तै गरेको एक भयङ्कर मोहभङ्गक बोध हुन्छ। म दृढतापूर्वक आफूलाई भ्यालबाट हटाउँछु, जस्तो त्यस डोरीलाई टुक्र्याएर जसबाट म भ्यालमा बाँधिएको थिएँ। आफ्नो मेचमा कुनै अनुभूतिका साथ जान्छु भने म फेरि आफ्नो महत्त्वपूर्ण समयलाई व्यर्थ जान दिएको छु, धेरै समयदेखि रहेको कागतलाई दराजको बाहिर तान्दछु। अनि किनकि यो संसार आज समाप्त भएन, म ताजा कागत निकाल्छु, मेचमा मिलाएर व्यवस्थित गर्दछु, अनि आफ्ना आँखा बन्द गरेर आफूभित्र ती मान्छेहरूका लागि कमलो भावना खोज्ने प्रयास गर्दछु, जो रेलको पटरीमा हतौडा चलाइरहेका छन्, अमिलो खुवाका साथ कृषक स्त्रीहरूका लागि, मालवस्तु भरिएका रेलगाडीहरूका लागि, फोहरका थुप्रोबाट माथि धमिलिँदै गएको आकाशका लागि, तल सडकमा हिँडिरहेका मान्छेहरू तथा नयाँ भ्यालहरूका लागि, अनि आफ्नी पत्नीका लागि पनि, जो भान्साघरमा थालहरू माझिरहेकी छिन् र एक भयावह बौद्धिक उपक्रमका साथ म घटनाहरू, कुराहरू र मान्छेहरू, जसलाई म देखेको छु, तिनका वास्तविक अर्थलाई बुझ्ने प्रयास गर्दछु...किनकि म ढुङ्गाले बनेको यस अपरिवर्तनीय, जटिल संसारको अनुकूल एक कालजयी महाकाव्य लेख्न चाहन्छु।

अनुवाद : रोशन थापा 'नीरव'

Interview

Story as a Genre Faces Strong Challenges

Prof.Dr. Abhi Subedi

[**Abhi Subedi** is a renowned poet, essayist, playwright, critic and translator. He taught for forty years at the Central Department of English in Tribhuvan University, and headed the department for more than a decade. Professor Subedi is Vice-President of the Nepali Folklore Society of Nepal. He is the founding former President of the International Theatre Institute (ITI) UNESCO from 2000 to 2008 and member of International Playwright's Forum from 2000-2011. Subedi became President (1990-1992) and two times General Secretary of the Linguistic Society of Nepal. He was also President of the Literary Association of Nepal. He is a member of the International Association of Theatre Critics. His fame as an author rests in his Nepali and English works, the most remarkable in Nepali being *Flaneurko Diary* (essays, 2015) *Sahitya ra Aambritta* (criticism, 2013) *Chiriyeka Sanjhharu* (Play 2011), *Nibandhama Uttarbarti Kaalkhanda* (essays 2009), *Teen Natak* (three plays, 2008), *Nibandha ra Tundikhel*, (essays, 2008), *Paanch Natak* (five plays, 2004, Carpettangieko Aakaas (essays, 1998), *Shavda ra Chot* (poems, 1997), *Madhyam ra Rachana* (literary criticism, 1997), *Paschatya Kavy Siddhanta*, (Western criticism, 1973), and Sirjana ra *Mulyankan* (literary criticism, 1982). His books in English include Bruised Evenings (play, 2011), *Nepali Theatre as I See It*, (2007), *Three Plays* (2003), *Dreams of Peach Blossoms* (play, 2001), *Ekai Kawaguchi: The Trespassing Insider* (play, 1999), *Chasing Dreams: Kathmandu Odyssey*, (poetic play, 1996), *Nepali Literature: Background and History* (1978), and *Manas* (English poems, joint collection, 1974). A recipient of SAARC Literary Award, Siddhicharan Award and BP Koirala Award and several other awards and felicitation, Prof. Subedi is an author of international repute. Presented here is an interview **Mahesh Paudyal** had with Prof. Subedi, focusing only on short stories.]

Sir, what connection do you see between story and a culture/civilization?

Story is a general term that has various nomenclatures such as tale, narrative, saga, fable and so on. The other category of story is what the literary critics consider as literary genre. The first kind of story is culture savvy, and of course part of civilization though civilisation has a little different meaning. Civilization originated from the concept of bringing behaviours, practices and methodologies into a generally acceptable pragmatic form. But culture is more fluid, uncertain and unconditionally, tacitly and even loudly shared form of practice and behaviour. Storytelling is more at home with culture though civilization too generates stories. Writers like Aldous Huxley, who wrote **Brave New World** *and others have captured the fluid and the tell-tale aspects of civilisation. Literary stories*

certainly become part of culture in a number of ways.

Leslie Silko said in an interview, "Every time a story is told, and this is one of the beauties of the oral tradition, each telling is a new and unique story, even if it's repeated word for word by the same teller sitting in the same chair." What is your reaction to this observation?

Leslie Silko was a great storyteller. She was a Native American writer who gained reputation through her novels, not least **Ceremony**. *Silko by making this remark is putting her finger on the quality of storytelling among the Native Americans that was everything for them. Storytelling was history; it was dharma, karma, myth, saga and narrative of love and violence. So this remark evokes that very belief in the culture of storytelling. What it tells us is also important. Though all the stories, the narratives done under the genre 'story', in literature have lost the quality of perennially renewable energy, it still does evoke a quality and beauty of retelling, and the joy and frustration of just narrating. It is a very valid observation.*

The first generation of 'modern' Nepali story writers—including Guru Prasad Mainali and Pushkar Shumsher—started a tradition of socio-realistic stories, which has lingered to our own days as well. Doesn't this mean that the story writers who came after these masters were unable to experiment much on the structure and theme of the mainstream short stories?

That is certainly true. But this question about the writing style and choice of theme of the first generation or the classical generation of writers like Mainali, Pushkar Shumsher—we can add Balakrishna Sama also in that category though he did not write many stories—did not end just like that. It continued to have impact on others. This impact was smooth and productive. To be honest, Bhawani Bhikshu and Bishweshwar Prasad Koirala wrote in the same tradition albeit they gave new strength to the genre. Bhikshu was a great storyteller who could create fictional dimension in one small narrative as in the story "Tyo Feri Farkela?" in which a young girl named Sani carries the memory of a one-night guest, and Koirala introduced the first modern element of psychological dynamics in story writing, which is very subtle and good. Indra Bahadur Rai in **Aja Ramita Cha** *and* **Hamijastai Mainaki Aaamaa** *carries the narrative technique, which is founded on the concept of telling the story. Viajaya Malla and Govida Bahadur Gothale are other major storywriters. But the characters become more complex. I would say, storywriters have made a number of experiments. They have written very fine stories. I especially recall Prema Shah's stories compiled in* **Panhelo Gulab** *and Parijat's stories here. Experiments were made. But yes, that process was noticed to be slackening. This is not only because the writers did not want to take the genre further but also because they lost faith in their own practice. The lure of writing what is called novel was bigger and stronger. Some experimentalists came. But this is the time of challenge, challenge that appeared in the very mode of storytelling, and its relevance. But in the past several years, and in the very recent times, some good experimental story writings have come out in collections. Some discussions are being made about them. But one thing is certain, story as a genre faces strong*

challenges. This would be a big subject to discuss here.

Many critics think, the line of psycho-sexual stories practised by BP Koirala, Govinda Bahadur Malla and others exhibit the influence of Western stories. How do you react to this observation?

That is a valid observation. They were not only influenced by the practice of writing about the minds of the characters whose problems are many in nature including erotic longings and frustrations. The characters themselves do not know what is happening to them. For example, in the story "Karnelko Ghoda" the wife of the colonel who becomes jealous of the attachment of his wife with the strong male horse more than to him and shoots the animal, is one example. Critics also evoke the influence of Freudian psychology. But I have always been sceptic about such labelling. But this story is in line with the psychological stories of Maxim Gorky whose story of Teresa, a girl who does not have good appearance, asks a student who also lives in one section of a house made for giving out rooms in rent, to write a letter to her lover. But after six months she appears again and asks the student with great shyness to write the letter of reply also from her lover. But humiliated when the student is surprised, she disappears; the student never sees her again. Koirala's "Pabitra Bajyei" is exactly the same as Teresa. British storywriter H.E. Bates was another person who carried that tradition in English and made popular elsewhere. English story writers Somerset Maugham in his famous story "The Kite", for example handles a similar theme with great effect. Virginia Woolf and Evelyn Waugh wrote subtle psychological stories. This kind of writing stories about the subtle psychological dimensions of the characters appeared in India also through Sharacchandra Das whose influence is great here, did not write like that. Rabindranath Tagore wrote similar stories. "Kabuliwala" and "Chokhera Bali" come to my mind now. Yes, that was a movement in story writing, and it certainly did originate in the West, but became different in different traditions. That became a pervasive trend. Writers made different experiments in different languages. These Nepali writers made their own experiments, which was not a direct emulation of any particular Western fashion in writing. It was part of literary sharing and education, which continues even more strongly today.

Nepal, in almost every decade after the 1950's, has seen major political changes: movements for democracy, autocratic Panchayat regime, Maoist conflict, abolition of monarchy, promulgation of a new constitution and the declaration of Nepal as a federal republic. How have these political changes influenced Nepali short story?

These historical transformations have had impact, but the nature of the impact is not homogenous. Major Nepali short stories were written before the greatest political change of 1950, some of which you mentioned in your question earlier. The most historical literary magazine of Nepali **Sharada** *was published in 1934. This magazine published major short stories. BP Koirala's first story was published in this magazine. The Panchayat era was very complex in matters of literature.* **Roop-Rekha**, *a literary magazine started the same year when Mahendra took over power or what they call "satrasaal" or 1961. This magazine published some of the best short*

stories of writers both from Nepal and outside. The later periods in Nepali history saw big political transformations. The Maoist insurgency and its impact created a new modality for story writing. Writers chose different aspects of the period, but all the short stories written during this period do not have a homogenous character. So, more work should be done to locate the modes of departures and experimentations.

It doesn't suffice for a short story to be Nepali simply because it is written by a Nepali citizen and in Nepali language. It needs to have something of 'Nepaliness' that remains intact no matter into how many languages the story is translated. How much of such 'Nepaliness' do you find in contemporary Nepali short story?

I do not see any problem in that. However much a short storywriter may claim to be a non-nativist, what he or she writers come from the milieu where the writer is born and brought up. If one writes a science fiction related story that writer may transcend time and space. But to say that a Nepali short story writer should writer about Nepal and Nepaliness only is to demand from him or her to write a kind of nationalism that may not necessarily be a creative endeavour. But the storywriters have not drifted too far from their native circumstances and influences. Some may write about one's overt culture and others may write about its covert aspect. But yes, one thing is true; if a writer does not have any grounding on any space and culture, that writer may be writing some unauthentic stuff. I see validity in that remark in that context.

The number of story collection appearing every year is dwindling. For example, the year 2074 BS (2017-18) hardly saw 10 collections in the market, whereas the number of novels or poetry collection is much higher. What could be the reason for this fall in the number of stories produced every year?

I would think 10 collections of short stories in one year in Nepal now is a very good number. In previous times also the collections of short stories were not significantly high in number. It has always been a sparsely produced genre. If we look at the history of Nepali short stories we find a certain norm in the writing and production of them. Yes, novel was the least written and produced genre. But like me as a student of Western literature and Nepali writer--you are a short story writer—you can recall Mikhail Bakhtin's comparison of epic and short story writing here for a good reason. Bakhtin calls novelistic discourse a dialogic phenomenon, the reason for which, he says, is that it always remains in contact with the unfinished. But that unfinished is a growing reality of the contemporary times. The Nepali time became most indeterminate and the novels did establish the unfinished dialogue with that reality. You can see how Nepali novels of the recent years, say of the last 15 years, have made indeterminacy, the unfinished, as their dharma. Short stories have followed a slightly different path here. Whatever short stories are written in Nepali in the recent years, they have sought to find a different path to address that indeterminacy. But then that task is very difficult and challenging. I agree with you, that is why their number is small. Let us put it that ways here.

One of the themes that has pervaded the entire scenario of Nepali modern short story is the feminine concern, and this

includes stories by both males and females. Compared to the global scenario, what distinctiveness do you see in Nepali short stories on feministic themes?

Your question reminds me of one conversation I had with one senior storywriter. She asked me a number of questions regarding sex, cyber culture and the different ways of addressing that issue. She said, she had written stories in that vein, and wondered if I could write some text by way of introduction. I was at a loss there; I did not write. That is a different story. But that approach of this senior storyteller is a misnomer. She is deceiving herself by giving herself up to the cyber savvy fad and the sex matter instead producing her valuable experience of life and creativity. She had the least idea of what she was saying. It is very nice to have feminine concern in short story writing. But the short story writers of the erstwhile generation like Sita Pandey, who lives in America now, and others presented the confidence of women in terms of showing and asserting how she sees her body and her sex herself. That was one dimension. Today's dimension is different. Women writers see no need to be perpetually defining difference. It is there, a reality and she is different and equally creative. Yes, that aspect is being noticed in not many but some stories today.

Some of the latest themes of Nepali short stories are empowerment of the people in margin and the plight of emigrant Nepalese abroad. Can we explain this as a postmodern necessity or you have a different observation?

Yes, mainly a political necessity. Any egalitarian society today cannot ignore the voice of the margin. Empowerment is more widely used in the case of women. Dalits and the subalterns are also the subject of this discourse. But representation in literature is a little different matter. It is represented when some writers write, or can write. It is more of a political subject than anything else. But the question arises at another level, the level of representation of their works, including them in the canonical texts, collections and state sponsored publications. That is what Paul Lauter distinguishes in his book **Canon and Context**. *He has edited volumes of famous* **Heath Anthology of literature in America**. *That is precisely what he has done—representation of those who are not represented. I would call this a political and egalitarian necessity. But in short stories, that is very sparsely represented because few people have written for that, unfortunately.*

Would you love to make any new note on the tradition of Nepali short story?

Nepali short story writing has one remarkable quality, which is its continuity. That the writers of the younger generation are writing shows that reality. The other aspect is that despite the confusions, explosions of stories which are lies and post-truths now, Nepali short story writers even on a humble scale have given continuity to this wonderful and my favourite genre, as well as poetry. I am positive about its continuity and its being a greatly creative endeavour that has a tradition—a past and the present, and I am sure, a future.

Thank you Sir.

Thank you too. Your raised very relevant and important questions.

Primary Survey of Postmodern Traits in Nepali Stories

Prof.Dr. Govindaraj Bhattarai

Prelude

'Postmodernism in Nepali stories' is an issue quite intricate to explain, but the urgency of the present time doesn't allow us to escape from the responsibility on the pretexts of its conceptual complexity. It's high time we launched discussions, deliberations and discourses on this issue. We are already too late.

As soon as a discussion is launched on this issue, several assumptions of the postmodern thought and its pervasion come to the forefront. Should we examine it from the grounds of philosophy, economics or literature? Or, from postmodern music or culture? Since every aspect and dimension of life, from philosophy to folk experiences, show pervasion of the postmodern and its practice, it will be difficult to address each of those aspects. In this write-up, one genre of Nepali literature—the short story—has been taken up to examine the entry of postmodernism and its use, and a short discussion has been undertaken to suggest how the same can be explained.

It Informs about Shift of Paradigm

The direction of creative artefacts in Nepali literature has changed. Accordingly, it's high time we changed the paradigms of literature and evaluation. This is not an abrupt outcome. Incidentally, it was after the political change of 1989 that Nepali literature started exhibiting a shift in its overall direction. More than the changes inside Nepal, it was global development that induced a rapid shift towards the evolution of an open, liberal society. Its impacts have started appearing in Nepal as well, especially in its literature and culture. It was at such a time when articles on postmodernism started appearing. Even books started burgeoning in the decade of the 2050's BS. When we look back from today, we can notice that the number of books written in support or opposition of postmodernism has crossed one and a half dozen. This is not a trivial number. There are adequate grounds to enter those works and plan a PhD dissertation. This is a matter of joy.

The books published so far on postmodernism are listed below in chronological order of their publication:

1. *Marxvad ra Uttar Aadhuniktavad* (Marxism and Postmodernism; Rishi Raj Baral, 2052)
2. *Nepali Sahitya Itihasko Rooprekha: Uttar Aadhunik Prastuti* (An Outline of Nepali Literary History: A Postmodern Presentation; Shanti Raj Sharma, 2056)
3. *Aakhyanko Uttar Adhunik Paryawalokan* (The Postmodern Inquiry of Fiction; Govinda Raj Bhattarai, 2061)
4. *Uttaradhunikta: Bhram ra Wastavikta* (Postmodernism: Illusion and Reality; Ninu Chapagain, 2061)
5. *Uttaradhunik Aina* (The Postmodern Reflections; Govinda Raj Bhattarai, 2062).
6. *Uttaradhuniktavad ra Samalakeen Yathartha* (Postmodernism and Contemporary Reality; Rishi Raj Baral, 2063)
7. *Uttaradhunik Jigyasa* (Postmodern Curiosity; Krishna Gautam, 2064)
8. *Uttaradhunik Bimarsha* (Postmodern Discourse; Govinda Raj Bhattarai, 2064)

These are central works dealing with postmodernism. Eight/ten other books of peripheral importance have been published, which have their bearing on postmodern background, and signal that our creations, reading culture and analysis are fast changing. For example, we can refer to Govinda Raj Bhattarai's *Paschimi Baleshika Chhitaharu* (The

Spray of the Western Drip-Edge, 2061), Pemba Tamang's *Aakhyandekhi Parakhyansamma* (From Fiction to Para-fiction, 2005) etc. Besides them, the works of Abhi Subedi, Mukesh Malla, Mohan Raj Sharma, Laxman Prasad Gautam and others have crossed the watermark of two dozens, which, albeit through scattered pieces of writing, have explained the postmodern idea, and are constantly registering their presence in the entire discourse. As a result, three students have registered themselves for PhD programme on this subject. The number of MA and MPhil dissertations submitted to various universities in Nepal has crossed three dozens. A detailed description of these works has been presented in the essay "The-Entry and Practice of Postmodern Ethos in Nepali Criticism" in *Uttaradhunik Bimarsha* (Postmodern Discourses, 2064) by Govinda Raj Bhattarai.

The grounds of shift in paradigms have become clear both in creation and criticism of Nepali literature. The objective of this write-up, however, is limited to the presentation of an introduction to postmodernism in Nepali short stories, though these references have been made to prepare a background for the same. Not only short stories, but other genres of literature too are in need of newer perspectives for their study and analysis. This is applicable to issues other than literature as well. There are three grounds pertinent to this claim:

a. Philosophical grounds; b. Structural grounds; c. Stylistic grounds

This short write-up, however, cannot address all these grounds in detail. I shall try to explain certain things in brief. Viewed from philosophical grounds, we should understand reality or truth as an entity relative to one's perspective. We should believe in its instability, which needs constant amendment. We must believe that the grand-narratives have either died out, or they deserve an end. Accordingly, the inversion and absence of the older values should lead to an inquiry for newer truth, and following it, we should be ready to embrace a new, pluralistic path. Such endeavours will foreground those thoughts, ideas, individuals and cultures which were hitherto back-grounded and lead to the evolution of newer centres. Establishment of multiple centres is one of its aims. Resistance and deconstruction of a singular centre is its objective.

Some newer structures can come up: generic disruption, inter-generic collage, indeterminacy of the limits of characterization and plot, and the presence of novelty and unconventionality; but all these are not imminent necessities, because novelty has been invited merely for breaking away from the dictates of classicality and fixity. We must be careful lest this becomes yet another instance of conservatism. Removal of one dictator should not be followed by the enthronement of another. Since it is a search for freedom from older constraints, postmodernism offers a room for exploring uncertain forms and processes. Postmodernism is in itself a new paradigm that can be constituted by many newer structures. The belief that no structure is, in itself, the ultimate will give birth to newer structures. Let newer values replace older structures (truths/illusions). All these manoeuvres undertaken to attain such a goal can be term 'deconstruction'.

This does not have many pre-determined stylistic grounds. An artist is always in an open-ended atmosphere. Let him/her play the role of an inventor. Since he/he is an individual breaking open from all types of structural bondages, there are ample examples of such rupture, but there are not many limiting rules. Many things depend on individual invention. Pun, tone, trace and images appear. Opposition and satire can come forth. Fantastic imagination can occupy the central position. Many things are subjected to inversion. For this to happen, it is not necessary for any of the erstwhile ideologies to get erased. Be it any thought for that matter—realism, existentialism, Marxism, psychoanalysis or any other—its use in a postmodern context invites liquidity and novelty. After this, what follows next, in terms of its content, is a fourth issue for exploration. The content is the same; all that is new is the perspective to look at it, and that is always a different one. That is free of any finality.

Current Situation itself is Today's Reality

Time has changed. Our socio-cultural conditions have changed. So have our educational, political and international scenarios. This change itself is the reality of our time. We

write this change. Our new stories are about diasporic conditions. We have stories that envision our space in the cyber culture. There are stories that are committed to writing the issues of superhuman world, while there are stories on war and intercultural realities too. Ethnographic stories about various cultural groups have asserted for themselves a generic claim. Translated literature, transcreation, and deconstructive writings have several processes. Especially the marginalized characters, situations and conditions are getting into the body of contemporary writing. All these are new scenarios that invite newness. Accordingly, Nepali literature is taking newer turns and adopting newer styles.

The stories we are writing today are gradually moving away from modernist prescriptions. A group of writers has started adopting postmodern trends. The stories of the past could be analysed on grounds of their structure and system, but the present day stories demand post-structural analysis. They can be explained only through deconstructive and postmodernist approaches. The works in the past used to be more individualistic; but now, newer and darker forces bent on swallowing the individual have appeared, and so, our writing has turned towards the safety of the human kind, and the safety of the mass. Authors committed to ethnographic and cultural writing, gender awareness, and equality turn towards such issues. Their stories are the stories with postmodern consciousness.

Postmodern Study of Nepali Stories: A Background

Not much time has passed since Nepali stories started getting analysed from postmodern perspectives. Govinda Bhattarai's article on deconstructive criticism and Nepali literature, published for the first time on 43rd issue of *Kavita* in 2049 presented the theoretical aspect of such study. The stories of Indra Bahadur Rai, Dhruva Madhikarmi and Ramesh Raj Panta, and the poems of Udaya Niraula discussed in the article have been taken as instances to explain the deconstructive process. In reality, deconstruction is the pivot of the very philosophy of postmodernism.

A few years later, Bhattarai's yet another essay "Nepali Kathama Nawaprayog: *Drishti ra Ghanaghor Jungle*" (Drishti ra Ghanaghor Jungle: New Experimentations in Nepali Stories) was published in *Garima*, issue 249, 2060. This essay claims: "Dhruva Madhikarmi's story collection *Dhristi ra Ghanaghor Jungle* collects fifteen short stories. Of them, four stories have become milestones of Nepali short stories. These four stories are: i) Arko Sudamako Katha (The Story of Another Sudama), ii) Sudama Number Dui (Sudama Number Two), iii) Dristi ra Ghanaghor Jungle (Drishti and the Dense Forest) and iv) Euta Dantyakathako Punarokti (The Retelling of a Fairy Tale). Of them, the last named story was published in the year 2039. This clearly indicates that Dhruva Madhikarmi was a pioneer in writing new stories. That time can be regarded as a point of departure.

Another important work in this line is "Uttaradhuniktavadko Sandarbhama Nepali Akhyan", i.e., Nepali Fiction in the Context of Postmodernism. Though he article mentions 'fiction', it is basically an analysis and discussion of Nepali short stories. The work was published in *Samakaleen Sahitya* 45, 2060. This long write-up, in the beginning, presents the points to differentiate postmodernism from modernism. These points suggested by Ihab Hassan are considered valid even today. For example, if viewed from modernist or structuralist perspective, our creation appears bound, while in the new, it is free. Similarly, a creation used to be considered a 'product' earlier, which is now considered a process. That used to demand reading; this demands de-reading. That used to be considered certain; this uncertain. That used to be considered timeless; this one is instantaneous. Besides these, this article, for the first time mentions the differences between narrative and anti-narrative, between reader-centric and author-centric discourses.

That essay, on the basis of the standards discussed above, makes an analysis of the stories included in the story-special edition *of Samakaleen Sahitya*. *Samakaleen Sahitya* had, in its 25nd and 26th issues, published 32 and 34 stories respectively, making the number of stories 66. All these stories were those written in the 50's of Bikram Sambat. The essay under discussion has analysed those

stories. While doing so, attempts were made to foreground the novelty seen in their style, plot, characterization, theme, incident, etc. The collections contained stories by Kavitaram Shrestha, Kumar Gyawali, Govinda Bahadur Malla, Dhuswa Saymi, Dhruva Chandra Gautam, Parashu Pradhan, Manju Kanchuli, Meera Rem Pradhan, Manu Brajaki, Madhav Lal Karmacharya, Ramesh Vikal, Bishwambhar Chanchal, Shailendra Sakar, Lil Bahadur Chhetri, Amod Bhattarai, Avinash Shrestha, Gopal Parajuli, Ismali, Santa Regmi, Khagendra Sangraula, Tej Prakash Shrestha, Rishi Raj Baral, Nayan Raj Pandey, Narayan Dhakal, BB Lakandi, Rajab, Basu Baral, Vijay Chalise, Sarubhakta, Gopal Ashk, Dhoomketu and others, which have, in one way or another, transgressed the limits of traditional short stories. The new stories have replaced the erstwhile central idea and structure.

A Model of New Analysis

This write-up discusses how, at that time, postmodernist reading of the stories could be done. I remember a couple of contexts here. "Hari Sharan Ramko Punaragaman", or "The Return of Hari Sharan Ram" by Ismali tells us that members of many communities that had been kept subjugated and oppressed for centuries are of the feeling that they should wipe out or peel off their own caste (surname). They feel that if they can do so, they can stay hidden or live without any identity, and by that token, get freed from servitude and stay free from inferiority complex. In the story, Hari Sharan replaced his real surname 'Mochi' by 'Ram'. This is the consciousness of the oppressed class in the contexts of Madhes. The story depicts the Jhas and the Mishras, people of high and cultured social classes, as antagonists. Similar is the story "Sangram Bahadur Karki" by Khagendra Sangraula. Basu Baral's "Nalu Arthat Nalika Deshar" too is a similar story.

In Dhruva Madhikarmi's "Krishna ra Sudhama -2", Krishna and Sudama are depicted as businessmen, hard-pressed by the oddity of the present time. Sudama is no longer a poor man, and there is a different mystery underlying his love for Krishna. His wife is in a different role. This is a deconstructive story. Another example of deconstruction appears in Avinash Shrestha's "Dantya Kathabhitrako Dantya Katha" — 'A Fairytale inside a Fairytale'. This story presents Prince Dikpal in a different role. The story is a collage of poetry, play and fiction. By that token, the story transgresses generic limits by mixing them. This is a new possibility discerned in other literatures as well. Use of fantasy, which is one of the predominant features of postmodern stories, is found dominantly in the stories of Morash. Sarubhakta's "Nani Dhangre ra Meri Najanmeki Chhori" is an example of nature writing, in which, characters have been picked from non-human world. This way, the writing that attempts to analyze novelty in 56 Nepali short stories has hinted the need to develop newer perspectives to look at Nepali short stories.

Some New Story Collections

Since then, the stories have continued this newness and have registered a huge gallop in this direction. In the meantime, about fifty new storywriters have come up, some with collections and others in scattered writings. Many more are coming. Women writers are equally active; many writers are emerging from marginal groups. The number of translated stories too is on the rise.

In all these works, novelty and shift of paradigm is clearly discernible. I hereby list a few works of this period in order of their year of publication:

Sunyawat (2058) by Hiranya Kumari Pathak; *Uttarardha* (2058) and Sitaharu (2060) by Parashu Pradhan; *Baikhari* (2059) by Mohan Raj Sharma; *Chaubatoko Charaitira* (2059) by Hiranya Bhojpure; *Samaya Bimba* (2059) and *Sandheko Dain* (2062) by Biwash Pokharel; *Manasthiti* (2060) by Badri Palikhe; *Nepali Youn Katha* (Nepali Sex Stories, Part I, 2060), edited by Pramod Pradhan; *Mann Manai ta Ho* (2060), Ani...(2062) and Nishabda Prashnaharu (2063) by Ilya Bhattarai; *Sipahiki Swasni* (2059), *African Amigo* (2060), *Chhapamarko Chhoro* (2064) by Mahesh Bikram Shah; *Timi Gayeki Bhaye* (2060) by Radhika Ray; *Purush Gandh* (2060) by Pradeep Menyangbo; *Saathi Barshama Hridayaghat* (2060) by Dhruva Chandra Gautam; *Santrasta Aankhaharu* (2061) by Matrika Pokharel; *Pratinidhi Katha* (2061) by Sanat Regmi; *Tusharapat* (2061) by Tita Tamrakar; *Chhatima Taap Rakhera* (2061) by

Aamod Bhattarai; *Baluwama Arko Nepal* (2061) by Rakshya Rai; *Bisancho* (2061) by Ratna Prajapati; *Andhakar* (2061) by Dhruva Sapkota; *Kajol Khatun* (2061) by Phulman Bal; *Maun Bidroha* (2061) by Jaleshwari Shrestha; *Dobhan* (2061) by Bhagawan Chandra Gyawali; *Sanghuro Dharatal* (2062) by Chandra Kala Newar; *Orchestra* (2062) by Durga Binaya; *Atmahanta* (2062) by Narayan Dhakal; *Swapnayatra* (2062) by Narendra Raj Paudel; *Hawan* (2062) and *Kagajma Dastakhat* (2064) by Neelam Karki Niharika; *Jadoma Bhok* (2062) by Rajendra Parjuli; *Dosro Prahar* (2062) by Baba Neupane; *Swapnabhanga* (2062) by Shyam Krishna Shrestha; *Upama* (2062) by Sita Aryal; *Ananta Pahiraharu* (2062) by Sijana Sharmal; *Jhola* (2062) by Krishna Dharabasi; *Dosro Vishwayuddha* (2062) by Roshan Thapa Nirab; *Nepali Youn Katha* (Nepali Sex Stories – Part II, 2062), edited by Laxman Prasad Gautam; *Dwandwa ra Yuddhaka Katha* (Stories of Conflict and War, 2063), edited by Govinda Raj Bhattarai and Bishnu Bibhu Ghimire; *Samakalin Nepali Dwandwa Katha* (Contemporary Nepali Stories of Conflict, 2063), edited by Laxman Prasad Gautam; *Tanya, Indrakamal ra Adhakar* (2063) by Avinash Shrestha; *Tirsana* (2063) by Laxmi Upreti; *Aama Januhos* (2063) by Maya Thakuri; *Bhoomigat* (2063) by Bhagirathi Shrestha; *Rajendra Bimalka Katha* (2063) by Rajendra Bimal; *Chiriyeko Mutu* (2063) by Homnath Subedi; *Bighatan* (2063) by Harihar Khanal; *Nepali Youn Katha* (Nepali Sex Stories – Part II, 2064) edited by Bimal Bhaukaji; *Aafanta Dushman* (2064) by Basu Jammarkattel; *Leela Dharana ra Kathaharu* (2064) Ratna Mani Nepal

In a similar way, *Stories from Nepal* (2003), published from Sajha Prakashan, *Selected Stories from Nepal* (2005) published from Nepal Academy and Beyond the Frontiers published from Gunjan are works that include stories by 75 authors in English translation.

More or less the same authors appear in English and Nepali versions. Those contemporary names have appeared in the works mentioned above. Of them, the majority had tilted towards postmodern writing. Time has made them turn towards postmodernism.

Newer Avenues of Creation and Nepali Stories

Postmodernism promotes diversity and plurality. It moves exploring newer avenues of creation. It seems alternatives to the centre-seeking tendency of the erstwhile practices. Accordingly, it develops newer parameters of criticism.

Of the many avenues of creativity that have appeared today, cyber culture is one. The world has been pervaded by cyber practices today. Globalization has made the world culture singular. Such a world is quite mechanized. One strand of Nepali short stories reflects the influence of cyber culture. Our writers have started writing cyber stories. This issue has been discussed at length in my book *Uttaradhunik Bimarsha* — the Postmodern Discourses.

Another avenue of creation is war. War literature occupies a formidable space in world literature. In case of Nepali literature, the preceding decade has bequeathed a huge body of war literature. Many storywriters have come forth with war as their themes. At the present time, war stories are making a huge gallop. The number of collections with war stories has crossed a dozen, and the number of storywriters is around a hundred. This is a big diversion. At the moment, unless we refer to the following collections, we will hardly know anything about war stories:

Dwandwa ra Yuddhaka Katha (Stories of Conflict and War) edited by Govinda Raj Bhattarai and *Bishnu Bibhu Ghimire; Samakalin Dwanda Katha* (Contempary War Stories) edited by Laxman Prasad Gautam; *Chhamako Chhoro* by Mahesh Bikram Thapa; *Dwandwa ra Dhuwa* by Punya Kharel; *Aatmahanta* by Narayan Dhakal; *Aarambha arthat Suruwatka Kehi Katha* by Dhir Kumar Shrestha; *Jadoma Bhokka Kehi Katha* by Rajendra Parajuli; Some stories in Beyond the Frontiers, edited by Padmavati Singh and Govinda Raj Bhattarai; Some stories from *Andhakar* by Dhruva Sapkota; Some stories from *Maun Bidroha* Jaleshwar Shrestha; Some stories in *Kajol Khutun* by Phulman Bal; Some stories from the collections of Rajendra Bimal; Some stories from *Sitaharu* by Parasu Pradhan; Some stories from *Swapnayatra* by Narendra Raj Paudel

For analysing war literature (also stories), one need to use the theory of trauma. Though they are yet to appear in collections, many

writers are, at the moment, writing war stories. Their study holds different significance.

There is yet another dimension of postmodern writing, namely disporic and emigrant writing. This poses a different scenario. Of those writing from abroad, the important ones are Hom Nath Subedi (*Chiriyeko Mutu*, 2064), Rajab, Kamala Saroop, Govinda Giri Prerana, Nagendra Neupane, Mira Rem Pradhan, Rakshya Rai and others, while those from inside Nepali writing on such themes include Ilya Bhattarai, Padmavati Singh, Mahesh Bikram Shah, Manju Kachuli, Raju Babu Shrestha and many others, who have penned stories depicting hybridity and difference resulting from an intercultural encounter upon reaching foreign countries.

Postmodernism also lends freedom to translation. At the moment, those who have been translating stories from world literature and enriching Nepali literary corpus include Khagendra Sangraula, Bhuvan Dhungana, Narayan Dhakal, Kumud Adhikari, Ram Chandra KC, Byakul Pathak and many others. This is a novel avenue. This has ushered Nepali story into a new realm of diversity and novelty.

There is yet another new avenue of creation: environmental writing. This aspect is yet to enter Nepali story. However, its presence can be felt in poetry, essay and novels.

Finally, another very important salient feature of postmodernism is deconstruction, rewriting and reinterpretation. This aspect has become apparently discernible in Nepali short story. There are several instances where inter-generic collage can be noticed in the structure of a story, exemplified by some of the stories of Sarubhakta, Avinash Shrestha, Dhruva Chandra Gautam, Roshan Thapa, Narayan Dhakal and others. Of the many types of experimentation, we can notice newness in stories by "Sylvia" by Kumar Nagarkoti. Morash too is an extremely successful experimental storywriter. We can also notice such experimental nuance in Parasu Pradhan's *Sitaharu* in the way he mixes characteristics of stories and novels in his fictions. The stories of Rajab too are equally experimental.

Nepali short story is moving towards a new direction. It is assuming a very different style and technique. Characters, setting and incidents are myriad. From the ethnic world, not many works have poured in. Yet, writers like Phulman Bal, Nabin Bibhas, Indrish Sayal, Prakash Angdembe, Raj Kumar Dikpal, Indira Chongbang, Dhan Hang Subba, Dr. Bishnu Rai, Apsara Lawati, Bhadragol Kirati, Krishna Dev Chaudhary etc. have written stories that deserve a significant attention.

A Nepali short story is fast assuming a global dimension. It is breaking away from traditionalism. They have, at the moment, started echoing the voices of the margin. These are the postmodern models of Nepali short story. It's high time we had a separate collection of such stories. This is evolving.

Reference

Soles, Robert. *Elements of Fiction: An Anthology*. New York: Oxford, 1981.
Bhattarai, Govinda Raj. *Paschimi Balesika Bachhita*. Kathmandu: Nepal Academy, 2061.
---. *Uttaradhunik Bimarsh*. Kathmandu: Modern Books, 2064.

[Translation of Bhattarai's "Nepali Kathama Uttaradhuniktako Prarambhik Sarvekshyan" by Mahesh Paudyal]

Story

Awaiting Doomsday

Dev Kumari Thapa

"They say all nine planets are going to crash into one another and that the world is going to get submerged in water."

"Surely not the whole world. Only the places with sinners, I am sure. God will protect holy places."

"Nothing's going to be spared when all nine planets crash, the sinful or the holy; everything will be razed to the dust."

The villagers are warming their hands on the fire completely engrossed in conversations like these. The women continued about their chores but with great anxiety. Everyone was sacred because of the rumours of the impending arrival of doomsday.

Having completed his bachelor level education in the Tarai, Bikram had come to this village and had been teaching at the village school, since the previous year. Because of the worsening financial situation at home, he had had to drop out of college but he kept taking the exams independently. He started teaching and continuing his self studies. He quite liked the village. His meals were cooked at the house where he was staying. He didn't have to bother with cooking. The landlady and her daughter treated him as one of their own family members.

At first, he laughed at the rumours going around in the village. But as people continued on and on about this doomsday issue, he too started having his doubts. Although he believed that an educated person like himself should not fall for such superstitions, that inherent flow of human nature was making him loose his footing. He reached the spot where the villagers were warming up by the fire with all these musings in his heads. Everyone called out to him in a welcoming note: "Hey master, come on over here. Come and warm your hands. So young, not even settled yet and now all is going to end."

Bikram asked, "Who is forecasting this end of the world phenomenon?"

An elderly man responded "Who else but that holy saint! Sure a pure soul! Every morning we go to him and pay our respects. I am sure some of sins have already been washed off merely by the sight of him. Haven't you been there yet?"

Bikram answered" I did hear about the holy one but I haven't been to him as yet. I think I'll go soon."

Villagers said, "You must go right anyway, because within a week, a great catastrophe is going to take place and everything ends."

Bikram said OK to go but he wasn't quite resolved to do it. He thought," What nonsense! The comet Dhumketu has already made its round of earth and disappeared and nothing happened; so what could this catastrophe be?" He didn't think it wise to try to unconvince the villagers' thought. Their superstition had already taken roots. He spoke to the villagers for a while and went over to his rented place.

Once he reached there, the landlady called him for his meal. He walked into the kitchen from his room. There too was talk of

the impending doomsday. The landlady's daughter Maiya's was forlorn. Time and again she looked at Bikram's face as though she were trying to say something to him. Since the mood was quite sombre there, he didn't stay on to talk as he used to do on other days.

He went into his room and turned down the lantern a little. He lay down on the bed without taking off his clothes. With his fingers crossed behind his head, he stared at the ceiling. All kinds of memories surfaced in his head like the tides rising in the sea. He fell asleep thinking about all sorts of issues.

Someone caressed him and kissed him in his sleep. He got up with a startle and looked all around. When he woke out of his sleep, he saw that it was the landlady's daughter Maiya. He looked at her in total surprise and asked her" What happened Maiya? Why are you here at this hour?"

"Nothing's happened. I came just like that," said Maiya with her head bent down. Bikram added a note of harshness in his voice and said, "Go to sleep. You shouldn't be here at this time of the night. What'll people say if they saw you?"

Maiya responded a little flirtatiously, "Who cares what they say? We'll all be dead and gone soon anyway" and at this latter statement, her voice was heavy with emotions.

Bikram was shocked to realize that this was the other side of Maiya. Today she was speaking like a matured adult. What could he say to her? The teacher felt that he should try to work some sense into her "What childishness! You shouldn't believe in what any and everyone says. Is this what you have learnt from that I taught you so hard for?"

Maiya suddenly caught him in her arms and started to cry. "What's going to happen to us now?" Bikram had yet to adjust himself to this unexpected attack when Maiya started kissing and touching him. The more he pushed her, the more she stuck him like a leech. In the end, he gave up. The long dormant thirst of a man suddenly gushed out in search of an outlet and gorged out. He pulled Maiya into his covers.

It was already morning when Maiya went to her room.

Bikram took a bath and went to the kitchen for his meal. He was feeling a little odd, a new kind of sensation. He felt a little stronger; a little matured and also felt a sense of victory. He stole a glance at Maiya who was serving the meal. How amazing! Maiya looked like a good housewife serving food and she neither seemed unsettled nor scared by the events of the night before. Her face looked bright and content. She had the grace of a new bride in her appearance. There was no expression of insecurity or remorse in her. Overnight Maiya had turned into a woman from a young girl. After having done with his meal, Bikram went to teach.

The rumours regarding the catastrophe started spreading even more. People were spending money without care. "What to save for when there was to be no future?" they said. Dambare Karki cut his big goat which he had saved for Dashain and gave a big party. Hakucha slaughtered his string buffalo and distributed the meat the meat for all. Whoever had saved a little to avoid financial problems, started to spend it all. More than the fear of the doomsday, people seemed to be taking pleasure in spending without a worry and having a great time. It was as if the festivities had arrived.

There was an equally vibrant atmosphere in the hermit's hut. There was a mound of jewellery, money, fruits, cereals, that the devotees had given to the saint in the offering and on the other side was the darkly bearded and mustached, healthy and proud looking saint sitting cross-legged on top of the leopard skin. Bikram was really taken aback. So much gold and silver in such a seemingly poor village!

He too bowed down at the saint's feet like everyone else but he didn't offer any alms. The saint showered Bikram with blessings "May you live very long" and Bikram accepted the blessings with open palms. It seemed to Bikram as if the leopard skin the "Maharaj" was sitting on had come alive and was sitting right in front of him in the form of the saint. There seemed to be the same expression in the eyes of the leopard and that of the "Maharaj" captured the prey in your gaze and attack! Bikram was frightened by these sinful thoughts and rushed home fast.

Maiya was waiting for Bikram with food she had cooked. He felt a little awkward. He wasn't sure how to accept this new relationship but he could also feel a sweet sensation within himself.

Maiya gave him some food. Her natural and unashamed demeanour thoroughly amazed him. He even felt suspicious that "Is she a girl of loose character?"

Saturday arrived-the day of the professed catastrophe. From Friday night people started singing devotional songs and praying to the lord. They stayed up all night in prayers and in the morning gathered and had a feast- the Last Supper!! Rice-flour doughnuts, beaten rice and mustard greens, potato, pickle, salad and curd. The villagers waited doomsday with much eagerness and excitement. But Saturday turned into night and passed midnight but the catastrophe never fell. People started getting restless. They behaved as if a loved guest had failed to arrive and started pacing back and forth. They stopped singing.

On Sunday morning the elderly people in the village walked up the hill to pay their respects to the "Maharaj". To their total disbelief, the hut was empty and neither the "Maharaj" nor the mound of alms was there. Scattered all over the floor were flowers, greens, garlands and *tika*. The villagers were totally taken aback and collapsed into the floor of the hut.

Once news got out, people started getting angry. The youth went running in search of the saint as there weren't any seeds or grains left in the village. How were they to survive now? All their goats and lambs, ducks and chickens, buffaloes and boars were consumed. Thanks God! At least the cows and bulls were still alive.

The villagers started justifying but some lost their cool totally. Some even resigned and started making fun of the whole situation. The most surprising thing was that no one seemed relieved at the failure of the catastrophe. It was this very failure in the so awaited doomsday that proved them to be fools. Some outsider had walked into their village and made fools out of them and that to them was the most and made fools out of them and that to them was the most shameful thing of all.

Bikram was lying on his bed and thinking "I was the educated one, I was the teacher and yet I was proved a fool too. I had noticed that the "Maharaj" looked more like a leopard than saint but how I didn't warn the villagers? I didn't have the guts for. But a cowardly youth that's what I am." Suddenly he felt a little bit uplifted by the events of the events of the night before. That young woman, Maiya, had at least shown her courage. She made sure that she got the man she liked. Circumstances prove a person, he thought. And from depth of his heart, he felt love budding into shape for Maiya.

[Translation of Thapa's "Pralaya Pratiksha" by Kumar Nagarkoti]

Story

The Soldier

BP Koirala

It is hard to travel alone in the hills. I had to walk for two or three days, but I met up with a soldier on the way who made the journey pass easily.

First he asked me, "Hey, young man, where are you headed?" shouting rudely at me from behind in a familiar tone. I turned to look back and saw a soldier in uniform coming up quickly with short, fast strides. I remembered the many things I had heard about the rough, cruel nature of military men and so I simply replied, "Ilam," in the hope that this would shake him off'. But by then he had already caught up with me.

"Aha!" he said casually, and as he grinned a gold tooth glittered, "I'm on my way there too. Now we shall keep each other company all day, shall we not, my brother?"

He wore a black coat, an army cap, and khaki trousers. In his coat pocket there glittered the clip of a cheap fountain pen. A Queen Anne watch was strapped to his wrist and was visible whenever he lifted his arm—he had a habit of raising his hands as he spoke. Around his throat he had tied a large red kerchief.

"I'm a soldier, but you, if the Lord does not deceive me, must be a student. Am I right?"

I smiled and confirmed that this was true.

"I can always tell who a person is, and what he does, from the clothes he wears and the way he speaks. I swear I've never been mistaken, at least in this. I can't really read or write. Well, I can sign my name each month and get through the Ramayana: that much I've learned in the barracks. But if I'd studied any harder I'd have turned out thin and pale, like you!"

I began to enjoy his talk. He spoke with familiarity to everyone we met on the path, saying, "Where are *you* off to then?"

People were nervous of his military appearance and gave him no reply. On encountering an older woman, he would address her as "mother-in-law" and enquire after the well-being of her daughters: "How is your little girl? Tell me won't you, oh mother-in-law of whom I'm so fond?"

He had no wish to know about me. He didn't have enough time to tell me everything about himself, so how could he even inquire?

"I'm stationed at Quetta. I've been there a long time. I do have a wife, but she's back here in the hills, and she's sickly and good for nothing. But we've had two children, all the same. I haven't been home for ages, and I don't even want to go either. She'll have gone off with someone else by now, and my sons will have turned into rogues. Well, the little one seemed bright enough and I really hoped to educate him. But who could be bothered? My father didn't educate me, and I'm quite content. I found myself a wife in Quetta, too. Wherever you go you should have what you want."

I was really enjoying listening to the soldier because he spoke openly and concealed nothing from me. What was there for him to hide, anyway? Like the serious student I was, I asked, "But what is life in the army like for you people?"

"What's that you say? I swear to you,

you know, we don't have the problems you have. Even our officer tells us to enjoy ourselves; he was the one who gave me leave to come here. Recently, there's been talk of war, and so I've come to train new recruits. I've already caught six, and that's the truth. If you become a soldier, you get to rinse out your mouth with milk. You get to keep the goat's horns as your trophy. I'm hardly trapping them; I'm doing them a favor. Our country's in need of soldiers." He puffed out cigarette smoke. "If you die in battle, you go straight to Heaven." His face was as grave as that of a man reciting from the scriptures.

The journey was passing by easily because of his interesting talk. Some girls were on their way home from cutting fodder, and they were coming toward us. The soldier winked and said, "Wait now, I'll tease them." He went ahead and greeted them and then said something to them that I couldn't hear. They all clucked their tongues in disgust and hurried away, but one threw her load of grass down onto the ground right there. With her hands on her hips and her whole body shaking, she cursed him roundly and showed him her teeth. My soldier friend laughed, clutching his stomach, and turned to me and declared, "What a fearsome woman! I'm sure she curses her husband like this. I'd swear to it, you know!"

So we walked on together. "It's very hard to understand these girls. Once, one of them got me in her clutches. Yes...." he sighed. Then he looked as stern as a stone statue, and his legs moved like automatic machines. Straight up ahead, the yellow sun was sinking behind a hill. With great curiosity, I asked, "Well, what happened?"

"Yes, as I was saying. 1, too, loved a girl once; I don't know how it happened. I had spent a lot of time laughing and playing with her and then one day, a Sunday, I found myself beginning to love her. That day was my day off, and as soon as it got dark I hurried to her house." He began to pant. "That day, she was wearing a blue gown, the wretch. She looked very pretty that day."

Just then we began to climb steeply. "Wait, I'll go and buy a couple of sugarcanes. Going uphill is easier if you've a stick to lean on, and when you get to the top you can suck it and it refreshes you. Isn't that a good idea?" He went off and returned with two sugarcanes. Giving one to me, he went on talking, "But that girl really deceived me. She went off with a captain. Her pretty clothes attracted him, but I assure you she won't stick with that old captain. She enjoys flitting around, that pretty girl." A light breeze swept his last sentence away.

I was pondering over this and I made no comment. Seeing me quiet, he laughed, "I bet you a bottle of *raksi* you're thinking about your' wife. Aren't you now? Tell me the truth!..."

I didn't answer him. Then after a while, I said, "Tell me, brother soldier, how you go into a battle. All the bombs, bullets, death—I can't even imagine such a dreadful thing."

He laughed scornfully and slapped me on the shoulder, "It's no place for a soft man like you. But I swear to you, I enjoy myself in battle."

Talking like this, we came to a place where we could spend the night. There were still two hours of daylight left, but the hills to the west had already covered the sun, and darkness was falling quickly to the, sound of cascading waters.

"Now I can't go on," I said. "It's time to look for somewhere to stay."

"Don't worry about that. I know every stone here; it's where my forefathers came from. Come, I'll take you to a shop; I know the old woman who owns it. There was a time when men sat all around her, my father among them. Her shop did very well then. But nowadays no one even casts her a glance from a blind eye. I swear to you, if it wasn't for her daughter, I wouldn't go there now either."

As he spoke we came to the shop. It was old and built of timber that had rotted in the rains. The front of the building had subsided, and so people had to stoop down before they could enter.

We went inside. The smoke that filled the room made the pale light of a solitary oil lamp even dimmer. And because my eyes were heavy with fatigue, the scene inside seemed almost unreal. Two hillsmen were drinking tea and eating pieces of stale old bread. They talked loudly and slapped the table from time to time. I saw a fire burning in one corner, with a teakettle placed above it: this was the cause of the smoke. To one side, there was an odd, shelved cupboard with a broken glass front. Inside it I could see an old Lily biscuit tin, an empty box that had contained orange pekoe tea, and a few glasses. A fat old woman sat with her elbows on the table, listening intently to the men's conversation. Occasionally, she would say a few words, and from time to time she laughed out loud.

The soldier entered the room ahead of me, and as soon as she saw him the woman stood up. Looking him up and down, she said, "Hey, what are *you* doing here? Have you lost your way?"

"No, I'm not lost! Where's that daughter of yours?" Waving his hands, he began to pace up and down as if he owned the place.

"She's out, but she's due home soon. I thought you had forgotten us."

At that moment, a plumpish young woman came into the room and said carelessly, "Let him forget! Why should anyone spare a thought for us?" She wore a dirty print skirt and the black smudge of her cheeks was visible, even through the gloom. Above her skirt, a piece of dirty cloth was tied around her waist. She was not especially pretty, but no doubt she had the natural attractiveness of youth.

When he saw her, the soldier skipped over to her. "Oh, you won't believe me, but it's you that draws me back here again. Who could possibly forget you? As soon as I arrived, I asked your mother about you. And then you turned up in person. Tell me, what oath should I swear?"

"Enough, enough! Don't say anything more. You say a lot of things when you're in my sight, but afterward..." She went into another small room and the soldier hurried after her. Inside that room, she lit a lamp and lay down on a mat. The soldier sat down in the doorway and began to talk.

"Tell me then," she said, "what have you brought for me?"

I was feeling drowsy, so I paid little attention to their conversation. But they were still talking much later on, even when everyone else had eaten and gone to bed. The woman told him to bring her a framed Indian mirror when he returned next time. The soldier replied that he wouldn't just bring her a mirror but a dress as well, made from twenty hands of printed cotton. I was tired and I quickly fell fast asleep.

Early the next morning, the soldier shook me awake. There were still two hours to go before sunrise, and it was very cold outside. A chilly wind blew down between the ranges, and the sound of the river nearby was loud. No one else was up, and the cocks had just begun to crow. The hills all around were dark and silent and treeless because it became very cold in that place. I got up, rubbing my eyes.

"Little master," said the soldier, "I bid you farewell. We go different ways from here." He shook me by the shoulders until they hurt. I felt quite sorry; I had begun to grow fond of him, but he cared for no one. He strode off down his path, I stood there watching him go.

Many times I have seen stone memorials to soldiers killed in battle. But this was the only chance I ever had to meet a soldier in the flesh.

[Translation of "Sipahi" by Michael Hutt]

Story

Will He Ever Return??

Bhavani Bhikshu

The sun God had cast his lights over ranges of black hills, though he hid his face behind the southern hill. Rivers continuously sand their melodies. They did not care much about the world. Dimness was sinking into darkness.

A traveller, coming from Tarai, resting his feet on the steps, and asked Sani, "Can I hold here for a night?"

"I don't know. Must ask my mother."

"Mother? Where is she? who is she? I do not know her. Whom to ask?"

"Mother! Mother!! Her sweet and sharp sound as articulated from her throat entered every nook and corner of the hills. However, no one came. Waiting for a while, she headed to a direction saying, "Wait; I'll bring her" and she came with an old woman within a moment.

"Look. She is my mother. Where are your porters?"

"There is only one porter. He is also old; cannot walk fast. Because of him, I had to stay here. Otherwise, I had thought of reaching Chitlang. There are some acquaintances. We could stay in a better place. But, I think, it is an inn, isn't it?

"Yes..." she answered lengthening voice of shock and loathing.

"What if it is an inn? It is the same case at Chitlang too. The nearby room is clean enough," Sani said swiftly.

"You want some food or drink?" the old woman asked.

"I don't drink; food only. I've got all the cooking wares."

Sani said nearing her face with her mother's face "Why mom, he would buy rice, pulse, ghee, firewood, salt, oil, spices, vegetables...the room next door can serve as the kitchen and he can sleep in nearby room."

"Let's see the room once. Whether it is clean, otherwise..."

"Why not? Look, what is in there? It is freshly cleaned; would provide you the mattress, if you need it. Look, your porter has come. Will you take rest?"

The old women stepped up saying; "Sani come on." Sani stood at the door.

The porter, who just arrived, rested his loads making deep sing and said, "Such a heavy loads, such an uphill path, earning of nine paisa, at the same time a leading man too, God knows the wage!"

The hints of expectation, conviction and satisfaction were oblique on the face of mutely standing Sani.

The traveller decided to stay after seeing the rooms and Sani felt quite easy. Arranging of mattress with the help of porter, he lay on the floor over the makeshift bed, breathing of fairly relaxation, Porter said "Now, can I go...tired, need to eat and drink, you should have given me few paisa for brealfast..."

The traveller threw four paisa saying, "Take..." The old porter was about to go picking that paisa from the floor with the gaze of satisfaction, Sani questioned again, "What stuff should I bring for kitchen? Please tell. The night is almost here and you have the lantern. Need some kerosene?"

Without answering, he said to the ready-to-go porter- "Oh old man, bring those cooking wares out of the basket getting washed on the river." Then facing Sani said he, "you should give a vessel to fetch the water, he would bring it too. Then he would go for his food and drink."

"Okay. I'll bring it from up."

"But, is the vessel clean?"

"Look. What is this in the vessel? If you are not pleased, you can wash in the river." Sani had implied the wariness on her face.

The porter had taken out wares from the basket. Sani swiftly came carrying a vessel of brass. The porter went to the river carrying that too. After that, the young traveller gazed at dimly lit twilight. However, the appearance shows worn and miserable state, the face was not ugly. There was the case of body full of mountain air and the gift of beautiful labour; natural physique had been ascending the steps of youth. The crispy round eyes with dark pupils were vigorous. The far level of curiosity and inquisitiveness was playing.

"Then, what to bring for kitchen? Question came through quite wariness. The traveller said, "One ounce of fine rice, one fourth of lentils, vegetables of two paisa, ghee of two *aanas* would be okay."

Hearing it, she climbed up and brought all those things as demanded after a moment. The porter had gone keeping the ware and water in the next room. The freshly cleaned kitchen and the place were clean.

"But, this rice is not fine," the traveller said observing that rice.

"But, you cannot get better quality of rice elsewhere in this place. Otherwise, I would bring it for you. You cannot even get vegetables other than potatoes."

The traveller said slightly smiling "Well, then there is no way out. I should avail myself of available stuffs."

"Now, can I go?" Sani asked.

The traveller does not know that he wanted to steal the sight over the face of Sani while saying "Okay". Their eyes met. The kid climbed up with timidity. But, returning in a moment with confidence. She asked in natural tone "You need oil and spices, and firewood. Should I bring salt, spices and kerosene for lantern? or not?"

"Oh! I have nearly forgotten this. I could have fried the vegetables in ghee. No need of spices; bring the turmeric and salt of one cent and firewood of four paisa or kerosene of 6 paisa is enough for lantern."

After a while, Sani stepped up bringing all those things. After dinner with her mother, she entered her sleeping room within fifteen or twenty minutes and locked from inside.

Though it was just thirty past seven of evening, it was pitch dark. Few houses like butterflies were standing still over the larger and majestic hills, as the lifeless body. The simultaneous roar of river was continuously tuning, but the fright of silence was rising there too.

Sani, lying on the bed who was thinking, quickly heard a sound coming from the traveller's room. Hearing that, she started contemplating right there, He might not have done with his meal. Is he able to cook or not? Or did he spill off the curry from stove, which was just cooked! How could a man cook his meal! However, he had stayed in Tarai as always. Who would cook and feed him there! Or he might have employed a *bahun* (cook). But, how could he do that, it takes lot of expenses; he does not look like business man or elite people. If so, he should have bigger and heavier boxes as with the people who used to come regularly and he should have smaller and bigger leathered bags, folding bed, servant, so many porters and he should have come sitting on carpet with full of luxury; where are all those things? He doesn't have all those things. He seems like he is a jobholder in

Madhes, the lowlands. How can a working person put priest?"

She started to ponder either way: 'If so, he might have a wife.' Then a slap slapped her heart. With the silence, she continued to be lost in thought. There was continued roaring of the river. Collected thoughts were dispersed. She took a long breath, but those moments came overwhelmingly with those striking and sweetened fancy. She attempted to sleep over with the holding of breath- "Did traveller sleep after meal or not!" did not hear any sounds from downstairs. "If so, he slept." But, still the same discontent. "Might have been mice, or not, such a poor fellow…' but thought did not dare to catch up those frightened empathies. After a while, she lit up the lamp kept in a wall-cavern nearby her pillow with the match waking up swiftly. Smoky lights stated to cover up the darkness. She came down carrying a lamp. Heartbeats were rising- "if his wife is sleeping with?" An unexpressed and faint amount fear tried to steal a glimpse from the distance. She came down. "But…why did I come down? Don't I have any other work?" There was faint light in the room of traveller. She looked away with a glimpse towards that room. He was sleeping in his white bed-relaxed; its heart started to beat of precarious greed with the fear of speedy pulling apart of its life and an unstated mixture of pleasure, courage, fear and pain started to move around his veins. With that move and current, she reached upstairs and lay down in her hollow bed.

Though traveller went away waking quite earlier, the attachment, undefined and unexpressed craving stored in Sani's eyes followed him until far away hills and returned. Not sure of it, but her heart started to feel heavier and heavier current of feelings started to flow in her heart. A question continuously started to rise up deep inside her heart- Will he return?

Nevertheless, Sani's question remained unanswered. That traveller didn't return. After few days, Sani got married; she went to her in-laws house. The responsibilities of household and love of her husband caught her as normal schedule of her life. They did not sense something abnormal with Sani at all. However, that question caught as the gift of God by Sani's far-western unnoticed culture of villagers dared to steal the glimpses a couple of times in a day: "Will he return?"

Sometimes, disbelief used to struggle a lot while she was at her husband's house- "I'm here, if traveller would have returned…?" but she didn't have courage to explain that question. What a heavy, fearsome and painful disbelief. But –she wishes- traveller never would have returned, may this life perish gazing his return but Sani didn't have the courage to face or tackle the truth that he may go without meeting. She had started to breathe that longing and everlasting wait and never-ending chagrin. She had that life, that routine of life, with the hold of that-she was a homemaker of her own household, daughter in law of her mother in law and a wife to a husband. But, how could she is be a homemaker, daughter in law and a wife to a husband in the case of disgruntlement with the swift dreadfulness?, With which heart to wish for?

Besides all these things, Sani never acted the hurdle to her husband but she surely does have the courage to counter the person who could reveal dark side of wifely manner. However, the entire heart of a woman might have the love for kid, parents, and friends of maternity; in the house of her husband, love for mother in law and father in law, brother in law, nephew etc., but she did have reminiscence towards that traveller as well. It is the bitter truth that a woman is a wife to a husband until the limitation of wifely duties. However, a woman is not a wife only. She is more than wife is, she is a sister, a daughter in

law, a sister in law, and a mother and besides all these things, she is an idol of love. If the love of a woman had not been spread over the entire world, would not this world be a big dead and dread tree?

The traveller had talked about his tentative return in 15 days while he was moving. Sani still remembers the wait for those 15 days. An entire emptiness, fearsomeness and sadness had vanished away in six or seven days. From the eight day, right from today that hope of his return started to steal the glances. Sani reminisces- she had reached atop of hills with the feelings, hope and excitement while she had gone to cut the grass for cattle. She vanishes herself in her imagination sitting on a stone with the rest of that heavier loads of grass on the floor. She continually gazed over the way from Nepal. She used to fill her inner thought with the excitement when she saw people moving that way- extremely pleasurable and lively. "Likewise, he may come with worldly pleasure all over his body from the very day of today, maybe with his previous identity and would spree that in his light laughter; and he would stay here stay again. But, if he would not stay? Shit! What a naughty thought. He did not have discomfort and lack of facilities as well. I had done all those works, had slept well after the meal. Why not to stay! Why not to stay? She passed her days thinking continually newer imagination to bring about the hope. Finally, the most awaited day came as well. Sani remembers, she woke up 3 hours early in the night. The most of the night was still there when she looked outside opening the door. The sky was clear with the crystal light of moon. The sound of river 'Hrrrrr' felt like the welcome to that exhilaration. The sky, with the stay of God, felt like laughing with the purity of Moon. "The sun would rise within a few hours, the golden beams would spread over the top of hills. This day would be the day of ceremonial sign of his return. It will come, he would definitely come tomorrow, he walks in the morning and would meet Sani as the store of entire contentment."

She stayed for long with that thoughtfulness and contemplation, and she took a long deep breath with the swift note and went to her bed and started to roll over. Then there came the morning, the sun rose too, Sani waited passionately, the dusk came by, night appeared; but the result of the 15 days of passionate waiting was this: "He did not come." Sani welcomed those four letters in her heart instead of her forlorn cry "He did not come" with eyes full of tears, throbbing heart, and darkness over the life and suffocation over the throat.

Oh poor! The flimsy heart of a woman! How much amount of serenity do you have? For that serenity, how much of crave, love, hindrance and other have you been keeping stored?

Times of those 15 days went away. The difference came over the life and lifecycle, but again the same quest "will he return?" started to make the continual journey with "He didn't come". Do not know, where is the break for this journey, where is the goal and end, whether it is with the end of life or far ahead than that?

She did not even see an elusive dark shade like of man even though she observed the long way of continually growing panic and cruel hills until she can take the hold.

The epoch came over with the change. The mother of Sani too dissolved with the One whereby no one returns. Sani started to run that family business in her mother's house. Sani resolved intensely probable doubt that she had about "whether did he go?" when she was at her husband's house. After that, millions of travellers came from Nepal and went towards terai through *Markhu,* but "That traveller!"

"Probably he would return!" she got a tip of weak and tiny thread of hope over hopelessness and she went on continuing that

but...! How pure, beautiful, desired and how much lengthier does this thread of hope get over hopelessness. The thread of life and youth had been passing away with the pull instead of that thread of hope; but did Sani sense this? She was drenched by the momentum of dream of the single day with own interesting past reminiscence. With the dreamy sprout of life, sweetness and exhilarating acceptance of her initial gifts of youth, sometimes "He will come again!" She was busy renewing this thought continually. How would she know the pulling over terms of life? Love is the way of life and exhilaration is the end, we would get sense of identity with that end.

One day, Sani was standing on the door absent-mindedly after closing her shop in evening. Meanwhile, like a statue of love, the traveller was coming in dimly lit quite dusk. It is not only today, she had been hoping with the fragility for him to come. But, it had been times he made her wait clueless on the same door and went away. She had got answer to all those pointless welcome, which was misery and tears that get boiled from body. She was standing the same, waiting for same traveller with that body, shape and tears. And a man living almost all of his age came near and asked, "Can I get shelter here?"

Blood through veins felt like clotted. The bygone days knocked 'dhukka', in her heartbeat. Sani kept on staring at him until he asked it again, 'Can I get shelter here?' Sani turned dark like numb with shortly light on her face. Then she answered with great difficulty looking at space, 'Yes. Where are your porters?'

'They are about to come' traveller said sitting on a stone, 'it has been days I have come Nepal from Tarai, I could not return.' I'm about to return today. It feels like all roads and hills have changed. While going Nepal, I had sheltered right in this home. I had planned the same to shelter here before leaving home, nearly I did it. Where is the old woman? You should be Sani, right?

Sani started to think about the coming with intensity of brutality and formidable. She became horrified. She was not ready enough to welcome easily such a cry of unforgettable gloom and lengthier wait. Oh, man! You don't even know it that you stand for Sani's cry, sadness, happiness, desolation, imagination, pain, hope, desire and all other callings. How can you make a guess for the disheartened soul that you left behind with your easy question, surprised approaching and life-living story?

"Yes, I am Sani." There came sound like from far horizon.

Traveller said with faint smile, "Yes, I had already recognized you. But you have grown old."

Now, Sani knew everything. She knew the everlasting journey made by traveller when she felt wrinkles over her body. She pictured more vividly almost end of life along with completion of long journey. The world has become different one and there is no similarity between Sani and present days. Sani became restless with the betrayal of expectation to conscience. She felt the restlessness in her body and sat on the door.

Early morning, traveller left as before. From that day, she lost the goal of her life. Traveller one sentence "But you've grown old" ruined her hope, excitement, pleasure and passion that she had nourished for long. Then she silenced everything within herself i.e. her womankind, craving, heavyhearted distress, expectation and everything. Besides that, Oh! A question that she loved more than her life, her only companion through her ages vanished into darkness, 'Will he ever return'?

[Translation of Bhikshu's "Tyo Pheri Pharkela?" by Gaurav Gurung]

Story

A POT

Govinda Bahadur Malla Gothale

Bhim Bahadur was sitting near the tap, washing a cooking pot and other utensils. He was in a great hurry. He thought he should not delay anymore. Thulo Kaji, the eldest son of his master, was preparing to move out early for a reason he didn't know.

Still quite early, it was very cold and chilly too. Bhim's body was warming up, as he was putting more energy to finish the task early. He was letting his thoughts soar, making them lighter. He was thinking, 'I will go home at any cost this time. I shall see how my master shan't grant me leave. My mother has become quite old. It has been a year…no, a year and seven months since I saw her last. Poor thing!"

In the meantime, Thulo Kaji called out, "Bhimé! Did you hear me?"

Bhim was initially startled. Then he said, "Yes, master!"

"Go; bring me some cigars from the shop."

Bhim mumbled in an inaudible voice, "Cigar, cigar! He sometimes demands cigars, and sometimes tobacco. More, he is…"

"Come upstairs."

"Master, I am scrubbing utensils. I am in a hurry. Don't you know that?"

He was hardly aware how such an acrid sentence escaped from his mouth: "Don't you know that?"

After a while, he forgot all these issues. Hovering over many a thing, his thoughts finally returned to the same issue: he shall go home at all cost. His mother had said, "Bhimé, my child, don't talk of going to town and earning. Stay at home. You can work for wages and we can keep going."

Uphill, downhill, uphill and downhill again! Where the road bent into a turn, there stood an alehouse. The daughter of its owner was still minor of age, maybe fourteen or fifteen years old. She had a round face. Bhim thought, 'She has perhaps turned sixteen now. I think I should hold the night there.'

With a start, he inspected the tattered and dirty *daura* he was wearing. With eyes laden with an admixture of sympathy and hatred, he once inspected the same *daura* and his most fitting *suruwal* with patched-up knees to see at which places they bore tears. Then he said to himself, 'Maybe he considers himself so kind by giving me a pair of second-hand and tattered clothes. At any rate, I shall buy a new pair of *daura-suruwal* before going home. Else, how can I face my villagers? I am returning from a town after all, and that's not a joke."

He then imagined himself pressed among his village folks, dressed neatly in the new pair of *daura-suruwal*, and the second-hand coat of Thulo Kaji.

The noise emanating from utensils subsided to some extent. It completely stopped for a while, only to resume faintly again. In the middle, it rose quite high for a time, sending out the characteristic noise of dish-wash.

Puntu might have grown up now. She often came at his home to see his mother. She had grown quite fond and attracted to him. She obeyed whatever he said. When they were

out to gather fodder, she could compete with him. At times, she looked at him with impatient and frightened eyes and said, "I'm late. Father will scold me. He has told not to stop anywhere for long." She was merely thirteen-year-old then.

Thuli was many years elder to her. Her cheeks blushed, and her body was robust. Oh how she exchanged looks with everyone! There was no young man in this village or that who hadn't had relations with her. One day, she came with a dimpled smile on her plump cheeks, gave a potent slap on his cheeks and said, "When is this lovely boy getting married?' and many more things. For a while, he was stupefied, only to be down with embarrassment another moment.

He thought again, 'I am sure, mother has readied a beautiful girl for me. How should I return to town after marriage? It's rather difficult to stay here together with a wife...Should I come, leaving her back at home? Pooh, pooh! But then, how can I stay and perish there among the hills in the village?'

While he was mentally trying to resolve this issue, his hands stopped, and he forgot the urge to wash the utensils. In the meantime, a woman yelled from above, loud enough to make her throat burst: "Bhim, can you hear me? Shouldn't you be fetching water? Oh, how long it has been since you started doing the dishes? When are you getting done with that?"

Bhim was beside himself, freed from his worry. He balanced himself with a start and started gazing vacantly. The echo of the women's voice had struck his ears. He could not, however, think of any response. When he again thought of getting married after some time, a gentle wave of embarrassment ran through every part of his body. He grinned to himself, exposing all this teeth.

In the meantime, the wife of Thulo Kaji came running to him and said, "Come on, Bhim! Leave the tap to me. Look, the baby pooped on my entire body from top to the toes. Oh, how can I tell you?"

Bhim tried to smile. He said, "Let me first finish this. Then the tap is yours."

The woman said, "Oh, no. I am in a hurry. I am yet to chop the vegetables. There are so many chores to do. We are never done with works in this house. I am fed up."

Bhim nodded his head to show agreement, and pulled himself a little away from the tap, and sat. The woman placed the soap in the wall cavern. She then removed the outer dhoti and hung on a nail. Bhim raised his eyes and ran them over his mistress' body. The inside loin had been wrapped from the breasts to the knees. It was extremely tight on her body. Though mother to a child, she still had an intact body, perfectly in place like that of a virgin. Her fair, round and robust hands and shoulders, and her well-developed breasts, though covered by her loin, were all clearly visible.

The woman said, "The water is very cold, isn't it?"

Even as he was putting great efforts to finish cleaning the only pot that was left to be scrubbed now, Bhim said to himself, 'This woman! I told her I'm in hurry. Yet, she pesters.'

Though he was controlling himself, his eyes fell on his mistress' body. Like someone struck by a thunderbolt, he instantly looked down. His mistress was all soaked in water now. The thin loin was stuck on her body even more tightly now. He had seen her beautiful face almost every day. He had also seen her fair hands, and her white and slender calves.

Once again, he ran his hands vigorously on the pot and said to himself, 'I should not observe my mistress' body this way.'

Even as he was reminding himself, he stole a look of hers, once again. She was applying soap. After she had applied it on the body, she pulled her loin up, and applied it on

her thighs. Bhim, once again, felt a powerful jolt. He trembled frantically. In no time, his entire body became numb. He wanted to stand and run away, but could not do so. More, his task was an urgent one. 'My unruly eyes are drawn nowhere else,' he said and fumed at his own helplessness. God knows what he was doing.

His hand slipped off while he was rubbing it against the pot. This sent out a loud noise of utensils clanging and rolling on the floor. With a start, the mistress turned toward him and said, "Bhim, what's that you are doing?"

Bhim said nothing in reply. In fact, he was lost, gazing at her face. After some time, he lowered his head with a face red with embarrassment. By then, the mistress had returned to her task, deeply absorbed in bathing.

Bhim wiped the sweats on his face with his hand, and folded his sleeves back. While doing so, his fingers caught an already torn spot, which was now damaged even more. He carefully scanned the sleeve. The black ash had run from his hand and damaged the cloth. It occurred to him that some soot had probably run over his face as well. He hurriedly wiped his face with the fringe of his *daura*, and grinned. He also looked out to check if his mistress had noticed him.

Bhim had good sleep sometimes, and sometimes he had the urge to loiter. He wanted to box himself and exercise now, or to climb up a hill, sending out potent breaths. Yet, he could not even stand up. Instead, he went on observing every single task of his mistress: here applying of soap, rubbing her body, taking a shower, etc.

Right at this moment, Sano Kaji, the master's younger son—only a little elder than about twenty-one year-old Bhim—appeared coming home, fixing his eyes on the ground, apparently in deep thoughts. As soon as he looked up, he stood stupefied. His sister-in-law turned her eyes and looked around. Their eyes met. The sister-in-law abruptly pulled the dhoti she had hung on the nail. In the meantime, she lurked out her long, red tongue and bit it with her teeth. Her brother-in-law, on the other hand, took a turn with a face pale with embarrassment, and walked away.

Till then, Bhim was running his eyes all over, now on the brother-in-law, and then on the sister-in-law. For unknown reasons, he too was feeling queer, tickled by embarrassment of a different sort. He turned toward the sister-in-law. He could see that her face, pale with shame, bore a dull smile.

The mistress removed the dry dhoti once again, hung it back on the nail, and placed her feet underneath the tap. She was yet to clean her feet.

She muttered, "This tap is always like this. Whenever you come to bath, there are..."

She added, "As if the women do not have to bathe..."

The atmosphere now had taken a different turn. Utensils, black with unwashed ash-paste and soap, were rolling everywhere on the floor making it look disgusting with filth spilled over everywhere. Near them was Bhim, sitting with one of his hands on a pot, lost in thoughts, or waiting for his turn to use the tap.

They could also see that among the utensils was Bhim, as dirty as any of them, mixed so intimately with the pots that he himself looked like a pot.

[Translation of Gothale's "Bhando" done by Mahesh Paudyal]

Story

Engineer's Head

Vijay Malla

Two of us met. Why had we met in the first place? It was a matter of surprise why such a coincidence had come about. But then, wondering over the same issue was of no use.

He had become a renowned engineer. Several modern and artistic buildings he designed had embellished the entire nation, and his fame had become global, transcending the boundaries of the country. People had started counting him among globally renowned engineers and scientists. It was a matter of good luck that I met such a personality, albeit coincidentally. This was what I always believed, and when we met, the same thought occurred to my mind.

He stood in front of a grand building, and his subordinates had spread out a blueprint. Instructions and orders were being administered.

I was still at a distance. Enchanted by the grandeur and solidness of the building, I was staring at it from without. Suddenly, he happened to see me perhaps; a man came running toward me and informed that the engineer he had sent words for me.

I too was quite curious, and had the willingness to stand before such a great personality. I went running and stood beside him.

He happened to know me. Addressing me with a gesture of familiarly, he said, "How did you find this prison?"

I was thrown into confusion. How could such an artistic building be a prison? Yes, a prison.

He instantly read my feelings. With a smile, he said, "This, in fact, is a prison. Look, it is so artistic from outside! Though its architecture is modern, it is based on a traditional design. Its organization involves the combined strength of the most recent findings of modern science and the newest elements. I have also made use of new metals and things I discovered through my own investigations. If this becomes a success, it can be put to different uses. Who knows, it can even start a revolution in modern architecture, like the one iron, cement and concrete did once upon a time!

He was describing all these things in brief, quite lucidly. His eyes glittered, manifestly requesting other scientists of the world to listen to him.

He held me by my arms, took near the structure and said, "Look how these windows show a fusion of ancient and modern art! Some look like *ankhijhyal*—a pin-hole window—while others appear like a peacock ready to soar. But then, these windows are not windows proper. Behind them are solid walls, strong and robust. But no one can spot them by any means. Such structures can engender illusion in one's mind. This technique has been used to make sure that the prisoners, when they are brought here for the first time, do not have any feeling of fear or terror. Instead, they may feel the pleasure of entering an artistic building.

"Look at this door, decked with a *kalash*[1],

[1] *kalash*: an ewer filled with holy water and flowers, set aside in honor of a deity during religious ceremonies and auspicious occasions

a deity's statue and other things. Behind this, there is also a similar wall which cannot be destroyed even by a powerful bomb-blast. Look now at these circular holes, through which people can easily come and go. On seeing them, the prisoners will feel that they can easily escape from here, and so they won't have any sort of fear in entering this house. Producing such psychological effects is the specialty of this art.

"But do you know what lies behind those holes? A solid mixture of things not used hitherto, a million times stronger and durable than iron and other metals. No borer ever invented in the world will be able to make holes into them.

"A fusion of reality and illusion is the architecture of this prison. For the world, it is a mysterious model.

"These wings you can see all around, like those ready to take off, have been designed to evoke flights of imagination in the minds of the prisoners and arouse cravings for freedom. Alternatively, they will also the prisoners cautious about their crimes. There also are these tall pillars standing like the cops. On them, a dome rests in the fashion of a human head where the voice of justice resonates."

Saying so, he got me on board a huge shuttle to take me to the construction site. We reached the site within a few minutes.

There, I could see construction work underway. The artisans were cutting iron rods into pieces. The mason and his helpers were mixing concrete, cement and other things and emptying the same into other containers. Various machines were purring on their own accord. Everyone was in place, working in a machine-like order.

Taking a pint of blue, smooth powder in his hand, he said, "Look! This is the substance which, when added to cement, imparts that mysterious power to it. That makes it resistant to earthquake and simple atomic bomb blasts. This is my latest discovery and use."

I touched and examined that structure and the space just cemented. It was so hard that it seemed to be a rock or a thing harder than diamond which knew no bending, fragmenting or breaking.

Answering my amazement with a smile, he said, "This is just the beginning. If we continue our research and efforts, I am sure we will be able to make it even stronger."

He then led me inside. Taking interest in showing me further, he said, "This is the only hole left to be patched. We are done with the rest. It's only through this hole that we can come in and see things. This hole too will be filled by evening today. After that, this prison shall stand as a testimony of my ten-year-long labor."

We entered the building. It was bright inside, though there was no light anywhere, and no window. Brightness was coming from the walls. This was an exponential example of artistry. He continued to explain its specialty: "The same substance, when added to these walls, makes them luminous by making them radioactive. That erases the need for any sorts of windows and doors in the prison. Isn't this much of light enough? On top of that, air enters the hall getting filtered through the fine pores on the walls. These are the qualities of that substance."

Demonstrating large size rooms, he said, "These rooms can accommodate hundreds of prisoners, and each of them can have enough space for sleeping. There is enough light, and adequate air can flow in through the walls. There is no fear of suffocation. In the modern time, it's imminent that we behave very well with the prisoners and offer them good places to stay. Don't you think this structure will fulfill this promise?"

I appreciated his skills and wisdom with an open heart. Comparing the structure with my house, I said, "Let alone our houses; this

outbids even the Americans' houses."

Showing me the floor, he said, "Doesn't it look like soil in the first glimpse? But feel it and see how hard it is! Even if a hundred men work together for a hundred years, they won't be able to remove even a single molecule from here. No one can hope of digging out a tunnel and escaping from this prison."

He further added, "Let's go out now."

We returned to the earlier place, walking upstairs. On the way, he said, "Do you think there is any need of windows and doors in the structure? The problems of lighting and air have been properly addressed."

I nodded in agreement. Suddenly, giving a nudge on my arm, he stood face to face with me and said gravely, "Is its construction inferior to that to the Taj Mahal in any way in terms of its beauty, modernity and science?

I said, "This is a modern Taj Mahal, and a new scientific innovation."

He was elated with satisfaction. Soon, we reached the point we were before.

But suddenly, he started running all around. I could make nothing out of it. I meekly ran after him following his steps. He ran from this end to that and vice-versa. Even as I followed his steps, I asked, "Why are you running? Aren't we exiting the structure?"

He sometimes looked up, hit with his hands, shouted aloud, called me by name, punched the wall with a fist, yelled out, or ran downstairs. I doubted if he was really out of his mind.

I left him where he was and slowly moved upstairs, trying to find the same hole through which we had entered before. I could not, however, spot the hole anywhere. It was bright inside, but there was no hole to be seen. I moved into other places, only to find the same situation. I was chilled by a sudden fear: wasn't the wall closed? Could it be that it was just cemented?

But the door!

He came running to me, all exhausted, and said, "Did you see? The rogues happened to cement the hole forgetting that we were still inside."

With shudders, I asked, "Don't we have an alternative door wherefrom we can go out?"

"No, there's none. Those who are inside can never go out. That was my imagination too."

"If so, there is no door here. How then would you bring in the prisoners here?"

"The prisoners can come in. There's such a door. But as soon as they are inside, the entrance closes. No one can even imagine of going out again. That was how the door had been designed. This wall cannot break; this vault cannot tear. Our voice cannot reach out of it, either."

He started running again, screaming in a loud voice, bumping his head against the wall.

I recalled all the doors and windows of his make we had seen outside. I also recalled the wing of the bird ready to soar, which was beautiful though illusive, and looked real, though it was not.

The engineer continued his run, shouting in a maddened feat, bumping his head against the wall, and letting jets of blood ooze out of it. Standing agape, I recalled the wings of the bird, especially the peacocks. The window, the open door, the *kalash*! Yes, the *kalash* of Goddess Annapurna!

[Translation of Malla's "Engineerko Tauko" done by Mahesh Paudyal]

Story

A Sweater for Brother-In-Law

Poshan Pandey

Sabita came down hopping and said to Shanti, "Sister! Oh sister! Brother-in-law is asking if you would join us to the cinema."

"Go, tell him I am not coming," said Shanti in a low tone with a tinge of harshness.

Sabita kept standing there for a while with a guiltless face. She felt, her sister was quite listless. She paid no interest in the world of glamour. After all, she was not elder to her by many years. Maybe, the gap between their ages was just five years. She silently mocked sister Shanti's foolhardy, and left.

Shanti stopped Sabita who had reached fairly far, and asked, "Whose proposal is it: yours or brother-in-law's?" When she asked this, Shanti had a forged smile on her face.

This made Sabita quite surprised. She squatted on the floor, took her sister's lock in her own hands, and said in a tone that befitted her own agile nature: "I was in the garden basking in the sun. Brother-in-law came up to me and asked if I would join him to the cinema. I told him I would first ask you, and rushed hither."

Brightness on Shanti's face got peeled off in the same way as dewdrops fall from the grass blades at the slightest slap of a gush of wind. This time, she didn't utter any sentence with annoyance. The only thing she said was, "It's fine; we shall go."

"That's fine, sister!"

Sabita's gladness burst like a bubble. Her face was clearly reflecting her heart. Yet, a question still hung on the interior of Shanti's heart. Unable to resolve, she always deferred it, only to find the question coming nearer again and bothering her.

A few ago, Sabita had moved to her sister Shanti's home and had been staying there. The two were very close to one another since their childhood days. Shanti still loved her sister's childishness and agile character, for which she wanted to kiss her with love, and Sabita still enjoyed playing blind man's buff and hide-and-sick. She still walked about and behaved in the same way. The only change was that, the hue of youth was mounting on her, without letting her become aware of it.

Shanti, on the other hand, had long stopped cherishing such games. Though her childhood memories often tickled her to try them over again, shyness and hesitation barred her from doing so. On top of that, her nature was different from that of her sister's. All the time she stayed brooding why she could not satisfy her husband. Whenever Sabita praised her husband and said he was an incredibly good man, her heart used to feel a type of wound. A strange but latent sort of jealousy rose for her sister, but she had never let her know of it out of her own whims. Instead, it was being woven into a web—like that of a spider—inside the dark caverns of her heart.

One day, Shanti was sitting on the veranda doing her hair. A small mirror lay in front of her. When she saw her face reflected

in the mirror, she got a feel that she was aging. Strands of hair fell off her head when she combed it. She could see dandruff falling on her face, scalp by scalp. She quickly rubbed some power on her face. Instantly, the face appeared white like the snow.

In the meantime, Sabita came in. She had lined her eyes with mascara. She was clad in a cotton *salwar* and a spotted, silken *ghanghar*. Her body looked robust and healthy, and a sort of rosiness glittered on her cheeks.

"Look, sister! Your hair has started graying," said Sabita, plucking off a strand of such hair from Shanti's head and keeping it in her hand.

Shanti inspected Sabita's hair, hands, feet and all her parts, but found nothing to place in Sabita's hands. She turned mute. Grinding the gray strand in her hand, she just uttered, "Oh!"

"Look, brother-in-law comes there," said Sabita, overjoyed. When Gopinath had come near enough, she said fondly, "Look, sister's hairs have turned all gray. Why don't you bring some gel that blackens her hair?"

Shanti did not like her sister's sympathy at all. She was irritated from the core of her heart. She paid a glance on her husband's face. His eyes were centered on Sabita's face, keenly observing it. He said, "I shall buy it at the exhibition tomorrow."

The atmosphere at the exhibition was quite suffocating that day. There were crowds and commotions everywhere, something too disturbing for anyone to wink an eye. A Ferris wheel was making its rounds at one place. Sabita wanted to give it a try. Gopinath bought her a ticket. Shanti refused to try. In her bid to persuade her sister, Sabita said, "Sister, let's go up. What's wrong in trying it, only for today? What a heart you have, taking interest in nothing!"

"You may go if you want to. You have brother-in-law for your friend. I am feeling nauseated. I will wait for you here."

"Leave her. Why should we force her if she is nauseating?" said Gopinath, filling up the gap.

Shanti shed two drops of tears on the ground without letting anyone see. She wiped her eyes and stood, leading against a bamboo pole. Soon, the wheel was rotating up in the air. With it, Gopinath and Sabita also started rotating. Shanti could not stand the sight; she was really feeling giddy now. She turned and moved elsewhere, her face grimy with sourness.

Shanti came to a spot where a thick crowd had gathered. She lost her way in the crowd, while Gopinath and Sabita were left on a different side. She made her eyes wider and looked all around. Her lips went dry and she got restless. She sat on a bench kept outside a shop and started scrutinizing the faces of the passers-by. The cruel feet of time moved on, trampling upon Shanti. Her imaginations started drawing several speculations. In it, many such images came up and set Shanti's mind ablaze with fire of jealousy, envy and revenge. Her eyes no longer had tears; they had the heat of indignation, instead.

"Lo, sister happened to be sitting here happily. We were tired looking for you everywhere..."

Shanti looked up at them with a start. She saw the faces of Gopinath and Sabita quite rosy and utterly joyful. Sabita inserted one of her hands into her bag and said, "Look! Brother-in-law bought some black dye for your hair. I bought some wool for knitting a sweater, a pack of cream and some powder for myself. I'll show you when we get home. Alight?"

"That's fine. We cannot see everything here," said Shanti, giving a quick glance at

Gopinath.

"Let's move now; we have spent a long time here," Gopinath said.

On the way, Sabita showed the yarn of wool and said, "Sister, I will knit a sweater for brother-in-law from it. Can I?"

"There's no point in asking me. Ask the one who will own it." There was annoyance in Shanti's reply.

Sabita was so keenly absorbed in knitting the sweater that she could hardly surmise how soon her holidays waned. The sweater was now nearing its completion. With it, gestures of satisfaction and success had started flickering on Sabita's countenance. She tested the sweater from without, pasting it on her chest. She liked the flower embroidered on it. Like always, she ran with the sweater in hand to measure it against her brother-in-law's size. On the stairs, she encountered Shanti.

"Sister, look here! Brother-in-law's sweater is almost ready. I am going to measure it against his size once. I feel the sides are a little too narrow. How is it? Won't it suit him? It will, won't it?" Sabita said it as if she had no time for saying anything else. A forced smile ran through Shanti's lips. Swallowing hard, she said, "The flowers you embroidered do not look nice. They make it more like a woman's sweater. Why don't you give this to me? I will knit brother-in-law a new one."

"Oh, no! How easily you say that? I knitted it with so much of trouble for brother-in-law," Sabita said nonchalantly with a faint smile, wrinkling her eyebrows.

Sabita ran toward her brother-in-law's room. Shanti stood there, gawking. Seeing her sister run towards her husband's room everyday on the pretext of measuring the sweater, Shanti grew more and more suspicious of Sabita, which made many of her nights sleepless.

That night too, Shanti could not take even a wink of sleep. She woke up three to four times in the night, drank water and checked time. Her latest waking was at 2 o'clock. At the dead stillness of the dark night, she left her bed and pressed close to Sabita. Sabita's peaceful breaths started smoldering her. For strange reasons, Shanti was convinced that it was Sabita who had robbed her of her sleep. Suddenly, Shanti's nails moved towards Sabita's neck. The atmosphere turned quite strange for a while, though it did not last that long.

Shanti's eyes fell on the sweater that lay near Sabita's pillow. She pulled it out, slowly. She noticed that the front and back flaps of the sweater awaited to be joined now, and she could estimate that by evening next day, it would be fully ready for Sabita had keen engagement in it, like some sort of a mental vow, a sort of strong commitment. The commitment had not led to any sort of laxness or dryness in her body. Instead, it had supplied freshness and energy.

Shanti continued to think that another day, when the sweater would mount on the body of Gopinath, she would lose all her claim upon her husband. The sweater would entice him so deeply that he would never again love to part with it. It too was true that as long as the sweater stayed on Gopinath's body, Shanti's soul would never be in peace. Shanti had the feel that in front of her, the screen to a horrific game was being pulled, and the sound of a bell heralding the same was now befalling her ears, making her entire body shiver.

Following this, Shanti's desires started getting constantly repressed. She clutched the sweater with her hands. They say, it's always good to prevent a disease instead of catching it and going for treatment. If so, why shouldn't she burn down the sweater before it reached Gopinath's body? The sweater was in her

clutches at the moment.

We cannot say that when Shanti considered such ideas, she didn't feel even a pint of sympathy for Sabita. For this reason, her jealousy took a different form instantly, and she started unknotting the sweater. Soon, the process gained such speed that it seemed to be the handiwork of the fast-moving machine. The unraveled wool started piling on one side.

In the mid of this work, Shanti's hand happened to bump gently against Sabita's back once. Sabita woke up. She started vacantly at her sister's face for a while and asked in a voice trembling with fear, "Sister, what's wrong? Why are you unmaking the sweater?"

Shanti stopped the process of unwinding the sweater instantly. In a firm voice she said, "Such a sweater doesn't suit brother-in-law. I will knit him a different one."

Sabita's face turned crimson with amazement. She said outright, "This one is not for brother-in-law. This is yours. I finished his last night and handed it over to him. Go and see for yourself how nicely it fits! He went to bed in the same sweater."

[Translation of Pandey's "Bhinajuko Sweater" by Mahesh Paudyal]

Story

The Husband

Prema Shah

After finishing the yearlong abstention following her husband's demise, Nirmala had come to her parents' to attend her sister's wedding. With an extremely tired body and eyes heavy with fatigue engendered by hectic wedding preparations, she got engrossed in her sister's make-up, like a listless, unconscious dream. Cream, powder, lipstick, mascara...

'Where could this mole of black mascara fit in best? On the top of her cheeks or on the chin? Leave it. Pooh, who'll put such an unreal mole, like making up a mask?' she thought.

Nirmala herself didn't like putting an unreal mole. The practice of putting a mole on the cheek was long dead. On top of that, her sister's cheeks are naturally very small. Why such glamour then? Instead, a cute red *tika* would fit best on her fair forehead.

With such pleasant colors, Nirmala was trying to rub out the numerous emotional lines of her past that had come up be scribbled inside her mind. But then, the images—her sister's, and hers—reflected by the mirror in front of her moved her back to the same emotionality again. This mirror Nirmala had left behind two years ago was at the same place, standing in the same fashion. It had been peeled off nowhere. There was no crack anywhere. Instead, she thought she had herself changed thoroughly. She appeared quite ragged to her own eyes. The eyes, lined with mascara, seemed too tired to dance, unlike their agile movements here and there in the past. Nor did her heart retrain any of that earlier agility.

After she was done with the make-up, Nirmala turned her sister's face towards the mirror. She found the face extremely affectionate. Though she had herself decorated the face, Nirmala wanted to plant a kiss on her sister's countenance, but could not gather the guts to do so. She felt shy and rather proud too, for she too was beautiful like her sister—maybe even more beautiful. Everyone else said, "Nirmala is far more beautiful than Urmila." Yet, for unknown reasons, Nirmala found herself gradually dulling away, as compared to her sister. In fact, the magic of her sister's hands had made Urmila extraordinarily beautiful with deep hues of various cosmetics. The skills of her own hands made Nirmala envious, instead of making her happy. She wished she could make up herself in the same fashion some day!

In the other room was the boy—their brother's friend from Biratnagar—who had come to negotiate his marriage with Urmila. He was perhaps a professor; Nirmala could not remember exactly. The sound of conversation next-door slowly crept into the adjacent room where the two sisters sat. Nirmala raised her ears and alerted her eyes. She, on her own accords, could see that Urmila bent towards the mirror and displayed a short smile. The red rose bud tucked on the bun of her hair and bent towards one of her ears had added perfection to her beauty. For unknown reasons, their brother laughed out very loud in the other room. Mixed in it was a new laughter that had mildly escaped from someone's lips. All the unconscious parts of Nirmala's body trebled in an unexpected way. She was slowly enchanted.

Urmila turned towards her once and smiled. Her unparallel beauty, in a way, stung Nirmala's heart like an ant's bite. All feelings inside her froze into ice. Urmila was glued to the mirror. Nirmala abruptly pulled the flower out of her sister's bun and tore into several pieces. Quite annoyed, Urmila asked, "Why, sister?"

Beads of sweat emerged all over Nirmala's fair face. She stared at Urmila with her eyes wide open, and though still quite mad in indignation, made a move to peel the *tika* off Urmila's forehead. Nirmala was frightened. Before her sister could find her, she rushed out of the room. On seeing her sister run away in fear, Nirmala felt like laughing. In the vacant room, she laughed out alone. Even as she was laughing, torrents of tears fell from her eyes. She felt, her heart had been squeezed further. She rested her head on her knees and drew in long breaths, and coughed faintly. She found her throat gagged. Was it by thirst? No, she was not thirsty. Merely to soak her throat, she picked the glass on the table and took a gulp of water. The cloud of tears in her eyes had not disappeared yet.

Nirmala felt, someone had lifted the curtain and was peeping into the room from without. She turned back. It was indeed Urmila. As soon as her sister spotted her, she dropped the curtain, and fled away.

"Why the hell was she spying?"

Nirmala was cross with her sister.

'What wrong would I do if she were in? Would I pull by her hair? She is puffed because she is finding a husband. Maybe she fears that I'll become her husband's second wife. That's why...Why should she be spying me then?'

The sound of laughter in the other room became clearer now. Nirmala alerted herself and listened. Oh, it was he—the professor—who was laughing! Oh how sweet of speech he is! He is no less handsome, either. He has a graceful face and a fair complexion. With an attractive personality, he is handsomely tall!'

"Nirmala, my dear, they are asking for the cupboard key," said Godavari, their housemaid. Before she was halfway through the threshold, she screamed, "Oh God, Nirmala! What's this you have been doing?"

This startled Nirmala. The lip-liner running over her lips fell off her hand and dropped on the ground. In the mirror, she saw the image of Gadavari who was standing midway at the threshold, and herself, thoroughly made up like a doll.

Nirmala was pale with nervousness. She could not tell under the spell of which urge she had decorated herself that way. Innumerable waves, high enough to engulf a mountain up to its top, were rippling in her heart. She stood glued to her position, looking into the mirror. Godavari walked into the room and stood in front of Nirmala. She said, "Nirmala, do you also undertake such make-up? Lo, you have also put a *tika*! A widow ought not to do that."

That was true. Nirmala had lost her husband in an air crash just five days after their marriage. The man in the next room...Urmila's husband...who had come to see her...!

With water from the glass, Nirmala washed her face thoroughly. Before Godavari had walked out with the key, she stopped her way. She said, "Godavari, do not tell it to anyone. I pray. Please do not let anyone else know."

"Oh, no! Why would I break your secrets to others?" said Godavari, and exited with a smile. Nirmala was deeply ashamed of her weaknesses. She could not conceal her slips even before Godavari. What must she be thinking about her: licentious? Promiscuous?

Nirmala's cheeks turned crimson, right up to her ears. With a handkerchief, she rubbed out the lipstick and powder on her face. 'What would happen, if mother and brother had seen me? What if Urmila herself had seen me make-up myself this way?' she thought.

Godavari returned immediately and said, "Nirmala, mother wants you in the next room to help with Urmila's dress."

"You go. I am coming."

"Do not make it late."

Godavari returned. Nirmala did not go. 'Should I be there to help her with her dress too? Already a man's wife, she still feigns to be a child,' she thought.

The mother entered the room, making Urmila follow her.

"What have you been doing here? I had called you to help Urmila with her dress. Poor thing...She had never worn a *phariya* before. She just wound it around the waist. Come on; look over it once."

Nirmal observed her sister from top to toes. The sari had been put very well.

"Is Urmila a little girl anymore? A man has come to see her. Mother still thinks her a baby."

In the green dress, Urmila looked stunningly beautiful. There was no chance that the boy would decline the proposal.

"Nirmala, do come with us please. It's time we took your sister to the other room now."

"I am not coming, Mother. You are there with her."

Mother glared at Nirmala with wide eyes. "Oh how disobedient daughters I have! They are so impertinent, even when I need them most."

"I have acute headache, Mother. Else, I would come with you. I cannot even lift my head."

"It's OK. Urmila, come," muttered the mother, walking out of Nirmala's room. She didn't turn back to look even at Urmila.

"Sister, why don't you come with us? Oh, what a sister you are!" said Urmila, conjuring all courage from within.

"The man has come to see *you*. What business do I have there?"

"I am ashamed to go alone. It's awkward to stand among strange men alone, you know," said Urmila in a plaintive voice.

"Why should you be ashamed? He is yours, after all. This drama will be of no wroth after marriage."

Nirmala tried to feign a smile. Urmila could not cheer up. Their brother came in and went out with Urmila. Nirmala could not control her heart anymore. She also stood up and followed her brother. All of them entered the drawing room, but Nirmala stood on the threshold, holding an end of the curtain. Inside, the brother introduced Urmila to the newcomer: "She is Urmila, my youngest sister. She passed her high school this year."

Pointing at the door, he said again, "And the one there is my second sister. Nirmala, why don't you come in?"

It was not certain whether the newcomer heard the brother's latest words. He didn't even turn towards the door. Nirmala thought, he was not a gentleman in reality, though he looked like one. His eyes were glued to Urmila's green chiffon sari. So, she didn't feel like staying there anymore. Away from the door, she went and stood on the veranda. Outside, a bright sun was shining. A cloud of dust rising from the unlaminated road, and the sonorous gritting sound coming from the huge transport service vehicles rendered her mind even more distasteful. A few yards away, a new jeep stood outside the door. Perhaps, it belonged to the man who had come to see Urmila. Inside it was a man in a dirty white shirt and black glasses, bent on the steering. Maybe he was the driver. This was what Nirmala speculated. On seeing Nirmala, the man started whistling incessantly from inside the vehicle. Nirmala didn't like his demeanors. From there, she moved back, thinking to go back to her own room.

Lo, the man who had come to see Urmila was sitting there, flipping through the pages of a newspaper. Nirmala instantly saw that she had entered her brother's room, nor hers. She could hardly surmise how it all happened. More, she couldn't recoil immediately setting her feet in the opposite direction. She was in deep perplexity considering what the man would think

if she immediately pulled herself out. She was not willing to keep standing, either.

The man raised his eyes from the newspaper and paid a quick look on Nirmala, and returned to the papers. Nirmala tried to move, but her feet had become almost imbecile. She was left standing where she was.

Even after she had stood there for a long time, the man didn't say anything. He didn't even ask her to sit. He acted to be lost in the papers. Even as his head was bending over the papers, Nirmala could see his round face and curly hair, and feel the odor of toothpaste emanating from him.

Stupefied, Nirmala stood there, lost in forgetfulness. The spectacle in front of her eyes got shadowed gradually.

"Why don't you sit down? Why stand for so long?" said the man to Nirmala, letting out a gentle smile. Nirmala had a sudden shiver moving from head to feet. She didn't sit. The man stood from his position, pressed himself very near to Nirmala and said, "Sit down for a while, please."

He was gradually pulling the side of Nirmala's loin. Nirmala didn't resist. She just stood there like a statue. After some time, the man caught hold of Nirmala's both hands and pulled her in, pressing her on his bosoms. Nirmala sat silently, seemingly devoid of any feeling. The man's warm touch gave her some consolation. Her dreams that had been shattered in her eyes started taking shape again into a garden full of flowers, a sky full of flowers, a path flanked by flowers on both its sides…but then, her long dream collapsed in no time. She felt a prick on her left cheek, and felt it with her hand. Lo, it was stained with blood running all over. There was blood on her palm, too red for her eyes to stand it.

Nirmala stood up with a shriek. The man was grinning heartlessly. She stared at him with slanted eyes. He stood up nonchalantly and walked towards the window facing the road. He didn't say a word to Nirmala.

"Dishonest!" she muttered to herself.

Nirmala wanted to charge a powerful slap on his cheek, but her hands refuged to move. After all, who was that man to her, and why would he love her? He was Urmila's man.

All tides in Nirmala's heart subsided again.

With her clawed cheek, she stumbled away only to meet Urmila at the hallway.

"Sister, what's wrong with your cheek?"

Nirmala glared at her sister with red eyes. Urmila was terrified.

"I am asking what happened with you."

Nirmala pushed her sister to the back wall and said, "Your husband is alone in the room. He wants you inside. Go!"

Before she had crossed the hallway, Nirmala encountered Ramé, the water boy. Ramé seized the opportunity and laughed. He fished a folded paper from inside his pocket and quickly handed it over to Nirmala. He said, "This is for you, from the master next-door. He told me to give it to you secretly."

Back in her room, Nirmala bolted the door from inside. Her soul was hissing like a bamboo grove at midday. The fringe of her loin hanging from her shoulder felt like a snake to her. She pulled the loin out and deposited on the bed. She still was not satisfied. She slapped her wounded cheek a couple of times. This could not pacify her either. Her breast continued to knock like the panel of an open window slapped by a gusty wind. She clasped her breasts with both her hands. The pain got more intense instead. She could not remember the jeep driver downstairs, or the letter from the roughish teacher next-door fetched by Ramé anymore. She took out two sleeping pills from a bottle on her table and swallowed. Then, she fell upon the pillow, letting out long sobs that had stayed repressed inside her heart hitherto.

[Translation of Shah's "Logne" by Mahesh Paudyal]

Annapurna's Feast

Manu Brajaki

He came back with two kilograms of fish. When he was about to reach home, he was almost running. It was unwise to take buff in the name of mutton every day. Considering that it would be inauspicious to have meat on such a holy day, he came home with fish worth sixty rupees.

"Annapurna, did you hear me? See what I have brought home!"

Annapurna appeared on the doorsteps.

She appeared like a ruin that looked grand in spite of itself.

Maybe, she was beautiful in the past. At the moment, all she had was a faint memory of the same. Whatever had remained of her youth was still attractive, for it had not disappeared completely. She displayed a faint smile in reception of her husband in the fashion of a light that flashes inside some ruin. Her round and yellow face glittered. But her husband didn't notice it.

She saw, there were four black fishes in a polythene bag that hung from her husband's right hand. She didn't know what was there in his left hand.

"Why did you bring these many fishes?" she asked, winking her eyes.

"We'll have a feast today," he said, handing over the bag to Annapurna.

"We'll also have Deepawali this evening," he said, taking out a bundle of candles from the other bag, and placing them on the table. From the same bag, he fished out two bottles of home-made liquor. Placing them inside the same cupboard, he said, "We shall have a celebration today." He then turned back abruptly and stared at his wife's eyes that were winking frantically. "Had you been sleeping?" he asked.

"Why would I be sleeping so early? I was sewing your trousers."

"Trousers? He suddenly remembered yesterday's issue.

The previous morning, when he was out to buy vegetables, the woman who was far more attractive than his wife had smiled to him. In response, he had smiled even more. When he came home licking the sweetness of the woman's smile, Annapurna too smiled at him.

And now, when his wife smiled, he was startled. He asked in dismay, "What's wrong? Why are you laughing like that?"

Winking her eyes further, Annapurna laughed even more. Then she said, "Oh, what a man you are? The trousers you are wearing are inside-out. More, the stitch on one of the sleeves has come off right up to the thigh."

At this moment, his wife's smile appeared to him not like licking a piece of chocolate, but like chewing a piece of chilly. The fact was that, while waiting for the new constitution, he had arrived at such a situation of mockery, caught in several whirls of suspicion. But then, the constitution came about, fit and fine.

Landing on the planes of the present, he said to his wife, "Leave it! Why are you straining your eyes? We shall buy a pair of new trousers." He then cast his eyes on his wife's dress.

Though a woman of beauty and youthfulness in the past, she was now standing like a ruin, tangled all through by a web of spiders. Her face, like the single intact room of the ruin, too was lined with dust. There was no make-up of any sort, no embellishment anywhere. No jewelries, no cosmetics. There was no glittering curtain, either. It was naturally desolate, like the forest in Tarai, which the Gorkhalis had bravely destroyed.

Considering all these things, he was just about to say something when Annapurna overtook him. She said, "Do we get trousers for free? I don't think the interim government will buy everyone a pair of trousers. Tell, how did you buy all these things?"

"Do not be pissed off. I borrowed some cash, and got some on credit. I have promised my friends that I would throw them a party after the new constitution is promulgated. It's you who should distribute things evenly. It's for that very reason I call you Annapurna[2]."

In fact, her real name was not Annapurna. According to her stars, her name was Dol Kumari. Since her face was round, they had nicknames her Dalli—a woman with a round face. For her skills in managing the household, she had earned the name Annapurna from her husband. How would the husband know how much evil-eyes and acrid words, and unwarranted sympathies one had to face while moving out with the diplomacy of borrowing, bartering or loaning things? Whatever the case, she was not willing to irk her husband today. So, winking her eyes with a smile, she asked, "How many of them are coming?"

"Oh, aren't you angry? Today is a festive day. Four of them will be here—only four. Fry a kilo of fish, and cook the rest with some soup for rice."

"And the remaining one kilo?"

"All we have is two kilos."

"I just asked because you were mentioning kilo after kilo."

"It's a feast today. Why should we always talk of a quarter? More, this feast is yours—Annapurna's feast."

Dalli *alias* Dol Kumari, who was also called Annapurna, thinks what a gullible husband she had. When it came to meat, he prepared to fry it no sooner he was inside with it. This was, however, fish! And two kilogram of it would come down to a kilo and a half while cooking. But then, she didn't say anything. She didn't want to upset her husband.

In great enthusiasm, the husband said, "And Annu, this dress of yours won't do."

He ran his eyes through his wife's tattered and patched-up sari and *cholo*[3], and spoke in stammers from a dejected heart, "Why don't you take the new pair of sari and *cholo* we bought in Teej[4] last? Go; clean yourself and put the new dress. It's 5 o'clock now. They will have reached here by 6. We need to safeguard our honor, at least.

In the meantime, their seven-year-old son and five-year-old daughter came in, hopping and shouted. They said, "Father has brought fish! Father has brought fish!" taking the fish out of the carry-bag.

On hearing her husband's words, Annapurna gave a quick glance at him. Then, she snatched the fish bag from her children's hands and entered the kitchen.

He started changing his clothes, whistling.

His friends arrived before it was six.

The odor of fish being fried inside could be felt even from without.

The daughter and son lit the candles, and placed them on every window.

---

2 The Hindu goddess of food and cereals

3 a traditional Nepali blouse with binding strings to hold it in place

4 a festival of Nepali women, when they sang, danced, fasted, worshipped and visited their parental homes

After all, it was their future that was going to brighten.

Shaking hands, Santosh Bhattarai said, "Where is this tantalizing odor coming from, man?"

Gyanu Walker also forwarded his hand and said, "Maybe there is another aromatic fluid together with it."

Bimal Nibha shook his hand and said, "I shall go only for fish soup."

Kishor Nepal forwarded his hand and said, "If so, pieces of the people's movement will all be mine."

All the four burst out into wild laughter. Controlling his laughter, he said in rather dejected voice, "What a fun it would be, if Kumud Devkota was still with us. But then, he is a very carefree man. He followed his whims and went away. It too is true that he had come without anyone inviting him."

Everyone entered a room called the 'dining room'. They sat on the mat upon which a carpet, a counterpane and a cushion had been piled in layers.

On getting a tiptoe of the friends' arrival, Annapurna too presented herself in the drawing room. She accorded namaskar and welcomed everyone with a smile, winking her eyes frantically. Everyone remarked, "Bhauju, you happened to gain weight?"

He also saw Dol Kumari *alias* Dalli fatter this time. He contemplated why his friends had called him fatter, being unable to call her 'beautiful' directly. Accordingly, he also saw her quite beautiful. It's true that one's wife appears beautiful when observed from his friends' eyes. Every husband should materially acknowledge this particular favor from his friends.

Soon, a plate full of fried fish was served. He took out a bottle and a few glasses from the cupboard.

They started helping themselves with fried fish and liquor. For some time, they wrangled on whether it was proper for them to welcome with liquor the multiparty democracy the martyrs procured by spilling blood. Since they had finished two shots each before this row reached anywhere, it was concluded in a typical Nepali fashion. They now resorted to political discussion.

"*Prajatantra*[5] is...?"

"No, it's not *prajatantra*. Are we 'prajas' anymore? Call it *loktantra*, or *janatantra*[6]."

"*Naya janavad*[7] is...?"

"It's not *naya janavad*. It's *naulo janavad*[8]."

"Marxism has died."

"A philosophy never dies out. It's another episode in the chain of human contemplation."

"Don't you know that a dead elephant is worth one hundred and fifteen thousand rupees?"

"Can we call those with aristocratic manners 'democratic'?"

"Even the feudalists are democrats."

"Bhauju, can we get some fish? It's very yummy."

"Gramci once said..."

"Bernstein had once said..."

"Jean-Francois Revel's *Without Marx or Jesus*."

"Karpatri's *Ram Rajya and Marxism*..."

"What about Euro-communism?"

"Pan-Islamic Organization..."

"Oh, what a great taste the fish has! Can we get a little more, Bhauju?"

"Lo, Santosh Bhattarai has started

5 partial democracy in which the people elect the parliament members though the king continues to be the head of the state

6 both *loktantra* and *janatantra* refers to the republican form of governance

7 New communism

8 Here, both *naya janavad* and *naulo janavad* mean the same thing: new communism. But the friends wrangle over the right synonym 'naya' or 'naulo', both of which mean 'new'

babbling."

"Oh, Gyanu Walker looks just like Johnnie Walker."

"What about you, man?"

"Lo, Bimal Nibha has started dousing in the fish soup[9]."

"How did this Kishore, the inferior editor..."

"Let's leave this issue."

"Martyr's blood..."

"Add some liquor, man. If there's none..."

"Bhauju, fish!"

The son and the daughter were standing on the threshold, and like future time, staring inward. They had even forgotten to eat the fishes in their hands. Since he had instructed his wife to give the kids only the heads, the kids had one fish head each in their hands.

The political talk became even rifer. The third bottle arrived. It was Annapurna's offer.

"We should run for the election jointly."

"But campaigning should be done secretly for ourselves only..."

"Whom are you going to vote?" Gyanu.

"Whom are you going to vote?" Santosh.

"Whom are you going to vote?" Koshor.

"Whom are you going to vote?" He.

"Whom are you going to vote, Bhauju?" All his friends, except him.

"To anyone you all suggest."

"We are asking you because we couldn't strike an agreement. The present constitution has given the women full rights. Every party is required to have at least five percent of their members as women."

"I think I should now serve meal for you all, shall I?"

Annapurna made an abrupt turn and went into the kitchen. His curiosity that she might suggest a candidate to vote for turned into thin air. Annapurna, who was adept in managing the family, mysteriously resolved the issue. All women, after all, are like her. They tactfully avoid the subject, if it is contentious.

Having no consciousness, contemplation and opinion of one's own is like not even being a human being. Is being a wife 'inhuman' to that extent?

But then, women also have heterogeneity in them like the men folk. Why then are they made wives, and thus declared inhuman and heartless? Go; inquire.

The candles died out. Had it been an electric chandelier hung on the ceiling, it would continue burning. If they could afford, they would burn a *diyo* of wick-in-ghee all night. If they could afford!

Food was served. Annapurna fed fish and rice to everyone with joy, exhibiting hospitality, characteristic of a good housewife. During the meal, Santosh shouted all of a sudden, "Gurans, gurans, gurans[10]."

"What's wrong?"

"Eh, a fishbone has stuck in the throat. It won't go by chanting 'gurans'. Leave this superstitious method. Swallow a ball of rice."

After dinner, they all prepared to leave for their own homes, wishing bright and happy future for the country and society. Santosh Bhattarai shook hand in joy of getting the fishbone safely out of his throat. Gyanu Walker turned towards Annapurna and shook hand, humming 'Khandahar naya naya'.[11]' Bimal Nibha shook hand, blazing and dousing. Koshor Nepal *alias* inferior editor shook hand, gripping the knot of his tie. At last, they all urged Annapurna to reserve her vote within herself. She displayed a gentle smile.

After everyone had left, he emptied the

---

9 Nepali word for dousing is 'nibhnu', and the pun comes from the second name of Bimal Nibha, used here to make fun with 'nibhnu', meaning dousing of a lamp.

10 There is a belief in Nepal that if a fishbone gets stuck in one's throat, chanting 'gurans, gurans' sends it out or down one's gullet. The word 'gurans' means rhododendron flower and chewing the same too is believed to send the stuck fishbone out or down.

11 new ruins

left-over liquor into his own glass.

"Are you drinking more?"

"A little. Are the kids asleep?"

"They are."

"You have your meal now."

Collecting the used utensils, Annapurna rushed into the kitchen. He started drinking. He thought between shots on how he could balance family budget. It was like a tangled coil of a thread. Pull it this way; it knots up in another end. Put that way; a knot develops in this end. His thought faltered in the midst of his inebriation. He sauntered in every new step he took. Irritated, he stopped thinking. He thought why he should try his mind when Annapurna was at home. With this self-appeasement, he went out to urinate.

When he reached near his bedroom, he saw that his children were fast asleep. When he further went near the kitchen, he saw Annapurna and forgot the question of urinating. Annapurna, whose real name was Dol Kumari—and nicknamed Dalli—was sitting on a tool among unwashed utensils, and was munching a handful of *chiura*[12] with old lemon pickle from a saucer kept beside herself. She had placed some water in a ewer near to the saucer to wash her teeth soured down by *chiura* and the pickle. Since Annapurna was busy chewing *chiura,* and her eyebrows were bent downward, she did not see her husband. Unable to stand this spectacle from inside his kitchen, he turned his eyes outward. The entire town was gleaming in lights, hailing the promulgation of a new constitution. Unable to hold his mind again, he turned his eyes inside and stood there staring.

For a change of taste, when Annapurna licked the fringe of the cooking wok for the little froth of fish-curry attached to it, his mind was struck by a question as sharp as a spine: Are the opinions of our wives safe?

[Translation of Brajaki's "Annapurnako Bhoj" by Mahesh Paudyal]

12 rice—boiled, roasted and parched to be used as dry food during all seasons

Story

Rice Pudding

Indra Bahadur Rai

At the moment, I had not been able to comprehend the incident clearly. I had not reckoned that it had some meaning. The incident—if it might be called so—was as follows:

Though I had many times read and written about the gusty flow of River Teesta with a hum at a number of places in stories and novels, I had not yet heard the real sound of the river flowing downhill to my satisfaction. I also had heard from those who went to work on Teesta bank both in winter and summer that at midday and midnight, it flowed with a long and overflowing gurgle. But then, my thirst and hunger to listen to its hum had not been quenched by our occasional stop along Kalimpong-Gangtok highway, when I stood on the bridge for a while, and had a quick look of the river on both sides of the bridge.

The sight of innumerable ribs of the past, which were worthy of calling 'great' stayed scribbled on apparently sleeping layer of sand beside the flowing gush of greenish-blue torrents of water, the melodious crooning of Teesta amidst an imagination of weeds and plants being fanned by the slap of gusty winds—tickling a different splash deep inside—in addition to a different sound of flapping wings, drove me to a different lane of memory...

During one of my returns from Gangtok, I planned my overnight stay there, on the bank of Teesta for a day. The guest house was being renovated, and the room I was allocated sent a strong reek of freshly applied lime washes. Its bight whiteness was quite uncomfortable. The guest house adjacent to it had been occupied by workers—carpenters, masons, painters and porters—busy in its renovation. They make up the plot of this story.

They all had cuddled up, making the day a special one, and were busy in chitchat, each trying to overtake the other. Some were cooking, and their talk was cantered on the same. In fact, they were preparing rice pudding. I don't enjoy discussions on foodstuff. Yet, I had no option in hand. I listened to their chit-chat.

Outside the door, there was a tranquil brightness of the time just past midnight. After I spread the mattress on the cot and looked out once again, the daylight had waned into dust, whose dimmer light, spilled through boughs and leaves of the trees around, had now touched them all.

"If we are to have rice pudding, we need two litres of milk for 250 grams of rice," said a voice repeatedly, emanating from someone with bright but caved-in eyes. He added, "For the quantity of rice we now have, we need ten litres of milk. How much milk did you pour?"

"How much? It's four litres."

"Fie on you! Pudding with just four litre of milk at such a place like Teesta!" said the same voice that was bellowing earlier.

"Pudding in four litres of milk!" he said in such a way that it seemingly was a black, tattered patch, and he was demonstrating the same to everyone.

"For real rice pudding, we require many

ingredients," said a constantly rising and apparently ripe tone. "In the first place, the quality of rice you brought is wrong. You should have brought *nuniya* rice with fine, smooth grains."

"Even *aluwa* is extremely costly here," said a voice, apparently of a fat, stout man. "They cheat us, exchanging *rangune aluwa* for hill rice."

"You corpse! It's just like hill *bayarni*," said another, seconding the previous speaker.

"If the ingredients are available and you want real pudding," he said without looking at anyone, "old *nuniya* is good. Black *nuniya* is even better. It sends a tantalizing smell. Should be cooked in some ten to twelve litres of milk. If it's milk-water, you need about fifteen litres. While boiling to send off five litres of water, all rice seedlings get crushed into a paste, and all you have is gruel. If the milk is pure like a punch, the seeds remain intact. Gruel-like pudding gets overcooked from below, and reeks of the same all through. One who gets his share from the bottom is..."

I don't know if he said, 'It's like brushing teeth' or something like that. I didn't clearly get him.

After a while, yet another voice came from another end. "Will milk alone do? You need pasta, raisins, almonds, cinnamon, coconut, bay leaf and cloves too. We should cook it in steady, mild flames. Raisins should be added later. If added before, they can all get smashed," it said.

"What difference does that make—I mean, adding all those things?" asked a shrill, curious voice.

"It's for great taste, for flavour, for energy," shouted all, buzzing like insects.

"Beware; you can be addicted," said a voice, seemingly like the remnant of the earlier bantering. "You may seek for pudding even in dreams; may console yourself that way."

"If pudding is prepared here, the flavour reaches the nose of a passerby there on the road," said another man.

Carefully, I tried to feel the reek of their pudding. No, I could not feel any of it.

"Your pudding! Its flavour doesn't even reach someone sitting very near," said the oldest of them, blatantly.

"It's you who refused to contribute cash, when we proposed to overlook everything else and eat perfect rice-pudding," he said in reaction. "We should eat and live on, what if we have to steal, earn or postpone others' payment. We must have the guts to live on."

All of their voices muted.

I happened to be waiting for the same silence. Giving a tapping on the ground in reaction, I entered my room and started moving about. The announcement of my presence forced the flow of their chit-chat in another direction, as does a rolling boulder to a river.

"It doesn't suffice to gather ingredients. One also needs the skill to cook them," said someone, making an initiation fresh like white vapor.

"It's not good to eat pudding every day. You should find proper time and mood," another one said.

"If so, eating pudding is not easy," said another, letting out an acrid shout. "Impossible," he said.

Unable to hold my laughter, I looked out. Everything looked quite ordinary. The dark trees stood motionless in the night.

"Stir! Else, it can get burnt."

"Maybe it's cooked now."

"It's cooked."

"No, it's not properly cooked yet."

"It's ready," they claimed, and removed the pot from the fireplace. I could sense that they all moved a few steps backward, while others selected proper spots for themselves and sat down.

While they were eating, someone asked,

"It smells of something uncomfortable."

"I feel the same."

"It's firewood. I have carefully smelled it for long," said someone. Their suspicion kept rising and dying out.

"It's short of sugar," said someone and walked a few steps, brought some sugar and added to his share.

"If you like pudding to be sweeter, add jaggery, not sugar. It imparts a great colour too," said the man who initiated the conversation before.

"The dark jaggery won't do. Palm jaggery that comes in layers is the best."

The second one offered an immediate corrigendum: "How to eat pudding with black jaggery? Pooh!"

"Pooh! How much should we talk about eating? You have hardly had any pudding today, and you started talking so big. It makes me ashamed."

He had said it aloud enough to make me hear. He had thus tried to lighten his guilt to some extent.

They all got busy in a few gulps of pudding.

"It's in no way better than mere rice in milk and sugar."

When a bold voice made this remark, they all burst into laughter. The man, who claimed of good cooking skills, laughed for the longest time. When he carried on his intermittent laughter, others laughed out as well.

After four years, I comprehend the true essence of that incident today. The pudding they were making is like our life. Our minds are full of ideals that make us think we should live life this way, put it to such and such work, and use it this way or that. In reality, however, our life—always plagued by errors, scarcities and wanting—is more like their pudding, which was like a crude parody of the ideal pudding they were talking about.

Couldn't life be like Teesta, which is nothing but an ideal, no matter where it flows and how?

[Translation of "Kheer" Nepali by Mahesh Paudyal]

Story

The Stranger's Bag

Krishna Dharabasi

It was already twilight when I reached home from office. It was an everyday story—exchanging views about the office, the government and the nation with friends met on the way, as a result of which, I was always late in the evening to reach home.

They had already had their dinner, setting aside food for me in a hot-case. I felt the food was waiting for me, but I did not hurry. Getting fresh, I sat, with my knees bent, on the verandah to rest. Then, I happened to see that strange bag hung on the wall in front of me.

It was strange. We did not have such a bag. Even if we had, we never hung it as such. I stared at it with a fair caution. I was doubtful if it had some suspicious object.

They don't have any good news these days. Cases of loot, murder, rape are increasing everywhere. I thought, thus, such bags could contain suspicious objects. I asked Sitaji.

"An old man in his 60s was here this afternoon. He stayed awhile. We offered lunch; he accepted. He was looking for you; said, 'I want to meet Dharabasi Sir, but I don't know him'. As he told us, his grandparents hailed from the hill around ours. It had been many years since they first came to Nepal from Manipur. They are living in mercy of some kin in Sharanamati. As they didn't have citizenship certificates; they couldn't save earnings in any bank; neither could buy some land to build a house. He said he loaned some money to a relative, but they did never talk of paying it back. The relatives, who at first promised to help get citizenships, don't want to talk to them these days, he said. The elderly dropped his tears while he told, 'My family and children are in misery. We had properties to earn living when we came here, but now they made us beg for life!' He explained he had a relative from Manipur in Jayapur up there. He told me before leaving, 'I will be back after meeting them. Let me keep my bag here until I return tomorrow'." Sitaji narrated the whole story in minutes.

I first pitied the man after listening to Sitaji. But, I was not yet confident about the bag. With all those doubts in my mind, I had my meal. Then, drying my wet hands, I got back to my seat and closely looked at the bag. I was still heavy in my heart. I told Sitaji, "People suffer these days if they eat something offered by strangers, even if they guard their things. Who knows if this bag has some bombs? Who knows if the old man is a cunning dacoit? You should have been careful enough not to believe what he says. You did enough by offering lunch; why should you have kept his bag here? You know, the man already fixed his lunch here for tomorrow too!" We laughed!

My talk made Sitaji quite serious. Aama looked awake. My discourse made them all suspect over and fear about what the bag had. The level of doubt—that what if it had something like an explosive— slowly rose up.

That is why, in terror, both Aama and Sitaji tried to stop me when I approached the bag. But, defying their hands to block me, I grabbed the bag in my right hand.

Well, the bag was not as heavy as I

thought. But, I felt it had something special.

I returned to my place with the bag. I opened and began to look into it. But, Aama said, "Why you rummage in other's bag? Who knows if you will get blamed tomorrow for some stealing?"

I didn't care what she said but took out a pile of papers bound like a file from the bag. Beside that file, the bag had some clothes and other accessories. The opening of the pile was strongly fastened; that took my some minutes of labour to untie. Inside was a thick roll of papers. I began to open up that.

The kitchen chores were over and all of them were at the drawing room now. I also dragged myself into the room, with that bag and those papers. They switched on the television, for a Pakistani serial was in its climax that day.

When Aama, Sitaji and children were eagerly waiting for the serial; I had an unlimited curiosity for that roll of papers. Looking into the type of papers in the roll (they were homemade *pahade* papers from high heels), at first I suspected that it might be a collection of *chinas*–birth charts–and he was looking for a skilled astrologer. A man has faith in anyone and anything once he faces any pain. Thus, he had a deep faith in astrology, I thought.

Finally, I unfolded it. They had thick, but good, handwritings, perhaps scripted with a pen of bamboo that requires it to dip into homemade ink for writing. Some papers had holes as big as characters, but in overall, they were readable. The paper roll was, hence, strong enough to pull me from the TV serial into it. I began to read it. Thus was written:

I

My mother was just 27 then though dad was already an old man. Dad had married my mom – who was 40 years younger than him – after his first wife deceased leaving four children in the lurch. That was the time when no one would try to match age of brides and grooms; people were ready to marry off daughters in a very young age to a man regardless of his age. That used to make women live in hell sometimes. My mom didn't have any other child till I was 11. But, my half-brothers were already mature enough for work. My second half-brother's son was just two years younger to me. They were all separated already to live with their own families.

Meanwhile, dad died of a minor illness.

No one had ever thought that he would die in that age. But, he was telling mom some strange things for some days. Once, I heard him telling her, "*Kanchhi*! You cared me so well in my age of need. The Gods will look after you for that. Thus, please don't be a sati if I die early. You have to raise this son up."

In irritation, she had replied, "What a misfortune this old man thinks of. Who will die so soon?"

"Only if death was predictable, my dear! One can die anytime."

Though she resisted in appearance, mom must had felt some cold inside her with that talk.

I was a child, would enjoy nothing but playing. But, they had already assigned some tasks for me. I had to go to graze cattle after the morning meal every day. Those nephews – sons of my half-brothers – were naughty; they would chase my cattle away from the herd. I hence had to look after them alone.

No sooner had he talked that thing to mom than dad fell ill. We tried many medicines and shamans, but none worked. The shamans had concluded that the clan god is unhappy, thus cast a spell on him.

Then, when the sun was turning toward the west, he breathed his last. I was in a jungle grazing the cattle. I had collected four eggs of peacocks that day. I was planning to fry them and have them as soon as I reached home.

People came to take me home. As soon as they told me the bad news, the eggs fell off and broke. My body grew frail. I remembered him telling mom, "Please don't be a sati if I die early." I was frightened; it was complete dark all around me.

The people who had come to take me back tried to engage me in other issues. Finally we reached home. There was a crowd gathered, everyone lamenting. Aunties offered their laps for me, but they restricted me from going toward my mom. I knew that she was in a corner inside. I once strived to escape auntie's lap; but soon they said to me, "Don't go there. Don't touch her. Your mom is a sati now. No one should touch a sati."

I answered, weeping, "Nay! Dad told her not to be a sati. She is not a sati. No, she is not."

I struggled to get off auntie's control. I heard mom crying so long inside the house.

Preparations began to take dad's body to the ghat – the cremation site. Simultaneously, they began to motivate mom to get ready to become a sati. They offered lectures on why becoming a sati is important for a widow. I was looking all those activities from a distance.

Her face - it felt to me - was so strange and fearsome. Her look was strange and unknown from a distance. She didn't say anything even if I was crying loud.

Women were crying together at a corner. My sisters-in-law were silent. Men of the village were busy in rituals. The day was about to end. Thus, they were saying the body had to be taken to the *ghat* as soon as possible. It should not be kept there through the night.

I was shocked, seeing how those men behaved. My brothers, uncles, neighbours, priests, no any man was touched by the sorrow of death. A young woman was getting burned alive with the old man who had a natural death. But, they were not touched. I was in grief, but they didn't have anything called sympathy, sentiment or humanity.

I felt as if I would collapse. I had a yearn to be in her lap, at least for once; but the priests were counselling her that a sati should free herself from the worldly affairs of attachment and think of the deceased husband alone – so that she could get in heaven with him. Mom was sitting there still, as if she was not seeing with open eyes, as if she was not breathing.

Weeping women were caressing my hair in an act of love. They were talking about mom's age and beauty. They were expressing concern over my future. They were searching their lifespan in faces of their husbands. Liability of living death was flowing out from their tearful eyes. Each and every woman present there was counting her life in heartbeats of her husband.

No one dared to propose not making her a sati. Neither did my mom protest. Still restless in her lap, I told auntie what dad had said to mom. But, auntie stopped me and said, "Okay, keep quiet, *Babu*! No one will listen to you. Don't you see it? Here, people have gathered more to look her being a sati than attending the old man's funeral. Helpless women have thronged just to know their fate in future."

Auntie then didn't stop her lamentation. Her tears dropped on my head making my hairs wet enough, that I could easily feel the wetness. Her voice was growing sharper gradually. Uncle came and told her to keep mum. But, auntie didn't stop; rather she stirred up, "Why hush? How can this injustice become an act of religion? You marry a 40 year younger lady in a full awareness and make her die now today? She still has years for life, she has such a promising son. Why hush?"

"What can you do, lady? Religion is what they practiced for ages. All our mothers and grandmothers went through this," said uncle.

"How is this called religion, which allows a new widower to choose young girls for

marriage and live happily thereafter, but forces poor widows to get burned alive?" Then, some other women grabbed her hand and took her behind the house. But, I heard her speak louder and louder for minutes.

They made my mom worship her own body. They decorated her with all jewelleries available at home. They got her dressed anew as if she was a bride waiting for a groom on the wedding day. They played various musical instruments. Also, they played the divine conch shell long and one-fold. The crowd now moved down toward the *ghat* with my mom in the front, followed by the corpse.

I cried and cried so long that I didn't have any energy to cry more. Thus, I was silently looking into all those. It was getting dark. Auntie tried to stop me, but I too followed the crowd a little later. I heard someone saying, "Let him go. He can see final rites of his parents."

There was a temple of a goddess in the half-way near a *chautari* – a wayside place for rest underneath a tree. They briefly stopped and lifted down the corpse. While musical instruments were playing there, they took all ornaments off my mother's body. They poured mustard oil over her head and the oil dropped on the ground as if she was taking a bath there. Then, they undressed her. I saw a mature person completely naked for the first time in my life. But, that naked body did not bring any thought of shame, shyness and obscenity. She was respected as she was earlier with clothes. They played the conch again, long and one-fold. The crowd, with my mom in the front, approached the Tamor River. The sun was getting yellow when we reached the *ghat*. People set the funeral pyre. The priest was beginning the rituals for the sati burning. He was making my mom worship this and that. The ritual was over soon and they asked her to sit on an end of the pyre with knees bent, hands joined and eyes closed. The dead body's head was placed on her lap.

Some funeral attendants chose to scatter around just to avoid seeing ignition of the fire. The sun set just now. As the hill in front of us blocked light, the surrounding looked darker. The eldest brother ignited the pyre.

Smoke billowed from the pyre in all four corners, just to add more darkness in already dark and black *ghat*.

I was looking all those developments, hiding myself behind a tree. I saw even some men were crying and sobbing after the pyre caught fire. After few hours, the fire had reduced both of my parents into ashes. What was left was me, a goddamn orphan.

The mother who had sent me to jungle after feeding me some meals of love just this morning was now cremated alive into cinders in front of me.

I could not sleep a second that night.

Auntie embraced me and tried to make me asleep, but her heartbeat itself was disturbing me. She was taking long breaths and sobbing throughout the night. Holding my head into her hands, she opened knot of her mouth with these words, "What can you do, my poor child! We women don't deserve any meaning in life. They don't give us any value even what cattle get. People don't kill, but sell old oxen or cows when they can't work; but they kill us, mothers, against our will. They burn us alive. Once the husband to love and protect dies, all people living around us turn to be enemies, enemies of our existence."

Uncle intervened to counsel auntie. But, auntie continued, "Why is it that we women have to live for men only? We get left if they leave; get deserted as impure when some second man pulls us, or only touches us. We can't get complete entitlements of their love even if we devote all our wishes, desires, body and labour for our husbands. Men can choose out of will and make anyone a wife, but women have to surrender to whoever wishes her to

become his. A man gets freedom in death of his wife, but a woman should die alive with the man's corpse. What's this?

Are your mothers, wives and daughters not secure in laws that you men made? What constitution is yours that burns mothers, wives and daughters alive? Can't you change this? You people have just returned to home by charring my sister-in-law of my daughter's age. Doesn't this rule thus require me to get burned alive, no matter how much I care my body, if you don't take care of yours?

How easily you sons can burn your mothers alive, forgetting that she carried you for ten long months and made your life from her blood? Is this world only for you men? Only for you men's happiness? "

Then, she told me caressing my head, "My son! They cremated your lovely mother alive today. Tomorrow, they will burn me when your uncle gets the misfortune. What more, you will join your hands to ignite my pyre. You are also miniature of that masculine evil. I don't know why I love you so much today. I am feeding you just to make you prepared to burn my body alive."

Then, she rose suddenly. "But, if you men dare, please defy it. Challenge the tradition of killing mothers, my boy! I wish the new era would end the tradition."

I saw uncle was wiping his eyes silently, sitting by the oven.

II

We spent the next thirteen days in mourning rituals.

People gradually forgot the tragedy. Aunties and sisters-in-law were also much calm now. But I was burning in the core. I would see mother in my dreams every night. She would suggest, "Child, obey what auntie says. Feel that she is your mom." That was why what auntie told that night haunted me all the time.

After the end of days-long rituals, problems galore hit me. The brothers took away all household goods. They took me too with them. Auntie had cared me like mom during those days of rituals, but I was not allowed to stay with her all days. The brothers would not treat me right. Even their sons, elder than me, would mock me all the time.

I resumed daily routine of cattle grazing from the fifteenth day.

But, I could not pay attention into the cattle those days. I could feel so vivid in my eyes all the time the scene that people were burning my mom alive. I had to witness funeral processions once in two to four days, just to inject the pain of sati in me.

It was one of those routine days. I lost my cattle. I spent hours searching them, but in vain. It was already twilight. I was too worried, for I didn't know that the cattle already returned home with others. While I was about to cross the river and search cattle at the other side, I saw a dim light at the other edge. I was frightened, the heart stiffened. As the darkness was increasing, I grew a dread for tigers and leopards. I felt it would take almost an hour to pass through the uphill way into the jungle to reach a human settlement.

That light dragged me toward the cave. A part of my mind urged me to go and check there, but the other part doubted that it could be a ghost or some deadly spirit. Nonetheless, I took slow steps and hid myself beside a bush near the cave and looked toward that closely. I saw a naked creature near the fire and that was roasting something over there. I thought it was an ape, thus I returned.

It was quite late when I reached home. I had both worry and fear for the loss of cattle. But, I knew at home that they safely arrived at cowshed on time. Brothers, nervous of my disappearance, were preparing to leave for jungle with a torch to find me. They were relieved after I reached home. I narrated the whole story.

The next day! I was too curious about the cave I saw the previous day. Thus, I took the cattle toward the same site. I left them grazing at a meadow and went toward the river. I then stepped toward the cave. I looked into it. It was not that much big. A big stone was giving a shadow. I saw a long humanlike figure lying by the wall. I came closer; it felt more like a human. But, it was unclothed. Despite growing strange fear and shaking body, I came closer again.

I was cautious enough not to make anyone feel my presence, but a stone that I was standing on slipped. Its sound in that dead silence not only frightened me, but also awakened that creature. I saw it and cried in horror. On the other hand, my cry also shocked the figure. Now, I struggled to escape, but my feet were not moving. Helpless, I gazed at the figure for minutes. It was also coming closer and looking at me. I felt it was a dream. I felt a nightmare there.

I gradually collected my consciousness. The figure was still staring at me as I was staring at it. Meanwhile, I burst into tears. My throat blocked, I could not utter a word.

What was I seeing? My mother, nude, in front of me! She was in the same condition I saw her last time on that day when she was made a sati. Believe me, it was not a dream, nor was she a ghost. I could not help myself from embracing her in my arms, without a word. I shook her body and felt she was now regaining consciousness gradually.

Minutes after, she hugged me and yelled out in pain. Her cry, as I felt it, shook the entire forest. She kissed my cheeks, forehead and the whole body and held me in her breasts. I don't know how long we spent crying together. Both of us ended up tired of crying.

I asked in amazement, "How come you are alive today that you were burned alive earlier?"

She told the tale, "I dived into the river after the heat of fire and smoke was intolerable. I flowed a little down along the river. Then I swam a little to come out of it. It was dark. I could sense that the mourners were poking the pyre at the *ghat*. My body was stiff due to cold water of the river.

Darkness was mounting. As long as I saw the people at the ghat, I was happy for succeeding to escape them. But, as soon as the fire at pyre was over, it was dead dark and I was alone. They thought I died in the fire, but I was struggling for life here. I climbed to a tree and stayed there overnight. The next morning, I stepped down and reached this place in search of a safe haven."

After finding her alive and healthy, my joy did not know any limit. But, again, it was distressing for me to leave her alone and naked in this dreadful jungle. She told me not to tell it to anyone and not to come back again. She said she would live there till the final day when some wild animals would devour her. She also advised me to struggle for life and not to lose any hope.

But, I didn't agree with her. I told her that I would be back soon with foods and clothes for her. I, however, promised her that I would not reveal the secret to anyone. I convinced her that we needed to leave the place and go somewhere far to begin a new life.

That evening, I reached home with cattle on time. I gave fodders to the cattle and told brothers that I would go to uncle's home and stay the night there.

Auntie asked me why I came to them so late.

Seeing her, I was in floods of tears. Thus, she put her hand in my head and dragged me, "May be you miss your mom so much. Come, be with us." Everyone had had their dinner already save the aunt. She shared her food with me.

After the food, I told her wiping my eyes

off tears, "Auntie, please let me stay here and talk to you this night."

She looked at me lovingly and said, "Okay dear! I will let you stay at my room with me."

Perhaps they were too tired of day-long labour; everyone was dead asleep and snoring a few minutes later. Auntie was also asleep. But my eyes were wide open in that darkness. I squirmed over the bed thinking what and how I could tell all these to her. I was also worried that how auntie would perceive the new-known fact about my mom.

I gradually collected guts to awake her. I awoke her and whispered the whole tale. Then, auntie got up and sat on the bed. She lit the light and had a glass of water. She had sweats all over the body and was taking long breaths.

"Auntie! If you offered me your used clothes, I could give them to ma tomorrow," I said.

"I will go with you tomorrow, my child. Please lead me there," she said.

I was so happy that I felt my heart leaped up to my throat.

"But, auntie, she has said not to let anyone know it."

"Oh, my poor kid! Who is the fool to tell this tale to others? If they know it or find her, they will kill her. No, we shouldn't tell."

The next day, I woke up and returned to my brother's home. I had lunch, and then left for the jungle with the cattle. As agreed, auntie was waiting for me at the fountain. She handed me a bag and said, "I know the place. I will come there this afternoon to collect fodders. Please tell her to wait till I come."

I nodded in agreement.

I found mom covered in leaves of trees.

Today she seemed brighter and shyer to me than yesterday's unclothed and dejected figure. Nonetheless, she was trampled with serious grief.

Not caring about the cattle at all and leaving them at the forest, I had reached the spot in hurry, also avoiding any people seeing me.

Mom looked at me as if she saw me for the first time. Perhaps, her soul in this miserable condition felt me as a strong foundation for her life.

I immediately produced in front of her the bag that auntie had given. The bag had *gunyu, cholo, patuka, majetro* and other clothes. Also, it had a bowl of rice pudding. Like a child's, her face showed an instant happiness in seeing all those, but that was immediately replaced by an adult-like sorrow sentiment. She burst into tears, and let tears flow for long.

I could not see her condition. I turned back and stared at big ripples down in the Tamor River. I wished we could go flowing with that water to a place far from here where no one could see or know us.

She dressed first. Then, I saw her in the same appearance what she was in before. She must have had an intense appetite after she had to fast for days. She at first allotted a few of pudding to me on a leaf and began eating the rest. I gazed her eating that. She had it as if she was deprived of any grain in life. Alas! My poor mother!

She was shocked to know that auntie sent them all for her. Auntie and mom did not have good terms before dad passed away. They would have minor misunderstandings frequently. Mom used to comment, "I can't settle with these old sisters-in-law. I wish we could shift the place."

Then, dad would say, "Where can I go in this old age with you naïve wife and this baby son leaving all kith and kin here? This is my ancestor's land, I have grown-up sons here."

But, mom was quite emotional today in seeing support of that very sister-in-law. At the moment, I also shared with her how auntie

loved and cared me in her absence.

"Ma, now, we need to leave this place. Let's go abroad. We shouldn't meet anyone who knows us. Now, I can protect your life even with slavery at some rich people's homes. I can do anything now for survival. But, please, I can't leave you here alone in this jungle like an ape," I said.

She didn't respond.

We were waiting for auntie.

We suddenly heard the long, one-fold sound of conch from the other side. It felt cold to me. We looked at the site. Mourners were carrying a corpse down to the river after they circled the *chautari*.

After a while, we also saw that a sati was walking with them. Both mom and I quivered. I hugged her. She held me tight. They were farther, across the river. We could not hear them, but we knew meaning of each and every act there, because we had already faced it.

Mom said, "*Nani*! That sati can't flee today as it is broad daylight. "

The mourners arrived at the riverbank. They prepared the pyre in minutes out of logs they carried from the way. The priest had begun the sati rituals. It was getting evening. As the rule, the sati was ordered to sit at the pyre, knees bent. The corpse's head was kept on her lap.

Perhaps it was a son; he lit the funeral pyre in his father's mouth and collapsed a little away in the bank. Some people lifted him up and dipped him into the river to revitalise his consciousness.

The mourners were sitting in a circle. Suddenly, they rose up and ran. Why they ran, we couldn't guess, thus stared more closely.

There, far away. We saw a naked woman running away down along the bank. Now, we knew that she fled from the pyre. It occurred to me that the mourners could not know her escape while they were caring the collapsed son.

Some brave and big men ran along the bank.

A man hurled a stone at her, but the mission failed. He again hurled, that too didn't meet. Another man threw a stone from close, and that hit her back. The hit pushed her away and she knelt down. Another stone hit her before she rose. Yet, she attempted to stand up and run, but failed. Another stone hit her head again. She collapsed and squirmed.

Some three to four people lifted her up and rushed to the pyre. They hurled her in burning flames.

I felt mom's hands - which were holding me - turned loose. I turned toward her just to find that she fainted already.

I brought water in my hands from a small pool nearby that she dug herself. I sprinkled water over her face, hands and feet. She opened up her eyes after a while.

At that very moment, I heard someone speaking near the river and later identified it was auntie. I heard her words, "Those cruel sinners! May the God curse them and lead to the most miserable condition. They beat a woman black and blue to death and then hurled her alive into the funeral pyre. May their hands decay! May their wives die and children never get born!"

I also saw uncle following auntie. Seeing him, my body stiffened in fear, mom's face turned green. I regretted why I told the story to auntie. My lips dried up. I was silent in shock. Auntie said, "Don't fear, boy! He will do nothing. He will help you get relief."

Uncle's eyes were full of tears. He was speechless.

"The rule is not in our hands. We, some specific families of the society, are not to be blamed. We all need to unite in order to break it. Each man, if he loves his wife, should think of making her future secure after his death," auntie was murmuring.

Uncle came to mom and greeted in her feet. He was still speechless.

Mom said to auntie, "*Kanchhi*, if only I, a wretched woman, could wish for your good. But, you made me feel good. I quarrelled and fought with you when we were in luxury; but I failed to know your good heart then. May you get what you want, may the God bless you. May you die before the man so that you should not be a *sati*. I wish all well in your life, may your children obey you. You came to be my sister-in-law, but I respect you as my mother. If you were my ma in the past life, I wish I could be your mother in next life." She murmured for minutes.

Uncle was still speechless.

Auntie took out some money from her handbag and put that on mom's hands, "Save it. Use it to make your life wherever you go. Make yourself strong. Don't get coward. For life, struggle with anyone as much as you can. You will live if you win; in loss, you will die. Making yourself weak and helpless is leading you to that loss. If an elephant was not frightened, could its master tame it?

Go to Dharan through this jungle. You know the way as you have travelled it while fetching salt every year. They say people get easy jobs in Dharan. You both mother and son can work and make living there. If you fear that people around would know you, you can go to Birgunj or Assam or India or somewhere. Wherever you go, make sincere attempts to grow this son up."

Finally, uncle spoke, "Sister, I reckon no one is easily ready to break traditions. Whoever have undergone through the fate in their families force to make *satis* in other families too. Forgive us. Forgive all mourners. No one knows that you are alive, except me and my woman. We will tell it to none."

Mom hugged auntie and both wept together for long. They lamented as if a mother and her daughter were departing. Uncle also gave me some coins. He held his hand on my head and offered wordless blessings. I also saw his eyes were in tears and he was wiping them when he left us.

When it was some minutes before the sunset, mom and I left them and set off for Sankranti Bazaar through the jungle.

It was already dark when we reached the Tamang Gaun there. Downwards at the bottom of two hills, we saw the Tamor River flowing in its natural pace with big roar. It had a target toward south and hence was in its course toward that in hurry, without stopping anywhere.

I felt relief. I felt that we are also in the river's flow. I felt mom's face showed a new glow of a new life.

III

I could not read some one paragraph at the end as the paper had holes in it.

I then realised that my eyes were about to shed tears since the time I didn't know. The TV serial was ending. Dipesh, my son, kiddingly pointed toward my eyes and said, "See, *Buwa* cried. Shame, shame!"

Earlier I would mock children whenever they would burst into tears while watching some TV programmes. He was taking its revenge on me today.

My eyes shed a couple of drops. Aama, Sitaji and all laughed. Aama said in a while, "See, your dad can't do it. He can't tolerate minor sorrows. How in this world males can be such coward? But, this kid is same from his childhood."

I stared at her face. The more I gazed at her, the more tears came out of my eyes. Thus, I went to the bathroom. The serial was over. Kids tried to tell me final events of the serial, but I didn't bother.

Sitaji was stunned seeing me cry. She asked me repeatedly why I cried. But, I

couldn't tell her. At night, turning aside to avoid her, I pretended asleep. But, I was awake till midnight. Even after that, I got shocked and woke up frequently.

My heart was still heavy when I woke up the next morning. I didn't feel good for the whole day. I felt something was crushing me from above. I used to speak out loud and make fun every time. But, I was so silent today that I myself couldn't believe. In the morning, Sitaji again put forward her curiosity on my silence. I couldn't answer her again.

Before leaving for office after lunch, I told her, "Sita! Please don't let the owner of this bag go unless I come back. Ask him to stay here tonight. Please stop her. You can hide the bag if you can't stop him anyway!"

She didn't answer and I left.

The heart was quite light when I came back in the evening. I saw Sitaji at the yard. Her face showed both smile and gloom at once. She said, "We finally knew why you wept last night."

I didn't bother answering her and went straight to the drawing room. Sitaji and Aama followed. All in silence, I took out a framed photo from my bag and mounted it on the wall among portraits of Prithvi Narayan, Tribhuvan, Mahendra and Bishweshwor Prasad. Both women looked at me for long. Aama asked, "*Nani*, who is this man? Why you pasted his photo among those great people?"

I gazed at Aama's face again. I then gazed at the photo. I said to her, "This is Chandra Shumsher. Aama, you are living the life that this man granted since 18 November 1976 till today. This great man eliminated the sati system, Aama."

I felt as if my eyes were bursting into tears again.

I stood up and left the room. I saw the two women staring at the photograph and each other.

[Translation of "Jhola" by Deewakar Pyakurel]

Story

With a Character One Evening

Roshan Thapa 'Neerav'

At the moment, I am inside a pub in New Road. It has become a routine task for me to be here in the evening-and stay there for a few hours. I leave my office and walk straight into the pub and sit for a few hours. If some ideas occur, I jolt them down. Else, I stay contemplating, and brainstorm to strike on an issue to write about. Foods are always at my disposal. Accordingly, I am here at this hour to write a story, or say, to find a plot to write about. I received a call from *Abhivyakti* just yesterday; it said it wants to publish a story of mine, for it has been long since it published my story last. I have consented. But what could I write about? After three decades of writing stories, I now have no urge to write much, not only stories but any genre for that matter. I know not whether it's a sort of melancholia, but I confess, I have incurred such weakness of late.

ooo

When I browse through the stories appearing in the market, or say the Saturday literary supplements of the periodicals, I notice that they are in Nepali script though the language has a lot of foreign inflection. At such a moment, I feel that it is graceful to have such a subject and linguistic competence. In the stories of such petty storywriters published with such ease, how naturally the greatest storywriters of the world come and settle down, and the write-up becomes a 'story'.

Those who praise and accept have said such should be a story that develops 'die-hard fans'. It requires no content. Think of a catchy title, lift some romantic incident or an estimation of any contemporary issue, and foist it. A story emerges. Or else, handle a free articulation of a woman-centric issue, crafted in a slightly erotic style. No other story shall be a better way to create a whim in the market.

ooo

Respected editor, this is not an idea that occurred to my mind. This is what the character of my story said to me just now. He has just entered this pub, and is sitting in front of my table. He does so to make my story writing more significant. It's true that I don't myself know where I am in the crowd of such stories. I stare at the character seated in front of me. He seems quite unruly. He says he intensely enjoys becoming a character in someone else's story. I wonder how he discovered what I was thinking about. In this state of mind, I approach him.

"When did you come?"

"That moment when you were thinking of a story."

"I have to write a story at all cost today."

"What sort of a story will you write?"

"I am thinking. Trying to find an issue."

He shows a red box whose cover reads: "Smoking is injurious to health." From it, he takes out a cigarette and lights it to send forth a puff of 'injurious' smoke. And looks around.

"You, a witless story writer! Is such a place proper for writing a story?"

"Where should go then?"

"All you get here is a salad bowl of drinks, nymphets, cash and politics."

"That too can make a good story."

"If the occurrence of this issue is evaluated from the past to the present, nothing but repetition is seen."

ooo

The character speaks in a natural tone. I agree that the story has taken newer structures. Stories earlier took up issues like the pristine sun, maidens clearing off their menstruation and basking in the sun, some boys chopping firewood, the Village Chief staring at the chest of Kanchhi next-door, fifth son in the neighboring family squeezing himself indoors on account of being of third gender, Gharahu Mahato still short of satisfaction in spite of having four wives, the river near the village flowing gustily on its own accord, landlord Rana Janga on a horseback chasing a sixteen-year-old maiden during her showers, Pundit Harhananda coming home with his gifts after finishing a *shraddha*[13], etc. I have read several stories with such characterizations.

And such are the stories that are canonized in Nepali literature as 'timeless', 'modern', or 'progressive' and for all these reasons, my own story writing has started appearing trivial for me. My character has just uttered the right thing. The issues that can feature in the upcoming stories are...coming safely out of world stories, characters addressing story writers like Sylvia Plath, Anton Chekhov, Sartre, and Camus to Haruki Murakami of our own days to the latest generation of Nepali storywriter, a woman-centric story involving a detailed description of a man's phallus, the gluttonous members passionately speaking in the Constituent Assembly, the sudden disappearance of cooking gas cylinders from the country following the rumor of fall in price, the anecdote of celebrating one's beloved's birthday by borrowing cash for herself, a home-bound story-writer moving towards a cremation ground and becoming a recluse instead, memory of a night-out with a woman writer in Nagarkot flashing in the memory of a man preparing for sex with his wife...and many of such insignificant issues appearing *en-masse* from publishing houses. In such a situation, where should I stand and write my story? I ask myself again and again.

ooo

"This is the situation I am in. Yet, I cannot take up aeriform experimentation."

"That sounds crazy, mister story-writer! That is your personal view?"

"Can't a view constitute a story?"

"It can if it comes together with a story."

"If so, you become a character first, and talk about the very essence of being a character."

The character laughs. It seems I am mentioning for him a jocular subject. The pub is not short of visitors. It's ringing with noises of various kinds. I stare at my character with interest. He draws in a deep puff of smoke from his cigarette and then turns towards me.

"Listen to me, my respected story writer! I am a man beset by a lot of debt."

"What sort of debt?"

"The debt I loaned to build my house, to afford my children's schooling."

"Oh, you happened to loan it for a responsible cause."

He thrusts the burning cigarette into the ash-tray and douses it, and sends the residual smoke from his mouth towards the ceiling. Turning towards a pair of maidens seated on a corner table and eating momo, he sings and old number by Narayan Gopal: '*Mero behosi aaja, mero laagi parade bho...*' meaning — my inebriation has become a screen to me, today. Silently, I observe all these acts. The maidens, dressed in tight jeans, appear very seductive. As long as they are eating momos, nothing appears remarkable, but when they

13 A ritual performed on the death anniversary of a relative annually

order two bottles of beer and start drinking, a few male eyes turn towards them. It appears that the maidens are quite nonchalant about this. They are busy in their own task: eating. Time has assumed many formidable changes. Freedom is for everyone, not just for men-folk. The same applies to thirst.

I turn towards my character. He follows suit and smiles.

"How should we react to this, my dear character?"

"See, my dear story-writer, freedom of the day has heralded the launch of a different age. In stories coming up hence, looking for an ideal character is as hilarious as explaining sin and virtue to women, who are ready to sell their bodies in Khulamanch[14]."

"You had been talking about your loans."

"Yes, my debt! But what can I do? If I go home, the grumbling of my wife and children bothers me. Out of home, I am bored by the atmosphere. Unable to decide what to do, I come here every day, and satiate myself with a sip, soaking my throat."

"Don't they complain at home?"

He has hardly opened his mouth to answer me, when the cell phone in his pocket rings. He fishes it out and twitches his forehead. It is a call from his home. He picks it up and utters in a hoarse voice: "Hello!" His talk sounds normal, maybe because he takes it for an ordinary call that keeps coming casually.

"Where?" says his wife from the other side.

"Why?"

"Isn't it time you were home yet? Why are you loitering for no reason?" says his wife with a tinge of indignation.

"I'm coming. I will reach after an hour," he says in a sullen voice, fearing lest anyone should hear him.

A bargirl serves him a glass of rum. With the cell still attached to his ear, he signals something to the bargirl. The girl opens the lid and decants rum in two glasses.

"Or, are you in any pub? Be warned; you cannot come home drunk tonight."

"OK; I shall reach home shortly."

"Make it quick."

"Why?"

"You ask why? We have run out of gas. Need to go and bring a new cylinder."

What do say now? My character is pissed off, beyond the limit of *characterness*. His eyelids get heavy with indignation.

"Why don't you ring the gas retailer? He will deliver it."

"I did. But he says calling won't do."

"What does he say then?"

"Says, we need to queue it up, and get our name noted."

"Motherfu... Didn't you remind how much we have helped him?"

The line snaps. He then switches his phone off to avoid further calls, and turns towards me. I stare at him. What sort of a character is he? Looks quite domestic, and simultaneously quite willful. He also appears committed to the nation, though he is seemingly quite unruly. He is quite loveable as well. Thank God, in all these manifestations, he doesn't look like a rapist.

"What's wrong, dear character?" I ask, adding hot water into the glasses.

"Look, I had a call from home. They have run out of cooking gas. They never understand where a man is, in what sort of situation. Should I run to shoulder a gas cylinder right now?" He shares with me his domestic worry.

"One shouldn't run away from responsibility." I say with a smile.

"Oh no, my friend! We can't carry a gas cylinder." I can see that he is beset by the obligation to lift a ferry cylinder.

"Why? We should ferry it, if there is a

14 An open-air ground in the middle of Kathmandu

need." I speak.

He pops a momo dumpling into his mouth with a fork and utters, 'ha, ha.' The momo was quite hot; he swallows it with great difficulty. He almost pukes obscenity to the bargirl.

"You, bi...why did you bring such hot dumplings?"

"Drink water first," I say.

"I cannot lift such gas cylinders."

"Man, the *characterness* in you appears weak."

"Why?"

Inquisitively, he turns his love-filled eyes towards me. After swallowing a chewed dumpling, I take a sip of rum and turn to him to answer his question.

"What a man you are! You can lift a woman forty to 40 to 45 kilo of weight. Why, then, shouldn't you be able to lift a 15 kg cylinder?"

"What a dumb author you are! When you lift a maiden, her tender body lends you pleasure. What does lifting a hard and cold cylinder give you?"

"That is a duty, you know."

"If so, isn't lifting a girl our duty as well?"

"What should I say...?"

A line of silence lurks between our conversations. We start munching at our snacks in silence. I run my eyes around all sides of the restaurant, hunting for a plot. He also gazes all around, seemingly willing to hunt for a girl. In the meantime, a man sitting in one of the corners stands up. He has a cigarette in his mouth. He comes sauntering towards us, and stands still. We stare at him with inquisitive eyes. Seeing his cigarette, my character enflames his lighter and moves it towards the man's house, but the man refuges to light his cigarette. Instead, he presses closer to us and starts talking in a mysterious way.

"Friends, do you know...?"

"What?"

"The new constitution is in the making."

"Oh, is that so?"

"It is."

That man stands, sauntering, staring at us with inebriated eyes. We feel, he is here to light his cigarette, but then, he is engaged in some other discussion.

"What's your opinion on this?"

"Mine? I have no opinion. The gluttons get easy allowances. They show off, and will say, the duration of the Assembly is four years, and they have the luxury to write the constitution anytime during this period. 'We must first settle the shares of our profit.' they say."

"Well said! We can hardly digest liquor, but those louts never satiate themselves even after digesting cash worth billions of rupees."

"That's it, my friend. What worth is living in such a country?"

"Where should we go, then?"

In reply, he first lights his cigarette, draws in a long puff and sends out the smoke with a 'ha!' Then, looking at the cover of cigarettes, he says, "The situation here is like that of this cigarette cover."

"Means?"

"Means, it is injurious, but you can't escape it."

"You were talking about leaving the country."

"No, I was not."

After drinking our rum dry, we are now focused on him. Our conservation has run into disorder, like a pseudo-fiction of an amateur author. Drinking, however, has become even more streamlined.

"Who else is going, then?"

"My sons and daughters. They have become US green-card holders. They say, they won't return to Nepal anymore. Let them hold back; what will they do by coming? Moreover, nothing happens in a country whose politics has deteriorated."

"Brother, when will this country progress, if everyone says the same?"

"I can't tell about progress, but I am sure, it is fast decaying. Why worry?"

"You are right."

The man is still in standing position. It seems he enjoys that position, swaying left and right, rather than partaking in the conversation. From standing position, he suddenly falters as if he is falling. My character holds him and helps him balance himself.

"What's wrong with you, brother?"

"Nothing has happened with me."

"You nearly fell off. Are you hurt anywhere?"

"No. Do you know one thing?"

"What's that?"

"The girls at this restaurant, this pub, get ready to sleep with any man for the sake of their bellies."

"Is that so? How did you know that?"

"See there! A leader of our country is negotiating about sleeping upstairs, all inebriated."

"Where?"

"There, at the corner."

We turn our eyes towards the corner he indicates. Incidentally, we see a politician flirting with a bargirl, stroking her cheeks now, and inserting his hands towards her thighs in an objectionable fashion. Feeling awkward, the girl is trying to stay apart. My character is suddenly besieged by indignation. He stands up with a start and moves towards the politician and holds him by his neck.

"Mister politician! What is that you are doing?"

"This is none of your business. Do you know who I am?"

"You? You are a politician sucking the nation's sap, and drinking the alehouse dry. People like you have pushed the country into a state of stalemate, a spell of indecision. The citizens are forced to live in trepidation. Like locusts that destroy our paddy, you are a disgrace, who cannot deliver a constitution."

"Will you shut your mouth? Wait until I call the boys of my sister organization. Stay here until then."

"Go; bring them! What can you do? Do not imagine me a citizen ever ready to stay oppressed."

The politician charges out of the room, blind with fury. My character returns to our table, puking all his anger. I stare at him.

"What's wrong with you, my dear character? Why are you so pissed off?"

"Look; their hegemony rules everywhere. How long should we bear? Our tolerance should have a limit. Do they have the freedom to do anything they want?"

"He is not the only one to be blamed. There are many architects of failure like him."

"You are right. But we run across such representatives of the loss, loitering in public houses like this, acting wilfully all the time."

"But then, with how many of them will you fight? Do you think it is possible?"

The character fishes out a cigarette from a box that shows the picture of a man with a dark heart all beset by cancer. Brushing aside the statutory warning: 'Smoking is injurious to health', he lights the cigarette and turns towards me, breathing out a cloud of smoke.

"I shall combat as many as I can."

"Is that your patriotism?"

"You may term it whatever you like, but I shall do what my heart dictates, as I have always done."

"Come; let's go home now."

"Come on."

We move to the cash counter. I feel my pocket to find my wallet. By the time I am ready to tender cash, he has made the payment. We then move out of the commotion in the pub. Outside, the evening has turned ravishingly cool. I stand blank, unable to decide which way to take. He lights yet another cigarette. We

walk a few yards without uttering a word. At one point on the road, there sits an old beggar with her hands stretched forward, shivering in cold, and begging from the pedestrians with her pathetic eyes. On seeing her, my character stops suddenly. There is a cake-shop nearby; he goes there, buys some cakes and cookies. I am walking behind him, observing all his acts like a mesmerized man. He walks near to the old woman and stops. A wave of joy emanates from the beggar's eyes.

"Did you come, my child? I know you come here every day."

"Yes, I did. Where else would I go?"

"Let God always be with you."

"I have no faith in God, mother."

"Have faith in him. Hadn't I believed in him, would you come and feed me this way?"

He walks away without answering. I, following him silently hitherto, continue do to so, observing his latest acts with equal interest.

"I couldn't understand one thing."

"What?"

"Your manners."

"Not manners; say, it is my duty."

"Do you really know the old woman?"

Pulling in a puff of smoke, he flings the cigarette into the gutter and turns toward me. I stay staring at him with curiosity.

"No, I don't know her. I came to know of her while keeping this path. In fact, the old woman has sons, who are quite affluent. She also has daughters-in-law. They are educated too, but this old woman has nothing with her save the memory of her deceased husband. While the sons were away, the daughters-in-law forced her out of home, in a ritualistic manner, on *vanaprastha*[15].

Since then, she has been sitting on the roadside in the same fashion. She keeps herself going with whatever he gets. Still she has faith in God. One day, his sons shall come to find her, and take her home. Isn't it a fabulous story?"

"I am not sure about the story. But your character is really impressive."

"Why so, mister story-writer?"

"I can see the *characterness* in you, manifested in different manners."

"Say whatever you may! Write it or not. That will make no difference to me."

"Why?"

Without caring to answer me, he whistles out once. By now, we have walked across a fairly long distance. All of a sudden, he shakes hands with me in valediction and heads in a different direction. He utters something before taking his way.

"Somewhere along this street, my beloved is feeding her daughters. I need to meet her once."

"Beloved?"

"Yes. It has been ten years since her husband sneaked into Qatar. He neither sent money, nor turned up himself. He is lost."

"For how long has she been your beloved?"

"Since schooldays."

Having said this, he leaves me in a state of stupefaction and curiosity and enters a lane, singing a song by Deepak Kharel: "*Pratikshya gara meri mayalu, samayle manislai ḳaha kaha puryaunchha; kahile hasaunchha, kahile ruwaunchha, aansu ra haansoko sangam pani garaunchha*"—meaning, have patience, my beloved! Time makes man far and wide; it makes him laugh and cry at times, and ensures a confluence of laughter and tears.

I continue to stand brooding for a few more minutes, before I move towards my home—my story site—carrying in mind several feelings, together with the manners my character exhibited today.

ooo

Everyone at home is asleep, having taken

15 *vanaprastha*: the third stage of life, out of domesticity and family responsibility, as imagined by Hindu worldview of life-stages

their dinner. When my wife opens the door for me, I enter. Without exchanging any word, she prepares to sleep with the kids. After I take off my shoes, I enter the washroom, relieve myself of pent-up urine, and enter the room again, having washed my hands and feet. I throw myself on the chair facing the table, and press on the switch of the table lamp. A zero-watt bulb glows in the room. I sit and close my eyes to recall the events of the day. Seeing me do so, my wife gets pissed off.

"Aren't you eating your meal?"

"No, I am not eating tonight."

"Why? It seems you are full."

"No. I ate a little."

"If so, what are you doing, still not going to bed?"

I stay silent, instead of tendering any prompt answer to the question of my wife. When I get hold of paper and pen, I say, "I will write a story now."

"Story? So a story serves you things to eat now."

"No. To drink, you might say."

"What? A man made sluggish by poetry until yesterday has become a drunkard by writing stories today."

"No, it's not like that."

I stammer. She is not in a mood to listen. The kids are fast asleep. They will wake up early in the morning and start playing. But time, at the moment, has chilled, as it is nearing midnight. Unwilling to switch on the computer, or weary of the coldness in the computer room, I place paper and pen in front of me and start brooding. My wife most often abhors such a habit of mine. I face observations that make me think that writing is getting slighted in the family gradually. The family knows that writing won't solve its problems. There are several ways that lead to sorrow, and literature is one of their representatives. In that case, writing or announcing to write this story is, for my wife, an act of showing worthless heroism.

"I know nothing else. Go to bed straight. The night has gone very deep."

"Listen to my story! I will tell it out to you."

"Story? Which one?"

"The story goes like this...!"

"...!"

[Translation of "Patrasanga Ek Saanjh Katha Khojdai" by Mahesh Paudyal]

Story

What a Coincidence! What a Tragedy!

Bharati Gautam

The day was the memorial service of my very close friend Jenny's husband Kris. In fact, the second anniversary of their marriage was three days hence.

The creeks around looked like rivers and the rivers in turn like seas for the three day-long heavy rainfall. The roads were flooded. Although it was mid-May, we felt rather cold perhaps due to the rainfall. The cold was demanding at least a light jacket. The church where the service was going to be held was not quite far from our residence, yet we were nearly late because of incessant rain and the Saturday rush. The parking lot was almost full so we parked a bit away from the road. We put up our umbrella and rushed to the church. My husband and I followed the other two couples who too were late for the service. We had never attended any memorial service before. I had no idea about it at all.

In our country the memorial service is not held for ordinary people. It is sometimes held for well-known poets and artists. Obviously the attendants too are from the same circle. It was my first experience--- an ordinary person attending another ordinary person's memorial service. I was not sure what was going to happen inside. People would be crying! Shouting and yelling! Or deathly hush! I was feeling uneasy, yet curious. I did not want to regret later by missing the congregation, for Kris and Jenny both were my very close friends.

As we walked through the door, we could see different photos of Kris with a broad smile on his face. These photos were placed on the bench in the balcony. In some photos he was in his school dress. One photo in the corner showed him in the air force. At the far end of the hall there was a small photo album that contained their wedding photos taken nearly two years back. We had attended their wedding then but now we are in the memorial service. Although everyone could guess what was going to happen in the near future, it was too hard to accept the reality now.

We put our umbrella with other ones stacked in the corner before we walked in to join the congregation. Out feet leaden, hearts heavy.

The hall seemed to have a seating capacity of 200 or so. Almost all chairs were occupied. We decided to sit in the back row to mask our hesitation of the first experience in such a service. We had already placed the bunch of flowers on the dais.

There was a two-page program schedule on each chair. The front page showed one of Kris's photos in a shirt with green and black spots on a white background. He was smiling broadly. On the top was written 'Celebration of Life'. I was baffled as how they were going to enjoy the celebration of life in a mourning assembly, yet I decided to wait patiently thinking that it must have some meaning.

It was still raining heavily outside. There were all kinds of people but children. Maybe children were not supposed to be there or they did not want to come. We had left our son at home. All faces looked downcast, but no one was crying. Whoever entered the hall turned grave. The hall was completely silent except

the sporadic coughs. But the sound of gloom that reined the hall was so loud that it was ringing in all ears. The gloom seemed to be whispering to all sitting there. In the guise of Kris it seemed to have entered their hearts and making them aware of death dwelling there. How come the man who used to be around is nowhere now! All his possessions are here but he is not. Even his body was there till yesterday. What could be that element whose presence determines our presence on earth! Its absence means our absence. Perhaps, it was just a dream! I wonder how come someone could disappear for good so easily. Kris might not have disappeared either. If so, these people would not be here despite this rain. Our Kris was already reduced to ashes. He was cremated at his will. Sure enough, even if people say the deceased have gone to heaven, they must be somewhere here around us. Such thoughts were crowding into my head.

Someone on the dais looked ready to speak. Oh, he was the priest who had married Kris and Jenny. First of all, he cracked a joke about Kris. Laughter filled the hall. We were brought up in a different society. For us it was the place to mourn but not to laugh. We were supposed to shed tears even if artificial. This is what our society had taught us. I think it was my husband and I who couldn't laugh at all. According to the priest Dyan, Kris had told him in detail about the type of memorial service he wanted. He had left a detailed list that mentioned how to start the program; who were to speak what; which music to play; who were to shed light on which aspects of his life. It was Kris's will to celebrate the memorial service as the celebration of life. Then Dyan spoke about their marital life.

In the two years of married life Kris and Jenny had enjoyed their relationship to their heart's content, which other couples might not savor even in fifty long years. Two years ago the wedding ceremony was held on the lawn by the seashore. It was a sunny day of May. About fifty close friends and relatives had attended the ceremony. The celebration was simple, yet very meaningful, and pure. The couple seemed spiritually connected. The ceremony was the union between two pure souls. It looked as if held in the fairyland in the celebration of two hearts. We could hear nothing but the sound of waves breaking on the shore and the gentle breeze blowing around. Surroundings were so pleasantly quiet that we could even feel our heartbeats. All knew that Kris was suffering from lung cancer. Also, they were not unaware that lung cancer is next to the death penalty even in the country like America. Everybody looked grave at the very realization of the fact. According to the couple's wish, the guests had brought them the plants of their favorite flowers as a wedding gift. The lawn in front of the wedding house (it was Jenny's friend's) had turned into a flower garden. Jenny was in a simple gown wrapped in a green shawl. Kris was in a short-sleeved shirt with green and blue spots on a white background and white pants. Fifty year-old Jenny and sixty-year old Kris had never got married before. It's not only unusual but nearly impossible in the American context.

They had known each other for about two years. Later they started living together in the same apartment. Two months later Kris was diagnosed with lung cancer. It turned up like an earthquake in their relationship. None of them had ever thought of marriage, but one day Jenny told me over the phone about Kris's proposing her. Jenny's happiness knew no bounds as she had given up the hope of such a proposal in that age. She sounded rather edgy at the time.

Neither Jenny and Kris nor any guest had the slightest idea how long their married life was going to live. Most of them might have doubted that the couple would celebrate their fifth wedding anniversary. It was only after their marriage that Kris had undergone chemotherapy.

I had seen Kris and Jenny four times or so after the wedding ceremony. They would

Story

What a Coincidence! What a Tragedy!

Bharati Gautam

The day was the memorial service of my very close friend Jenny's husband Kris. In fact, the second anniversary of their marriage was three days hence.

The creeks around looked like rivers and the rivers in turn like seas for the three day-long heavy rainfall. The roads were flooded. Although it was mid-May, we felt rather cold perhaps due to the rainfall. The cold was demanding at least a light jacket. The church where the service was going to be held was not quite far from our residence, yet we were nearly late because of incessant rain and the Saturday rush. The parking lot was almost full so we parked a bit away from the road. We put up our umbrella and rushed to the church. My husband and I followed the other two couples who too were late for the service. We had never attended any memorial service before. I had no idea about it at all.

In our country the memorial service is not held for ordinary people. It is sometimes held for well-known poets and artists. Obviously the attendants too are from the same circle. It was my first experience--- an ordinary person attending another ordinary person's memorial service. I was not sure what was going to happen inside. People would be crying! Shouting and yelling! Or deathly hush! I was feeling uneasy, yet curious. I did not want to regret later by missing the congregation, for Kris and Jenny both were my very close friends.

As we walked through the door, we could see different photos of Kris with a broad smile on his face. These photos were placed on the bench in the balcony. In some photos he was in his school dress. One photo in the corner showed him in the air force. At the far end of the hall there was a small photo album that contained their wedding photos taken nearly two years back. We had attended their wedding then but now we are in the memorial service. Although everyone could guess what was going to happen in the near future, it was too hard to accept the reality now.

We put our umbrella with other ones stacked in the corner before we walked in to join the congregation. Out feet leaden, hearts heavy.

The hall seemed to have a seating capacity of 200 or so. Almost all chairs were occupied. We decided to sit in the back row to mask our hesitation of the first experience in such a service. We had already placed the bunch of flowers on the dais.

There was a two-page program schedule on each chair. The front page showed one of Kris's photos in a shirt with green and black spots on a white background. He was smiling broadly. On the top was written 'Celebration of Life'. I was baffled as how they were going to enjoy the celebration of life in a mourning assembly, yet I decided to wait patiently thinking that it must have some meaning.

It was still raining heavily outside. There were all kinds of people but children. Maybe children were not supposed to be there or they did not want to come. We had left our son at home. All faces looked downcast, but no one was crying. Whoever entered the hall turned grave. The hall was completely silent except

the sporadic coughs. But the sound of gloom that reined the hall was so loud that it was ringing in all ears. The gloom seemed to be whispering to all sitting there. In the guise of Kris it seemed to have entered their hearts and making them aware of death dwelling there. How come the man who used to be around is nowhere now! All his possessions are here but he is not. Even his body was there till yesterday. What could be that element whose presence determines our presence on earth! Its absence means our absence. Perhaps, it was just a dream! I wonder how come someone could disappear for good so easily. Kris might not have disappeared either. If so, these people would not be here despite this rain. Our Kris was already reduced to ashes. He was cremated at his will. Sure enough, even if people say the deceased have gone to heaven, they must be somewhere here around us. Such thoughts were crowding into my head.

Someone on the dais looked ready to speak. Oh, he was the priest who had married Kris and Jenny. First of all, he cracked a joke about Kris. Laughter filled the hall. We were brought up in a different society. For us it was the place to mourn but not to laugh. We were supposed to shed tears even if artificial. This is what our society had taught us. I think it was my husband and I who couldn't laugh at all. According to the priest Dyan, Kris had told him in detail about the type of memorial service he wanted. He had left a detailed list that mentioned how to start the program; who were to speak what; which music to play; who were to shed light on which aspects of his life. It was Kris's will to celebrate the memorial service as the celebration of life. Then Dyan spoke about their marital life.

In the two years of married life Kris and Jenny had enjoyed their relationship to their heart's content, which other couples might not savor even in fifty long years. Two years ago the wedding ceremony was held on the lawn by the seashore. It was a sunny day of May. About fifty close friends and relatives had attended the ceremony. The celebration was simple, yet very meaningful, and pure. The couple seemed spiritually connected. The ceremony was the union between two pure souls. It looked as if held in the fairyland in the celebration of two hearts. We could hear nothing but the sound of waves breaking on the shore and the gentle breeze blowing around. Surroundings were so pleasantly quiet that we could even feel our heartbeats. All knew that Kris was suffering from lung cancer. Also, they were not unaware that lung cancer is next to the death penalty even in the country like America. Everybody looked grave at the very realization of the fact. According to the couple's wish, the guests had brought them the plants of their favorite flowers as a wedding gift. The lawn in front of the wedding house (it was Jenny's friend's) had turned into a flower garden. Jenny was in a simple gown wrapped in a green shawl. Kris was in a short-sleeved shirt with green and blue spots on a white background and white pants. Fifty year-old Jenny and sixty-year old Kris had never got married before. It's not only unusual but nearly impossible in the American context.

They had known each other for about two years. Later they started living together in the same apartment. Two months later Kris was diagnosed with lung cancer. It turned up like an earthquake in their relationship. None of them had ever thought of marriage, but one day Jenny told me over the phone about Kris's proposing her. Jenny's happiness knew no bounds as she had given up the hope of such a proposal in that age. She sounded rather edgy at the time.

Neither Jenny and Kris nor any guest had the slightest idea how long their married life was going to live. Most of them might have doubted that the couple would celebrate their fifth wedding anniversary. It was only after their marriage that Kris had undergone chemotherapy.

I had seen Kris and Jenny four times or so after the wedding ceremony. They would

busy themselves with their own work at home, or would be out travelling around the country or abroad. The couple had been savoring each moment of the last days of their married life.

One day a friend of Kris wrote on his web page that the doctor had given Kris a life expectancy of four months. The news left us completely shocked. Had it been in our context there would have been a flood of people consoling and pitying them! But nothing like this happened in their case. Rather than accepting death dejectedly and helplessly, Kris was living a meaningful life with joy and happiness in his wife's company. The couple had accepted even the curse of cancer as a blessing.

Jenny would often say."Perhaps, I would have never married if Kris hadn't suffered from cancer."

"Kris and his cancer taught me the value, beauty and mystery of life. Finally I got to know what the most precious thing in our life is". One day Jenny mailed me.

We are all ignorant about the time limit for our life. Forgetting how short-lived life we are living, we tend to ponder over eternity of our existence. We foolishly waste countless moments in petty things. Under an illusion that we have abundant time, we keep striving to achieve the unachievable, and the days come, much to our regret, when we have nothing but zero in our hands. I was thinking about Kris and Jenny as Dyane was talking about their married life.

"By leaving a detailed list of his memorial service Kris has proved that a good man doesn't trouble others even in his funeral", with Dyane's these words the hall echoed with laughter. I forced a smile.

"Kris asked me to do one more thing which I should do right now. He has left a letter in Jenny's name. He wanted me to read it out in public." A sudden silence fell over the hall as Dyane produced a letter from the envelop. My eyes were moist with tears as he began to read out the letter, breaking the hushed silence.

In the letter Kris had expressed his gratitude to Jenny for her selfless and pure love. He was so grateful for all what she had done. He was full of praise for Jenny, her greatness and devotion to his life. The letter was so emotional that the people in the hall were all sobbing by the time Dyane came to its end.

Different speakers shed light on different aspects of Kris's life. They all highlighted his short but exciting life. He did not only live for himself but for many people as well until his last breath. No one in their speech mentioned his earnings, academic qualifications, medals, and promotion. They only mentioned how Kris had touched their hearts and how he had taught them about the beauty of life.

The so-called prestige, property, position that we are chasing die with us. What remains here is the impression that one heart leaves on other hearts. All the outer coverings of these posts, medals, prestige and riches come apart one after another until there stands an ordinary human being in his natural form. The significance and meaning of our life depends on our relationship with others and how sincere we are in this relationship. Throughout the service, the guests were describing Kris as an ordinary man with the extra-ordinary sense of life and relationship. The gathering wasn't held to pity the Kris who had been bedridden for months. It was not for the feeble man whose lungs were eaten away by cancer, nor for the man who was tired of frequenting hospital and swallowed by the horror of chemotherapy, and radiation, nor even for his short life and even shorter married life. It was not held to express sympathy to Jenny and the rest of her lonely life. The people were there to celebrate Kris's more than six decades of successful life. It was the celebration of life journey made by an amiable, helpful and light-hearted man. It was the celebration of life.

[Translation of Gautam's "Kasto Sanyog, Kasto Biyog" done by Bal Ram Adhikari]

Review of "The Rebel Morning"

Willa Schneberg (USA)

After having the honor of speaking in February 2018 at the Nepal Academy on "Poetry Translation: The Art of Preserving Essence," I was given a packet of publications and books published by the Translation Department of the Academy, and in it was a small book, entitled *The Rebel Morning: An Anthology of Modern Poetry of Nepalbhasa.* I may never truly understand what a groundbreaking anthology it actually is, this first collection of Nepalbhasa poetry published by the Nepal Academy in English!

Americans are an ethnocentric bunch. The world has a sense of our historical baggage, but we know little of the histories and human rights struggles of other nations.The U.S. has long oppressed minorities, censored literature deemed subversive, and remains a country of only one official language, English. However, I was unaware until arriving in Nepal that the preservation and free dissemination of literature in the Nepalbhasa language had been at risk during dark periods of Nepali history, since the end of the Malla dynasty.

I learned that Chittadhar Hridaya was imprisoned for five years for writing "Mother" in Nepalbhasa, after his mother's death, and signing the poem "Motherless child." His signature was taken by the government as a form of protest against the diminishment of his "mother tongue" in Nepalese society. In the United States poetry isn't valued enough, nor does it have the power or respect to land an individual in jail.

I came to know aboutHridaya, this great, modern Nepalese poet, because of Nabin Chitrakar, the compiler, editor and co-translator with Sylvia Shrestha (Razopadhyay), of *The Rebel Morning,* who organized my poetry residency in Kathmandu. He educated me about his mentor Chittadhar Hridaya, who in 1951 founded Nepal Bhasa Parishad, to promote Nepal Bhasa's linguistic rights. During my residency, my first interaction program was at Nepal Bhasa Parishad. I read my poetry and members of the organization read their poems translated from Nepalbhasa into English. Many read their works from *The Rebel Morning.*

At first it eluded me, why *The Rebel Morning*was chosen as a title, since it is not a line, or a poem's title in the collection. But I have come to understand that this physical volume existing at all is an act of rebellion, and manifests the dawning of a new "morning."

Although these poems written in open forms address the quotidian, many of them reveal in "first person singular," notions of war, exile, identity, loss, regret and the "Hunt for Sunlight," which is the title of the poem by Yogendra Pradhan. These are contemporary poems in which, anaphora, personification, rhyme and off-rhyme, extended metaphor, (illustrated in "Pressure Cooker's Agony," Pratisara Sayami), and non-traditional punctuation and a rap beat are, (as in the poem "Transformation" by Sudhir Khwobi), are impressively displayed.

I will close with someexcerpts from the poems themselves. They are documents to the

angst and longing caused when language is straight-jacketed:

I don't belong in Nepal, and Nepal doesn't belong to me!

I felt that

I belonged nowhere, (*Reviewer's translation*), in the whole world

Nowhere is mine!

Chittaranjan Nepali,"Exiled within own country"

****

Truly,

Till now, painted by yesterday's light on this face

Till now, hammered yesterday's sleep in these eyes

Yes, till now, I am imprisoned in the history

Suresh Kiran, "Can't tear my face, even smells stale "

****

Willa Schneberg is a U.S. poet, ceramic sculptor, interdisciplinary artist, photographer and curator. She is the author of five collections, and received the Oregon Book Award for In the Margins of the World. Storytelling in Cambodia was inspired by her time working for the United Nations Transitional Authority in Cambodia in the early 90's. Rending the Garment is her most recent collection.willaschneberg.org

नेपाल प्रज्ञा-प्रतिष्ठान, साहित्य (अनुवाद) विभागद्वारा विभिन्न समयमा आयोजना गरिएको अनुवाद सम्बन्धी गोष्ठीमा प्रस्तुत कार्यपत्रहरू

नयाँ ज्ञान सल्काउने पुरानो बत्ती अनुवाद : वर्तमान सन्दर्भमा यसको महत्त्व र आवश्यकता

प्रा.डा. गोविन्दराज भट्टराई

Writers make national literatures while translaters make universal literature.

स्रष्टाहरूले राष्ट्रिय साहित्यको निर्माण गर्दछन् भने अनुवादहरूले वैश्विक साहित्य निर्माण गर्दछन् ।

- José Saramago

प्रारम्भ

अघिल्लो हप्ताको **इन्टरन्यासनल न्युयोर्क टाइम्सले** लेखेको छ[1]– *अबदेखि स्वचालित, ज्यादै सटीक र रियल टाइम अनुवादको आवश्यकता छ जसले अन्तर्राष्ट्रिय वाणिज्य एवम् सहयोगका क्षेत्रमा विद्यमान सम्पूर्ण व्यवधानहरू हटाओस् ।* यसरी प्रविधिका आविष्कारकहरू आफ्ना सम्पूर्ण क्षमता लगाएर यान्त्रिक अनुवादको उच्चतम प्रयोग गर्ने-गराउने निश्चयमा पुगेका छन् । त्यस्तो क्षमताको आर्जन गरिसकेका छन् । भौतिक वस्तु वा विषयको मापनीय तथ्य र विवरणको अनुवादलाई व्यापक, तीव्र र तात्कालिक गराउन यन्त्र–दासले कार्य गर्दै छ, गराउन विज्ञान सफल पनि भएको छ किनभने वर्तमान विकासगति यान्त्रिक अनुवादमा आधारित छ । परन्तु जब साहित्यिक अनुवादको कुरा उठ्छ त्यस बेला कुनै पनि यन्त्र कतै पनि सहायता गर्न असमर्थ हुन्छ । केवल कम्प्युटर कीबोर्डको अलिकति सहायता लिन सकिन्छ । तर ती ता हृदयशून्य यान्त्रिक कर्म हुन् । यान्त्रिक अनुवाद प्राविधिक विकाससँगसँगै उन्नतिको चरम उचाइमा पुगेको छ भने अर्कातिर साहित्यिक अनुवाद-कर्मको विकासमा यन्त्रको कुनै आवश्यकता रहँदैन, त्यहाँ मानवहृदय मात्र आवश्यक हुन्छ ।

साहित्यिक अनुवादको महत्ता

त्यसकारण विश्वसाहित्यका महारथीहरू पनि अनुवादको कुरा गर्दा केवल साहित्यिक अनुवादको प्रसङ्ग उठाउँछन् । त्यसको आवश्यकता र गुणात्मकताको कुरा गर्दछन् । अझ त्यसको महत्त्व र प्रभावको कुरा गर्दछन् । किनभने केवल अनुवादले नै तत्कालै उनीहरूको यशकीर्ति फैलिन जान्छ । अघि नसुनिएको स्रष्टा एकैचोटि विश्वको साझा सम्पदा बन्छ र नसुनिएको राष्ट्रको वा भाषाको नाम विश्वले लिन थाल्छ । फिनिस, डचानिस, चेक, पोर्चुगिज, टर्किस जस्ता भाषा अनि पेरू, मरिसस, पोर्चुगल, ग्वाटेमाला, फिनल्यान्ड, चिली जस्ता देशलाई नोबेल पुरस्कारले कत्रो नाम कमाइदिएका छन् नत्र कहिले यत्रो सम्मान पाउँथे होलान् । एक शताब्दी लामो नोबेल साहित्य हेर्दा यो कुरा स्पष्ट हुन्छ ।

यो वर्षको नोबेल पुरस्कार विजयी प्याट्रिक मोदिआनोले फ्रेन्चमै लेखे र उनका द सर्च वारेन्ट जस्ता कृति अङ्ग्रेजीमा आउनासाथ उनी अर्कै भए । गत वर्षको नोबेल पुरस्कार विजयी मो यानले चिनियाँमा लेखे । उनका पौ, द रेड सोर्गुम जस्ता कृति अङ्ग्रेजीमा आएपछि उनको ख्याति बहुगुणित भएको हो ।

अनेक भाषाको आवरणमा रहेका महान् स्रष्टालाई विश्वका सामु उपस्थित गराउन अनुवादको कत्रो महत्त्व छ भन्ने कुराको दृष्टान्तस्वरूप सन् २००० देखिका नोबेल साहित्य विजयी स्रष्टाको रूप हेरौँ । उनीहरूका

१ *Is translation an art or science ? Sunday, June 6-7-2015*

भाषिक विविधता हेरौँ–

सन् २००० – गाओ जिन्जियान (चीन– चिनियाँ)
सन् २००१ – भीएस नइपल (बेलायत– अङ्ग्रेजी)
सन् २००२ – इमरे केर्तेज (हङ्गेरी– हङ्गेरिअन)
सन् २००३ – जे. एम. कोत्सी (दक्षिण अफ्रिका– अङ्ग्रेजी)
सन् २००४ – एल्फिड जेलेनिक (अस्ट्रेलिया– अङ्ग्रेजी)
सन् २००५ – ह्यारोल्ड पिन्टर (बेलायत– अङ्ग्रेजी)
सन् २००६ – ओर्हान पामुक (टर्की– टर्किस)
सन् २००७ – डोरिस लेसिङ (बेलायत– अङ्ग्रेजी)
सन् २००८ – गुस्ताफ लि क्लेजिओ (फ्रान्स– फ्रेन्च)
सन् २००९ – हर्टा म्युलर (जर्मनी– जर्मन)
सन् २०१० – मारिओ भार्गोस लोसा (फ्रान्स– फ्रेन्च)
सन् २०११ – टामस ट्रान्स्ट्रोमर (स्विडेन– स्विडिस)
सन् २०१२ – मो यान (चीन– चिनियाँ)
सन् २०१३ – एलिस मुनरो (क्यानडा– अङ्ग्रेजी)
सन् २०१४ – प्याट्रिक मोदियानो (फ्रान्स– फेन्च)

यसरी हेर्दा आधीभन्दा बढी स्रष्टा अङ्ग्रेजीइतर भाषी छन्। तिनीहरू या त टामस ट्रान्स्ट्रोम जस्ता अनुवादकसमेत रहेका छन् या अरू ठुला अनुवादकको सेवा प्राप्त गरेका छन्। जापानी कुन्जाबुरो ओए अथवा यासुनारी कावाबाता, चिनियाँ मो यान, हाम्रै नजिकका विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर सबै हिसाब गर्दा आधीभन्दा बढी नोवेल लरेटहरू अनूदित छन्। अनूदित भाषाबाट त्यहाँ पुगेका छन्, सबै अङ्ग्रेजीमै चढेर त्यहाँ पुगेका छन्। कति त स्वयम् पनि अनुवादक छन्। विश्वसाहित्यलाई इतिहासको यस पक्षले ठुलो प्रेरणा दिएको छ।

ठुलाठुला अनुवादकले महान् साहित्यलाई यता लगे, उता पुऱ्याए। फ्रान्सेली बोदलेयरले अमेरिकी कथाकार एड्गर अलेन पो भित्र्याए, शटुब्रियाँले मिल्टनको प्याराडाइज लस्ट फ्रान्सेलीमा लगे, इभान बुनिनले लङफेलोको काव्य द सङ अव् हाइयावाथा, भ्लादिमिर नोवाकोभले एलिस इन वन्डरल्यान्ड र आफ्नै लोलिताको अनुवाद गरे, बोरिस पास्तरनाकले प्राउस्ट र ह्यामलेटको रूपान्तरण गरे।

हरेक साहित्यको इतिहास यस्तै आदानप्रदानले सिञ्चित छ।

अरू पनि अङ्ग्रेजीइतर भाषी अनेकौँ विश्वविख्यात स्रष्टाहरू छन् जसलाई अनुवादले नै व्यापक बनाएको छ। साहित्यिक अनुवादको प्रक्रिया, स्थान, महत्त्व वा आवश्यकताबारे ती स्रष्टाका दृष्टिकोण अत्यन्तै महत्त्वपूर्ण हुन्छन्। नेपाली साहित्य स्रष्टालाई पनि त्यस्तै कुराले अधिक प्रेरणा देला अथवा साहित्यिक अनुवादलाई नयाँ दृष्टिले हेर्न सिकाउला भनी म यस आलेखमा केही दृष्टान्त प्रस्तुत गर्न चाहन्छु।

महान् स्रष्टा र अनुवादकहरूको परम्परा

सन् १९५८ का नोवेल पुरस्कार विजयी बोरिस पास्तरनाकलाई एउटा प्रश्न सोधियो– *तपाईंको डाक्टर झिभागोको अनुवाद त्यतिसारो उपयुक्त छैन, त्यसले तपाईंको कृतिमाथि न्याय गर्दैन भनिन्छ नि ?*

पास्तरनाक बोले– हो, म यस सम्वन्धमा सचेत छु, परन्तु यो अनुवाद देखेर मलाई असीम आनन्द पनि छ, म यसले गौरवान्वित छु। त्यसपछि नै मैले मेरो कर्म र कृतिका विषयमा लेखिएका अनेकौँ चिठीपत्र (मेल) प्राप्त गर्न थालें। वास्तवमा यस्तो स्थिति कहिलेकाहीँ त अलिक बोझ जस्तो पनि लाग्दछ । ती सम्पूर्ण प्रश्न र जिज्ञासाको मैले प्रत्युत्तर गर्नुपर्दछ त्यसो भए तापनि सीमाहीन विश्वतिर पुगेर अनेकौँ व्यक्तिसित सम्वन्ध स्थापित गर्न पाउनु पनि मेरा लागि सानो कुरा होइन।

डाक्टर झिभागोका अनुवादकहरूलाई धेरै दोष नदिनोस्। उनीहरू विषयको भावभन्दा पनि शाब्दिक अर्थको पुनरुत्पादन गर्न अभ्यस्त छन्। वास्तवमा रोचक प्रकृतिको अनुवादचाहिँ क्लासिक कृतिको अनुवाद मात्र हो। त्यो ज्यादा चुनौतीपूर्ण हुन्छ। जहाँसम्म आधुनिक लेखनको कुरा छ, यसको अनुवाद गर्नु भनेको त्यतिसारो लाभदायी कर्म होइन यद्यपि यो सरल हुन सक्छ। तपाईं एक पेन्टर हुनुहुन्छ, ठिक छ, अनुवाद गर्नु भनेको पनि पेन्टिङहरूको कपी गर्नु जस्तै हो, ठ्याक्कै। कल्पना गर्नोस् तपाईं मालेभिचको[२] नक्कल उतार्दै हुनुहुन्छ। त्यो काम अत्यन्तै दिक्दारलाग्दो, बोरिङ हुँदैन र ? अनि मैले चेक साहित्यका सुप्रसिद्ध अतियथार्थवादी (सर्रियालिस्ट) स्रष्टा नेज्भाल[३]का कृति उतार्दा ठिक त्यस्तै हुन्छ। नेज्भाललाई अनुवाद गर्नु

२ *काजिमिर मालेभिच (Kazimir Malevivh) रूसी पेन्टर तथा कला सिद्धान्तकार (१८७८–१९३५), अमूर्त तथा ज्यामितीय कलाका अग्रणी।*

३ *भतेज्स्लाव नेज्भाल (१९००-१९५८) बिसौं शताब्दीका तीक्ष्ण चेक लेखक तथा सर्रियालिस्ट (अतियथार्थवादी) आन्दोलनका अग्रणी।*

ठिकै छ तर बिसौँ शताब्दीको सम्पूर्ण सिर्जना अत्यन्तै पुरानिएको छ। यसरी मलाई मैले पूरा गर्छु भनी प्रतिज्ञा गरेको अनुवाद कर्मले र विश्वसितको पत्राचारले मेरो अत्यधिक समय खाइदिन्छ।

यसरी महान् स्रष्टा पास्तरनाकले अनुवाद कर्मसित जोडिएर एउटा भिन्न कलाजगत्मा प्रवेश गर्दाको अनुभव कति गहिरो छ। एउटा समर्पित एवम् सक्षम स्रष्टाले ढुक्कै सिर्जनामा मात्र लाग्न पाउँदैन रहेछ। महाकविले धेरै समय अनुलेखन, अनुवादमा बिताउनुभो, त्यसरी बिताउनुपरेको थियो। मलाई पनि ठिक त्यस्तै अनुभव हुन्छ। गान्धीको अनुवादमा, पूर्वीय सभ्यताको अनुवादमा दुईदुई वर्ष व्यतीत भए। अझ भानुभक्तीय रामायणले तीन वर्ष खायो। यसभन्दा पहिले साझाको स्टोरिज फ्रम नेपाल र एकेडेमीको कन्टेम्पोररी नेपाली पोएम्स, जीवा लामिछानेको प्रकाशन सेलेक्टेड नेपाली एसेज, गोपाल पराजुलीकृत काव्य **नयाँ ईश्वरको घोषणा**, अर्को मोडर्न बुक्सको स्टोरिज अफ कन्फ्लिक्ट एन्ड वार गरी बितेको समय सबै जोड्दा मेरो समय निरन्तर लाग्दा खर्च भएको १२ वर्ष आफ्ना लागि होइन देशको भाषा र साहित्यका लागि अर्पित कर्म हुन्। समयले अहिले तिनको महत्त्व बुझ्दैन, बुझ्न थाल्दा आफ्नो उमेरै सकिएको हुन्छ। मेरा अग्रजहरू– प्रा. अभि सुवेदी, श्री माधवलाल कर्माचार्य, श्री लीलाप्रसाद शर्मा जस्ता समर्पित विद्वान् स्रष्टाहरूले अझ अप्ठ्यारो समयमा धेरै काम गर्नुभएको छ। तर त्यसको प्रतिफल तत्काल कतै देखिँदैन त्यसैले अनुवाद कठिन र प्रतिफलरहित कर्मको रूपमा स्थापित छ। तर अनुवाद नउठेसम्म कुनै देशको साहित्य उठ्तैन।

यी हुन् अनुवाद कर्म, एउटा स्रष्टाका लागि अनिच्छापूर्वक तर प्रेम र श्रद्धाले गर्नुपर्ने कर्तव्यहरू आफ्नो भाषा/साहित्यको उन्नति-प्रेमले वशीभूत भएर गरिने कर्महरू। यस्तो कठिन कर्ममा समर्पित मेरै कृतिका अनुवादक (लेखनाथ शर्मा पाठक तथा बलराम अधिकारी) लाई पनि धन्यवाद छ। पास्तरनाकले एक ठाउँ भनेका छन्– इगच धयचपक धभचभ मष्अतबतभम दथ तष्भक अर्थात् हाम्रा सिर्जनाहरू समयको आदेशअनुसारका कर्म हुन् तर सिर्जना गर भनी हृदयले अराउँछ जब कि अनुवाद गर भनी समयले। महाकविलाई समयले नै अरायो, तासकन्द सम्मेलनमा उनले भने– अनुवादको अभावले नेपाली साहित्य पछि परेको छ।

क्षमतावान् स्रष्टा समय चोरेर पनि अनुवादमा लाग्ने गर्दछन्। जस्तो कि हारुकी मुराकामी (१९४९) को कुरा गरौँ। वर्तमान कालका एक अद्वितीय विश्वलेखकमा गणना हुने जापानी मूलका स्रष्टा मुराकामीले अङ्ग्रेजी साहित्यलाई जापानीमा पुऱ्याए। उनी अत्यन्तै सक्रिय अनुवादकमा पनि गनिन्छन्। तर उनले रेमन्ड कार्भर, टिम ओब्रिएन, स्कट फिज्गेरल्ड जस्ता विशिष्ट दर्जाका अमेरिकी स्रष्टालाई जापानीमा लानुको स्वार्थ अथवा अर्थ आफ्नो निमित्त थिएन; केवल देशवासी, जापानी पाठकको निमित्त थियो। यसरी अनुवादक परहितकारी र लोकोपकारीसमेत हुन्छ। त्यसैले कति वेला साहित्य स्रष्टाभन्दा साहित्य अनुवादक अझै ठुलो हो कि जस्तो लाग्दछ, तर धेरैजसो एउटै मानिसभित्र यी दुवै व्यक्तित्व हुन्छन्; अनि ती अन्योन्याश्रित छन् जस्तो लाग्दछ। स्रष्टाले अघिअघि कोदालो हान्दै जान्छ, अनुवादकले पछिपछि माटो सम्याउँदै, वाटो खन्दै। तर अनुवादक कहिल्यै पनि अघि लाग्न सक्तैन, ऊ नित्यको अनुचर हो, किनभने स्रष्टा पहिल्यै जन्मिसकेको छ। ऊभित्रको अर्को (स्रष्टा) व्यक्तित्वचाहिँ अलिक स्वार्थी र स्वकेन्द्री हुन्छ; उसमा अरूका गाईवस्तुको गोठालो हुनुभन्दा आफ्नै भेडी गोठालो हुने अहम् जाग्छ र सिर्जना पनि गर्छ। फेरि गहिरिएर हेर्दा स्रष्टा र अनुवादक एकअर्काको रस पिएर बाँचेका विरुवा जस्तै पनि हुन्।

मुराकामीको प्रमुख क्षेत्र सिर्जना नै हो। त्यसैले उनलाई सिर्जनाभन्दा परका तर अन्तर्सम्बन्धित अरू दुई विषय– समालोचना र अनुवादसित सम्बद्ध प्रश्न सोधिएका थिए– *तपाईं अरूका कृति पढ्न कतिको भ्याउनुहुन्छ?*

म केही पढ्छु तर अहँ तिनको समीक्षा गर्दिनँ, म यस्ता कुरामा फस्न चाहन्नँ।

उनलाई समालोचना-टिप्पणी आदि कर्म व्यर्थ लाग्दा रहेछन्। स्रष्टाले त्यता लाग्नु फस्नु ठान्दा रहेछन्।

किन त्यता नलाग्नु भएको त?

म के सोच्तछु भने मेरो कर्म भनेको मानव व्यवहारको निरीक्षण गर्नु हो, विश्वलाई हेर्नु (निरीक्षण गर्नु) हो, तिनीहरूको जज गर्नु होइन। म जहिले पनि तथाकथित 'निष्कर्ष' दिने कर्मभन्दा टाढै रहन चाहन्छु।

म हरेक कुरालाई यो जगत्समक्ष पूर्ण रूपले खुल्लै छोड्न चाहन्छु, निष्कर्षहीन ।

म समालोचना लेखनभन्दा अनुवाद कर्म मन पराउँछु । किनकि अनुवाद गर्दा तपाईंले कुनै कुराको निर्णय दिनु पर्दैन, फैसला गरिरहनु पर्दैन । म लाइन-बाइ-लाइन अनुवाद गर्छु, त्यो रुचिको कर्मले आफ्नो शरीरमा प्रवेश गरेर मस्तिष्कसम्म पसेको/छिचोलेको अनुभव गर्न चाहन्छु । त्यसो त यस जगत्मा समालोचक पनि चाहिन्छ तर त्यो मेरो क्षेत्र होइन ।

प्रसिद्धि कमाइसकेका रूसी, चिनियाँ, अरबी, जापानी अर्थात् अङ्ग्रेजीइतर भाषी स्रष्टाहरूका आआफ्ना अनुवादक हुन्छन् । निजी, खारिएका नामी हुन्छन् । एउटा कृति पूरा हुन नपाउँदै अनुवादकहरू काम थालिहाल्छन्, परिणामस्वरूप मौलिक र अनूदित सँगसँगैजसो आएपछि जगत् हल्लिन थाल्छ ।

सहकार्य हुन सके उत्तम हुन्छ

अनुवाद एक सहकार्य हो । त्यसो हुन सक्यो भने त्यो स्तरीय हुन्छ तर अधिकांश अवस्थामा दुवै सँगसँगै बाँचिरहँदैनन्, स्रष्टा बितिसकेको हुन्छ, सिर्जना मात्र नयाँ अनुवादक पर्खिरहेको हुन्छ । सत्रौं शताब्दीको **डन क्विजट**को के कुरा गर्नु इसापूर्व छैटौं शताब्दीको **डिभाइन कमेडी**समेत नेपालीमा अनूदित छन्, सर्भान्टिस कहाँ पुगे, अझ होमर कहाँ पुगे । अनुवादकले जीवित लेखकलाई पाउनु ठुलो कुरा हो । धेरैजसो पाइँदैन ।

आफ्नो कृतिको अनुवाद भएको बेला अनुवादकसित कसरी समन्वय गर्नुहुन्छ भन्ने प्रश्नको उत्तरमा मुराकामी बोलेका छन्– अनुवाद कर्ममा लीन भएको बेला उनीहरू मलाई अनेक प्रश्न सोध्छन् अनि पहिलो खेस्रा तयार भएपछि म त्यो पढ्छु । कहिले म पनि केही सल्लाह-सुझाव दिन्छु, मेरा पुस्तकको अङ्ग्रेजी संस्करण अत्यन्तै महत्त्वपूर्ण हुन्छ । किनभने क्रोसिया, स्लोभेनिया जस्ता ससाना देशले पनि अङ्ग्रेजीबाटै आफ्नो भाषामा लान्छन्, जापानीबाट होइन । (यसको दृष्टान्त त नेपालमा पनि देखेका छौं– झमक घिमिरेको जीवन काँडा कि फूल अङ्ग्रेजीमा पुगेपछि मात्रै चिनियाँमा गयो, त्यसबाट जर्मनमा जाँदै छ । सेतो बाघमा पनि त्यही लागू हुन्छ ।) त्यसकारण यो अनुवाद अत्यन्तै सटीक हुनुपर्छ । पश्चिमा प्रकाशन-गृहहरू पनि त्यस्तै सचेत हुन्छन्, उनीहरू ठुलाठुला विज्ञको सेवा तयार राखेर बसेका हुन्छन् । रक्ष राईको कवितासङ्ग्रहको अनुवादमाथि बेलायतको अथर हाउसले प्रकाशन प्रक्रिया आरम्भ गरेको दुई वर्ष पुग्न लाग्यो । कहिले लेखकलाई, फेरि अनुवादकलाई अनि सम्पादकलाई एकएक शब्द-प्रयोगको निरूपणमा, तिनका अर्थको निरूपणमा सोधेर, गहिरिएर, खिपेर, चिल्ल्याएर, निश्चित गरेर लान्छन् । त्यसो गरेर मात्रै प्रक्रिया टुङ्ग्याएका छन् । यतिखेर बलराम अधिकारी र म संलग्न भएको पोएट इन किलिङ जोन शीर्षक कवितासङ्ग्रह प्रकाशनको तत्परतामा छ ।

नेपालमा चाहिँ अनुवादले त्यो स्थान प्राप्त गर्न अझै कति लाग्छ । कुनै पनि नेपाली लेखक-अनुवादकका पर्सनल सेक्रेटरी छैनन्, टाइपिस्ट छैनन्, कसरी व्यावसायिकताको जन्म हुन्छ ? यहाँ अन्तर्दृष्टि बेगरका अनुवादले काम लिन्छन्, असाहित्यिकले साहित्यको काम लिन्छन् । फेरि जस्तो आयो त्यस्तै छाप्ने प्रकाशक छन् । त्यसरी भएका साहित्यिक अनुवाद पनि अत्यन्तै स्तरहीन छन् । माइकल हट, चिल्कोट, फिलिप पियर्स, ग्रेटा राणा, ल्यारी हार्टसेल जस्ता केही अन्यभाषी अनुवादकले नेपाली साहित्यको व्यापकीकरणमा केही काम गरेका छन् तर ती पनि उत्रा व्यावसायिक होइनन् । प्रत्येक नामी स्रष्टाको एक वा दुई अनुवादक हुने दिन कहिले आउला ? लेखक अनुवादक दुवै समकालीन रहेछन् भने र प्रकाशकले पनि स्तरीकरणको ख्याल राख्न सक्यो भने कृति राम्रो कृति आउँछ तर पुराना कृतिका अनुवाद कर्मको नियन्त्रक कोही हुँदैन, हाम्रो जस्तो मुलुकमा त्यो कर्म अनधिकृत मनपरी हुन जान्छ किनभने त्यसको मूल्याङ्कन गर्न खोज्ने कोही हुँदैन, त्यो स्तरहीन हुन्छ ।

समालोचकले मुराकामीलाई अर्को एक प्रश्न साधे– *तपाईं अङ्ग्रेजीबाट जापानीमा लैजाँदा रेमन्ड कार्भर, जोन अर्भिङ, एफ स्कट फिट्स्जेराल्ड जस्ता यथार्थवादी लेखकहरूका कृति अनुवादमा अभिरुचि देखाउनुहुन्छ । के एउटा पाठकको रूपमा तपाईंले ती नामको चयन गर्नुभएको हो कि अथवा तिनका कृतिले तपाईंको लेखनमा सहयोग पुऱ्याउने पो हुन् कि ? किन ती रोज्नुभयो ?* भन्दा मुराकामीले उत्तर दिएका छन्– मैले जजसको अनुवाद गरेको छु ती सबैले पुस्तक लेखेका छन्, ती कृतिबाट पनि म केही सिक्न सक्तछु । मुख्य कुरा त त्यही हो । म यथार्थवादी

लेखकबाट नै धेरै सिक्तछु, तिनीहरूका कृति अनुवाद गर्नलाई अत्यन्तै सूक्ष्म अध्ययनको अथवा मिहिन पठनको आवश्यकता पर्दछ । त्यस्तो गहिरो पठनबाटै म तिनका रहस्यको उद्घाटन गर्न सक्तछु । मैले डन डेलिलो, जोन बार्थ अथवा टामस पिन्चन जस्ता लेखकको अनुवाद गर्ने हो भने एउटा दुर्घटना हुनेछ– उनीहरूका उन्मादमा मेरो मूर्खता ठोकिएपछि के हुन्छ ? त्यसो त म उनीहरूका कृतिको प्रशंसा गर्दछु परन्तु अनुवादका लागि ता म यथार्थवादी स्रष्टा नै रोज्दछु । (यथार्थवादी साहित्यको महत्त्व यस धारणाले प्रस्टचाउँछ ।

यसबाट के बुझिन्छ भने विश्वलेखन जता पुगे पनि यथार्थवादको आकर्षण अनन्त छ ।

यी वार्तालापका केन्द्र रहेका मुराकामीको योगदानले के देखाउँछ भने ठुला लेखक उनी झन् ठुला अनुवादक पनि रहेका छन् । समालापीले फेरि अर्को प्रश्न सोधे–*म तपाईंका आफ्नै कृतिको अनुवाद प्रक्रियाबारे केही प्रश्न गर्न चाहन्थें । तपाईं स्वयम् पनि एक कुशल अनुवादक हुनुहुन्छ, त्यसकारणले अनुवादमा उत्पन्न हुने संकटबारे पनि तपाईं सचेत हुनुहुन्छ होला ? तपाईंले आफ्नै कृतिका अनुवादकचाहिँ कसरी रोज्नुभयो नि ?*

मुराकामी बोल्छन्– मेरा तीन जना अनुवादक छन् अल्फ्रेड बर्बाम्, फिलिप ग्याब्रिएल र जे रुबिन । मेरो नियम के छ भने जो पहिले आउँछ उसैलाई प्राथमिकता छ । हामी मित्र हौँ, त्यसैले उनीहरू इमानी छन् । उनीहरूले पहिले मेरो कृति पढ्छन् *अहो कृति साँच्चै प्रशंसनीय रहेछ, म यसको अनुवाद गर्छु* भन्दै जो पहिले आउँछन् उनैलाई सो दिन्छु । म स्वयम् अनुवादक भएकाले मलाई थाहा छ– एउटा असल अनुवादकको मुख्य चरित्र भन्नु नै आफ्ना कर्मप्रति निष्ठावान् रही नित्य उत्साही हुनु हो । कुनै व्यक्ति असल अनुवादक हो तापनि उसलाई अनुवाद्य कृतिप्रति त्यति अभिरुचि रहेन रहेछ भने कथाको त्यहीँ नै अन्त्य हुन्छ । अनुवाद अत्यन्तै कठिन कर्म हो र यसले अवश्य लामो समय लिन्छ ।

अमर कृतिको अमर अनुवाद

यसरी प्रत्येक अमर कृतिका साथमा अर्को अमर अनुवाद जोडिन्छ । महान् स्रष्टाले नै अनुवादकलाई महान् बनाउँछ, महान् अनुवादकले नै महान् स्रष्टा चिनाउँछ । यो एक आश्चर्यलाग्दो अन्तर्सम्बन्धको कुरा रहेछ । कमजोर स्रष्टाले अनुवादकको प्राण लिन्छ, कमजोर अनुवादकले असल कृतिको पनि प्राण लिन्छ । एक जना झमक भट्टराई नामक अनुवादकलाई सम्झिन्छु– उनले मुनामदनको भ्याउरे लयमै अनुवाद गर्ने भए यस्तो नगर्नू, अङ्ग्रेजीमा यो लय छैन, भनेको मानेनन् र मुनामदनको प्राण लिएर छोडेका छन् । त्यो हास्यास्पद कृति बजारमा बिक्तै छ । छन्द र लयको कहिल्यै अनुवाद हुन सक्तैन । एक उदाहरण :

मदन भोट जान्छन्

डाँडा र काँडा, उकाला ठाडा, जङ्घार हजार,
भोटको बाटो ढुङ्गा र माटो नङ्गा र उजार,
कुइरो डम्म, हिउँले टम्म त्यो विष फुलेको
सिम्सिमे पानी, बतास चिसो बरफ झैँ डुलेको,

Madan departs for Tibet

Hills and mountains, vertical steep, fording thousands of lane

Way to Tibet, rocky and muddy, infertile and barren

Covered with could, covered with Snow, blossoming poison shrub

Drizzling rainfall, and the wind blowing, very cold icy throb.

–झमक भट्टराईको मुनामदनको अङ्ग्रेजी अनुवाद पृष्ठ २० र २१

सन् १९८२ का नोबेल पुरस्कार विजेता मार्केज कसरी विश्वप्रसिद्ध भए ? कसरी उनी बिसौँ शताब्दीका अद्वितीय आख्यानकारमा गनिए । गत वर्ष चीनको यात्रामा देखें– त्यहाँका प्रत्येक विशिष्ट स्रष्टालाई मैले *मार्केज पढेको* छु भन्नेमा गर्व थियो । वास्तवमा बिसौँ शताब्दीकै विशिष्ट प्रयोगवादी आख्यानकारमा मार्केज एक हुन् । त्यसैले उनी युलिसिजका लेखक जेम्स ज्वाइस जत्तिकै कठिन (दुर्बोध्य) पनि ठहरिन्छन् । तर आधुनिक चीनमा साहित्य पाठकको एक सर्वेक्षण हेर्दा त्यहाँ सबैभन्दा बढी रोयल्टी पाउने जेके रौलिङ र दुई नम्बरमा मार्केज रहेछन् । उनीहरूका कृति त्यसरी अनूदित छन् । क्लिष्ट भाषा प्रयोगले साहित्य गतिलो हुने होइन, यसको नवीनताले प्रयोगको कल्पनाशीलता र चमत्कारले रहेछ । मार्केजले त्यही शक्ति आर्जन

गरेका छन्; प्रयोग गरेका छन् ।

मार्केजलाई महान् बनाउने, विश्वव्यापी बनाउने एक जना विद्वान् छन्, ती हुन् ग्रेगोरी रबासा । प्राध्यापक रबासा दक्षिण अमेरिकी अनुवादकहरूमध्ये आद्यपात्रको रूपमा गनिन्छन् । दक्षिण अमेरिकी साहित्यको दुई तिहाइ भागले विश्वव्यापी प्रशंसा पाउने कारण रबासा एक्लैले गरेको जीवन्त अनुवाद नै हो । १९८२ का नोवेल पुरस्कार विजेता कोलम्बियाली मार्केज मात्र होइन २०१० का नोबेल विजेता पेरुभिअन स्रष्टा भार्गस लोसाका अनुवादक पनि उनै रबासा हुन् । अरू छन् जोसे लजामा, जुलिओ कोर्टाजर, सिगेल एन्जेल जस्ता स्रष्टालाई महान् उचाइमा पुऱ्याउने अनुवादक पनि उनै रबासा हुन् । तसर्थ जगत्ले एक मुखले रबासाको प्रशंसा गर्दछन्– कसैले 'नयाँ भाषामा जन्मेको' व्यक्ति भने, कसैले 'मौलिकतामा पाइने सूक्ष्मता एवम् कवित्वलाई भव्यताका साथ पुनर्जीवन दिने शक्तिका धनी' भने । सबैले एउटै कुराको प्रशंसा गरेका छन्– रबासाको अनुवाद यति सफल र स्पष्ट छ कि अनुवादक स्वयम्ले पाठकको ध्यान भङ्ग गराउँदैन किनकि रबासाले दुरुस्तै नक्कल उतार्न जानेका छन् । अरू समीक्षकले भनेका छन्– धेरै द्विभाषी पाठक रबासाको अङ्ग्रेजी पढ्न मन पाउँछन् किनभने यो मौलिक स्पेनिसभन्दा अझ प्रस्ट हुन्छ । उनै रबासा हुन् जसले मार्केजको वन हन्ड्रेड इयर्स अफ सोलिच्युडको अनुवाद गरे जसले उनलाई नोबेल पुरस्कार दिलायो । त्यसकारण मार्केज स्वयम्ले पनि खुसीको क्षणमा बोलेका छन्– *मलाई स्पेनिस भाषाको आफ्नो कृतिभन्दा रबासाको अङ्ग्रेजी संस्करण ज्यादा मन पर्दछ ।* रबासाको अरूले पनि प्रशंसा गरेका छन् । विलियम केनेडीले भनेका छन्– वन हन्ड्रेड इयर्स अफ सोलिच्युड जस्तो कृतिकै आधारमा भन्न सकिन्छ ग्रेगोरी रबासा आजसम्म जन्मेका विश्वका सारा अनुवादकमध्ये सर्वश्रेष्ठ हुन् ।

यो सम्झिँदा हाम्रो मन भरङ्ग हुन्छ । कुनै पनि साहित्यलाई व्यापक बनाउने शक्ति अनुवाद नै रहेछ, योग्य अनुवादक रहेछ । त्यसो त हाम्रोमा नेपाली साहित्यको आरम्भकालकै पनि पुष्करशमशेर, ऋद्धिबहादुर मल्ल, महाकवि देवकोटा यस्ता केही नाम आउँछन् तर हाम्रो साहित्य नै उठिनसकेकाले त्यसको अनुवाद पनि लटपटिएर झारजङ्गलमै हराएको बिरुवा जस्तो हुन गएको छ । अझै उठेको छैन । अहिले अनुवादप्रति अभिरुचि बढ्दै छ तर योग्य अनुवादकको ठुलो अभाव छ । यो कठिन र अनाकर्षक कर्म रहेछ ।

यस सन्दर्भमा म अर्का एक महान् जादुगर स्रष्टा जोर्गे लुई बोर्गेस (१८९९-१९८६) को नाम लिन चाहन्छु । अर्जेन्टिनिअन कवि, निबन्धकार बोर्गेस विश्ववन्द्य स्रष्टा हुन्, उनको नाम अनेकपल्ट नोबेल पुरस्कारमा चयन गरियो तर फेरि सधैँ अस्वीकृत भयो । उनी यस्तो निरन्तर अपमानले दुखित हुँदै नोबेल प्रबन्धक स्लाभ देशहरूलाई गाली गर्दै बिते ।

विश्वसाहित्यमा अत्यधिक अनूदित स्वयम् पनि अनुवादक स्पेनिस साहित्यका एक स्तम्भ बोर्गेसलाई एक दिन अन्तर्वार्ताकारले सोधे– *तपाईंको त्यो फलानो कथा अनुवाद भएदेखि कसरी व्यापक हुनुभयो नि, अचानक, एकैचोटि ।*

हो त, म कविता छोडेर कथामा लागेँ भने मलाई कथाजगत्ले ग्रहण गर्ने छैन भनी खुब डराएको थिएँ तर एउटा कथाको अनुवादले मेरा जीवनका सारा ढोका खोलिदियो । नत्रभने मलाई कसैले पनि यसरी अनुवाद गर्ने थिएन । त्यसपछि मेरा कथा फ्रेन्चमा गए, त्यहाँबाट म अनेक भाषामा पस्न थालेँ । पहिलोपल्ट मेरा अनुवादक इबारा थिए । उनी मेरा मित्र पनि हुन्, उनले स्पेनिसबाट फ्रान्सेलीमा लगे । उनले मेरा कथालाई निकै सुधारे पनि ।

होइन तपाईंको पहिलो अनुवादक ता काइल्वा होइन र ?

ए हो रहेछ, इबारा र रोजर काइल्वा । निकै उमेर पाकेका मान्छे । मलाई बिस्तारै थाहा हुन थाल्यो अनेक पाठक संसारभरि मेरा कृति पढ्न इच्छुक छन् । यो आश्चर्य लाग्दो कुरा छ । त्यसयता मेरा लेखहरू अङ्ग्रेजीमा, स्विडिसमा, फ्रान्सेलीमा, इटालियनमा, जर्मनमा, पोर्तुगिजमा, डेनिसलगायत कति स्लाभ भाषामा पुगेका छन् । जब म अतीत सम्झन्छु– सन १९२२ मा मैले प्रथम कृति प्रकाशित गरेको थिएँ । त्यसका जम्मा ३७ प्रति मात्र बिक्री भएका थिए । त्यो हेर्दा आजको दिन मेरो निम्ति आश्चर्यपूर्ण भएको छ । अनुवादले नै मलाई कहाँ पुऱ्याएको छ ।

बन्द ढोका खोलेर विश्वतिर

यस्तरी एक स्रष्टाका सधैँ बन्द रहने ढोका खोलेर अचानक विश्वको अघि देखाउने अनुवादक (वा

अनुवाद) सानो कुरा होइन ।

नेपालीमा साहित्यिक अनुवादलाई व्यवस्थित रूपले अघि बढाउने मार्ग पूर्णरूपले टालिएको छ। सर्वप्रथम त यहाँ अनुवादको कुनै संस्था छैन, त्यसको मूल्याङ्कन, प्रकाशन, वितरण, नियन्त्रण आदिमा समर्पित कुनै संस्था छैन । त्यसमाथि कुनै जर्नल पत्रिका छैन, अझ ठुलो कुरा अनुवादमाथि कुनै पुरस्कार, सम्मान, विद्वत्वृत्ति केही छैन ।

दोस्रो कुरा हामी अङ्ग्रेजी, जर्मन, फ्रेन्च, स्पेनिस जस्ता समृद्ध भाषाको सम्पर्कभन्दा टाढा छौँ। कुनै नेपाली स्रष्टाले वा हाम्रा लेखनले त्यस्ता भाषामा परिचय र प्रभाव पुऱ्याउन सकेको छैन । प्रथम परिचय नबनाएसम्म, एउटा गोरेटो नखनेसम्म हामीलाई वारपार गर्न गाहारो पर्ने रहेछ। स्थानीय भाषाहरू स्थानीय भूगोलभित्र सीमित छन् भने हिन्दीको प्रयोगले पनि हामीलाई भारतवर्षसम्मको दर्शन गराउँछ । टाढा पुग्नु त लामो साँघुकै आवश्यकता पर्दछ । हामी ससाना फड्के तर्छौं, झोलुङ्गे पुल पनि छन्, तर महादेश कट्ने लामा साँघु बनिएका छैनन् । अबउप्रान्त अनुवादको महत्त्वलाई उच्च प्राथमिकता दिऔँ, योग्य अनुवादकलाई उच्च सम्मान प्रदान गरौँ र नेपाली साहित्यलाई उठाउने कर्ममा समर्पित भएर लागौँ। तत्काल अनुवाद हुन सके मात्रै असल कृतिले विश्वपाठक भेट्तछ नत्र एघारौँ शताब्दीको उमर खैय्यामले छ सय वर्ष लामो प्रतीक्षा गर्नु परेझैँ हुन्छ । नेपाली भाषामा पनि उमर खैय्यामका रुबाइका आठ भिन्न संस्करण छापिएका छन् तर छ सय वर्ष अन्धकार ओडारमा बाँचेका खैय्यामलाई कस्तो भयो होला ?

जर्ज स्टेइनरले भनेका छन्– *प्रत्येक भाषा एउटा संसार हो । अनुवाद नभएसम्म हामी त्यस्ता गाउँहरूमा बसिरहन्छौँ जसको वरिपरि मौनताको सिमाना हुन्छ ।*[४]

विश्वतिर फर्केर हेर्दा नेपाली साहित्य पनि मौनताको सीमानाले घेरिएर निदाइरहेको छ ।

साहित्यको महान् युग भनेको सायद सदैव अनुवादको महान् युग पनि रहेको छ ।[५]

धन्यवाद

सन्दर्भ

अधिकारी बलराम. २०७१. **अनुवाद सिद्धान्त र प्रयोग** (ऐतिहासिक एवम् समसामयिक विश्लेषण) काठमाडौं : त्रिपिटक प्रकाशन ।

Boris Pasternak Interviewed by Olga Carlisle in **The Paris Review** The Art of Fiction No. 25

Simon de Beauvoir Interviewed by Madelein Cobeil in **The Paris Review** The Art of Fiction No. 35

Jorge Lois Borges Interviewed by Ronald Christ in **The Paris Review** The Art of Fiction No. 39

V. S. Naipaul Interviewed by Jonathan Rosen, Tarun Tejpal in **The Paris Review** The Art of Fiction No. 154

Haruki Murakami Interviewed by John Wray in **The Paris Review** The Art of Fiction No. 182

Bhattarai, Govinda Raj (2004). **An Introduction to Translation Studies.** Kathmandu: Ratna Pustak bhandar.

४ *Every language is a world. Without translation we would inhabit parnishes bordering on silence— George Steiner.*

५ *A great age of literature is perhaps always a great age of translation— Ezra pound.*

अनुवाद साहित्यमा लक्ष्मीप्रसाद देवकोटाको योगदान

प्रा.डा. कृष्णचन्द्र शर्मा

१. पृष्ठभूमि

देवकोटाले नेपाली साहित्य समृद्ध बनाउन जीवनभरि तीन तरिकाले प्रयत्न गरिरहे । मौलिक लेखनमार्फत, पश्चिमा समृद्ध दर्शन र साहित्यका विषयवस्तु एवं पूर्वीय दर्शन र साहित्यका विषयवस्तुलाई नेपाली साहित्यमा अनुकूलन गरेर र अङ्ग्रेजी साहित्यका विभिन्न विधाबाट नेपालीमा अनुवाद गरेर तथा नेपाली साहित्यका महत्त्वपर्ण लेखहरूलाई अङ्ग्रेजीमा अनुवाद गरेर । नेपाली साहित्यमा अनुवादको महत्त्व र यसको योगदान बुझ्न नेपाली साहित्यको थालनीको युग र यसैसित गाँसिएको अनुवाद परम्परा बुझ्न जरुरी हन्छ ।

नेपाली साहित्यको थालनीको युग जसलाई प्रारम्भिक काल (१३०७-१९२३) भनिन्छ (भट्टराई, इ. १९९७) । यसै कालमा मौलिक लेखनका साथसाथै अनुवाद साहित्यको बीजारोपण भएको थियो । संस्कृत भाषामा रहेका साहित्यिक र गैरसाहित्यिक दुवै खाले ग्रन्थहरूको अनुवाद भयो । यस क्रममा संस्कृत स्रोत भाषा र नेपाली लक्ष्य भाषाका रूपमा रहे । यस कालको नेपाली लेखनलाई अभिलेखन काल पनि भनिन्छ । नेपाली भाषा जसलाई पहिले खस भाषा भनिन्थ्यो त्यसको लेख्य रूप राजा-महाराजाहरूको शिलालेख, ताम्रपत्र, भोजपत्र र दस्तावेजमा फेला पर्छ । यस कालमा संस्कृत पढेका व्यक्तिहरूले नेपालीमा लेखन सुरु गरेकाले संस्कृत साहित्यका ग्रन्थहरूको नेपाली अनुवादको प्रधानता देखिन्छ । महाभारत विराट्पर्व, गदापर्व, उद्योग पर्व, अध्यात्मरामायण, हितोपदेश, दशकुमार चरित, मुद्राराक्षसलगायतका संस्कृत ग्रन्थहरू नेपालीमा अनुवाद भएको देखिन्छ । साहित्यका अतिरिक्त धर्म, राजनीति, आयुर्वेद, ज्योतिष, नीतिशास्त्रका संस्कृत ग्रन्थको नेपालीमा अनुवाद भएको पाइन्छ ।

यस कालको अनुवाद एकल दिशात्मक थियो संस्कृतबाट नेपाली । तर केही सीमित सामग्री भने अङ्ग्रेजीबाट नेपालीमा अनुवाद भएको पाइन्छ । सुरुका दिनमा नेपाली अनुवाद परम्परा हेर्दा उत्तर भारतको बनारसबाट पढेर आएका विद्वान्हरूले संस्कृत ग्रन्थहरू नेपालीमा अनुवाद गरेको देखिन्छ भने दार्जिलिङबाट आएका विद्वान्ले अङ्ग्रेजी भाषाका ग्रन्थलाई नेपालीमा अनुवाद गरेका र आसाम र कलकत्तामा पढेर फर्केकाले अङ्ग्रेजी, बङ्गाली र आसामी साहित्यका ग्रन्थ नेपालीमा अनुवाद गरेको पाइन्छ (शर्मा, ८) । वि.सं. १९९० सालसम्मको नेपाली साहित्यको इतिहास बढी मात्रामा अनुवाद र अनुकूलनको इतिहास हो भन्दा धेरै फरक पर्दैन । नेपाली साहित्यको व्यवस्थित थालनी भानुभक्तले अध्यात्म रामायणको अनुकुलन गरेबाट नै प्रारम्भ भएको हो ।

२. अनुवाद प्रवर्द्धन गर्ने संस्था

नेपाली साहित्यमा अनुवादको प्रवर्द्धन गर्नमा वि.सं. १९७० मा स्थापित गोर्खा भाषा प्रकाशनी समिति र १९७६ मा स्थापित त्रिचन्द्र कलेजको ठुलो योगदान रहेको छ । गो.भा.प्र.स. पछि नेपाली भाषा प्रकाशिनी समितिमा परिणत भयो र त्यसकै तत्त्वावधानमा नेपाली भाषा अनुवाद परिषद् १९९४ मा गठन भयो । यसले १९९७ सालमा २४ पुस्तक प्रकाशनको योजना बनायो । २४ पुस्तकको लक्ष्य राखिए पनि १८ पुस्तकहरू मात्र छाप्न सफल भयो । त्रिचन्द्र क्याम्पसका कक्षाहरूमा पढाउनका लागि नेपाली भाषा साहित्यको पाठ्य पुस्तक तयार पार्नुपर्ने थियो । साथै अङ्ग्रेजी भाषाका शास्त्रीय ग्रन्थहरूको अनुवाद पनि आवश्यक भएकाले ने.भा.अ.प. नै यो काम गर्ने जिम्मा पाएको थियो । यी पुस्तकहरूको छपाइ नेपाली साहित्यको इतिहासमा महत्त्वपूर्ण घटना हो । साहित्यको उत्थानका लागि मुलुकका प्रतिभाहरू

एकै ठाउँमा जुटेर काम गरेको यो अभूतपूर्व घटना हो । लक्ष्मीप्रसाद देवकोटाले गो.भा.प्र.स. हुँदै ने.भा.प्र.स. र ने.भा.अ.प. रहेर लामो समय काम गरे । नेपाली साहित्य समृद्धिमा उनले अतुलनीय योगदान गरेका छन् । देवकोटाको *प्रसिद्ध प्रबन्ध सङ्ग्रह* अङ्ग्रेजी भाषाका प्रसिद्ध १३ जना लेखहरू : वेन जोन्सन, सर टमस ओभर्वरी, आइज्याक वाल्टन, जोजेफ एडिसन, जोनाथन स्विफ्ट, ड्यामिड ह्युम, विलियम कुपर, स्यामुअल टेलर, कलरिज, चार्ल्स ल्याम्ब, विलियम ह्याजलिट, जेम्स हेनरी ले हन्ट, रवर्ट लुइ स्टिभेन्सन गरी जम्मा तेरवटा लेखकको अनुवाद र त्यो पनि उनीहरूको व्यक्तित्वलाई कायमै राखेर गरेका छन् । यस कामले देवकोटा अङ्ग्रेजी निबन्ध विधाका प्रखर ज्ञाता थिए भन्ने कुरा स्पष्ट रूपमा देखाउँछ ।

३.देवकोटाको लेखनको आदर्श धरातल

देवकोटाको समग्र साहित्य लेखन प्राचीन आर्य आदर्शबाट प्रेरित छ । त्यो आदर्श भौगोलिक र राजनीतिक नभई विशुद्ध दार्शनिक र सांस्कृतिक आदर्श हो । प्राचीन कालका ऋषिमुनिहरूको जीवन प्रकृतिसित तादात्म्य राख्दथ्यो । भारद्वाज र कण्वका आश्रमको परिवेशमा पशु, पक्षी र मानव सबै एकै ठाउँमा एक परिवारका सदस्यका रूपमा खेल्न र रमाउन सक्दथे । त्यहाँ जिजीविषा र सात्त्विकताको मात्र ठाउँ थियो शत्रुता र हिंसा भावको कुनै ठाउँ थिएन । त्यसैले त्यो परिवेश हाम्रा लागि आदर्श परिवेश हो । ईर्ष्या, झैझगडा र व्यक्तिगत स्वार्थमा लिप्त व्यक्तिहरू माझ प्राचीन अर्थ परिवेश साँच्चीकै आदर्शमय लाग्छ ।

४.देवकोटाको बहुआयाम

नेपाली साहित्यका सबैजसो विधालाई देवकोटाले समृद्ध बनाएका छन् । मूलतः उनी कवि, महाकवि नै हुन् तर कथा, निबन्ध, समालोचनाका क्षेत्रमा पनि उनको प्रशस्त योगदान रहेको छ । त्यसैले यदुनाथ खनालले भनेका छन्, "देवकोटाले नेपाली साहित्यको प्रत्येक अङ्गलाई उनले निकै कुशलतापूर्वक सिँगारेका छन्" (यदुनाथ खनाल १२८) ।

देवकोटालाई शब्दका वास्तुकार (Word Smith, Word Architect) भनिन्छ किनभने उनले अनेक थरीका शब्द प्रयोग गरेका छन् । उनले नेपाली, अङ्ग्रेजी र संस्कृत भाषामा पुस्तक लेखेका छन् । उनी १३ भाषा जान्दथे त्यसैले उनीसँग ज्यादै ठुलो शब्दभण्डार थियो । सरल बोलीचालीका शब्ददेखि अति जटिल संस्कृत शब्द, हामीले कहिले नसुनेका शब्द उनका लेखनमा प्रशस्त मात्रामा प्रयोग भएका छन् । उनले सरल भ्याउरे लयमा 'मुनामदन' लेखे, संस्कृतनिष्ठ छन्दमा 'शाकुन्तल' लगायतका महाकाव्य लेखे, गद्य छन्दमा 'पागल' लगायतका धेरै कविता लेखे । उनी नेपालका कालिदास, सेक्सपियर, मिल्टन, वर्डस्वर्थ, शैली, किट्स, रवीन्द्रनाथ टैगोर, पुस्किन, गालिब, बदलेयर, गेटे सबै हुन् । उनले नेपाली साहित्यमा समृद्ध पार्न आवश्यक सबै खाले पद्धति र सीप प्रयोग गरेका छन् ।

उनले एकातिर अङ्ग्रेजी र संस्कृत भाषामा रहेका विश्वसाहित्यलाई अनुवाद र अनुकूलनमार्फत नेपाली साहित्यमा प्रवेश गराए भने अर्कोतर्फ नेपाली साहित्यलाई विश्वभरिका पाठक सामु अङ्ग्रेजीका माध्यमले परिचित गराए । उनको साहित्यसम्बन्धी विचार उनले आफ्नै कृतिमा लेखेका भूमिका र अन्य साहित्यकारहरूका कृतिमा लेखेका भूमिका र सन् १९५८ मा रूसको तासकन्दमा अफ्रो-एसियाली सम्मेलनमा दिएको प्रवचन एवं 'लक्ष्मी निबन्धसङ्ग्रह'का केही निबन्धहरू जस्तै "कला र जीवन", "छन्द र लय", "कल्पना", "नेपाली साहित्यको इतिहासमा सर्वश्रेष्ठ पुरुष", "लेख्ने बानी", "हाई हाई अङ्ग्रेजी" मा दिएका विचारहरूमार्फत पढ्न र बुझ्न सकिन्छ । महापण्डित राहुल सांकृत्यायनले देवकोटाको कवित्ववारेमा दिएको टिप्पणी बहुत महत्त्वपूर्ण मानिन्छ ।

४.१.अनुकूलन

देवकोटाले कैयौँ छोटा कवितामा वेलायती रोमान्टिक कविहरूका विचारलाई अनुकूलन गरेका छन् । उदाहरणका लागि 'चारु', 'किसान', 'गाइन् तिनले घँसिया गीत' कविताले विलियम वर्डस्वर्थका 'लुसी', 'माइकेल' र 'सोलिटरी रिपर' कवितालाई र 'शरद्' कविताले जोन किट्सको 'अटुम' कवितालाई सम्झाउँछ । रुमानी उडानका दृष्टिले देवकोटा पी.वी. सेलीका नजिक देखा पर्छन् । देवकोटाको 'हुरी' कविताले सेलीको प्रसिद्ध कविता 'ओड टु वेस्ट विन्ड' लाई सम्झाउँछ । उनले सेलीको 'प्रमिथस अनबाउन्ड' को

अनुवाद गरे । देवकोटाको प्रसिद्ध खण्डकाव्य 'मुनामदन' पनि रोमान्टिक परम्परामा लेखिएको कृति हो । सरल जनभाषा, लोकलयमा लेखिएको जनताले मन पराएको पुस्तक हो 'मुनामदन' । 'मुनामदन' मा प्रस्तुत गरिएको समस्या, गरिबीका कारण निम्नमध्यम र मध्यम वर्गका युवाहरू विदेसिने र घरमा जवान श्रीमती र बुढी आमा छोड्ने गरेको परम्परा अहिले पनि नेपालमा कायमै छ । कहिले तिब्बत, कहिले भारत, कहिले अरब, कतार र मलेसिया जाने गरिब परिवारका छोराछोरीको कथाव्यथा एउटै थियो र छ । गरिब परिवारका व्यथाको जिउँदो साहित्य 'मुनामदन' हो । मदन आर्थिक सङ्कटका कारण जवान श्रीमती र बुढी आमालाई छाडेर भोटतिर जान्छन् । उनले विभिन्न रोग, व्याधि र समस्या झेल्छन् । हाम्रो समाज स्वार्थी र अवसरवादी छ । मदन नभएको बेला उनकी श्रीमती मुनाप्रति टोलका युवा सुकुल गुन्डाहरूको कुदृष्टि पर्छ त्यसमा स्थानीय केही महिलाले गुन्डालाई सघाउने काम गर्छन् । झूटो कथा बनाउँछन्, मदन बिरामी भएर मरेको झूटा चिठी पठाउँछन् । मुनालाई फकाउने प्रयास गर्छन् । उनी आकाश जस्तै निर्मल र गङ्गाजल जस्तै पवित्र छिन् । गुन्डाले पठाएको मदन मरेको चिठी पढेर उनी सदाका लागि बेहोस हुन्छिन् ।

'शाकुन्तल' महाकाव्य विभिन्न पुराण र संस्कृत वाङ्मयमा रहेको कथावस्तुलाई अनुकूलन गरेर लेखिएको छ । देवकोटा भन्छन् शकुन्तलाको कथाले आनन्द र ज्ञान दिन्छ । प्राचीन कालको गरिमालाई सम्झाउँछ, स्वर्णयुगलाई फर्काउँछ, संसारलाई बुझाउँछ र पाठकले आपैँलाई चिन्दछ । तल दिइएका 'शाकुन्तल' महाकाव्यका पङ्क्तिहरूले कविको पूर्वीय आर्य सभ्यताप्रतिको प्रेम र आदरको भावलाई स्पष्ट रूपमा देखाएका छन् :

चम्किन्थे अघि स्वर्णकाल महिमा पूर्वीय आकाशमा
गम्किन्थे सपना समान घनमा बुट्टाहरू बान्किला
आँखामा रवगका परीकन तिनै गाना बनी गुँज्दथे ।
त्यो आभा भर भारती, भरतको यो भारताऽकाशमा ।

×××

मीठो लाग्छ मलाइ ता प्रियकथा प्राचीन संसारको
हाम्रो भारत वर्षको उदयको है म प्रभा सारको ।

×××

यात्री आज बनू अतीत युगका, संझूँ त त्यो भारत
ब्युँझाऊँ त सुषुप्तभाव अघिका, पर्दा लगाउँ यता ।

×××

नेपाली घरमा बनाउँछु भनी प्राचीनको यो वन

×××

देखून सज्जन हातले नजरक्यै छेकेर टाढातिर
यो प्राचीन जगत् सुदूर युगको छेडी सबै बादल
थोरै वेर जिउन् दरिद्र दुँनिया प्राचीन आनन्दमा ।

×××

'शाकुन्तल' महाकाव्यमा जस्तै देवकोटाले लक्ष्मी निबन्ध सङ्ग्रहका विभिन्न निबन्धहरूमा उनको साहित्य सृजनाको आदर्शबारेमा स्पष्ट रूपमा लेखेका छन् । जस्तै कला र जीवन निबन्धमा उनी लेख्छन् : "सृजनाको मूल तत्त्व प्रेम हो र प्रेमको मूल क्रिया आनन्द दिनु हो .... जहाँ सत्य छैन, त्यहाँ सौन्दर्य पनि छैन" (७५) ।

देवकोटाको सत्यबारेको विचार 'सत्य सोझो हुन्छ' निबन्धमा हृदयस्पर्शी र सरल ढङ्गले प्रस्तुत भएको छ ।

"सत्य प्राकृतिक छ असत्य अप्रकाकृतिक ।"

"सत्य ओठमा सजिलोसँग आउँदछ, सजिलोसँग हृदयमा बस्त छ ।" (२०३/४)

'के नेपाल सानो छ' निबन्धमा उनले आर्य सभ्यतासँग नेपालको महत्त्व गाँसिएको हुनाले यसको महिमा बढेको छ । मेरो मातृभूमिमा त्यो आर्य सभ्यता छ जसले संसारलाई एक विशाल युगसम्म आध्यात्मिक पोषण पुऱ्याउन सक्तछ (५६) । "आर्य भावना" भनेको "देवसंस्कार जागरण गर्ने" भनिएको छ । नेपालको हावापानी र खानपिनले गर्दा सच्चा आर्य भावहरूको स्पन्दन र आर्य सपना सजीव रहेको छ । नेपालका मानिसमा रहेको सरलता र मानवीयतामा आर्य सभ्यता देख्न पाइन्छ ।

'पहाडी जीवन' मा उनी लेख्छन् "सीधासाधा जीवन नै आर्यको आदर्श" "सब विश्वास श्रद्धा, भक्ति र सनातन रीतिथितिमा अडेको छ ।" (१३)

'मेरो शिशु' मा देवकोटा लेख्छन् : "बालक हाम्रा देवता हुन्" । "म दुनियाँ बनाउन चाहन्छु, बिगार्न चाहन्नँ किनभने म बालकहरूको प्रेमी छु" (१६) ।

मानिसप्रतिको प्रेम र दयाभाव उनका छोटा कविता र गीतमा स्पष्ट रूपमा देखिन्छ । धनमा लोभ नगर्ने कुरा, जीवनदर्शनको सहज प्रस्तुति 'मुनामदन' का तलका पङ्क्तिले स्पष्ट पारेका छन् । मदनका आमाले

मर्ने बेलामा बुहारीलाई सम्झाउँदै भन्छिन् :

अब त बेला नजीकै आयो जानु छ उस पारि।
सबैको बाटो यही हो नानी। अमीर फकिरको
यो माटो गई माटोमा मिल्छ दुखको बगरको।
शहर बस्नु, न फस्नु यसमा, दुखको जञ्जाल
अन्त्यको बाटो उज्यालो हुने भक्ति नै संगाल।
फुलेको देखें, वैलेको देखें जगतको फुलबारी
दुखमै चिनें ईश्वरलाई हे मेरी बुहारी।

उनका छोटा कवितामा सामाजिक चेतना जगाउने लक्ष्य, विद्रोहको चेतना स्पष्ट रूपमा झल्किन्छ। 'प्रभु मलाई भेडो बनाऊ' मा राणा शासनप्रति व्यङ्ग्य रहेको छ। 'गोलाकार आलु' (२००३ शारदामा प्रकाशित) आलुका माध्यमले समाजप्रति व्यङ्ग्य गरिएको छ। मानिसका दुःखमा दुःख मान्नु र सुखमा सुख महसुस गर्नु यस्तो मानवता देवकोटको लेखनको केन्द्रबिन्दु हो। उनी दुखी गरिबप्रति दया र मायाले ओतप्रोत छन्। भिखारीलाई देख्दा, भरियालाई देख्दा, गरिवलाई देख्दा उनको हृदय बेचैन हुन्छ र त्यो बेचैनी कवितामा फक्रिन्छ। जति धेरै उनका लेखन छन् त्यति धेरै विविध शैलीको प्रयोग पनि उनले गरेका छन्। त्यसर्थमा उनी प्रयोगवादी कवि पनि हुन्। नयाँ नयाँ प्रयोग आधुनिक कविताको एउटा महत्त्वपूर्ण सूचक पनि हो।

देवकोटाले ४९ वर्षको छोटो आयुमा ८५ वटा पुस्तकहरू लेखे। नेपाली, अङ्ग्रेजी र संस्कृत तीन भाषामा विश्वस्तरका महाकाव्य दिए। सर्वप्रथम स्तरीय निबन्ध सङ्कलन 'लक्ष्मी निवन्धसङ्ग्रह' का नामबाट निकाले र यसको हिन्दी अनुवाद पनि भइसकेको छ। उनको लेखनमा पूर्व र पश्चिमका दर्शन र साहित्यको गहिरो प्रभाव देखिन्छ। एकातिर वेलायती रोमान्टिक कविहरू वर्डस्वर्थ, कलरिज, सेली, बाइरन र किट्सको प्रभाव छ भने अर्कातिर पूर्वी आर्य सभ्यताको गहन छाप रहेको छ।

उनले कविता, गीत, वालसाहित्य, खण्डकाव्य, महाकाव्य, नाटक, उपन्यास र समालोचनात्मक कृतिहरू लेखे। उनको साहित्यलेखनमा निम्नानुसार वर्गीकरण गर्न सकिन्छ।

४.२.मौलिक लेखन नेपालीमा

देवकोटा नेपालीमा लेख्ने मौलिक कवि हुन्। निम्नानुसार कविता, खण्डकाव्य, निवन्ध, कथा उनका मौलिक रचना हुन् : मुनामदन, भिखारी, लूनी, शाकुन्तल, सुलोचना, सुनको बिहान, कुञ्जिनी, राजकुमार प्रभाकर, म्हेन्दु, लक्ष्मी निवन्धसङ्ग्रह, लक्ष्मी कवितासङ्ग्रह, लक्ष्मी कथासङ्ग्रह।

४.३.अङ्ग्रेजीमा मौलिक लेखन

निम्नानुसार कविता, कथा, निवन्ध, समालोचना र भाषण उनका अङ्ग्रेजीमा लेखिएका मौलिक लेख हुन् :

कविता : Bapu and Other Sonnets ५९ कविता,

कथा : २ लघुकथाहरू, Remoralization of Conjugal life, 2 Pleasure in Humiliation.

महाकाव्य : शाकुन्तल

समालोचना Dal Bhat Duku, Pulses Rice and Mustard Stems

निबन्ध : ५ निबन्धहरू–An Apology for the Childe Easter, Pulling Down the Higher Leg, With the Indian Ascetics, The Electric Bulb

भाषण : तासकन्द रूसमा दिएको भाषण The Necessity of a Strongly Organized Writers Union for Nepal

४.४.अङ्ग्रेजीबाट नेपालीमा अनुवाद

देवकोटाले (१) म्याकवेथ (२) प्रसिद्ध प्रवन्धसङ्ग्रह (१३ वटा अङ्ग्रेजी निवन्धलाई नेपालीमा उल्था) गरेका हुन्।

४.५.संस्कृतबाट नेपालीमा अनुकूलन

उनको लेखनको ठुलो अंश संस्कृत साहित्य र पुराणबाट नेपालीमा अनुकूलन गरिएको हो। उदाहरणका लागि रामायणबाट सीताहरण, रावण जटायु युद्ध, दृष्यन्त शकुन्तला भेट, नेपाली मेघदूत, शाकुन्तल, भक्त प्रह्लाद, पञ्चतन्त्र, सावित्री सत्यवान्, भरत मिलाप र हरिश्चन्द्र।

४.६.अङ्ग्रेजीबाट नेपालीमा अनुकूलन

अङ्ग्रेजी वाङ्मयबाट उनले निम्नानुसारका मिथकलाई नेपालीमा अनुकूल गरी नेपाली साहित्य समृद्ध बनाएका छन्। प्रमोथियस, सुन्दरी प्रोसर्पिना र मायाविनी सर्सी।

४.७.भारतीय इतिहास र वीरगाथाबाट अनुकूलन

साहित्यबाहेक उनले इतिहास र वीरगाथाबाट पनि विषयवस्तुलाई नेपालीमा अनुकूलन गरेका छन् । उदाहरणका लागि (१) महाराजा प्रताप, (२) पृथ्वीराज चौहान, (३) राजपूत रमणी, (४) सिस्टर निवेदिता (स्वामी विवेकानन्द की शिष्या, बेलायती नागरिक, रामकृष्ण मिसनको स्थापना र विकासमा ठुलो प्रयास गरेकी व्यक्तित्व) ।

४.८.नेपालीबाट अङ्ग्रेजीमा

देवकोटाले धेरै नेपाली कविता, कथा र निबन्धलाई अङ्ग्रेजी अनुवाद गरेका छन् । केही निम्नानुसार छन् : देवकोटा आफैँले नेपालीबाट अङ्ग्रेजीमा उल्था गरेका ३० कविताहरू The Lunatic and Other Poems मा छापिएका छन् ।

४.९.देवकोटाले समकालीन कविहरूका नेपालीबाट अङ्ग्रेजीमा उल्था गरिदिएका सूची निम्नानुसार छ :

लेखनाथ पौडेल : पिजराको सुगा, The Parrot in the Cage

सिद्धिचरण श्रेष्ठ : My Son, The Water Fall in the Moonlight

केदारमान व्यथित : The Rainbow The Storm

माधवप्रसाद घिमिरे : April (Baisakh) Annapurna

श्यामदास वैष्णवका *उपहार* कवितासङ्ग्रहमा रहेका २९ वटा कवितालाई देवकोटाले अङ्ग्रेजीमा उल्था गरिदिएर पुस्तकको शीर्षक *The Present* मा अनुवादित कविता प्रकाशित ।

बालकृष्ण समको : तिमी मरेकी छैनौ (You are not Dead)

भीमनिधि तिवारी : काम्यो लुगलुग त्यो (He Trembled Every Limb)

सिद्धिचरण श्रेष्ठ : पुतली (Butterfly)

केदारमान व्यथित : कमिला, एक झल्को, चील, शिल्प-साधना

माधव घिमिरे : चरी लमिनी, लेकको गीत, हाइड्रोजन बम

मवीवि शाह : तिम्रै मन्दिर आयें

विजयबहादुर मल्ल : कालो पर्दा तानेर (Drawing in the Dark Screen)

भिक्षु : यो दिन (This Day), सडक गायक (The Street Singer)

उपरोक्त कविताहरू नेपालीबाट अङ्ग्रेजीमा अनुवाद गरी इन्द्रेनीको भोलुम एकमा छापिएको थियो ।

प्रा. गोविन्द भट्टराईका अनुसार चाहे त्यो मौलिक लेखन, अनुकूलन गरेको लेखन या अनुवाद लेखन सबैमा देवकोटाको साहित्यमा तीन तहको भूगोलको प्रतिबिम्ब देखिन्छ । पहिलो तह नेपाली हावा, पानी र सुवास त्यसका आधारमा सृजित पात्र, कथानक, कथा, परिवेश र भाव हो । देवकोटाको साहित्य यात्रा आफ्नै स्थानीय परिवेशबाट प्रारम्भ हुन्छ । नाम, बोली, अभिव्यक्ति, समस्या स्थानीय छन् । यात्रा स्थानीय तहबाट बृहत् परिवेशमा प्रवेश गर्छ यो तह प्राचीन आर्यभूमि वा आर्यभूमि ऋषिमुनिहरूको आदर्श हो । अब यात्रा अघि बढेर तेस्रो तहमा पुग्छ । अब आर्यभूमिभन्दा पर विश्वसभ्यताको केन्द्र प्राचीन ग्रीस हो जहाँ देवीदेवताले कला र संस्कृतिको जगेर्ना गर्थे जो रहस्यमय छ देवकोटा त्यहाँ पुग्छन् । यसरी उनको साहित्य संसारमा तीन तह छन् । बाह्य- साँघुरो तह त्यसपछि अलि फराकिलो तह र अति फराकिलो तह, नेपाल-आर्य सभ्यता-विश्वसभ्यता । यो देश, महाद्वीप र विश्व जस्तै छ । पहिलो तहमा नेपाल नेपालीको संस्कृति समस्या सुख दुःखको अभिव्यक्ति छ । मुनामदन, गाइने गीत, भिखारीमा नेपाली सामाजिक चेत र प्राकृतिक प्रेम छ । दोस्रो तहमा बृहत् आर्य सभ्यता प्राचीन गौरव दार्शनिक चेत शाकुन्तलमा अभिव्यक्त छ । रामायणको आदर्श, महाराणा प्रतापको देशप्रेम, बापुको महात्मा तत्त्व इत्यादि । तेस्रो तहमा बृहत् विश्वसभ्यता मानव मात्रको हितको कुरा छ, त्यही हो प्रमिथसको योगदान । मायाविनी सर्सी, सुन्दरी प्रोसर्पिना र सृजामाता (धरती माता) । देवकोटाको भूगोल, संस्कृति र मानवतावादसँग एवं अध्यात्मसँग गासिएको छ । नेपालीको आफ्नोपन नेपालको संस्कृतिको आधार आर्य प्राचीनताको गौरव र मानव सम्बन्ध विश्वसभ्यता र संस्कृतिसँग गासिएको छ ।

शाकुन्तल र प्रमिथसले आर्य प्राचीन गौरवता र प्राचीन ग्रिसेली मिथकका माध्यमले पूर्व र पश्चिमका उत्कृष्ट मानवताका विचारको प्रतिनिधित्व गरेका छन् । देवकोटा स्वयंले के स्वीकार गरेका छन् भने "म तीन

किसिमका रचना लेख्छु, तीन थरीका पाठकलाई (१) खुब गहिरो : एकदम विद्वान् खालका लागि, (२) मझौला : शिक्षित मात्रका लागि र (३) सामान्य : साधारण मानिसले पनि बुझ्न सक्ने किसिमको । मुनामदन दोस्रो किसिमको रचना हो भने शाकुन्तलचाहिँ पहिलो किसिमको (प्रसाई, १३) ।

उद्धृत ग्रन्थ सूची

खनाल, यदुनाथ, *साहित्यिक चर्चा*, दोस्रो संस्करण, काठमाडौँ : साझा प्रकाशन, २०४९ ।

देवकोटा, लक्ष्मीप्रसाद, *लक्ष्मी निबन्ध सङ्ग्रह*, ललितपुर : साझा प्रकाशन, २०६४ ।

----------, *प्रसिद्ध प्रबन्ध सङ्ग्रह*, चौथो संस्करण, ललितपुर : साझा प्रकाशन, २०६७ ।

----------, *नेपाली शाकुन्तल (महाकाव्य)*, आठौँ संस्करण, ललितपुर : साझा प्रकाशन, २०६३ ।

----------, *मुनामदन*, बाइसौँ संस्करण, ललितपुर : साझा प्रकाशन, २०५२ ।

भट्टराई, गोविन्दराज, *अनुवाद अध्ययन परिचय*, अनु. बलराम अधिकारी, काठमाडौँ : रत्नपुस्तक भण्डार, २०६४ ।

वैष्णव, श्यामदास, *उपहार २०१५*, अनु. लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा, (The Present, 2016), काठमाडौँ : रत्नपुस्तक भण्डार, २०६६ ।

प्रसाई, नरेन्द्र, *देवकोटाको कृति (अभिलेख)*, काठमाडौँ : नई प्रकाशन, २०६६ ।

Bhattarai, Govinda Raj, *The Immortal Message Carved in the Eplical Creations of Mahakavi Laxmi Prasad Devkota*, Laxmi Prasad Devkota: The Mahakari, Edtrs. Sibnath Starwe L. Naba Sapkota, Guwahati: Purbayon Pulbication, 2016.

महाकवि देवकोटा जन्म शतवार्षिकी स्मारिका (२००८-२००९), शिव मन्दिर आश्रम, सिलगढी ।

Sharma, Krishna Chandra, *English Writings of Devkota and His Attitude Towards English....*, Nepal Academy, 2015.

A Survey of Nepali Literature in English, Unit 1: Poetry Course Packet 645, Baneswor: IACER (nd).

A Survey of Nepali Literature in English Unit 2: Prose Course Packet 645, Baneswor: IACER (nd).

A Survey of Nepali Literature in English, Unit 3: Criticism Course Packet 645, Baneswor: IACER (nd).

शर्मा, कृष्णचन्द्र शर्मा, *नेपाली साहित्यमा अनुवाद परम्परा र यसको नयाँ दिशा*, कार्यपत्र, नेपाल प्रज्ञा-प्रतिष्ठान, २०७३ ।

वी.पी. कोइरालाका अनूदित कृतिहरू

डा. तुलसी भट्टराई

वी.पी. कोइराला : सानो शब्दचित्र

नेपालका प्रथम प्रजातन्त्रवादी - गान्धीवादी नेता कृष्णप्रसाद कोइराला र दिव्या कोइरालाका सुपुत्र विश्वेश्वरप्रसादको जन्म वि.सं. १९७१ भाद्र २४ (इ. १९१४ सेप्टेम्बर ८) का दिन भएको थियो। उनको बाल्यकाल विराटनगरमा बित्यो। वी.पी. ५ वर्षको छँदा पिता कृष्णप्रसादको सर्वस्वहरण भएपछि वि.सं. १९७५ मा भारतमा निर्वासित कृष्णप्रसादको विशाल परिवार १९८६ सालमा भीमशमशेर श्री ३ भएपछि पुनः विराटनगर फर्किएका थिए।

वी.पी.ले बनारसमा बसेर आफ्नो हाईस्कुलदेखि एमएसम्मको अध्ययनपछि कलकत्ताबाट एलएलबी पूरा गरेका थिए। त्यसपछि दार्जिलिङमा बसेर वकालत गर्दै रहेका बेला नेपालमा १९९७ सालमा सहिद काण्ड भयो। यही घटनापछि वी.पी.मा राजनीतिक जागरण सक्रिय रूपमा प्रारम्भ भयो।

वी.पी.को राजनीतिक पक्ष

राजनीतिक परिवारमा हुर्केबढेका वी.पी. वि.सं. १९८७ मा कक्षा १० कै विद्यार्थी छँदा बनारसमा पक्राउ परेर ६ महिना जेल परेका थिए। यसरी वी.पी.मा राजनीतिक चेतना बाल्यकालबाटै जागृत भएको कुरा प्रस्ट हुन्छ।

भारतीय स्वतन्त्रताका निम्ति सन् १९४२ मा भारतमा जेल परेका वी.पी.ले ३ वर्षपछि छुटेर नेपालमा प्रजातन्त्र स्थापनाका निम्ति सङ्गठनको अभियान सुरु गरे। फलतः बनारसमा वि.सं. २००३ कात्तिक १५ गते सुब्बा देवीप्रसाद सापकोटाको संयोजकत्वमा 'अखिल भारतीय नेपाली राष्ट्रिय काङ्ग्रेस' गठन भयो। यसपछि वी.पी.द्वारा भारत र नेपालका राजनीतिकहरूसँग सल्लाह गरेर सोही वर्षको माघ १२-१३ गते कलकत्ता भवानीपुरमा अधिवेशन गराइयो। यस अधिवेशनबाट नेपाली राष्ट्रिय काङ्ग्रेस गठन भयो। वी.पी. कार्यवाहक सभापति चुनिए।

नेपाली राष्ट्रिय काङ्ग्रेस र नेपाल प्रजातन्त्र काङ्ग्रेस संयुक्त भएर २००६ चैत २७ गते नेपाली काङ्ग्रेस पार्टी बन्यो। यही नेपाली काङ्ग्रेसको आह्वानमा २००७ सालको सशस्त्र क्रान्ति भयो। क्रान्तिद्वारा नेपालबाट १०४ वर्षे राणा जहानियाँ शासनको अन्त्य भयो। प्रजातन्त्रको स्थापनासँगै वी.पी. कोइरालाको नेतृत्वमा नेपाली काङ्ग्रेसको सङ्गठन विस्तार हुँदै गयो। २०१५ को आम निर्वाचनमा दुई तिहाइभन्दा बढी स्थान प्राप्त गरेर वी.पी. कोइराला प्रथम जननिर्वाचित प्रधानमन्त्री बने।

वी.पी.को नेतृत्वमा सरकारले मुलुकमा राम्रो काम गर्दै गरेका बेला २०१७ पुस काण्ड भयो। यस पुस १ काण्डद्वारा संसद् विघटन र पार्टीहरूमा प्रतिबन्धसहित वी.पी. लगायत सयौँ नेता जेल परे। सयौँ निर्वासित भए।

आठ वर्ष जेल जीवन बिताएर २०२५ कात्तिक १३ गते वी.पी. जेलबाट छुटे। तर नेपालभित्र बस्ने स्थिति नभएर पुनः भारत निर्वासित भए। भारतको बनारसलाई केन्द्र बनाएर पञ्चायत निरङ्कुश तन्त्रविरुद्ध केही वर्ष वी.पी.ले सशस्त्र विद्रोहको नेतृत्व गरे अनि सशस्त्र विद्रोह त्यागेर २०३३ पुस १६ गते "राष्ट्रिय मेलमिलाप नीति" लिएर नेपाल फर्किएपछि वी.पी. पुनः जेल परे।

२०३६ जेठ १० गते राजाबाट जनमत सङ्ग्रहको घोषणा गरियो। जनमत सङ्ग्रहमा बहुदल पक्षको पराजय भए पनि वी.पी.ले यसलाई प्रजातान्त्रिक अभ्यासको एउटा ठुलो उपलब्धि नै ठानेका थिए। २०३७-३८ देशव्यापी रूपमा भ्रमण गरेर वी.पी.ले

प्रजातन्त्रको व्याख्या र महङव दर्साएका थिए ।

वी.पी. २००५ सालमा काठमाडौँ जेलमा रहँदादेखि नै प्रारम्भ भएको क्यान्सरले नै उनलाई ग्रस्त पार्दै लगेको थियो । यसै क्यान्सरको घातक परिणामस्वरूप वि.सं. २०३९ साउन ६ गते वी.पी.को देहावसान ६८ वर्षकै उमेरमा भयो ।

आज वी.पी. कोइराला छैनन् । तर उनको व्यक्तित्व, कृतित्व र उनले दिएका योगदानले नेपाल र नेपालीलाई प्रभाव पारिरहेको छ । नेपालको प्रजातान्त्रिक आन्दोलन र प्रजातन्त्र स्थापनाका निम्ति उनको भूमिका अद्वितीय र अतुलनीय रहेको छ ।

साहित्यकार वी. पी.

वनारसको हरिश्चन्द्र कलेजमा पढ्दादेखि नै साहित्यप्रति वी.पी.को विशेष रुचि बढ्दै गएको कुरा वी.पी. स्वयंको भनाइबाट प्रस्ट हुन्छ । कक्षा दसमा पढ्दा १५ वर्षकै उमेरदेखि वी.पी.का रचनाहरू प्रकाशित हुने गरेका थिए ।

"बनारसका शान्तिप्रिय द्विवेदीले मेरो हात समाएर साहित्यको उद्यानमा घुमाए ।"१

शान्तिप्रिय त्यति वेला निकै चर्चित साहित्यकार थिए । उनकै माध्यमबाट त्यति वेला वी.पी. कोइरालाले त्यस बेला (सन् वि.सं. १९८८-९० तिर) प्रसिद्ध लेखक रायकृष्णदास, जयशङ्करप्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचन्द्र आदिसँग भेट्ने र साहित्यसम्बन्धी चर्चा गर्ने अवसर प्राप्त भएको थियो ।

वी.पी.को प्रारम्भिक लेखन हिन्दी भाषाका माध्यमबाट भएको थियो । त्यस बेला प्रेमचन्द्रद्वारा सम्पादित हंस र अन्य विभिन्न पत्रिकामा वी.पी.का रचनाहरू छापिने गर्थे ।

–वहाँ (कथा), हंस १।७ वि.सं १९८७ माघ
–पथिक (कथा), हंस १।९ १९८७ चैत
–अपनी ही तरह (कथा), हंस २।१ १९८८ असार
–बम्बईके प्रति (२) (कविता), हंस १।८ १९८८ फागुन
–होड (कथा), हिमालय वर्ष १।७ २००३ साउन २

यी केही उदाहरण मात्र हुन् । वी.पी. कोइरालाको साहित्यिक यात्रा हिन्दी भाषाबाट विकसित हुँदै नेपालीमा आएर प्रौढ बनेको यथार्थ हाम्रो सामु छ ।

नेपाली भाषामा लेखिएको र पहिलोपल्ट शारदा १।१०।१९९२ मा छापिएको रचना **'चन्द्रवदन'** कथा हो । त्यसपछि वी.पी.को कथालेखन बढ्दै गएर **दोषी चस्मा** र **श्वेतभैरवी** दुईवटा कथासङ्ग्रह र अन्य कथासमेत करिब साढे दुई दर्जन कथाहरू प्रकाशित छन् ।

वी.पी.ले करिब तीन दर्जन कथा, आधा दर्जन उपन्यास, एउटा आत्मवृत्तान्त, जेलजर्नल र फेरि सुन्दरीजल जस्ता उत्कृष्ट साहित्यिक कृति दिनुभएको छ । त्यसै गरी राजनीतिक लेखरचना समेटिएका करिब एक दर्जन कृतिहरूले राजनीतिक मार्ग विस्तार गरेका छन् ।

वी.पी.का कृतिहरूमाथि एक दर्जनभन्दा बढी व्यक्तिले विद्यावारिधि गरेका छन् । एक दर्जनभन्दा बढीले स्नातकोत्तर शोधपत्र पूरा गरिसकेका छन् । वी.पी.का बारेमा एक सयभन्दा बढी पत्रपत्रिका र विशेषाङ्कहरू निस्किएका छन् । आज पनि वी.पी.का बारेमा लेख्ने क्रम रोखिएको छैन । वी.पी. सम्बन्धी नयाँ खोज, अनुसन्धान पनि भइरहेका छन् ।

वी.पी.का केही उक्ति

हामी पहाडमा बस्ने भए पनि, मधेसमा बस्ने भए पनि, भन्ज्याङभित्र बस्ने भए पनि हाम्रो एउटै मुलुक हो । हामी एउटै माटोका मान्छे हौँ । हामीले पहाडी वा मधेसको भावना ल्यायौँ भने हाम्रो मुलुकको उन्नति हुँदैन ।

इतिहासले सबैको सन्तुलित लेखाजोखा राख्ने हुँदा हामीले जुनसुकै काममा पनि इतिहासलाई साक्षीका रूपमा राख्ने बानी बसाल्नुपर्छ ।

जीवनको सार्थकता कुनै उद्देश्य प्राप्तिका निम्ति प्रतिबद्धतामा निर्भर गर्दछ । मानिस आफ्नो सङ्कल्प र आस्थाले यथार्थमा मानिस हुन्छ ।

हाम्रो विचारमा हाम्रो मुलुकमाथि खतराको बादल मडारिइरहेको छ । राष्ट्रिय सङ्कटको यस घडीमा हामी सबैले विगतका झैझगडाहरू दुर्भावनाहरू– तथा मतमतान्तर बिसौँ– राष्ट्रिय एकताको पुनीत कार्यका लागि ।

मान्छे पशु होइन, देवता पनि हुन सक्तैन भन्ने दृढ धारणा त्यसै बेला नै बनेको हो ।

"एउटा आँधीमा दियो बलिरहेछ, त्यसलाई बचाउनुपर्ने कर्तव्य परिहेछ । राष्ट्रको दियो बचाउनका लागि ।"

यी केही उक्तिबाट वी.पी.को सर्वमानवतादी र समतावादी दृष्टिकोण प्रस्ट हुन्छ। राजनितिक द्रष्टा र महान् नेता वी.पी.ले साहित्यका क्षेत्रमा अझ महत्त्वपूर्ण योगदान दिनुभएको छ। यहाँ वी.पी.का कृतिहरूमाथि भएका अनुवाद सम्बन्धमा केही कुरा उल्लेख गर्ने प्रयास भएको छ।

अनुवाद किन

एउटा भाषाका साहित्यको अर्को भाषामा अनुवाद किन गर्ने भन्ने सम्बन्धमा केही विद्वान्हरूका उक्ति यहाँ प्रस्तुत गरिएको छ।

१. क्याटफोर्ड भन्दछन्– एउटा भाषाको पाठ्य सामग्रीलाई अर्को भाषाको समतुल्य पाठ्य सामग्रीद्वारा प्रतिस्थापन गर्ने कार्य नै अनुवाद हो।
२. उनका विचारमा अनुवाद मूलतः भाषिक कौशल या शिल्प हो। जसमा अनुवादकले एक भाषाको लिखित सन्देश वा अवधारणालाई अर्को भाषाको उही सन्देश वा अवधारणाद्वारा प्रतिस्थापन गर्दछ।
३. अनुवाद भाषिकभन्दा पनि सांस्कृतिक अभ्यास हो। जसले स्रोतपाठमा अन्तर्निहित मूल्य-मान्यतालाई सिर्जनात्मक ढङ्गले अर्को भाषामा पुनरुत्पादन गर्दछ।
४. अनुवाद भनेको शब्दको मात्र कुरो होइन, अनुवाद भनेको एक सम्पूर्ण संस्कृतिलाई बोधगम्य बनाएर प्रस्तुत गर्ने कर्म हो– एन्थनी बर्गेसको भनाइ हो यो।

सर्वोत्तम अनुवाद पनि एक प्रतिध्वनि मात्र हो– जर्ज वोरोले भनेका छन्।

कुनै पनि साहित्यको महान् युग भनेको महान् अनुवादकहरू उदाएको युग हो– अमेरिकी कवि एज्रा पाउन्डको कथन छ।

अनुवादबिना म आफ्नै देशको सीमाभित्र हुन्छु। अनुवादक एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हो जसले मलाई संसार चिनाउँछ– इटालो कालभिनो भन्ने इटालीका साहित्यकारले प्रस्ट पारेका छन्।

"मानिसका लागि ज्ञानविज्ञान सार्वभौम वस्तु भइसक्यो। सबैले सबैको उपलब्धिबाट लाभान्वित हुने दिशातर्फ विश्व उन्मुख छ। भाषाको वैविध्यपूर्ण जटिलताले वैचारिक समागममा जातिजाति र देश देशका माझ सधैँ दूरताको पर्खाल उभ्याउने गर्छ। तर पारस्परिक वैचारिक विनिमयको सर्वसुलभ माध्यम भाषान्तर हो। भाषान्तर अनुवादका माध्यमबाट साहित्यले देशान्तर घुम्ने गर्दछ।"[३] साहित्यकार कृष्णचन्द्रसिंहको भनाइ हो।

नेपाली साहित्यमा अनुवाद

नेपाली साहित्यको प्रारम्भिक उत्थान अनुवादका माध्यमबाटै भएको हो। विश्वका भाषा साहित्यमध्ये अति समृद्ध संस्कृत भाषाका ग्रन्थहरूबाट नेपाली लेखकहरूले नेपालीमा भाषानुवाद, छायानुवाद अथवा शब्दानुवाद गरेर नेपाली भाषा साहित्यको विकास आरम्भ गरेका थिए। यस्तो विशेष कार्य भारतीय आर्य भाषाहरू हिन्दी, बङ्गाली, मराठी, गुजराती, अङ्ग्रेजी आदि सबै भाषासाहित्यमा संस्कृतबाट धेरै अनुवाद भएको पाइन्छ। संस्कृत भाषाको समृद्धिले विश्वका धेरै भाषाहरूलाई प्रभावित पारेको छ।

वि.सं. १७८० को प्रेमनिधि पन्तरचित 'प्रायश्चित्त प्रदीप, दावादल साहदेवको औषध रसायन (१८०० तिर) अजीर्ण मन्जरी- १८२१, महाभारत विराटपर्व– १८२७, भानुदत्तको हितोपदेश मित्रलाभ वि.सं.– १८३३, शक्तिवल्लभ अर्ज्यालको हास्यकदम्ब– १८५५ तिर, दशकुमार चरित– १८७५, विजयानन्दको महाभारत गदापर्व– १८८६, विद्यापतिको गीतगोविन्द (१८८८), महाभारत आदिपर्व (१८८९), अध्यात्मरामायण बालकाण्ड– १८९६ तिर), भानुभक्तको रामायण १८९८-१९१० आदि ग्रन्थ केही उदाहरण हुन्।[४]

रामायण, महाभारत, सुखसागर आदि विशाल ग्रन्थहरूका अनुवाद– भावानुवाद आदिका माध्यमबाट नेपाली भाषा र साहित्यको विकासमा ठुलो योगदान पुगेको हो। यस्ता ग्रन्थहरू नेपाली जनजीवनमा पुग्न र प्रिय बन्न सकेकै कारण नेपाली भाषाले पनि गति लिएको कुरा निर्विवाद छ।

मोतीराम भट्टले पनि संस्कृतबाट नेपालीमा केही कृतिहरू अनुवाद गरेका थिए। पछिका समयमा रिद्धिबहादुर मल्ल, खड्गमान मल्ल, नरेन्द्रमणि, महाकवि देवकोटालगायत धेरै स्रष्टाहरूले अनुवाद परम्परा जोडेका थिए।

प्रज्ञा-प्रतिष्ठान र अनुवाद

विशेष गरी नेपाल राजकीय प्रज्ञा-प्रतिष्ठान (

वि. सं.२०१४)को स्थापना पछिका करिब दुई दशकभित्रमा संस्कृत अङ्ग्रेजी र हिन्दीका दर्जनौँ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थहरू नेपालीमा अनुवाद भएका छन्। विश्वका एक दर्जनजति महापुरुषहरूको जीवनी आत्मकथाहरूको पनि अनुवाद भएको छ।

अब्राहम लिङ्कन, महात्मा गान्धी, कार्ल मार्क्स, लेनिन, नेहरु, माओ, गोर्की, रवीन्द्रनाथ, विवेकानन्द, राहुल सांकृत्यायन आदिका जीवनी र कृतिहरू नेपालीमा रूपान्तरित भएका छन्। तसलीमा नसरिन, भिएस नयपाल, ओसो आदि दर्जनौँ लेखकका सयौँ कृतिहरूले नेपाली रूप लिएर हाम्रो साहित्य भण्डार भरेका छन्।

नेपाली भाषासाहित्यबाट अन्य भाषासाहित्यमा अनुवाद हुने काम निकै पछि मात्र सुरु भएको हो। अङ्ग्रेजी, हिन्दीलगायत अन्य भाषाबाट नेपालीमा भएका अनुवाद ग्रन्थहरूको तुलनामा नेपालीबाट अन्य भाषामा धेरै कम अनुवाद भएको छ। नेपालीबाट अन्य भाषामा भएको यो अनुवाद क्रम हेर्दा त्यति सन्तोष मान्न सकिँदैन। कछुवा गतिमा भए पनि अनुवाद कर्म अघि बढ्दै छ भनेर सन्तोष मान्नुपर्ने अवस्था छ।

नेपालीका कविता, कथा, उपन्यास, नाटक आदि कृतिहरूको अङ्ग्रेजी अनुवाद सङ्ख्या करिब ७५ पुगेको छ। यसै गरी नेपालीबाट असमियामा २, उर्दू ३, चिनियाँ २, जापानी १, डेनिस १, नेपालभाषा ११, बङ्गालामा १, मैथिलीमा ८, रूसीमा ७, संस्कृतमा ४, हिन्दीमा करिब साढे दुई दर्जन कृति अनुवाद भएको छ।

नेपालीबाट अन्य भाषामा अनूदितमध्ये भरत जङ्गमको कालो सूर्यले अङ्ग्रेजी, असमिया, उर्दू, हिन्दी, नेपालभाषा, चिनियाँ र रूसी भाषामा अनूदित हुने अवसर पाएको छ। त्यसै गरी भानुभक्तको रामायण अङ्ग्रेजी, हिन्दी, मैथिली, अवधि र असमियामा अनुवाद भएको छ। देवकोटाको मुनामदन अङ्ग्रेजी र मैथिलीमा अनूदित छ। मविवि शाहको उसैका लागि अङ्ग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत, मैथिली, चिनियाँ र नेपालभाषामा अनूदित भएको छ।[५]

वी.पी.का कृतिको अनुवाद

नेपाली स्रष्टाहरूमध्ये साहित्य विशेषतः आख्यान साहित्यमा अग्रणी नाम बनाउने विश्वेश्वरप्रसाद कोइरालाका प्रायः सबै कृतिहरू अन्य भाषामा अनूदित भएका छन्। अङ्ग्रेजी र हिन्दीमा अनूदित भएका एवं अन्य भाषामा अनूदित वी.पी.का कृतिहरूबाट नेपाली साहित्यलाई विश्वसाहित्यसँग तुलनात्मक अध्ययनका लागि ठुलो योगदान पुगेको छ।

तीन घुम्ती

वी.पी. कोइरालाका कृतिहरूमध्ये पहिलो अनूदित कृति हो– तीन घुम्ती उपन्यास। २०२६ मा प्रकाशित भएपछि यस कृतिले त्यति बेला निकै ठुलो चर्चा पाएको थियो। नारीको मनोवृत्ति, विशेषतः नारीको यौन मनोविश्लेषणपरक कृतिका रूपमा तीन घुम्तीले चर्चा पाएको हो।

२०३२ तिरै तीन घुम्तीको अनुवाद भारतका प्रसिद्ध साहित्यकार फणीश्वरनाथ रेणुले हिन्दीमा गरेका थिए। तीन अध्याय शीर्षकमा प्रकाशित यस कृतिको चर्चा र विश्लेषण त्यति बेलाको हिन्दी जगत्मा निकै राम्रोसँग भएको थियो।

त्यसरी नै तीन घुम्तीको अङ्ग्रेजी अनुवाद थ्री बेन्ड्स नामबाट भएको छ। यसको विस्तृत विवरण उल्लेख गर्न बाँकी छ।

वी.पी.का कथा

२०२४ तिर वी.पी.का केही कथाहरूको हिन्दी अनुवाद **वी.पी. कोइरालाकी कहानियाँ** शीर्षकमा भएको छ। यसका अनुवादक हुन्– सी.के प्रसाईं। यो कृति राष्ट्रवाणी प्रकाशन सिलीगुडी प. बङ्गालबाट सन् १९६९ तिर प्रकाशित भएको थियो।

वी.पी.को कथासङ्ग्रह दोषी चस्माका जम्मा १२ वटा कथाको अङ्ग्रेजी अनुवाद **फल्टी ग्लासेज** नामबाट सन् १९९८ मा प्रकाशित भयो। केशरलालले अनुवाद गरेको यो कृति पिलग्रिम्स बुक हाउसले प्रकाशित गरेको हो। बुक फेथ इन्डियाका जुडिथ फोरेस्टलले यसको सम्पादन गरेका थिए।

वी.पी.का केही कथाहरू अङ्ग्रेजी र हिन्दीमा फुटकर रूपमा पनि प्रकाशित छन्।

मोदिआइन

मोदिआइन उपन्यास निकै प्रसिद्ध मानिन्छ। यसमा नारी अस्तित्वको खोजी गरिएको छ। युद्ध र द्वन्द्व, नरसंहारसम्बन्धी ५ हजार वर्ष पुरानो विषयलाई

पुनःस्थापित गरिएको यस मोदिआइनको हिन्दी अनुवाद रञ्जना शर्माले गरेकी छन्। पारिजात प्रकाशन पटनाबाट प्रकाशित मोदिआइनको अनुवादकीयमा अनुवादकले यस्तो महत्त्वपूर्ण कृति अनुवाद गर्न पाएकोमा आफू कृतार्थ भएको अभिव्यक्ति प्रस्तुत गरेकी छन्।

मोदिआनको **भोजपुरी** भाषामा अनुवाद डा. श्वेता दिप्तीले गरेकी छन्। यो भोजपुरी संस्करण वि.सं. २०७० मा नेपाल प्रज्ञा-प्रतिष्ठानबाट प्रकाशित भएको छ। "मोदिआइन पढेपछि मलाई ज्यादै प्रभाव पऱ्यो। नारीहरूका युगौंयुगदेखिका भावना र नारीमनको सुषुप्त चेतनालाई मोदिआइनले मुखरित गरेको पाएँ।"डा. श्वेताको भनाइ हो यो।

मोदिआइनको **अङ्ग्रेजी** रूपान्तर गरेका छन्– डा. जयराज आचार्यले। नेपाली र अङ्ग्रेजी दुवै पाठ राखेर वि.सं. २०४६ मा प्रकाशित मोदिआइन– अनुवाद र मूलपाठ तुलना गरेर पढ्न खोज्ने पाठकका लागि निकै महत्त्वपूर्ण बनेको छ।

मोदिआइनको **मैथिली भाषामा** अनुवाद गर्ने अनुवादक हुन्– डा. रामदयाल राकेश। मोदिआइनको यो मैथिली संस्करण सफारी नेपाल, काठमाडौँबाट २०५४ मा प्रकाशित भएको हो।

सुम्निमा

सुम्निमा उपन्यास नेपाली उपन्यास साहित्यकै अनुपम कृति मानिन्छ। यस उपन्यास माध्यमबाट नेपाल राष्ट्रलाई पुनर्व्याख्या गेर्ने प्रयास भएको छ। यस कृतिमा हिन्दू सनातन परम्परा र किरात समुदायको सांस्कृतिक पक्षलाई संयोजन गरेर पारस्परिक एकता र सद्भावको उदाहरण दिइएको छ।

वी.पी.को यस सांस्कृतिक, ऐतिहासिकताले भरिपूर्ण उपन्यासको अङ्ग्रेजी अनुवाद गरेका छन्। **डा. तारानाथ शर्माले**। बगर फाउन्डेसनद्वारा सन् २००५ मा प्रकाशित **सुम्निमा**को अङ्ग्रेजी संस्करणका कारण विश्वसाहित्यमा पनि नाम पुगेको छ।

सुम्निमाको हिन्दी अनुवाद कवि कालीप्रसाद रिजालबाट भएको छ। पिलग्रिम्स बुक हाउसबाट सन् १९९७ मा प्रकाशित सुम्निमाको हिन्दी संस्करण निकै स्तरीय छ।

"मैले सयौँ उपन्यास पढेँ, तर सुम्निमा जस्तो प्रभावशाली उपन्यास औँलामा गनिने पनि छैनन्। यसैबाट प्रभावित भएर सुम्निमालाई विश्वसाहित्य सामु पुऱ्याउने उद्देश्यले यो हिन्दीमा अनुवाद गरेको हुँ।" अनुवादक श्री कालीप्रसाद रिजालको स्वीकारोक्ति छ।

नरेन्द्र दाइ

नरेन्द्र दाइले पनि हिन्दीमा रूपान्तरित हुने अवसर पाएको छ। **सुख** शीर्षकमा अनूदित र प्रकाशित यस कृतिको अन्य विवरण भने प्राप्त हुन सकेको छैन।

आफ्नो कथा

आफ्नो कथाको हिन्दी रुपान्तर प्रा.डा. नारायणप्रसाद खनालले गरेका छन्। हिन्दीमा अनूदित यस कृतिको शीर्षक हो– **अपनी कहानी**। यसको प्रकाशनको दायित्व वी.पी. पुत्र डा. शशांकले चार वर्षअघि नै वहन गरेका हुन्, तर जनसमक्ष आउन सकेको छैन।" –अनुवादक डा. खनालले जानकारी गराएका छन्।

जेल जर्नल

जेल जर्नल वी.पी.को अर्को महत्त्वपूर्ण कृति हो। सुन्दरीजल जेलभित्र रहँदाका अवस्थामा दैनन्दिनी रूपमा लेखिएको यो कृति निकै महत्त्वपूर्ण मानिन्छ। २०१७ पुस १ काण्डपछि जेल परेका वी.पी.ले २०१७ फागुन ४ बाट दिनपन्जी लेख्न थालेका थिए। यस कृतिमा उक्त मितिदेखि २०२२ असार २९ सम्मको दैनिकी छ।

राजनीति, धर्मदर्शन, पारिवारिक सन्दर्भ, साहित्य, संस्कृति जस्ता यावत् विषयमा वी.पी.ले आफ्ना चिन्तन प्रस्तुत गरेका छन्।

यस जेलजर्नलभित्र २५० भन्दा बढी विश्वसाहित्य, दर्शन, राजनीति र इतिहासविषयक ग्रन्थहरू एवं स्रष्टाहरूको समेत उल्लेख गरेको पाइन्छ।

वी.पी. स्वयं पनि अनुवादक भएको कुरा यस कृतिमा उल्लेख छ। वी.पी.ले सिविल नामक ग्रिसेली मिथक कथामा आधारित आख्यान अनुवाद गरेको कुरा उल्लेख छ। त्यसै गरी छोराछोरीका निम्ति समसामयिक केही विज्ञान कथाहरू अनुवाद गर्न थालेको कुरा पनि वी.पी.ले चर्चा गरेका छन्।

जेल जर्नलमा वर्णित वी.पी. स्वयंका केही अभिव्यक्ति यहाँ उल्लेख गर्नु उपयुक्त हुनेछ।

नेपाली भाषाको सुधारमा सशक्तता ल्याउन संस्कृत ग्रन्थहरूको अध्ययन मेरा लागि जरुरी छ। पैले मैले समयमै यसपट्टि ध्यान दिनुपर्नेछ। पृ. ९५

भाषा त्यस्तो खुँडाको धार हो जसउपर लेखकले बडो संयमका साथ चल्न सिक्नुपर्छ। भाषा नभै भावको अभिव्यक्ति हुन सक्दैन। भाषा र भावलाई लेखकले आफ्नो कलमको जुवामा जोख्न सक्नुपर्छ। पृ. १३८

आठ पुस्तक मेरा तयार हुनेछन्। लेगरक्रिस्टले लेखेको सिविल भन्ने किताव अनुवाद पनि गरिसकें। कामुले लेखेको रिवेल भन्ने पुस्तक अनुवाद गर्न थालेको छु। यी सम्पन्न गर्न पाए जेलको जीवन एकदम खेर गयो भन्ने थिइनँ। ८।१० किताबका पाण्डुलिपि लिएर बाहिर जान पाए सन्तोष हुने थियो। ६

जेल जर्नलको हिन्दी अनुवाद : तुलसीप्रसाद ढुङ्गेलबाट भएको हो। जुन कृति २०५७ मा जगदम्बा प्रकाशनबाट प्रकाशित भएको छ।

हिटलर र यहुदी

विश्वसाहित्य, कला र दर्शनलाई उद्घाटन गर्न सक्ने पहिलो नेपाली उपन्यास हो– हिटलर र यहुदी। "नेपाली साहित्यलाई विश्वमा देखाउन सकिने विश्व आख्यानसाहित्यको नमुना हो भन्ने लागेर मैले यसको अङ्ग्रेजी अनुवाद गरेको हुँ।"

अनुवादक नगेन्द्र शर्माले **हिटलर एन्ड द जुज** शीर्षकमा यसको अनुवाद गरेका छन्। सम्पादक डा. गोविन्दराज भट्टराईको भनाइमा हिटलर र यहुदी– द ग्रेट मास्टर अफ नेपाली फिक्सन- हो।

यो कृति ओरिएन्टल प्रकाशन काठमाडौँबाट सन् २०१६ मा प्रकाशित भएको छ। यसको हिन्दी अनुवाद पनि भइसकेको छ। प्रकाशनको पर्खाइमा छ।

आत्मवृत्तान्त

नेपाली जीवनी साहित्यमा अग्रगण्य कृति हो– यो **आत्मवृत्तान्त**। वी.पी. कोइराला स्वयंको गहन अभिव्यक्ति/संरचनामा तयार भएको यस कृतिको अङ्ग्रेजी रूपान्तरण श्री कनकमणि दीक्षितले गरेका छन्। हिमाल बुक्स प्रालिद्वारा सन् २००१ मा **अटोबायोग्राफी** नामबाट यो प्रकाशित भएको हो।

वी.पी. कोइराला पोर्ट्रेट अफ अ रिभोल्युसनरी

वी.पी. कोइरालाका विचार र चिन्तनहरूलाई अन्तर्वार्ताका रूपमा समेटेर भोला चटर्जीद्वारा सम्पादित यस प्रसिद्ध कृतिको नाम हो - वी.पी. कोइराला पोर्ट्रेट अफ अ रिभोल्युसनरी। यस कृतिको नेपाली अनुवाद **वी.पी. कोइराला एक क्रान्तिकारी चिन्तन** नामबाट दार्जिलिङका प्रसिद्ध लेखक जस योञ्जन प्यासीले गरेका छन्। साहित्य अकादेमी नयी दिल्लीबाट सन् १९९१ मा यो कृति प्रकाशित भएको थियो।

भोला चटर्जीद्वारा सम्पादित उक्त अङ्ग्रेजी कृतिको अर्को नेपाली रूपान्तर– ज्ञानचन्द्र आचार्य, प्रह्लाद प्रसाईं, रुद्र नेपाल र मुक्तिनाथ भट्टद्वारा संयुक्त रूपमा भएको थियो।

वी.पी. कोइराला एक क्रान्तिकारी व्यक्तित्व शीर्षकको यो कृति साझा प्रकाशनबाट २०५१ मा प्रकाशित भएको हो।

"हामीले अनुवाद गर्दा भोला चटर्जीको प्रस्तुतिलाई यथार्थ रूपमा जस्ताको तस्तै उतार्ने प्रयत्न गरेका छौँ। वी.पी.का शब्दलाई यथार्थ रूपमा छाप्न प्रयास गरेको छु भनी भोला चटर्जीले आफ्नो मन्तव्यमा उल्लेख गरेकाले पनि हामीले त्यही अभिव्यक्तिलाई तोडमरोड नगरी प्रतिबिम्बित गर्ने प्रयत्न गरेका छौँ।" यस कृतिका अनुवादक मण्डलको भनाइ।

यसरी नेपाली साहित्यमा प्रयोगवादी, मनौवैज्ञानिक र यौन मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्ति र शैलीलाई मूर्त रूप दिने वी.पी. कोइरालाका करिव एक दर्जन कृतिहरू अन्य भाषामा अनूदित भएका छन्। नेपाली लेखकहरूमध्ये तुलनात्मक रूपमा वी. पी. का कृतिहरू वढी अनुवाद भएका छन भन्न सकिन्छ।

समाजवादी, अस्तित्ववादी, सामाजिक यथार्थवादी स्रष्टा वी.पी.का यी कृतिहरू अन्य भाषामा अनूदित भएर विश्वसाहित्यमाझ पुग्नु साहित्यप्रेमी सवैका निम्ति गौरवको विषय हो।

अनुवाद आज

अनुवाद रूपान्तर अथवा उल्था अर्थात् पुनः कथन पूर्वकथनको सार्थक पुनरुक्ति अनुवाद हो। अनुवादलाई पनि विधा एउटा छुटै विधाका रूपमा मान्न थालिएको छ। अनुवाद कार्य धेरै पुरानो भए

पनि साहित्यमा पाठ्यक्रममा अनुवादले ठाउँ पाएको थिएन । यता केही दशकदेखि अनुवादको महत्त्व बढ्दै आएको छ ।

"केही वर्षअघिसम्म अनुवादकका रूपमा कसैले पनि आफ्नो परिचय दिन चाहँदैनथे । अचेल अनुवादकले पनि महत्त्व पाउन थालेका छन् । यसको कारण हो– अनुवाद साहित्यले विधागत मान्यता पाउनु तथा विश्वविद्यालयहरूमा स्नातक र स्नातकोत्तर पढाइ हुनु, विद्यावारिधिको समेत व्यवस्था हुन थालेपछि अनुवाद साहित्य र अनुवादकहरूको मानभाउ बढ्दै गएको हो भन्न सकिन्छ ।" डा. गोविन्दराज भट्टराई र उपप्रा बलराम अधिकारीको हो यो अभिव्यक्ति ।

सन्दर्भसूची

१. वी.पी. कोइरालाका छरिएका सामग्री सं. जीवनचन्द्र कोइराला २०५८ पृ. ११५ ।
२. पूर्ववत् पृ. ११८ ।
३. कृष्णचन्द्रसिंह प्रधान– पृ. इ. केही आधुनिक कविता २०२९, नेपाल राजकीय प्रज्ञा-प्रतिष्ठान, काठमाडौँ ।
४. पाँच सय वर्ष– सं. बालकृष्ण पोखरेल– साझा प्रकाशन २०३१, ललितपुर ।
५. अनुवाद ग्रन्थसूची सं माधवलाल कर्माचार्य – (१८५५-२०५८) नेपाल राजकीय प्रज्ञा-प्रतिष्ठान २०५९ काठमाडौँ ।
६. जेल जर्नल– वी.पी. कोइरालाई जगदम्बा प्रकाशन– २०५४ काठमाडौँ ।
७. डा. हरिप्रसाद शर्मा– विश्वेश्वरप्रसाद कोइरालाका कथा, साझा प्रकाशन २०५० ।
८. सं. डा. एक नारायण पौडेल– वी.पी. कोइरालाका वैचारिक आयाम, प्रजातान्त्रिक विचार समाज चितवन २०७१
९. डा. तुलसी भट्टराई– वी.पी. कोइराला र नेपाली काङ्ग्रेस– मधुवन प्रकाशन, २०७२ ।
१०. वी.पी. कोइराला– वी.पी. विचार बिन्दु, संस बलदेव मजगैयाँ– २०७२, ओरिएन्टल पब्लिकेसन हाउस, काठमाडौँ ।
११. देवीप्रसाद बनवासी– मेलमिलाप, २०६९, ओरिएन्टल पब्लिकेसन हाउस, काठमाडौँ ।
१२. पुरुषोत्तम वस्नेत - नेपाली काङ्ग्रेसका इतिहासको प्रारूप, लेखक स्वयं- २०६६ ।
१३. वी. पी. कोइरालासँग सम्बद्ध विभिन्न विशेषाङ्कहरू ।

नेपालीमा अनूदित हिन्दी साहित्य

डा. रामदयाल राकेश

अनुवाद वास्तवमा एउटा कला हो र एउटा विद्या पनि । प्रायः के भनिन्छ भने अनुवादमा मौलिकता हराउँछ, तर यसो भन्दैमा अनुवाद नगरिए अन्य भाषाका उत्कृष्ट साहित्यिक कृतिहरूको रसास्वादनबाट हामी वञ्चितै रहनेछौ तसर्थ अनुवादकले दुई भाषाहरूबिच सेतुको काम गर्दो रहेछ, जुन आजको आवश्यकता पनि हुन गएको छ ।

कुनै पनि भाषाको साहित्यिक रचनालाई मौलिक रूपमा पढ्नु धेरै राम्रो हो, तर सबै भाषाको ज्ञान सबैलाई सम्भव छैन । तसर्थ अनुवादको आवश्यकता पर्ने गर्दछ । हिन्दी र नेपाली धेरै नजिकका भाषा हुन् । हिन्दी नेपालको सम्पर्क भाषा हो । यसलाई प्रायजसो नेपाली लेखकहरू बुझ्ने गर्दछन् तर फर्काउन गाहारो हुन्छ । तसर्थ हिन्दीबाट नेपालीमा अनुवाद हुनु जरुरी छ । त्यस्तै नेपालीबाट हिन्दी भाषामा अनुवाद हुनु त अनिवार्य आवश्यकतै हुन जान्छ, किनभने हिन्दी भाषाभाषी साहित्यकारहरूलाई नेपाली भाषा बिलकुलै सम्प्रेषणीय हुँदैन । अतः नेपालीबाट हिन्दी भाषामा अनुवाद हुनु आजको आवश्यकता हुन गएको छ । यी दुइटै भाषाहरूको लिपि देवनागरी भएकाले अनुवाद सरल र सहज काम हुन सक्दछ, तर पनि अनुवाद एउटा कला भएकाले यसमा विशेषज्ञता हासिल गर्नु सधैँ सराहनीय हुन्छ । राष्ट्रकवि माधवप्रसाद घिमिरेले एक ठाउँमा भनेका छन्, 'हाम्रा निकटतम दुई छिमेकी मुलुकका नेपाली र हिन्दी भाषाका काव्यकृतिको परस्पर अनुवाद गर्नु हाम्रो कर्तव्य हो ।'

प्रा.डा.कृष्णचन्द्र शर्माका अनुसार प्रत्येक समुदायका आआफ्ना भाषा छन् भने एकआपसमा भेटघाटमा सम्पर्क या कामकाजी भाषाका रूपमा पहाड र हिमाली क्षेत्रमा नेपाली भाषाले र मधेसमा हिन्दी भाषाले काम गर्छ ।

– नेपाली साहित्यमा अनुवाद परम्परा र यसका नयाँ दिशा आषाढ ६, २०७२

अनुवाद विशेषज्ञ प्रा.डा. गोविन्दराज भट्टराईज्यूको शब्दमा : स्थानीय भाषाहरू स्थानीय भूगोलभित्र सीमित छन् भने हिन्दीको प्रयोगले पनि हामीलाई भारतवर्षसम्मको दर्शन गराउँछ । टाढा पुग्नु साधुकै आवश्यकता पर्दछ ।

त्यसकारण विश्वसाहित्यका महारथीहरू पनि अनुवादको कुरा गर्दा केवल साहित्यिक अनुवादको प्रसङ्ग उठाउँछन् । त्यसको आवश्यकता र गुणात्मकताको कुरा गर्दछन् । अझ त्यसको महत्त्व र प्रभावको कुरा गर्दछन् । किनभने केवल अनुवादले नै तत्कालै उनीहरूको यशकीर्ति फैलिन जान्छ । अघि नसुनिएको स्रष्टा एकैचोटि विश्वकै साझा सम्पदा बन्छ र नसुनिएको राष्ट्रकै वा भाषाको नाम विश्वले लिन थाल्छ ।

अनुवाद के हो ?

अनुवादको परिभाषा विभिन्न विद्वान्हरूले विभिन्न किसिमबाट गरेका छन् : केही विद्वान्हरूको परिभाषा प्रारम्भमा प्रस्तुत गरिन्छ :

1. "Translating Consists in producing in the, receptor language, first in meaning and secondly in style."
2. Translation is a custom- house through which passes, if the custom officers are not alert, more smuggled goods of foreign idiom, than through any other linguistic frontier."
3. Translation is the transference of the content of a text from one language into another, bearing in mind that we cannot

always dissociate the content from the form."-_Forester

अनुवादका लागि तीनवटा चीजहरूको ज्ञान हुनु नितान्त जरुरी छ :

१. पहिलो कुरो हो स्रोत भाषाको ज्ञान,
२. लक्ष्य भाषाको विषयको अनुरूप समुचित ज्ञान,
३. विषयको ज्ञान । विषयको ठिक ज्ञानबिना प्रायः देखिन्छ कि अनुवादक अर्थको अनर्थ पनि गर्ने गर्दछ ।

अनुवाद किन आवश्यक छ ?

अनुवाद कसका निम्ति आवश्यक छ भने विश्वका महानतम र उत्कृष्टतम रचनाहरूको पाठकले रसस्वादन गर्न सकुन् । यसलाई प्रस्ट गर्नका लागि म यहाँ एउटा प्रसङ्ग प्रस्तुत गर्न चाहन्छु :

"विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने १९१२ और १९१३ के दौरान इगलैण्ड की यात्रा की । जहाज पर यात्रा के दौरान उन्होंने एक नोटबुक में गीतांजलि की कविताओं का मूल बंगला से अंग्रेजी में अनुवाद किया । १६ जुन १९१२ को उनके पहुँचने के फौरनवाद राथेनस्टान म कविताओ के अंग्रेजी अनुवादवाली नोटबुक उनसे लेकर टाइप करबा दी । ९ जुलाई १९१२ को राथेनस्टेन ने हैम्पस्टेड में अपने किराए के मकान में कवि डब्लू.बी. इट्सद्वारा उन कविताओं के पाठ का आयोजन क्रिया । नवम्बर १९१२ को इन्डिया सोसायटी ने "गीतांजलि" सौंग्स अफ रिंग्स' का सीमित संस्करण (७५० प्रतियों का, जिनमे से ५०० उसके सदस्यो और २५० आम विक्री के लिए थी) प्रकाशित किया । इसमे १०३ कविताओंका अंग्रेजी अनुवाद संकलित था । इसकी प्रस्तावना डब्लू.बी.इट्स ने लिखी थी और इसमे रौथेनस्टेन द्वारा बनाया गया टैगोर का पेंसिल स्केच भी था ।

टैगोर ने यह प्रकाशन राथेनस्टेन को समर्पित किया । सन् १९१३ का नोबेल पुरस्कार उन्हें प्राप्त हुआ ।"

यहाँनिर एउटा अर्को विद्वान्को कथन पनि सान्दर्भिक हुन गएको छ : "प्रत्येक भाषा एउटा संसार हो । अनुवाद नभएसम्म हामी त्यस्ता गाउँहरूमा बसिरहन्छौं जसको वरिपरि मौनताको सिमाना हुन्छ । म नवराज न्यौपाने, विद्यावारिधि अनुसन्धानकर्ताको विचार, सिद्धान्त उपसंहारसँग शतप्रतिशत सहमत छु । उनको शब्दमा "'अनुवाद' अङ्ग्रेजी भाषाको 'ट्रान्सलेसन'को समरूप शब्द हो जसले एउटा सङ्केतमा भएको पाठलाई अर्को सङ्केतमा– अर्थपूर्ण तवरले पुनरुक्ति गर्नु भन्ने अर्थ दिन्छ । अनुवाद अभ्यास पुरानै प्रक्रिया भए तापनि यसको विद्यागत अध्ययन सन् १९७० देखि मात्रै सुरु भएको मानिन्छ । अनुवाद अध्ययन विद्याको रूपमा विकास भइसकेपछि विभिन्न व्यक्ति र संस्थाहरूले यसमा विभिन्न विचारहरू तथा सिद्धान्तहरूको योगदान दिएका छन् । उनको उपसंहार निम्नानुसार छ :

(क) अनुवादक र अनूदित पाठ का पाठहरू स्रोत र लक्ष्य, भाषा, साहित्य, संस्कृति, इतिहास र सन्दर्भप्रति सजग र जागरूक हुनुपर्दछ ।
(ख) कुनै पनि अनुवादलाई भौतिक अनुवादको रूपमा ग्रहण गर्नु हुँदैन किनकि प्रत्येक पाठले फरक बुझाइको अपेक्षा राख्न सक्दछ ।
(ग) अनुवाद अभ्यास र सिद्धान्तका बिच तालमेल हुनुपर्दछ । अभ्यास सिद्धान्त निर्माण गर्न सहायक हुन्छ भने सिद्धान्तले अभ्यासलाई मार्ग निर्देशन गर्दछ ।
(घ) अनूदित पाठ बोधगम्य र प्रवाहमय दुवै हुनु आवश्यक छ ।
(ङ) अनुवाद पाठ तेस्रो साहित्यका रूपमा स्थापित गर्नका लागि भौतिक सिद्धान्तहरूको विकास, संरक्षण र संवर्धन आवश्यक छ । नेपालको परिप्रेक्ष्यमा अनुवादको आफ्नै अनुकूलको सिद्धान्त विकास गरिनुपर्दछ । तसर्थ यस दिशामा सम्बन्धित सबैको ध्यान जानु जरुरी छ । अनुवादलाई वास्तवमा उल्था, रूपान्तर, भाष्यन्तर, लिप्यान्तर अनुवाद भावानुवाद र छाया अनुवाद र शब्दानुवाद आदि हुने गर्दछ ।

प्रा.डा.कृष्णचन्द शर्माको अनुसार :

"नेपाली भाषामा प्रयोग हुँदै आएको अनुवाद शब्द अङ्ग्रेजी ट्रान्सलेसन शब्दको रूपान्तरण हो । अनुवाद भाषान्तरण या रूपान्तरण मात्र हो कि पुनर्लेखन या भाषावैज्ञानिकहरूले अनुवादलाई भाषान्तरण या रूपान्तरण मान्दछन् भने उत्तरआधुनिक, विनिर्माण र उत्तरऔपनिवेशिक विद्वान्हरूले अनुवादलाई रूपान्तरण मात्र नमानेर पुनर्लेखन या पुनरुत्पादन मान्दछन् ।"

यस कार्यपत्र या आलेखको मूल उद्देश्य हिन्दीबाट नेपालीमा अनुवादको सूची प्रस्तुत गर्नु हो । यो कुनै

अनुसन्धानात्मक आलेखचाहिँ होइन। यसलाई म सकेसम्म विद्यागत रूपमा नै प्रस्तुत गर्न चाहन्छु।

महाकाव्य

हिन्दी भाषाका कवि सम्राट् अयोध्या सिंह हरिऔधका लोकप्रिय महाकाव्य 'प्रियप्रवास'को अनुवाद चन्द्रशेखर उपाध्यायले गरेका छन्। एउटा बान्की–

"दिवसको अब अन्त्य नजिक थियो।
नभ पनि अलि रक्त हुँदै गयो।"
तरु शिखाहरू माथि सुहाउँथ्यो।

कमलिनी कुल वल्लभको प्रभा– प्रकाशक अनुवादक स्वयं, २०५७

हिन्दी भाषाका महाकवि जयशङ्कर प्रसादका अमरकृति 'कामायनी' को पनि उनले अनुवाद गरेका छन्।

यस महाकाव्यका दोस्रो अनुवादक हुन् ढुण्डिराज भण्डारी, प्रकाशक साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।

खण्डकाव्य

हिन्दी भाषाका राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' रचित 'रश्मिरथी' खण्डकाव्यका अनुवादक पनि चन्द्रशेखर उपाध्याय नै हुन्।

हिन्दी भाषाका अर्को राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तको काव्य ग्रन्थ 'जयद्रथवध'का अनुवादक हुन् लक्ष्मी आचार्य। प्र.नेपाल भारत मैत्री सङ्घ, काठमाडौँ।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोरका नोबेल पुरस्कार प्राप्य काव्यकृतिका अनुवादक हुन् डा. तुलसी भट्टराई। डा.कीर्तिस्वरूप रावतको कवितासङ्ग्रह 'उपहार' शीर्षकमा अनूदित भएर लूनकरणदास गङ्गादेवी चौधरी साहित्यकला मन्दिरद्वारा प्रकाशित गरिएको छ। यसका अनुवादकहरू क्रमशः रामदयाल राकेश, कृष्ण प्रसाई र रश्मि शर्मा हुन्। यस सङ्ग्रहमा जम्माजम्मी १०९ कविताहरू प्रकाशित छन्। कवि हेमन्त शेषको कविता 'दायित्व' पत्रिकामा प्रकाशित भएको पाइन्छ। अनु. रामदयाल राकेश। मद्वारा अनूदित प्रसिद्ध कवि अटलबिहारी बाजपेयीको कविता पहाड कान्तिपुर दैनिकमा प्रकाशित भएको पाइन्छ। त्यस्तै विश्वनाथप्रसाद तिवारीको कविता 'अर्को दिनको खबर' कविता अङ्क १०१ वैशाख, साउन २०७२ मा प्रकाशित छ। मद्वारा अनूदित डा.गङ्गाप्रसाद विमलको कविता 'बोधिसत्त्वको देशमा' र शान्तिस्तूप र सम्बोधन कविता पूर्णाङ्क ८९, २०६७ मा प्रकाशित छन्। सर्वेश्वरदयाल सक्सेनाको कविता 'व्यङ्ग्य नबोल' शीर्षकमा - नीलकमलद्वारा अनूदित भएर कविता पूर्णाङ्क ७४, वैशाख जेठ, असार, साउन संक्षिप्त परिचयको साथ प्रकाशित भएको छ। पूर्णाङ्क -८९, २०६७।

फुटकर हिन्दी कविताहरू असङ्ख्य मात्रामा नेपालीमा अनुवाद भएको पाइन्छन्। गोविन्द व्यासको कविता 'वास्तविकता' विमल भौकाजीद्वारा अनुवादित भएर कविता पूर्णाङ्क ९९, भदौ मङ्सिर २०७१ मा प्रकाशित भएको पाइन्छ। केही पङ्क्तिहरू–

नदी / आफ्नो किनारामा शिर राखेर रोइरहेछ।
उफ्! लहरहरूलाई यस परिवेशमा कति पीडा भइरहेछ।

महेश सन्तोषीको कविता गरिबीको अर्थशास्त्रको अनुवादक हुन् नीलकमल कविता अङ्क १००, पुस चैत २०७१।

महादेवी वर्माको प्रसिद्ध गीत क्या पूजा क्या अर्चन रे 'के पूजन के अर्चन' रूपा धीरूद्वारा अनूदित भएर प्रकाशित भएको छ। सियाराम सरसको हिन्दी गीत धीरेन्द्र प्रेमर्षि र सोम शर्माको हिन्दी गीत पल्लव शर्माद्वारा अनूदित भएर कविताको गीत गजल विशेषाङ्क पूर्णाङ्क ५३, २०५२ मा प्रकाशित भएका छन्।

रामदरश मिश्रको कविता जमीन पक रही है - सङ्ग्रहमा सङ्कलित।

रासाद्वारा अनूदित भएर कविता अङ्क ७३, पुस, माघ, फागुन, चैत २०५७ मा प्रकाशित भएको छ।

राजकुमार कुम्भजको कविता ईश्वरको विरुद्ध, विनोददासको वर्णमालाभन्दा बाहिर र कुमार अम्बुजका कविता अनन्त जोशीद्वारा अनूदित भएका छन्। केदारनाथ सिंहको कविता 'पानी थिएँ म' शीर्षकमा पीताम्बर खनालद्वारा प्रकाशित भएर कविता अङ्क ८४ २०६१ मा प्रकाशित भएको छ।

दिनकर कुमारका तीन कविता स्वास्नीमान्छे, कैदमा वसन्त र गोली अविनाश श्रेष्ठद्वारा अनुवाद गरिएका छन् र कविता अङ्क ५६, वैशाख जेठ २०५३ मा प्रकाशित छन्।

कुमार विकलको कविता 'एक आदिम ईश्वरको हत्या' शीर्षकमा कविता अङ्क ८१, २०६० मा प्रकाशित छ। यसका अनुवादक रोशन थापा 'नीरव' हुन्। कवयित्री गगन गिलका दुईवटा कविता 'अँध्यारोमा बुद्ध' र

'घुमिरहेछन् बुद्ध शीर्षकमा अनूदित भएर प्रकाशित भएका छन्। यसका अनु. अविनाश श्रेष्ठ हुन्। अशोक बाजपेयीको चर्चित कविता 'प्रेम गरिरहँदा, सूर्य स्मरण' अविनाश श्रेष्ठद्वारा अनूदित भएर कविता अङ्क ४९ २०५१ मा प्रकाशित भएको छ। हिन्दी हास्यव्यङ्ग्य विद्याका प्रख्यात साहित्यकार शरद जोशीको कविता 'प्रदर्शनी' शीर्षकमा विमल भौकाजीद्वारा अनूदित भएर प्रकाशित भएको पाइन्छ। कवि र कूटनीतिज्ञ अभय कुमारका केही कविताहरू जस्तो– समयका लहरहरू, दुई आमा, जब मुटु टुट्छ र पहिलो शताब्दी डा.संजीता वर्माद्वारा अनूदित भएर प्रकाशित भएका छन्। भारतीय चर्चित कवि धूमिलको कविता घर फर्केपछि शीर्षकमा नीलकमलद्वारा अनुवाद गरिएको छ। कविता पूर्णाङ्क ८८, २०६७ जेठ-भदौ १ अङ्कमा। डा.पद्मा पाटिलको कविता मेरो कुनै महत्त्व छैन डा.संजीता वर्माद्वारा अनूदित भएर कविता पूर्णाङ्क ९०, माघ-वैशाख (२०६७-६८) मा प्रकाशित भएको पाइन्छ। गोरख पाण्डेका दुई कविता उनीहरूको डर र तिमीलाई डर छ नेपाली भाषामा प्रकाशित भएको पाइन्छ।

तिमीलाई डर छ/
हजार साल पुरानो छ/
उनीहरूको रिस/
हजार साल पुरानो छ/
उनीहरूको घृणा/मैले त मात्र/
उनीहरूका छरिएका शब्दहरूलाई/
लय र तुकसित फर्काइ रहेछु/
तर तिमीलाई डर छ/
म आगोलाई भड्काइरहेछु।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेनाको आज पहलीवार कविता आज पहिलोपल्ट शीर्षकमा अनुवाद गरिएको छ। यसका अनुवादक हुन् डा.मृदुला शर्मा। श्याम प्रधानद्वारा अनूदित अखिलेश कुमारको 'बौलाहाघाट' रूपान्तरण अङ्क ३, वि.सं. २०७२ मा प्रकाशित भएको पाइन्छ। त्यस्तै लेखी जोयको म एक नाङ्गी केटी हुँ र महेन्द्र गगनको दियो रोशन थापा 'नीरव'द्वारा अनूदित रूपान्तरण अङ्क ३ वि.सं. २०७३ मा प्रकाशित भएको पाइन्छ। डा.प्रमोदकुमार सिंहको कविता वही सच है दिव्य गिरीद्वारा अनूदित भएर समकालीन साहित्यको पूर्णाङ्क ७५ मा प्रकाशित भएको छ।

सुमी लोहनीद्वारा सम्पादित 'शब्दसंयोजन' पत्रिकाको प्रत्येक अङ्कमा उनीद्वारा नै प्रकाशित तथा अनूदित विभिन्न हिन्दी कविका कविताहरू प्रकाशित भएका छन्। जसमध्ये केही अनूदित कविताहरूको विवरण निम्नानुसार छन्। राजेशकुमार शर्मा पुरोहितको संस्कार, वर्षा श्रीवास्तवको मित्रता, डा.प्रतापराव कदमको भाषा, आत्मा रञ्जनको कारण, रुचि भल्लाको सुन (शब्दसंयोजन वर्ष १२, अङ्क ९, पूर्णाङ्क १४०, २०७२) त्यस्तै प्रभुदयाल श्रीवास्तवको अनुरोध, पवन चौहानको खोक्ने बुबा र शिखा वाष्णेयको गर्विलो प्रेम (शब्दसंयोजन अङ्क ८, पूर्णाङ्क १३९) उदयवीर सिंहको जीवन र रहस्य र सुरभि सपू तमन्ना : किसानको आत्मघाउ (शब्दसंयोजन वर्ष १२, अङ्क ६, पूर्णाङ्क १३७), २०७२ केदारनाथ अग्रवालको कविता पत्थर, कञ्चन पाठकको सेतो तारा, शशाङ्क मुकुट शेखरको कहिल्यै सोचेको छ, सुसंस्कृति परिहारको धर्तीको चाड वर्ष १२, अङ्क ३, पूर्णाङ्क १३४, २०७२ को शब्दसंयोजनमा उदय शङ्करको मान्छे वर्ष १२, अङ्क ७७, पूर्णाङ्क -१४२, २०७२। केही पङ्तिहरू प्रस्तुत छन् :

मान्छे
मरे पछि
केही सोच्दैन
मान्छे मरे पछि
केही बोल्दैन
केही न सोचे पछि
केही न बोले पछि
मान्छे मर्छ

(शब्दसंयोजन वर्ष १२, अङ्क ७७, पूर्णाङ्क १४२)

आरती तिवारीको कविता घाउ शीर्षकमा अनूदित भएको छ। (शब्दसंयोजन वर्ष १३ अङ्क ३, पूर्णाङ्क १४६, २०७३ असारमा) मङ्गलेश डबरालको कविता खाली स्थान कविताको अनुवादक हुन् सुमी लोहनी र मञ्जरी शुक्लाको कविता रङ (शब्दसंयोजन अङ्क १२, पूर्णाङ्क १३२, २०७२ वैशाख अङ्कमा) प्रकाशित भएको छ।

प्रसिद्ध कवि रघुवीर सहायको काव्यसङ्ग्रह 'हँसो, हँसो और जल्दी हँसो' को नेपाली रूपान्तर लेखक र पत्रकार किशोर नेपालले गर्नुभएको छ र यो स्वतन्त्रता प्रकाशन काठमाडौँबाट प्रकाशित भएको छ। त्यस्तै उनले कवि र कूटनीतिज्ञ अभय कुमारका कविताहरूको

सँगालोलाई यात्रामा कविता शीर्षक दिएर अनुवाद गरेका छन् ।

मरिससस्थित हिन्दी कवयित्री मधु गजाघरको कविता बुबा शीर्षकमा मधुपर्कको पुस अङ्क २०७४ मा प्रकाशित भएको छ । यसका अनुवादक हुन् वसन्त महर्जन । मोहन राणाको कविता कृष्ण वजगाईद्वारा अनूदित भएको छ कालो हावा ।

गजलसङ्ग्रह

हिन्दीका प्रसिद्ध गजलकार दुष्यन्त कुमारको चर्चित गजलसङ्ग्रह साये में धूपको अनुवाद छायामा घाम शीर्षकमा मद्वारा अनूदित भएर डा. रामकेवल शाहद्वारा प्रकाशित भएको छ । एउटा उदाहरण प्रस्तुत छ :

"कस्ता कस्ता दृश्य सामुन्ने आउन थाले
मान्छे गाउँदागाउँदै कराउन थाले ।"

प्रसिद्ध कवि तथा गीतकार गोपालसिंह नेपालीको गद्यगीत कल्पनाको अनुवाद टीकाराम उपाध्याय निर्भीकले गरेका छन् र रङ प्रकाशन आसामबाट यो प्रकाशित भएको छ । टीकाराम उपाध्याय निर्भीकद्वारा नै केही हिन्दी कविताहरू इन्दु एक : विन्दु दुई शीर्षकमा अनूदित भएर रङ प्रकाशन, आसामबाट प्रकाशित भएको पाइन्छ । केही हिन्दी कविका कविताहरू नौलो सङ्गम शीर्षकमा अनूदित भएर प्रकाशित भएको छ तर अनुवादकको नाम दिइएको छैन । यसका सम्पादकमा चित्तरञ्जन नेपाली र माधवलाल कर्माचार्यको नाम दिइएको छ । मैथिलीशरण गुप्तका खण्डकाव्यको जयद्रथ वधको नेपाली भाषामा अनुवाद लक्ष्मी आचार्यले गरेकी छिन् । २०२६ सालमा र यसको प्रकाशक नेपाल-भारत मैत्री सङ्घ हो ।

उपन्यास

प्रसिद्ध पत्रकार तथा साहित्यकार यज्ञशद्वारा हिन्दी साहित्यका चर्चित उपन्यासकार उदयप्रकाशको लघु उपन्यास 'मोहनदास'को अनुवाद प्रकाशित भएर प्रशंसित भएको छ ।

श्याम प्रधानद्वारा अनूदित शरदचन्द्र चट्टोपाध्यायको उपन्यास देवदास नेपाल प्रज्ञा-प्रतिष्ठानबाट प्रकाशित भएको छ ।

हिन्दी साहित्यकार भगवती वर्माको चर्चित उपन्यास चित्रलेखाको अनुवाद उपन्यासकार तारिणीप्रसाद कोइरालाले यसै शीर्षकमा गरेका हुन् ।

प्रसिद्ध उपन्यासकार महाश्वेता देवीको उपन्यास १०८४ औँ की आमाको अनुवाद यू.कार्की २०५७ सालमा गरेका छन् र यसको प्रकाशन अक्षलोक प्रकाशनबाट भएको छ ।

रूसी उपन्यासकार, मक्सिम गोर्कीको प्रसिद्ध उपन्यास मदर (mother)को हिन्दी अनुवाद मांको नेपालीमा अनुवाद पं. बाबुराम भट्टराईले गरेका छन् । अज्ञातद्वारा लिखित उपन्यास काँडाको नेपाली अनुवाद डा.पी. परियारले गरेका छन् २००३ मा । देवकीनन्दन खत्रीको बहुचर्चित उपन्यास चन्द्रकान्ताको अनुवाद १९५६ मा सदाशिव शर्माद्वारा गरिएको पाइन्छ । गुलवकावली उपन्यासको अनुवाद बालचन्द्र शर्माद्वारा २००५ मा र शम्भुप्रसाद ढुङ्गेलद्वारा १९८० मा गरिएको पाइन्छ । जैनेन्द्र जैनको प्रसिद्ध उपन्यास त्यागपत्रको अनुवाद विन्द्या सुब्बाले गरेकी हुन् । शिवनारायण श्रीवास्तवको उपन्यास धुवाँ आग और इन्सानको अनुवाद धुवाँ आगो अनि मानिस शीर्षकमा सचेन लामाद्वारा भएको छ र यसको प्रकाशन लिशेन प्रकाशनबाट भएको छ । मिखाइल शोलोको उपन्यास हिन्दीमा गोपीरमण उपाध्यायद्वारा २०५६ मा अनुवाद भएको छ र एगिमा पब्लिकेसनबाट प्रकाशित भएको छ । बङ्गलादेशको बहुचर्चित उपन्यासकार तसलीमा नसरीनको फेरा उपन्यासको अनुवाद वसन्तकुमार शर्माद्वारा भएको छ र निरन्तर प्रकाशनबाट प्रकाशित भएको छ । त्यस्तै उनकै उपन्यास लज्जा हेमराज शर्माद्वारा अनूदित भएर मकालु बुक्स एन्ड स्टेसनरीबाट २०५४ मा प्रकाशित भएको छ । त्यस्तै उनकै उपन्यास नारीके हेक मेको नेपाली अनुवाद आइमाईको हकमा शीर्षकमा पं.बाबुराम भट्टराईले गरेका छन् । यो उपन्यास फेरि यादव प्र.पाण्डेद्वारा अनूदित भएर एसिया पब्लिकेसन, काठमाडौँबाट २०५६ सालमा प्रकाशित छ ।

हरमन हेसको उपन्यास सिद्धार्थको हिन्दी भाषाबाट नेपाली भाषामा अनुवाद कवि कुमुद देवकोटाले गरेका हुन् । तसलीमा नसरीनको नष्ट लड़की, उपन्यास वैजनी वस्त्रको नेपाली भाषामा अनुवाद भएको पाइन्छ सन् १९६१ मा र प्रकाशन नेपाली नष्ट गद्य, विग्रेकी केटी एल.पी.शर्माद्वारा अनूदित भएर जनसेवा प्रकाशन काठमाडौँबाट २०५५ मा प्रकाशित भएको छ । यसैको

अनुवाद पं.बाबुराम भट्टराईबाट २०५४ मा भएको छ, यस सन्दर्भमा नेपालको रक्तरञ्जित इतिहासबारेको रोमाञ्चक उपन्यास नेपालेश्वरको अनुवाद महत्त्वपूर्ण छ। हिन्दीका चर्चित उपन्यासकार विराजद्वारा लिखित यस उपन्यासका अनुवादक हुन् रोशन दाहाल र यसको प्रकाशक मञ्जरी पब्लिकेसन पुतलीसडक, काठमाडौँ रहेछ। यो यसै साल असारमा प्रकाशित भएको हो। प्रसिद्ध कथाकार र उपन्यासकार हिमांशु जोशीको उपन्यास कगार की आगको अनुवाद कथाकार भागीरथी श्रेष्ठद्वारा गरिएको हो र यसको नाम राखिएको छ अग्निपर्व तथा यसको प्रकाशक रत्न पुस्तक भण्डार हो। उनकै उपन्यास परिक्रमा नवनिधि पन्तद्वारा अनूदित भएर इसाई साहित्य सङ्घ दार्जिलिङबाट भएको छ।

नाटक

महाकवि तथा प्रसिद्ध नाटककार जयशङ्कर प्रसादको चन्द्रगुप्त नाटकको अनुवाद छविलाल उपाध्यायले गरेका छन्। प्रकाशकचाहिँ देवराज उपाध्याय, घिराई माजुली आसाम र यो सन् १९९२ मा प्रकाशित भएको पाइन्छ। प्रसिद्ध नाटककार रामवृक्ष बेनीपुरीको नेत्रदान नाटकको अनुवाद राजनीतिज्ञ तथा प्रसिद्ध साहित्यकार रामहरि जोशीले २०१६ सालमा गरेका हुन्।

कवि तथा नाटककार धर्मवीर भारतीको अन्धायुगको नेपाली रूपान्तरण राजेन्द्र शलभले गरेका छन् र यसको मञ्चन पनि भएको छ। प्रसिद्ध नाटककार तथा उपन्यासकार मोहन राकेशका दुई नाटकहरू क्रमशः आषाढ़का एक दिन र लहरों के राजहंसको रूपान्तरण प्रकाश सायमीले गरेका हुन् र यसको मञ्चन आरोहणबाट भएको हो।

कथा

उपन्यास सम्राट् प्रेमचन्द्रका केही कथा (प्रेमचन्द्रका केही चुनिएका कथाहरू) हिन्दीबाट नेपालीमा भाइचन्द्र प्रधानबाट अनूदित भएको हो र यो प्रेमचन्द्र जन्मजयन्ती समारोह समिति दार्जिलिङबाट सन् १९८३ मा प्रकाशित भएको पाइन्छ।

प्रेमचन्द्रका उत्कृष्ट कथा (कात्रो, दिदी बहिनी, नशा, मिस पदमा, इदगाह(प्रार्थनास्थल), बुद्धिचालका खेलाडी, आत्माराम, मनोवृत्ति, हल गोरुको कथा, पुसको रात, लेखक, मोटेरामजी शास्त्री, जरिमाना) को अनुवाद श्याम प्रधानबाट भएको छ र यो रत्न पुस्तक भण्डारबाट २०६६ सालमा प्रकाशित भएको हो। भगवतशरण उपाध्यायको कथासङ्ग्रह भोरको बिहानी पख शीर्षकमा सागरमणि आदिबाट अनुवाद भएको हो र साझा प्रकाशनबाट २०२५ मा प्रकाशित भएको हो। प्रसिद्ध कथाकार माया ठकुरीले सार्क मुलुकका महिला कथाहरू धैरैजसो हिन्दीमा लिखित कथाहरूको अनुवाद गरेर एउटा प्रशंसनीय काम गरेकी छिन् र यो नेपाल प्रज्ञा-प्रतिष्ठानबाट प्रकाशित भएको हो। यसमा अजित कौरका दुईवटा कथा, मौसमी कडंलीको एक र प्रतिभा रायका ३ तथा प्राज्ञ उषा ठाकुरको आत्मदाह शीर्षकको अनुवाद सङ्गृहीत छ। आफन्ती के किस्सेको हिन्दी भाषाबाट नेपाली भाषामा आफन्तीका कथा शीर्षकमा चन्द्रमान वज्राचार्यद्वारा २०४९ सालमा अनुवाद भएर जनचेतना प्रकाशन काठमाडौँबाट प्रकाशित भएको हो। यज्ञशले नै उदय प्रकाशद्वारा लिखित नेलकटर कथाको अनुवाद गरेका छन्। चर्चित हिन्दी कथाकार कृष्णचन्दरको कथासङ्ग्रह बारुद र चेरीका फूलहरू २०१२ सालमा केकेमनुकच्यो पोखेलबाट भएको छ। समसामयिक भारतीय कथाहरू बी.योञ्जनबाट प्रकाशित भएका छन्। श्याम ब्रदर्स प्रकाशन, दार्जिलिङबाट -सन् १९७९ मा प्रकाशित भएको छ। तेजेन्द्र शर्माको उपन्यास पासपोर्टका रङहरू र आठ जना हिन्दीका कथाकारहरूको अनुवाद कुमुद अधिकारीले गरेका छन्, जसको शीर्षक छ – जिन्दगी एक फोटो फ्रेम।

आत्मकथा तथा जीवनी

आत्मकथा तथा मेरो सत्यको प्रयोग सन् १९६२ मा अनूदित भएर प्रकाशित भएको पाइन्छ। यसको अनुवाद शेखर गिरीद्वारा २०७४ सालमा भएको छ। प्रो. विमलप्रसादको कृति जयप्रकाश नारायण विनोदरञ्जन बरालद्वारा अनूदित भएर विकासरञ्जन बरालबाट २०५४ सालमा भएको उपलब्ध छ। नेहरुकी आत्मकथा जवाहरलाल नेहरुको आत्मकथा शीर्षकमा पाँच कौडी देबाट सन् १९६२ मा भएको छ। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरको जीवनस्मृतिको अनुवाद माधवलाल कर्माचार्यबाट भएको र नेपाल राजकीय प्रज्ञा-प्रतिष्ठानबाट २०२२ सालमा प्रकाशित भएको छ।

फाँसी के तख्ते सेको अनुवाद वाचस्पति देवकोटाद्वारा भएको छ र यसको शीर्षक छ झुन्ड्याउँदा झुन्ड्याउँदै। प्रकांशकचाहिँ प्रगति प्रकाशन काठमाडौँ। नागभूषण पटनायकको ऐतिहासिक दस्तावेज वलिदेवीवाटको अनुवाद राजेश्वर थापावाट भएर पाथीभरा प्रकाशनवाट २०४० सालमा प्रकाशित भएको हो।

सी.आर.स्वामीनाथको कृति

श्री शङ्कराचार्य जीवनचरित्र श्री शङ्कराचार्यको जीवनचरित्र शीर्षकमा भएको छ र यसका अनुवादक हुन् कृष्णप्रसाद भट्टराई। यो २०२५ सालमा प्रकाशित भएको पाइन्छ। महात्मा गान्धीकी संक्षिप्त आत्मकथाका अनुवादक हुन् इन्द्र सुन्दास र यो १९६२ इ. मा प्रकाशित भएको हो। श्री साइ सच्चरित्र (गोविन्दराज रघुनाथ दामोलकर) का अनुवादक हुन् विनोदप्रसाद धिताल र उनीद्वारा नै २०५५ सालमा प्रकाशित भएको पाइन्छ।

इतिहास तथा संस्कृति

गोपाल गोड्सेको रचना गान्धी वध क्योंको अनुवाद मधुसूदन पाण्डेले गरेका हुन्। वी.पी. प्रकाशन काठमाडौँवाट १९९९ इ.मा प्रकाशित भएको हो। शम्भुनाथको पुस्तक संस्कृति की ओर प्राज्ञ निनु चापागाईंवाट भएको छ । भारतीय कवयित्री, संस्कृतिकर्मी कात्यायनीको उपभोक्तावादलाई प्रत्युत्तर अनूदित भएर वेदना पत्रिकामा छापिएको छ। लोकप्रिय आञ्चलिक उपन्यासकार फणीश्वरनाथ रेणुको नेपाली क्रान्ति कथाका अनुवादक हुन् डा. तुलसी भट्टराई। ओशोको समाजवादवाट सावधानका अनुवादक पनि डा. तुलसी भट्टराई हुन्।

सन्दर्भसूची

१. सम्पा. माधवलाल कर्माचार्य : अनुवाद ग्रन्थसूची : नेपाल राजकीय प्रज्ञा-प्रतिष्ठान, काठमाडौ २०५८।
२. अनु. माया ठकुरी : सार्क गहिला कथाकारका कथाहरू : नेपाल प्रज्ञा-प्रतिष्ठान २०७३।
३. अनु. श्याम प्रधान : प्रेमचन्दका उत्कृष्ट कथा : रत्न पुस्तक भण्डार : काठमाडौँ २०६६।
४. अनु. चन्द्रशेखर उपाध्याय : प्रियप्रवास (नेपाली अनुवाद)प्र. स्वयं अनुवाद : २०५७।
५. अनु. रामदयाल राकेश : कृष्ण प्रसाई : रश्मि शर्मा : उपहार, प्र. लूनकरणदास - गङ्गादेवी चौधरी साहित्य प्रतिष्ठान।
६. अनु. रामदयाल राकेश : छायामा घाम : दुष्यन्त कुमारका गजलहरू : प्रं.डा.रामकेवल शाह : २०६२।
७. कविताका विभिन्न अङ्कहरू।
८. रूपान्तरणका विभिन्न अङ्कहरू।
९. शब्दसंयोजनका विभिन्न अङ्कहरू।

नेपालीमा अनूदित रूसी साहित्य

प्रा.डा. जङ्गब चौहान

एसियाको सानो भूपरिवेष्ठित देश नेपाल र एसिया तथा युरोपको विशाल भू-भागमा विस्तृत संसारको सबभन्दा ठुलो क्षेत्रफल ओगटेको र विश्वको पहिलो साम्यवादी राष्ट्रको रूपमा उदय र अस्तको इतिहास बोकेको रसिया (तत्कालीन सोभियत सङ्घ) बीच दौत्य सम्बन्धको स्थापना सन् १९५६ मा भएको हो । राजदूत स्तरमा दौत्य सम्बन्ध स्थापनापश्चात् तत्कालीन सोभियत सङ्घबाट नेपालले विभिन्न क्षेत्रमा सहयोग पाउँदै आएको थियो । पारस्परिक सहयोग र सम्पर्कका क्रममा नेपाल र रसियाबिच भाषिक तथा साहित्यिक स्तरका सम्पर्कहरू पनि कायम भएका छन् । करिब ६००० भन्दा बढी नेपाली विशेषज्ञहरू पूर्वसोभियत सङ्घका विभिन्न विश्वविद्यालय र शिक्षण संस्थाहरूबाट उच्चशिक्षा प्राप्त गरी स्वदेश फर्किसकेका छन् भने करिब ३०० नेपाली विद्यार्थीहरू हाल त्यहाँका विभिन्न शिक्षण संस्थाहरूमा अध्ययन गर्दै छन् । पूर्वसोभियत सङ्घ र हालको रसियाबाट उच्चशिक्षा हासिल गर्ने क्रममा करिब ६३०० नेपालीहरूले रूसी भाषामा दक्षता हासिल गरिसकेका कुरा यसबाट बुझिन्छ ।

नेपालमा सन् १९६३ देखि विश्वभाषा क्याम्पसमा रूसी भाषा अध्यापनको सुरुवात भएको हो । यसरी नै सन् १९६८ देखि नेपाल-सोभियत मैत्री सङ्घ र सोभियत सांस्कृतिक केन्द्र (हाल रूसी विज्ञान तथा संस्कृति केन्द्र) अन्तर्गत रूसी भाषा शिक्षणको कार्य सुरु भएको हो । सन् १९८० को दशकतिर यी संस्थाहरूमा करिब दुई सय नेपाली विद्यार्थीहरू रूसी भाषा पढिरहेका हुन्थे भने आठ जना रूसी भाषा शिक्षकहरू अध्यापन कार्यमा संलग्न थिए । काठमाडौँस्थित सोभियत सांस्कृतिक केन्द्र (रूसी विज्ञान तथा सांस्कृतिक केन्द्र) मा दुईवर्षे आधारभूत कक्षाका साथै तीनवर्षे विशेष कक्षाको व्यवस्था थियो । तर सोभियत सङ्घको विघटनपश्चात् रूसी सांस्कृतिक केन्द्रको रूसी भाषा कक्षामा विगतको चहलपहल समाप्तप्राय भएको छ । यसो हुनुमा पूर्वसोभियत सङ्घले नेपाली विद्यार्थीहरूका लागि छुट्याएका छात्रवृत्तिको कोटा नगण्य हुनु नै प्रमुख कारण रहेको छ । हाल रूसी सांस्कृतिक केन्द्रमा अल्पकालीन भाषा शिक्षण कार्य मात्र चलिहरेको छ ।

उपरोक्त पृष्ठभूमिमा नेपाली भाषामा केही रूसी साहित्यकारका कृतिहरू अनुवाद भई प्रकाशित भएका छन् । रूसी भाषाबाट सोझै नेपालीमा अनुवाद गरी प्रकाशित गराउने काममा तत्कालीन सोभियत सङ्घका 'रादुगा' (इन्द्रेणी) र 'प्रोग्रेस' (प्रगति) प्रकाशनको भूमिका महत्त्वपूर्ण मान्न सकिन्छ । हालसम्म नेपाली भाषामा प्रकाशित रूसी साहित्यको विवरण यस प्रकार छ :

कृतिको नाम	मूल लेखक	अनुवाद	प्रकाशन र वर्ष
टाल्सटायको कथा	तोल्सतोइ	इन्द्र सुन्दास नेपाली साहित्य सम्मेलन	सन्१९४९
वैदारको मरण (कथासङ्ग्रह)	अन्तोन चेखोभ	गङ्गाप्रसाद प्रधान	प्रलेस, सन् १९६०
बाज (कथासङ्ग्रह)	मक्सिम गोर्की	नीलाम्बर आचार्य	ने.सो.मै.सं., सन् १९६८
गद्यमा कविता	इभान तुर्गनेभ	कृष्णप्रकाश श्रेष्ठ	तेजकुमारी श्रेष्ठ,सन्१९७१
चेखोभका कथाहरू	अन्तोन चेखोभ	कृष्णप्रकाश श्रेष्ठ	तेजकुमारी श्रेष्ठ,सन्१९७१
इ.पा. मिनायेभको नेपाल (संस्मरण)	इ.पा. मिनायेभ	कृष्णप्रसाद श्रेष्ठ	जगदम्बा प्रकाशन,सन्१९७२
बूढो र घोडा (उपन्यास)	चिंगिज आइतमातोभ	राजेन्द्र मास्के	प्रगति, सन् १९७९

पर्ति जमिन, मलाया जेम्ल्या, पुनर्जन्म	लियोनिद ब्रेझनेभ	सुदर्शन देवकोटा र मदनमणि दीक्षित	सोभियत दूतावासको सूचना विभाग, १९८०
मान्छेको भाग्य र दोनका कथाहरू	मिखाइल शोलोखोभ	कृष्णप्रकाश श्रेष्ठ	प्रगति, सन् १९८२
हाम्रो जमानाका चरित्र नायक (उपन्यास)	मिखाइल लेर्मोन्तोभ	कृष्णप्रकाश श्रेष्ठ	रादुगा, सन् १९८३
मक्सिम गोर्कीको जीवनी	गेर्हार्ड याबरमन	हरिहर खनाल	निरन्तर पब्लिकेशन,सन् १९८३
कथा-कहानी	लेभ तोल्सतोइ र अन्य	कृष्णप्रकाश श्रेष्ठ	रादुगा, सन् १९८४
शत्रुहरू (नाटक)	मक्सिम गोर्की	खगेन्द्र संग्रौला	नवआलोक, सन् १९८४
योगोर बुलिचोभ र अन्य (नाटक)	मक्सिम गोर्की	खगेन्द्र संग्रौला	कृष्णदेवी वैद्य, सन्१९८४
अँध्यारोमा निसास्सिएका मानिसहरू (नाटक)	मक्सिम गोर्की	खगेन्द्र संग्रौला	नवआलोक, सन् १९८४
सरकारी निरीक्षक (नाटक)	निकोलाइ गोगोल	खगेन्द्र संग्रौला	नवआलोक, सन् १९८४
भास्या झेलेज्नोभा (नाटक)	मक्सिम गोर्की	खगेन्द्र संग्रौला	प्रगतिशील पुस्तक भण्डार, सन् १९८५
आमा (उपन्यास)	मक्सिम गोर्की	राजेन्द्र मास्के	रादुगा, सन् १९८५
मान्छेहरूको माझमा (उपन्यास)	मक्सिम गोर्की	सुदर्शन देवकोटा	रादुगा, सन् १९८५
अग्नी-दीक्षा भाग १ र २ (उपन्यास)	निकोलाई आस्त्रोभ्स्की	राजेन्द्र मास्के	रादुगा, सन् १९८६
तिमुर र उसका साथीहरू	अर्कादी गाइदर	श्याम उपाध्याय	रादुगा, सन् १९८६
बालककाल (उपन्यास)	माक्सिम गोर्की	नीलाम्बर आचार्य	रादुगा, सन् १९८६
रूसी चरित्र (कथासङ्ग्रह)	तोल्सतोइ र अन्य	कृष्णप्रकाश, नीलाम्बर, श्याम	रादुगा, सन् १९८७
दुब्रोभ्स्की (उपन्यास)	अलेक्साद्र पुश्किन	कृष्णप्रकाश श्रेष्ठ	रादुगा, सन् १९८७
मेरा विश्वविद्यालयहरू (उपन्यास)	मक्सिम गोर्की	सुदर्शन देवकोटा	रादुगा, सन् १९८९
पिता र पुत्र (उपन्यास)	इभान तुर्गेनेभ	कृष्णप्रकाश श्रेष्ठ	रादुगा, सन् १९९०
प्रथम शिक्षक (उपन्यास)	चिंगिज आइतमातोभ	कृष्णप्रकाश श्रेष्ठ	रादुगा, सन् १९९०
भान्का र संसार प्रसिद्ध कथाहरू	अन्तोन चेखोंभ	पी.भी. सिलवाल (बलराम सिलवाल)	एलिस नेपाल, सन १९९१
युरेसियाका कविता	युरेसियाका १० कवि	डा. जङ्गव चौहान	ने.रु.भा.सा.स.प.,सन्१९९६
मत्सिरी (खण्डकाव्य)	मिखाइल लेर्भोन्तोभ	जङ्गव चौहान	ने.रु.भा.सा.स.प.,सन्१९९७
लेनिन गाथा (कवितासङ्ग्रह)	मिखाइल भेर्शीनिन् (सङ्कलन)	कृष्णप्रकाश श्रेष्ठ	रादुगा, सन् १९९८
जीवित देवी र जीवनचक्र (काव्य)	रसुल हम्जातोभ	कृष्णप्रकाश श्रेष्ठ	ने.रा.प्र.प्र., सन् १९९८
प्रशान्त दोन (उपन्यास)	मिखाइल शोलोखोभ	गोपीकृष्ण उपाध्याय	एसिया पब्लिकेशन,सन्२०००
लोलिता (उपन्यास)	भ्लादिमिर नोभकोभ	केशरी अम्माई	प्रवेश प्रकाशन,सन्२००३
कविताञ्जलि	समकालीन रूसी र नेपाली कविहरू	कृष्णप्रकाश श्रेष्ठ (संयोजक एवं सम्पादक)	मित्रकुञ्ज, सन् २००४
चेरीको बगैंचा (नाटक)	अन्तोन चेखोभ	होमर श्रेष्ठ	गोरखा साहित्यिक मञ्च, सन् २००५
रसियाको गहिराइमा र अन्य कथाहरू	चेखोभ, गोर्की, शोलोखोभ आदि	डा. जङ्गव चौहान	भृकुटी एकेडेमिक पब्लिकेशन, सन् २००५
मक्सिम गोर्कीका उत्कृष्ट कथाहरू	गोर्की ललिजन रावल	पैरवी प्रकाशन, सन् २००६ (वि.सं.२०६३)	
मक्सिम गोर्कीका उत्कृष्ट कथाहरू	मक्सिम गोर्की	मधुसूदन पाण्डेय	पैरवी प्रकाशन,सन्२००७
लेभ तोल्सतोइका छोटा बालकथाहरू	लेभ तोल्सतोइ	डा. बलराम अर्याल	शिस सन् २००७
पुश्किन र त्युत्चेभका कविता	पुश्किन र त्युत्चेभ	डा. जङ्गव चौहान	भृकुटी एकेडेमिक पब्लिकेसन, सन् २००९

गोर्कीका छानिएका वैचारिक रचनाहरू	मक्सिम गोर्की	निनु चापागाईं	खोजी प्रकाशन गृह, वि.सं.२०६५
पहिलो प्रेम	इभान तुर्गेनेभ	विनीता पौडेल	डिकुरा पब्लिकेशन, सन् २००९ (वि.सं. २०६६)
युद्ध र शान्ति (भाग १-४)	तोल्सोइ	रामब. पहाडी	विवेक सिर्जनशील प्रकाशन प्रा.लि., सन् २०११ (वि.सं. २०६८)
नेपाली महाकविको कथा	ल्युदमिला आगानिना	कृष्णप्रकाश श्रेष्ठ	त्रिमूर्ति निकेतन, सन् २०११ (वि.सं.२०६८)
अन्तोन चेखोभका पन्धवटा छोटा कथा		अन्तोन चेखोभ	डा. बलराम अर्याल शिसम प्रकाशन, सन् २०१३ (वि.सं.२०७०)
लोलिता	भ्लादमिर नोवकोभ	देवेन्द्र नेपाली	द टाइम्स पब्लिकेशन, सन् २०१४ (वि.सं.२०७१)
प्रथम गुरु (उपन्यास)	चिंगिज आइतमातोभ	खगेन्द्र संग्रौला	बिएन पुस्तक संसार, सन् २०१५ (वि.सं.२०७२)
अन्धा सङ्गीतज्ञ	भ्लादमिर कोरोलेन्को	डा. भगवानचन्द्र ज्ञवाली	स्वदेश प्रकाशन, सन् २०१६ (वि.सं.२०७३)
रुसाल्का लघुत्रासदीय र केही कविता	अलेक्सान्द्र पुश्किन	कृष्णप्रकाश श्रेष्ठ	

उपरोक्त कृतिबाहेक रादुगा तथा प्रगति प्रकाशनबाट दर्जनौं सचित्र बालकथाका पुस्तकहरू पनि रूसीबाट नेपालीमा अनुवाद भई प्रकाशित भएका छन्। यिनमा 'पानको पात' (१९६८), 'चटक' (१९७५), 'बच्चो कुखुरो' (१९७५), गालीना 'माशाको पिराहा तकिया' (१९७५), 'पनेरामा गैगयो मुसा' (१९७५), 'खराब के हो वेश के हो?' (१९७६), 'परालको बाछो' (१९७६), 'उपहार' (१९७६), 'सौर्यिक बतास' (१९७८), 'राँकोदेखि रिएक्टरसम्म' (१९८०), 'सान्नानी र हात्ती' (१९८१), 'अल्लारे' (१९८१), 'फुच्चे भँगेरो' (१९८२), 'नीलो कप' (१९८३), 'माकुरा र झिँगा' (१९८४), 'दुम्सीको पञ्जा' (१९८४), 'ग्रीस्का र अन्तरीक्ष यात्री' (१९८४), 'एक, दुई तीन.....' (१९८४), 'सचित्र कथा' (१९८६), 'पृथ्वीको आकारको खोजी' (१९८७), 'लेनिनको मुस्कान' (१९८७), 'बच्चा र बच्ची' (१९८८), 'आलिस्का' (१९८८),'अज्ञानी भालुको बच्चा' (१९८८), 'ब्रह्माण्ड-हाम्री जिज्यू बज्यै' (१९८८),'वनको बस्ती' (१९८८), 'चाँदीको खुर' (१९८९), 'माछाको हुकुम' (१९८९), 'फ्याउरो र सारौं' (१९९७), 'सुनौलो सिउर' (१९९७), 'इच्छाको सिमाना' (१९९९), लियो तोल्सतोइका बालकथा सङ्ग्रह भाग १ र २ (२००१),'जहाज चल्छन् समुद्रमा' (.....), 'सिंह र कुकुर' (.....) आदिको नाम उल्लेखनीय छ।

माथि दिइएको विवरणबाट के कुरो स्पष्ट हुन्छ भने नेपाली भाषामा रूसी साहित्यको अनुवाद मूलतः राणाशाहीको पतनपछि मात्र देखा पर्न थालेको हो। पुस्तककारको रूपमा 'टाल्सटायका कथा' (१९४९) नै नेपाली भाषामा अनूदित पहिलो रूसी साहित्यसम्बन्धी पुस्तक हो। दार्जिलिङको इन्द्र सुन्दासले यो कथासङ्ग्रह अङ्ग्रेजी भाषाबाट गरेका थिए भने यसको प्रकाशन दार्जिलिङको प्रतिष्ठित नेपाली साहित्यिक संस्था 'नेपाली साहित्य सम्मेलन' बाट भएको थियो। यसरी नेपाली भाषामा रूसी साहित्यको अनुवाद प्रारम्भमा अङ्ग्रेजी भाषाबाट गरिए तापनि विगत ४९ वर्षदेखि सोझै रूसी भाषाबाट नेपाली भाषामा अनुवाद हुँदै आएको छ। माथि उल्लेख गरिएका कृतिका अनुवादक इन्द्र सुन्दास, बद्रीनारायण प्रधान, खगेन्द्र संग्रौला, सुदर्शन देवकोटा, मदनमणि दीक्षित, बलराम सिलवाल, होमर श्रेष्ठ, गोपीकृष्ण उपाध्याय, हरिहर खनाल, ललिजन रावल, निनु चापागाईं, केशरी अम्गाई, रामबहादुर पहाडी, देवेन्द्र नेपाली, मधुसूदन पाण्डेय रूसी भाषाका ज्ञाता नभएकाले उनीहरूले अङ्ग्रेजी वा हिन्दी भाषाबाट नेपालीमा अनुवाद गरेका हुन् भने बाँकी अनुवादकहरूले मूल रूसीबाट अनुवाद गरेका हुन्।

नेपाली भाषामा रूसी लेखकको एउटै कृतिको विभिन्न अनुवादकबाट अनुवाद भई विभिन्न संस्करणमा प्रकाशित भएको कृति हो मक्सिम गोर्कीद्वारा लिखित विश्वचर्चित उपन्यास 'आमा'। यस कृतिले नेपाली

पाठकहरूका माझ सर्वाधिक चर्चा पाएको कुरा यसका नयाँ नयाँ संस्करणहरू बजारमा आइरहनुबाट थाहा हुन्छ। नेपाली भाषामा मक्सिम गोर्कीको यस औपन्यासिक कृतिको अनुवाद अङ्ग्रेजी, रूसी र हिन्दी भाषाबाट क्रमशः बद्रीनारायण प्रधान (१९७६), राजेन्द्र मास्के (१९८५) र पं. बाबुराम भट्टराई (१९९९) बाट भएको पाइन्छ। यस्तै भ्लादिमिर नोवकोभद्वारा लिखित उपन्यास 'लोलिता'का दुईवटा अनुवाद अङ्ग्रेजी भाषाबाट क्रमशः केशरी अम्माई (सन् २००३) र देवेन्द्र नेपाली बाट (२०७१) बाट भएको पाइन्छ। किर्धिजियाली मूलका चर्चित सोभियत उपन्यासकार चिंगिज आइतमातोभको उपन्यास 'प्रथम शिक्षक' कृष्णप्रकाश श्रेष्ठले मूल रूसीबाट सन् १९९० मा गरेका हुन् भने यही कृतिलाई 'प्रथम गुरु' शीर्षकमा खगेन्द्र संग्रौलाले अङ्ग्रेजी भाषाबाट २०७२ मा गरेका हुन्।

काठमाडौँस्थित तत्कालीन सोभियत सूचना विभागबाट सन् १९८५ देखि सोभियत जनजीवनका बारेमा पाक्षिक पत्रिका 'सोभियत भूमि' को नेपालीमा प्रकाशन सुरु भएको थियो। यस पत्रिकामा पनि नेपाली तथा रूसी लेखकका थुप्रै रचनाहरू छापिएका छन्। सोभियत सङ्घको विघटनपश्चात् यो संस्था र सोभियत भूमिको प्रकाशन बन्द भएको छ।

नेपालमा रूसी साहित्यका बारेमा जानकारी दिने काममा नेपाल राजकीय प्रज्ञा-प्रतिष्ठानद्वारा प्रकाशित 'विश्वसाहित्यको रूपरेखा' नामक पुस्तकको नाम पनि यहाँनेर सम्झिनैपर्छ जसमा रूसी साहित्य खण्ड नीलाम्बर आचार्यले लेखेका हुन्। त्यस्तै मक्सिम गोर्कीको आत्मकहानीसँग सम्बन्धित कृतिका आधारमा बनाइएका 'बाल्यकाल' र 'मेरा विश्वविद्यालयहरू' नामक कथानक चलचित्र, अन्तोन चेखोभको जीवनीबारे प्रकाश पारिएको वृत्तचित्र, चेखोभकै कथामा आधारित 'बाजी' टेलिचलचित्र तथा पूर्वसोभियत सङ्घको भूगोल, इतिहास, वैज्ञानिक प्रगति र संस्कृतिबारे तयार पारिएका केही अन्य वृत्तचित्रहरूको नेपाली रूपान्तर पनि सम्झिन लायक छन्। यसै सन्दर्भमा निजी स्तरबाट रसियाको एल्बुर्ज नामक चलचित्र निर्माण कम्पनी कम्पनी र नेपालको सूर्यविनायक फिल्मस् प्रा.लि. को संयुक्त लगानीमा निर्माणाधिन कथानक चलचित्र 'हिमालयन एड्भेन्चर्स'को नेपाली रूपान्तरमा यस पङ्क्तिकारको संलग्नतामा सम्पन्न भएर पनि सम्बन्धित पक्षहरूको सम्झौता बिचैमा भङ्ग भएकाले नेपाली र रूसी भाषामा दुवैतर्फको भौगोलिक परिवेश र संस्कृति झल्काउने संयुक्त लगानीका चलचित्रहरू निर्माण हुन सक्ने सम्भावनाको ढोका खोल्न नसकिएको तितो सम्झना यहाँनेर उल्लेख उल्लेख गर्नु प्रासङ्गिक नै लागेको छ।

सोभियत सङ्घको विघटनसँगै मास्कोको प्रमुख प्रकाशनगृह 'रादुगा' (इन्द्रेणी) र प्रोग्रेस (प्रगति) बन्द भएका कारण पछिल्लो समयमा रूसी भाषाबाट नेपाली भाषामा अनुवाद हुने कार्य कछुवाको गतिमा चलिरहेको अवस्था छ। तर पनि मास्कोबाट साहित्यकार कृष्णप्रकाश श्रेष्ठ र नेपालबाट 'नेपाल-रूस साहित्यिक समाज' नेपाल र रसियाबिचको सम्बन्धको यो परम्परालाई जीवन दिने काममा लागिरहेकै छन्।

दुई मुलुकबिचको जनस्तरको भावनात्मक सम्बन्धलाई बलियो बनाउने काममा एकअर्काको भाषामा गरिने साहित्यिक कृतिहरूको अनुवादले महत्त्वपूर्ण भूमिका खेलेको हुन्छ। यस परिप्रेक्ष्यमा नेपाल-रूस दौत्य सम्बन्ध स्थापना भएको ६० वर्षको अवधिमा रूसी साहित्यको नेपालीमा ६ दर्जनजति कृतिहरूको अनुवाद भइसकेको छ। नेपालीबाट रूसीमा नेपालका कविहरू (कवितासङ्ग्रह, १९५८), नेपाली कविका कविताहरू (कवितासङ्ग्रह, १९६२), आमाको ममता (कथासङ्ग्रह, सन् १९६७), यमलोकमा जिउँदो मान्छे (नेपाली लोककथासङ्ग्रह, १९६७), हिमालयका दन्त्यकथाहरू (नेपाली दन्त्यकथासङ्ग्रह, १९९२), नेपाली दन्त्यकथा र किंवदन्तीहरू (१९९९), लैनसिंह बाइदेलको 'लङ्गडाको साथी' (उपन्यास, १९८६),'महाकवि देवकोटाका छानिएका रचनाहरू' (...), देवकोटाकै खण्डकाव्य 'मुनामदन' (...), कवितासङ्ग्रह 'सुनको बिहान' (...), भरत जङ्गमको उपन्यास 'कालो सूर्य' (...), ज्ञानकाजी मानन्धरको नाटक 'कुमारी चण्डेश्वरी' (...), उत्तम कुँवरको अन्तर्वार्तासङ्ग्रह 'स्रष्टा र साहित्य' (...) आदि अनुवाद भएका छन् भने महाकवि देवकोटा सन् १९५८ मा तासकेन्दमा सम्पन्न अफ्रो-एसियाली लेखक सम्मेलनमा जाँदा दोभाषेका रूपमा काम गर्ने सहयोगी ल्युदमिला आगानिनाले नेपाली साहित्यमा मास्को विश्वविद्यालयबाट 'आधुनिक नेपाली काव्यको साहित्यिक परम्परामा रूपान्तरण' (१९८६) विषयमा महाविद्यावारिधि गर्नुका साथै नेपाली साहित्यको इतिहास र अन्य अनुसन्धानमूलक सामग्री प्रकाश गरेर रूसमा नेपाली साहित्यको चिनारी बनाएकी छिन्।

उनले नेपाली महाकविको कथा (२०६८) शीर्षकमा देवकोटाको जीवनसम्बन्धी रोचक पुस्तक पनि लेखेकी छिन्। उनको अनुवादमा महाकवि देवकोटाका सङ्कलित रचनाहरू रूसी भाषामा प्रकाशित हुनु नेपाली साहित्यका लागि एउटा अविस्मरणीय घटना हो। उनले रूसी भाषामा नेपाली साहित्यसम्बन्धी अनुसन्धानमूलक कृतिहरू'पहाडी उचाइको काव्य', 'हिमालय पर्वतलाई फूलको माला', 'नेपाली साहित्यमा मानवतावादी धाराका प्रमुख चरणहरू', 'साठीको दशकको नेपाली काव्यमा विद्रोह','नेपाली साहित्यको संक्षिप्त चर्चा' जस्ता कृतिहरू प्रकाशित गरेकी छिन्। यस प्रकार सरकारी तथा गैरसरकारी तहमा हुने साहित्यिक कृतिहरूको अनुवाद आदान-प्रदान कार्यक्रमले दुई देशविचको भावनात्मक सम्बन्धलाई सुदृढ पार्न अर्थपूर्ण सहयोग पुऱ्याइरहेको छ। राजनीतिक, आर्थिक र कूटनीतिक क्षेत्रभन्दा भिन्न स्वभावको यस किसिमको द्विपक्षीय सम्बन्धवाट एक देशका जनता अर्को देशको जनतासँग प्रत्यक्ष रूपमा हृदयको गहिराइमा पुगेर कुराकानी गरीरहेका हुन्छन् जसको दीर्घकालीन प्रभाव द्विपक्षीय सम्बन्धको अप्ठ्यारो परिस्थितिमा पनि सकारात्मक दिशातर्फ विश्वशान्ति, भातृत्व र मानवताको सन्देशले क्रियाशील भइरहेको हुन्छ।

मित्र राष्ट्रहरूविच क्रियाशील साहित्यानुवाद अन्तर्सांस्कृतिक सम्बन्धको एउटा महत्त्वपूर्ण आयाम पनि हो। उत्कृष्ट लेखकका सिर्जनात्मक कृतिहरूको अनुवाद भनेको भाषिक अनुवाद कार्य मात्र नभएर विचार र भावना प्रत्यारोपण पनि हो। यसवाट दुवै देशका पाठकहरूको साहित्यिक अभिरुचि परिष्कृत हुनुका साथै उनीहरूको सांस्कृतिक जागरणको क्षितिज अझ फराकिलो भएर जानेछ। यस प्रकारको भावनात्मक जगमा निर्माण गरिएको द्विपक्षीय मैत्री सम्बन्ध वास्तविक अर्थमा चलायमान हुन्छ।

नेपाल र रूसविचको साहित्यिक सांस्कृतिक सम्बन्धको सुदृढ परम्परा भए तापनि पछिल्लो समयमा यसको गति लगभग अवरुद्ध छ। यस क्षेत्रमा भएका संस्थागत प्रयासहरू अहिले ठप्प छन्। अनुवाद भइसकेका कृतिहरूको पनि पुनः प्रकाशनतर्फ ध्यान दिइएको छैन। अतः वदलिँदो परिवेशमा सम्बन्धको एउटा उर्वर क्षेत्रका रूपमा राज्य र गैरराज्य स्तरको सहकार्यमा नेपाल-रूस साहित्यिक सम्बन्धलाई दुवै मुलुकवाट पुनः सक्रिय पार्नु आवश्यक छ।

सन्दर्भ सामग्री

१. अर्याल वलराम, नेपाली भाषाको ऐतिहासिक व्याकरणका सामग्रीहरूः भानुभक्तीय रामायण, विद्यावारिधि शोधपत्र (अप्रकाशित), प्राच्यविधा अध्ययन संस्थान, मास्कोः सन् १९८७ (रूसी भाषामा)

२. आगानिना ल्युदमिला अलेक्सान्द्रोभ्ना, आधुनिक नेपाली काव्यको विकासका मुख्य प्रवृत्तिहरू//पूर्वेली साहित्यमा यथार्थवादको विकासका समस्याहरू// मास्कोः सन् १९६० पृ. ४३-५८ (रूसी भाषामा)।

३. आगानिना ल्युदमिला अलेक्सान्द्रोभ्ना, आधुनिक नेपाली काव्यमा मान्छे, समाज र धर्म, नाउका (विज्ञान) प्रकाशन गृह, मास्कोः सन् १९८५ (रूसी भाषामा)

४. आगानिना ल्युदमिला अलेक्सान्द्रोभ्ना, नेपाली साहित्यको संक्षिप्त वर्णन //विश्वसाहित्यको इतिहास// मास्कोः भाग-३, १९८५, भाग-४, १९८७, भाग-५, १९८८, भाग-६, १९८९, भाग-७, १९९० (रूसी भाषामा)

५. कर्माचार्य माधवलाल, अनुवाद ग्रन्थसूची (१८५५-२०५८), ने.रा.प्र.प्र., काठमाडौं : २०५९

६. चौहान जङ्गव, नेपाल-रूस साहित्य सम्बन्ध //वोधि// धुलिखेल : २०६४, पृ.१०५-११४

७. ... ..., नेपालीमा रूपान्तरित रूसी वालसाहित्य //नेपाल वालसाहित्य समाजको वार्षिक प्रकाशन//, काठमाडौं : वि.सं.२०५०, पृ. २७-३१

८. देवकोटा लक्ष्मीप्रसाद, नेपाली साहित्य (वक्तव्य) //अफ्रो. एसियाली लेखा सम्मेलनका सामग्रीहरू// तासकेन्द्र : सन् १९६०, पृ. १७१-१७९ (रूसी भाषामा)

९. देवकोटा लक्ष्मीप्रसाद, सङ्कलित रचना, रूस सिआइएस नेपाल उद्योग वाणिज्य सङ्घ, मास्को : सन् १९९९ (रूसी भाषामा)

१०. श्रेष्ठ कृष्णप्रकाश, रूसमा नेपालको छवि, हिमाल प्रकाशन गुठी, मास्को : २०५६

११. श्रेष्ठ कृष्णप्रकाश, डा. चौहान जङ्गव, रूसमा नेपाली भाषासाहित्य हिजो, आज र भोलि // नेपाली भाषासाहित्यको अन्तर्राष्ट्रिय विस्तार// काठमाडौं : २०६७, पृ.२६१-२९३

नेपालीमा अनूदित अङ्ग्रेजी साहित्य

बलराम अधिकारी

अङ्ग्रेजी साहित्यको नेपाली अनुवादको कुरा गर्दा यी दुईबिच स्रोत र लक्ष्य भाषाको सम्वन्ध रहेको हुन्छ । जुन भाषाबाट अनुवाद गरिन्छ त्यसलाई स्रोत र जसतर्फ अनुवाद गरिन्छ त्यसलाई लक्ष्य भाषा भनिन्छ । कतिपयले स्रोतलाई मूल र लक्ष्यलाई प्रापक भाषाका रूपमा पनि अर्थ्याएका छन् । नेपाली भाषाले अङ्ग्रेजीलाई स्रोत या मूल भाषा बनाएर अनुवाद गर्न थालेको दुई शताब्दी पुग्न दुई वर्ष बाँकी छ । वि.सं. १८७० को दशकदेखि नेपाली र अङ्ग्रेजी बिच अनुवादात्मक सम्वन्ध स्थापना भएको हो । व्याकरणविद् जे. एल. एटनको **तीन आहान** (१८७६) यस सम्वन्धको सम्भवतः पहिलो दृष्टान्त हो । यी आहानहरू एटनले आफ्ना मुन्सीलाई अङ्ग्रेजीवाट नेपालीमा अनुवाद गर्न लगाएका थिए भन्ने गरिन्छ (श्रेष्ठ,२०६५, र शर्मा २०५९) ।

दुई शताब्दी लामो अङ्ग्रेजी-नेपाली अनुवादको इतिहासलाई कालक्रमिक रूपमा एउटै लेखमा समेट्न असम्भव छ । त्यसैले मैले यस गोष्ठीपत्रको निम्न सीमाहरू तोकेको छु :

- यहाँ अङ्ग्रेजीवाट नेपालीमा अनूदित पुस्तकाकार सृजनाको अनुवादलाई मात्र समेटिएको छ । *गोरखापत्र, माधवी, शारदा, मधुपर्क, गरिमा* जस्ता साहित्यिक पत्रिकामा छापिएका फुटकर अनुवादको चर्चा गरिएको छैन ।
- यो गोष्ठीपत्र अनूदित पुस्तकको सूची होइन् । न त यो अनुवादको कालक्रमिक वर्णन नै हो ।

यी दुवैका लागि हेर्नू **अनुवाद सिद्धान्त, अनुवाद सिद्धान्त र प्रयोग र नेपाली अनुवाद साहित्यको इतिहास** ।

मैले अङ्ग्रेजीवाट नेपालीतर्फको अनुवादको प्रवाहलाई निम्न शीर्षकमा प्रस्तुत गर्ने जमर्को गरेको छु ।

१) नेपाली अनुवाद साहित्यको इतिहासमा अङ्ग्रेजी र नेपालीबिचको अनुवादात्मक सम्वन्ध

नेपाल प्रज्ञा-प्रतिष्ठान अन्तर्गत सम्पन्न अनुवाद सिद्धान्त (२०७०) शीर्षकको अनुसन्धान प्रतिवेदनले नेपाली अनुवादको इतिहासलाई चार कालमा विभाजन गरेको छ । ती हुन् १) प्रारम्भिक काल (१३९०-१९२३) २) विकास काल (१९२४ - २००७) ३) आधुनिक काल (२००८-२०५८) र ४) समसामयिक काल (२०५९ देखि हालसम्म) ।

नेपाली अनुवाद परम्पराको आरम्भ संस्कृतका साहित्येतर पाठको अनुवादवाट भएको देखिन्छ । साहित्यिक कृतिको अनुवाद भने १८२७ तिरवाट मात्र आरम्भ भयो । प्रारम्भिक कालमा संस्कृत वाङ्मय नेपाली अनुवादको प्रमुख स्रोत थियो । अङ्ग्रेजीको प्रवेश पनि प्रारम्भिक कालमा नै भएको हो तर यसको प्रभाव भने नगण्य रह्यो । मुन्सीको **तीन आहान**पछि बाइबलका अनूदित रूपहरू **धर्मपुस्तक** र **सेरामपुर बाइबल** क्रमशः १८७८ र १८८४ मा अङ्ग्रेजीवाट नेपालीमा भित्रिएको देखिन्छ (पोखरेल, २०६२) । नेपालीमा बाइबल अनुवाद गर्नुको मुख्य ध्येय साहित्यिकभन्दा पनि इसाई धर्मको प्रचारप्रसार थियो जसले अहिले पनि निरन्तरता पाइरहेकै छ । यी दुवै अनुवाद भारतीय भूमिवाट भएको थियो । अतः अङ्ग्रेजीवाट नेपालीतर्फको साहित्यक अनुवादले मूर्तरूप पाउन विकास कालसम्म कुर्नुपर्‍यो ।

२) नेपाली अनुवादकको अङ्ग्रेजीतर्फको प्रारम्भिक झुकाव

संवत् १९२३ देखि २००७ सम्म नेपाली अनुवादकहरूले संस्कृत, त्यसपछि बङ्गला र हिन्दी वाङ्मयलाई प्रमुख स्रोतका रूपमा उपयोग गरे, अङ्ग्रेजीको स्थान चौथामा रह्यो । अन्य भाषाका

तुलनामा नेपाली बहुभाषी भूमिमा अङ्ग्रेजीको प्रवेश धेरै पछि मात्र भएको हो तापनि नेपाली अनुवादमा यस वाङ्मयले निकै चाँडो आफ्नो प्रभुत्व जमायो ।

बेलायती साम्राज्यको विस्तारसँगै दक्षिण एसियामा अङ्ग्रेजी भाषाले आफ्नो प्रभुत्व जमाउन थालेको हो । शासकको शक्ति र उसको भाषाबिच अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रहेको हुन्छ । त्यसैले अङ्गेजी भाषाको विस्तार र नेपाली शिक्षित वर्गको यसप्रतिको झुकावलाई स्वाभाविक मान्न सकिन्छ । बिसौँ शताब्दीको मध्यतिर आइपुग्दा प्रारम्भिक काल, माध्यामिक काल, पुनर्स्थापना काल, स्वच्छन्दतावाद, भिक्टोरियन कालको यात्रा पूरा गरी अङ्ग्रेजी साहित्य आधुनिक कालको उचाइमा पुगिसकेको थियो । शताब्दिऔँको यस लामो यात्रामा आदिकवि जोफ्री चौसर, जोन गोवर, विलियम ल्याङल्यान्ड र एड्मन्ड स्पेन्सर जस्ता मानक निर्धारक कविका काव्य, मार्लो र सेक्सपियरका नाटक, मिल्टनका महाकाव्य, डोफ, रिचार्डसन, जेन अस्टिन, किप्लिङ, हार्डी आदिका उपन्यास, विलियम ब्लेक, वर्डस्वर्थ, कोलेरिज, शेली, कीट्स र बाइरनका स्वच्छन्दवादी एवम् रहस्यमयी कविता र टी.एस. इलियटका अमूर्त लामा कविता आदिबाट अङ्ग्रेजी साहित्य सङ्ख्या र गुण दुवैमा निकै सम्पन्न भइसकेको थियो । उता अङ्ग्रेजी साहित्य आधुनिक कालको गजुर छुने अवस्थामा थियो भने यताचाहिँ नेपाली साहित्य आधुनिक कालमा प्रवेश गर्ने अवस्थामा थियो । नेपाली विद्वान्हरू आफ्नो साहित्यको विस्तार गर्न अङ्ग्रेजी साहित्यलाई भित्र्याउनुपर्दछ भन्नेमा सचेत थिए । यस क्रममा १९९० को दशक अङ्ग्रेजीबाट नेपालीतर्फको अनुवादका दृष्टिले निकै महत्त्वपूर्ण रह्यो । यस दशकमा अङ्ग्रेजी साहित्यका केही उत्कृष्ट नमुनाहरू नेपाली भाषामा अनुवादको मार्ग भई भित्रिए ।

नब्बेको दशकमा **ग्रीस र रोमका दन्त्यकथा** (अनु. खड्गमान मल्ल, १९९५), ह्यागार्डको शी (अनु. पुष्करशमशेर जबरा, १९९७), कोन्नान डोयल्सको सर्लक होम्स (अनु. तुलसीप्रसाद ढुङ्गेल, १९९७), बार्लोको **स्टान्डफोर्ड र मर्टन** (अनु. गोदत्तमान श्रेष्ठ, १९९८) जस्ता अङ्ग्रेजी साहित्यका आख्यान र **युरोपीय साहित्यको नमुना** (अनु. नरेन्द्रमणि आदी, १९९५) तथा **प्रसिद्ध प्रबन्धसङ्ग्रह** (अनु. लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा) जस्ता निबन्धका सँगालोहरू प्रकाशित भए । पछि **टाल्सटायका कथा** (अनु. इन्द्र सुन्दास, २००५) र **विश्वकथा सङ्ग्रह** (अनु. बाङ्देल, इ. १९४५) पनि नेपालीमा भित्रियो ।

बालसाहित्यको अनुवादका दृष्टिले पनि विकास काल उल्लेखनीय रह्यो । संवत् १९६० को उत्तरार्धमा पादरी गङ्गाप्रसाद प्रधानद्वारा अनूदित **नाइटिङ्गेल अर्थात् मीठो गीत गाउने चराको विषय** (इ. १९१२), **हाँसको नराम्रो चल्लाको कथाह** (इ. १९१४) र अगस्टाइन गुरुङद्वारा अनूदित **घोक्रे फूल** (इ. १९१४) अनुवादको मार्ग भई नेपाली भाषीकोमा पुगे । त्यसै गरी पारसमणि प्रधानले अनुवाद गरेको **घिचौरे आगो, चेपागाडा** र **हुस्सु कुखुरी** सन् १९४२ प्रकाशित भए । अनुवादक थाहा नभएको अर्को बालकथा **म्याम्माको चिया** पनि सन् १९४२ मा प्रकाशित भएको देखिन्छ । यी सम्पूर्ण अनूदित बालकथाहरू भारतको दार्जिलिङ भेगबाट प्रकाशित भएका हुन् । बालकेन्द्री अर्को महत्त्वपूर्ण पुस्तकमा जवाहरलाल नेहरुको **लेटर्स फ्रम फादर टु हिज डटर** पर्दछ । **पिताको पत्र छोरीलाई** शीर्षकमा अनूदित यस पुस्तकका अनुवादक इन्द्र सुन्दास हुन् । यो अनुवाद २००७ मा नयाँदिल्लीबाट प्रकाशित भएको थियो ।

३) अङ्ग्रेजी अनुवादको विस्तारको कारण

विकास कालको अन्तिम दशक र आधुनिक कालको आरम्भदेखि अङ्ग्रेजी साहित्यको नेपाली अनुवादमा तीव्रता आयो । प्रारम्भिक काल र विकास कालमा संस्कृत वाङ्मयले पाएको स्थान र महत्त्व अब अङ्ग्रेजी वाङ्मयले पाउन थाल्यो । नेपाली विद्वान्हरूका लागि अङ्ग्रेजी महत्त्वपूर्ण स्रोतका रूपमा देखा पऱ्यो । यसका पछाडि साहित्यमा आधुनिकताको खोजी, राजनीतिक र सांस्कृतिक परिवर्तन तथा नेपालमा विश्वविद्यालयको स्थापनाको पहल र उक्त पहलको सफलतालाई प्रमुख कारणका रूपमा लिन सकिन्छ ।

क) *साहित्यमा आधुनिकताको खोजी*

संवत् १९९० को दशकमा आइपुग्दा नेपाली साहित्य आधुनिक युगमा प्रवेश गर्न खोजिरहेको थियो । यसका लागि लेखकहरू उपयुक्त मार्गको खोजीमा थिए । उनीहरू विषयवस्तु र शैली दुवैमा नवीनता खोज्दै थिएं भने अनुवादकहरू विदेशी साहित्यको कृति नेपालीमा भित्र्याएर पाठकलाई फरक स्वाद दिने

प्रयासमा थिए । संस्कृत वाङ्मयका कृतिहरूको अनुवाद, अनुकरण र अनुसिर्जनाका सहाराले अघि बढिरहेको नेपाली साहित्य हिन्दी, बङ्गला, अङ्ग्रेजी जस्ता समकालीन साहित्यभन्दा निकै पछि थियो । संस्कृत वाङ्मयलाई मात्र मानक मान्दा नेपाली साहित्यलाई आधुनिकतातर्फ उन्मुख गराउन सम्भव थिएन । आधुनिकताका लागि शैलीमा प्रयोगधर्मिता र विषयवस्तुमा विश्वजनित चेतनाको आवश्यकता थियो । यसका लागि तत्कालीन केही विद्वान्हरू समकालीन विश्वसाहित्यको नमुनाको खोजीमा थिए । यस क्रममा उनीहरू विशेष गरी अङ्ग्रेजी, बङ्गला, हिन्दी साहित्यका श्रेष्ठ कृतिहरूलाई -नेपालीमा अनुवाद गर्ने काममा लागे । यसका निम्ति नेपाल भाषानुवाद परिषद्अन्तर्गत **चौबिस पुस्तक प्रकाशन योजना** नै बनेको थियो । अङ्ग्रेजी साहित्यको अनुवाद यस योजनाको विशेष प्राथमिकतामा परेको थियो । प्रस्तावित २४ मध्ये १९९४ देखि २००७ सालसम्मको अवधिमा १८ पुस्तक प्रकाशित भए जसमध्ये **सर्लक होम्स, प्रसिद्ध प्रबन्ध सङ्ग्रह, युरोपीय साहित्यको नमुना, स्यान्डफोर्ड र मर्टन, ग्रीस र रोमको दन्त्यकथा सङ्ग्रह** र **सेक्सपियर कथासङ्ग्रह** अङ्ग्रेजीबाट अनुवाद भएका थिए । यस परियोजनाले अनुवादलाई नेपाली साहित्यको विस्तार र ज्ञान आयातको माध्यमका रूपमा उपयोग गरेको थियो

उक्त समयका अनुवादहरूको ध्येय नेपाली लेखक/पाठकलाई आधुनिक अङ्ग्रेजी साहित्यका केही उत्कृष्ट नमुना प्रस्तुत गर्नु थियो । यसको परोक्ष उद्देश्य यी नमुनाको पठन र सिको गरेर नेपाली लेखकहरूले आफ्ना सिर्जनालाई अङ्ग्रेजी र अन्य विकसित साहित्यको उचाइमा लैजान सकुन् भन्ने थियो (दीक्षित, १९९५) ।

ख) विश्वविद्यालयको स्थापनाको आकांक्षा र त्रिभुवन विश्वविद्यालयको स्थापना

अङ्ग्रेजी साहित्यको अनुवादले विशेष महत्त्व पाउनुमा विश्वविद्यालयको स्थापनाको पहल र सफलता पनि एक कारण हो । नेपालमा विश्वविद्यालयको स्थापनाको पहल २००५ तिर नै हुन थालेको देखिन्छ । त्यस समयका डाइरेक्टर जनरल मृगेन्द्रशमशेर ज.व.रा.को सभापतित्वमा *विश्वविद्यालय योजना सभा*को स्थापना भएको थियो । हुन त आधुनिक उच्चशिक्षाको आरम्भ भने १९७५ मा त्रिचन्द्र कलेजको स्थापनाबाट भइसकेको थियो । देशमा आफ्नै विश्वविद्यालय चाहिन्छ भन्ने आवाज उठ्न थाल्यो, आवाजसँगै पहल पनि हुन थाल्यो । तर समस्या थियो नेपाली भाषामा पाठ्यसामग्रीको अभाव । अध्ययन अध्यापनका लागि नेपाली भाषामा पर्याप्त पुस्तकहरू लेखिएका थिएनन् । तत्काल मौलिक लेखनबाट यो आवश्यकता पूरा गर्न सम्भव पनि थिएन । अतः नेपाली लेखकहरू नेपाली भाषा र साहित्यको विस्तारका निम्ति अङ्ग्रेजी भाषाका श्रेष्ठ पुस्तकहरूको अनुवाद गर्न तिर लागे । वास्तवमा २४ पुस्तक प्रकाशन योजनाको एउटा उद्देश्य यो पनि थियो । संवत् २०१६ मा त्रिभुवन विश्वविद्यालयको स्थापना भएपछि त अङ्ग्रेजी साहित्यको अनुवाद अपरिहार्य नै भयो ।

विश्वविद्यालयको स्थापनासँगै नेपालको उच्चशिक्षामा अङ्ग्रेजी भाषाले प्रवेश पायो । यसको प्रभाव अनुवादको गुणात्मक र परिमाणात्मक दुवै पक्षमा पऱ्यो । उच्चशिक्षामा अङ्ग्रेजी भाषाको प्रवेश र अनुवादको सम्बन्धलाई दयाराम श्रेष्ठले यसरी प्रस्ट्याएका छन् :

शिक्षा क्षेत्रमा अङ्ग्रेजीको पठन-पाठनमा व्यापकता आउन थाल्नु, २००७ सालको क्रान्तिपछि अधिराज्यभरि पाश्चात्य शिक्षाको लहर चल्नु, विदेशमा अध्यापन गर्ने प्रवृत्ति बढ्दै जानु, सं.२०१६ मा त्रिभुवन विश्वविद्यालयको स्थापना हुनु, कलेजहरू खोल्ने होडबाजी सर्वत्र चल्नु आदि कारणले गर्दा अघिल्लो दशकभन्दा यस दशकमा अङ्ग्रेजीबाट नेपालीमा धेरै नै गहकिला कृतिहरूको भाषान्तरण भएको पाइन्छ । (२०६५, पृ. १२३-१२४)

पछि विश्वविद्यालयमा पश्चिमी साहित्यको पनि पठनपाठन आरम्भ हुन थाल्यो । विश्वसाहित्यका उत्कृष्ट सृजना तथा समालोचनालाई अनुवाद नगरेसम्म नेपाली भाषामा पश्चिमी साहित्यको अध्ययन-अध्यापन र अनुसन्धान सम्भव थिएन । अतः तत्कालीन आवश्यकता पूरा गर्न एकातर्फ केही विद्वान्हरू अङ्ग्रेजीका कृतिहरूको अनुवादमा सक्रिय भए भने केही विद्वान्हरू पश्चिमी समालोचना सिद्धान्तलाई नेपालीमा अनुकूलन गर्नतिर लागे । वासुदेव त्रिपाठीको पाश्चात्य साहित्यको परम्परा, गोविन्दराज भट्टराईको काव्यिक आन्दोलनको परिचय र अभि सुवेदीको पाश्चात्य काव्य सिद्धान्त जस्ता कृतिहरू वास्तवमा अङ्ग्रेजी

समालोचना सिद्धान्तका अनुकूलित रूप हुन् । अर्कातर्फ जर्ज लुकासको साहित्यिक सिद्धान्त, एरिस्टोटलको काव्यशास्त्र (अनु. लीलाप्रसाद शर्मा), आइ. ए. रिचार्ड्सको समालोचनाको सिद्धान्त (अनु. माधवलाल कर्माचार्य र लीलाप्रसाद शर्मा), आधुनिक जापानी उपन्यासहरूप्रति विभिन्न दृष्टिकोण (अनु. चित्तरञ्जन नेपाली) जस्ता समालोचनाका कृतिहरू अङ्ग्रेजी भाषाबाट अनुवादका माध्यमले नेपालीमा भित्रिए ।

४) नेपाली अनुवादको प्रमुख स्रोतका रूपमा अङ्ग्रेजी

आधुनिक कालको आरम्भसँगै अङ्ग्रेजी साहित्य नेपाली अनुवादको सवैभन्दा उर्वर स्रोतका रूपमा रहँदै आएको छ । नेपाली अनुवादकहरूले अङ्ग्रेजी भाषालाई दुई प्रकारका स्रोतका रूपमा प्रयोग गर्दै आएका छन् । पहिलो हो प्राथमिक स्रोत । यसअन्तर्गत अङ्ग्रेजी मूलबाट नेपालीमा अनूदित कृतिहरू पर्दछन् । अर्नेस्ट हेमिङ्वेको **ओल्ड म्यान एन्ड सी**, हावर्ड फास्टको **स्पार्टाकस**, ब्राम स्टोकरको **ड्र्याकुला**, एमली डिकिन्सनका **कविताहरू**, एलिस इन द **वन्डरल्यान्ड** जस्ता कृतिहरू अङ्ग्रेजी मूलबाट अनुवाद भएका हुन् । यस्तो अनुवादमा अङ्ग्रेजी प्राथमिक या स्रोत भाषा हो । दोस्रोअन्तर्गत भने अङ्ग्रेजीको प्रयोग द्वितीय स्रोतका रूपमा हुने गरेको छ । अङ्ग्रेजी भाषाको बाटो हुँदै नेपालीमा भित्रिएका कृतिहरू पर्दछन् द्वितीय अनुवाद हुन् । निकोलाई गोगोलको **तारास बुल्बा** र द **डेड**, यासुनारी कावाबाताको **स्नो कन्ट्री**, रुबैयात अव **ओमर खैयाम**, रवीन्द्रनाथ टैगोरको **गीताञ्जली** जस्ता कृतिहरूको नेपाली अनुवादमा अङ्ग्रेजी द्वितीय स्रोत भाषा हो । यी कृतिहरू क्रमशः रूसी, जापानी, पर्सियन र बङ्गलामा रचिएका हुन् र पछि अङ्ग्रेजीमा अनुवाद भएका हुन् । यस्तोमा नेपाली अनुवादकहरूले अङ्ग्रेजी अनुवादलाई स्रोतका रूपमा प्रयोग गरेका छन् ।

प्राथमिक होस् या द्वितीय दुवै रूपमा अङ्ग्रेजी भाषाको नै वर्चस्व रहेको छ । संवत् २००८ देखि २०५८ सम्मको पाँच दशकको अवधिमा अङ्गेजीबाट आत्मकथा तथा जीवनी, इतिहास/संस्कृति, उपन्यास, लोककथा, कविता, नाटक, निबन्ध, बालसाहित्य, साहित्यशास्त्र गरी करिब २९३ कृतिहरू नेपालीमा अनुवाद भई आएको देखिन्छ जब कि संस्कृत, हिन्दी र बङ्गला गरी तीनवटाबाट अनुवाद भई आएका कृतिहको जम्मा सङ्ख्या १७३ जति छ ।

समसामयिक काल अर्थात् साठीको दशक यता पनि नेपालीतर्फको अनुवादको प्रमुख स्रोत भाषा अङ्ग्रेजी रहेको छ । अङ्ग्रेजीपछिको प्रभावशाली भाषामा हिन्दी आउँछ । बितेको एक दशकमा प्रकाशित अनुवादहरूको सामान्य सर्वेक्षणका आधारमा पनि के भन्न सकिन्छ भने नेपाली अनुवादको बजार अङ्ग्रेजी केन्द्रित हुँदै गइरहेको छ । अङ्ग्रेजीतर्फ भन्दा पनि अङ्ग्रेजीबाट नेपालीतर्फको अनुवाद अझ तीव्र हुँदै आएको छ । समसायिक काल अर्थात् २०५९ देखि यता त अनुवाद भन्नेबित्तिकै सामान्यतः अङ्ग्रेजी-नेपालीबिचको अनुवाद भन्ने बुझ्न थालिएको छ ।

५) विधागत रूपमा अङ्ग्रेजीबाट नेपालीतर्फको अनुवाद

अङ्ग्रेजी भाषाबाट सबै विधाका प्रतिनिधि कृतिहरूको अनुवाद भएको छ । सात सालसम्मको अनुवादमा निबन्ध, आख्यान र काव्य विधाले प्राथमिकता पाएको थियो । यस कालमा जीवनी, आत्मकथा, साहित्यशास्त्रका कृतिहरू अनुवाद भएको देखिँदैन । आधुनिक र समसामयिक कालका अनुवादकहरूको रोजाइमा भने आत्मकथा तथा जीवनी, उपन्यास, लोककथा, कविता, नाटक, निबन्ध, बालसाहित्य र साहित्यशास्त्र सबै परेका छन् ।

क) आत्मकथा तथा जीवनी विधा

आधुनिक कालको करिब पाँच दशकको अवधिमा आत्मकथा तथा जीवनी विधाका करिब पाँच दर्जन कृति नेपालीमा अनुवाद भए । यसले सरदर वर्षको एउटा यस्ता कृतिको अनुवाद भएको देखाउँछ । सन् १९५५ मा आर्थर कोयस्लर र अन्यद्वारा लिखित द **गड द्याट फेल्डको** अनुवाद **ढुङ्गाको देवता** शीर्षकमा प्रकाशित भयो । नेपालीमा अनूदित सम्भवत् यो पहिलो अङ्ग्रेजी जीवनी कृति हुनुपर्दछ । त्यसपछि क्रमशः सन् १९६०, वि.स. २०१८, सन् १९६१ मा **गुरुदेव ठाकुर** (अनु?), **पारेघर्तीको पुरुषार्थ** (अनु. सूर्यविक्रम ज्ञवाली), **जोन केनेडी** (अनु?) प्रकाशित भए । अङ्ग्रेजीबाट नेपालीमा अनूदित अन्य आत्मकथा तथा जीवनीहरूमा **अलौकिक पुरुष साईबाबा** (अनु. ?), **एन्ना फ्रैङ्क** (अनु. गीता उपाध्याय), **कार्ल मार्क्सको जीवनी** (अनु. राजेन्द्र मास्के), **गालिब** (अनु. गोकुल सिन्हा), **जवाहरलाल नेहरुको**

आत्मकथा (अनु. पाँचकौडी दे), जोसेफ स्टालिनको संक्षिप्त जीवनी (अनु. कृष्णदास श्रेष्ठ) पर्दछन् ।

समसामयिक कालमा अनुवाद भई नेपालीमा आएका केही जीवनी तथा आत्मकथाहरूमा आनि छोइङ् डोल्माको फूलको आँखामा (अनु. गिरीश गिरी, इ. २०११), मञ्जुश्री थापाको सिकलिसको ठिटो (अनु. अनु. दीपक अधिकारी, २०६७), विल क्लिन्टनको मेरो जीवन (अनु. गोपालप्रसाद दुलाल, २०६८), मदर टेरेसाको संक्षिप्त जीवनी (अनु. वसन्त थापा) आदि रहेका छन् ।

ख) आख्यान

प्रारम्भिक कालदेखि नै आख्यान क्षेत्र नेपाली अनुवादकको विशेष रोजाइमा पर्दै आएको छ । यद्यपि स्रोत वाङ्मय भने समयअनुसार वदलिएको छ । प्रारम्भिक कालमा संस्कृत र विकास कालमा वङ्गला र हिन्दी वाङ्मयलाई प्रमुख स्रोतका रूपमा उपयोग गर्दै आएका अनुवादकहरू आधुनिक र समसामयिक कालमा भने अङ्ग्रेजी आख्यानमा निर्भर हुँदै आएका छन् ।

. संवत् २०१० को अन्त्यतिरदेखि २०५७ सम्ममा नेपालीमा अनूदित केही अङ्ग्रेजी आख्यानहरूको नाम लिनुपर्दा कालयन्त्र (अनु. डिल्लीराज उप्रेती, २०१७), नाट्री ड्यामको कुम्भे (अनु.ऋद्धिवहादुर मल्ल, २०२५), डन क्विजोट (अनु. दयाराम श्रेष्ठ सम्भव, २०२५), चारखुट्टेको घरजम (अनु. फणीन्द्रप्रसाद आचार्य, २०२७), ग्रेप्स अव च्याथ (अनु. टङ्विलास वार्या, २०३१), बूढो र समुन्द्र (अनु. आकिउयामा ग्वाइन, इ. १९६९), एमिल (अनु. तुलसीप्रसाद ढुङ्गेल, २०२९), आमा (अनु. वद्रीनारायण प्रधान, इ. १९७६), कल्याणी धर्ती (अनु. टीकाराम शर्मा, २०४४), ड्याकुला (अनु.भाइचन्द्र प्रधान, इ. १९८४), हिमदेश (अनु.क्षेत्रप्रताप अधिकारी, २०४५), आदि विद्रोही (अनु. वसन्तकुमार शर्मा, २०५७) आदिलाई सम्झनु पर्दछ ।

त्यसै गरी वितेको १५ वर्षयता अर्नेस्ट हेमिङ्वेको ओल्डम्यान एन्ड सी, ज्याक लन्डनको द कल अव द वाइल्ड, हेनरी जेम्सको डेइजी मिलर जस्ता अङ्ग्रेजी भाषाका उपन्यासहरू क्रमशः बूढो माझी र समुन्द्र (अनु. होमर श्रेष्ठ, २०६०), समुन्द्री हुँडार (अनु. रमेश विकल), डेइजी मिलर (अनु. तोयानाथ कोइराला, २०६८) शीर्षकमा अनुवाद भए । अन्य केही अनूदित उपन्यासहरूको नाम लिनुपर्दा अलबेअर कामुको पराई (अनु. भीमराज ढकाल, २०६७), लियो टोल्स्टोयको युद्ध र शान्ति (अनु.रामवहादुर पहाडी, २०६८) र यासुनरी कावावाताको ताल (अनु. विजयकुमार रौनियार, २०६८), कामुको आगन्तुक (अनु. हरिहर खनाल), हेमिङ्वेको बूढो मान्छे र समुद्र (अनु. वद्रीप्रसाद घिमिरे) लाई सम्झन सकिन्छ ।

आधुनिक कालमा उपन्यासको तुलनामा कथा/लोककथाको अनुवाद कम भयो । तिनमा विश्वप्रसिद्ध कथा (अनु. भाग १ र २, करुणाकर वैद्य, २०२६), इसपका कथा (अनु. फणीन्द्रप्रसाद आचार्य, २०३२), कथा सौरभ (अनु. माधवलाल कर्माचार्य, २०३९), तिमी मलाइ चिन्ने छौ (अनु. भुवन ढुङ्गाना, २०५६) प्रमुख रहेका छन् ।

साठीको दशकदेखि यता अङ्ग्रेजीवाट नेपालीमा भित्रिएका केही कथा कृतिहरूमा हान्स क्रिसियन एन्डरसन र उनका परिकथाहरू (अनु. विनयकुमार कसजू, २०६१), भित्री चोक (अनु. नारायण ढकाल, २०६१), पासपोर्टका रङहरू (अनु. कुमुद अधिकारी, २०६२), विश्वका उत्कृष्ट आधुनिक कथाहरू (रामचन्द्र केसी, २०६४), विश्वका उत्कृष्ट २१ कथा (अनु. प्रकाशमणि दाहाल, २०६६), विश्वप्रसिद्ध केही कथाकार र कथाहरू (अनु. वलराम अधिकारी), विश्व महिला कथाकारका कथाहरू (अनु. ऋचा शर्मा) लाई उल्लेख गर्न सकिन्छ ।

ग) काव्य अनुवाद

काव्यप्रतिको अनुवादकको आकर्षण घट्दै गएको छ । आधुनिक कालमा वर्डस्वर्थ, होमर, उमर खैयाम, जोन वनयान, विलियम वर्डस्वर्थ, एमिली डिकिन्सन, रविन्द्रनाथ टैगोर, दाँते अलिघेरी, खलिल जिब्रान, गेटे जस्ता विश्व साहित्यका मानक निर्धारक कविका केही सृजनाहरू नेपालीमा भित्रिए । नेपालीभाषी पाठकले यात्रीको प्रगति (आर. सोदेम्वा, इ. १९५६), उमर खैयामका रुवाइ (अनु. नवीन्द्रप्रसाद वान्तवा, २०१५), अमरत्वको सन्देश (अनु. भरतराज मन्थलीय, २०३७), , गीताञ्जली (अनु. खगेन्द्रकुमार प्रधानाङ्ग, २०२१), डिभाइन कमेडी (अनु. विनोदप्रसाद धिताल, २०४०), इलियाड (अनु. ओमचरण अमात्य, २०५५) जस्ता काव्यहरूको आस्वादन गर्ने अवसर पाए । यस अवधिमा

विश्वस्तरका करिब ३० काव्यिक कृति अङ्ग्रेजीबाट नेपालीमा अनुवाद भएको देखिन्छ । अन्य केही अनूदित काव्यहरूको नाम लिँदा **एसिया महादेशका कविता** (अनु. चैतन्यकृष्ण उपाध्याय), **कवितासङ्ग्रह** (अनु. आत्माराम पौड्याल), **तटमा तरङ्गको गीत** (अनु.ओकिउयामा ग्वाइन), **पुष्पाञ्जली** (अनु. हृषीकेश शाह), **फाउस्ट** (अनु.दमनराज तुलाधर), **युरोप अमेरिकाका केही आधुनिक कविता** (पूर्वार्ध) (**यूरोप अमेरिकाका केही आधुनिक कविता : उत्तरार्ध** (अनु.चैतन्यकृष्ण उपाध्याय) लाई सम्झन सकिन्छ ।

साठीको दशकदेखि यता पुस्तकाकारमा अङ्ग्रेजी कविताको अनुवाद निकै कम हुँदै गएको छ । अनुवादकद्वय नेत्र आचार्य र पुष्प आचार्यले खलील जिब्रानको अमर कृति **द प्रोफेटलाई नेपालीमा गुरु** (२०६२) शीर्षकमा अनुवाद गरे भने सुमन पोखरेलको **मन परेका केही कविता** प्रकाशोन्मुख अवस्थामा छ ।

घ) नाटकको अनुवाद

अङ्ग्रेजी नाटकको अनुवाद १९९० को अन्त्यतिरबाट भएको हो । देवकोटाले त्यस वेला अनुवाद गरेको **म्याक्बेथको** प्रकाशन भने उनको देहान्तपश्चात् २०२६ मा मात्र हुन सक्यो । नेपालीमा अनूदित अङ्ग्रेजी नाटकको प्रकाशन भने २०१० तिरबाट भएको देखिन्छ । उक्त मितिदेखि २०५८ को बिचमा अङ्ग्रेजी भाषाबाट करिब ३१ नाटक अनुवाद भए । यस चरणका अनुवादकहरूले अङ्ग्रेजी भाषामा मौलिक रचिएका र यस भाषामा अनुवाद भई आएका दुवै प्रकारका नाट्यकृतिलाई रोजे । यीमध्ये अङ्ग्रेजी नाटककार विलियम सेक्सपियर धेरैको रोजाइमा परे । सेक्सपियरको **जुलियस सिजर** नेपाली भाषामा प्रकाशित पहिलो अनूदित अङ्ग्रेजी नाटक हो । इं. सं. १९५३ मा आसामबाट प्रकाशित यस नाटकका अनुवादक टङ्कनाथ उपाध्याय हुन् । नेपालीमा अनूदित सेक्सपियरका अन्य नाटकहरूमा **ओथेलो** (अनु. पुष्करशमशेर जबरा), **बाह्रौं रात** र **राजा लियर** (अनु. उद्वीपसिंह थापा मुगाली), सेक्सपियरको **द मर्चेन्ट अव् भेनिस** रहेका छन् । यस नाट्यकृतिलाई सूर्यप्रसाद गिरी, रामचन्द्र गिरी, टङ्कनाथ उपाध्याय र पुष्पलाल शिवाकोटीले क्रमशः **भेनिसका महाजन, भेनिसका महाजन, वेनिसको सौदागर, भेनिसको व्यापारी** शीर्षकमा अनुवाद गरे । । त्यसै गरी देवेन्द्रराज अर्यालको अनुवादकत्वमा **एगामेम्नन** र **एन्टीगनी** र **राजा इडिपस** जस्ता ग्रिसेली वियोगान्त नाटकहरू पनि नेपालीमा आए । यीबाहेक नेपालीमा अनुवाद हुने नाट्य कृतिहरूमा स्यामुयल बेकेको विसङ्गतिवादी नाटक **वेटिङ फर गोदो**, म्याक्सिम गोर्कीको **भास्सा झेलेज्नोभा, द एनेमी** र **येगोर बुलिचेभ एन्ड अदर्स**, हेन्रिक इब्सनको सामाजिक यथार्थवादी नाटक **द डल्ज हाउस**, आर्थर मिलरको आधुनिक वियोगान्त नाटक **अल माई सन्जलगायत** निकोलेइ गोगोलको **गवर्मेन्ट इन्स्पेक्टर** पर्दछन् । म्याक्सिम गोर्कीका तीनवटै नाटकका अनुवादक खगेन्द्र सङ्ग्रौला हुन् । सङ्ग्रौला **कटहरे खाडी** र **सरकारी निरीक्षक** जस्ता नाटकका पनि अनुवादक हुन् । अभि सुवेदीद्वारा अनूदित **जापानी नोह नाटक** चालिसको मध्यदशकमा अनूदित अर्को उल्लेखनीय नाटक हो ।

प्रकाशनका दृष्टिले वितेको डेढ दशक अनूदित नाटकको स्थिति त्यति उत्साहजनक देखिएन । हेन्रिक इब्सेन, एन्टोन चेखव जस्ता एकाध नाटककारका सृजना मात्र अङ्ग्रेजीबाट अनुवाद भई प्रकाशित भए । इब्सेनको **डल्ज हाउसलाई** नाट्यकर्मी सुनिल पोखरेलले **पुतलीको घर** (२०६३) शीर्षकमा अनुवाद गरे भने चेखवको **द चेरी वर्चाड** र ब्रेख्तको **ग्यालिलियोलाई** होमर श्रेष्ठले क्रमशः **चेरीको बगँचा** (२०६२), **पृथ्वी घुमिरहेछ** (२०६४) शीर्षकमा बाहिर ल्याए ।

अनूदित नाटकको मञ्चनका दृष्टिले भने समसामयिक काल निकै स्मरणीय बनेको छ । अनूदित नाटकहरूको मञ्चनमा आरोहण, मण्डला थियटर, शिल्पी, एक्टरर्स स्टुडियो जस्ता काठमाडौँ स्थित नाट्य समूहहरू सक्रिय रहेका छन् । हेन्रिक इब्सेनको **मास्टर बिल्डर** (अनु. बलबहादुर थापा र जिबेस रायमाझी), इब्सेनकै **लेडी फ्रम द सी**, युजिन ओ नेइलको **द डिजायर अन्डर द एल्मज** (अनु. बलबहादुर थापा) क्रमशः **महान् शिल्पी, जलपरी** र **एल्म मुनिका सपना** शीर्षकमा अनुवाद भई मञ्चन भए । त्यसै गरी बर्टोल्ड ब्रेख्तको **द कौकेसियन सर्कललाई** भीम अर्यालले **खरीको घेरो** शीर्षकमा अनुवाद गरी मञ्चन गराए । नेपालीमा अनुवाद भई मञ्चन हुने नाटकमा आर्थर मिलरको **भिउ अक्रस द ब्रिज** र अगस्ट स्ट्रिन्डबर्गको **मिस जुली** पनि पर्दछन् जसलाई अनुवादक समुना केसीले क्रमशः **पुलबाट हेर्दा** र **मिस जुली** शीर्षक दिएकी छन् । त्यसै गरी फरिद दिन उद अत्तारको **द कन्फरेन्स अव बर्डज,**

जर्ज बर्नाड शाको द एपल कार्ट क्रमशः चराहरूको सम्मेलन (अनु. पुष्पराज आचार्य) र उलार (अनु. अजय खतिवडा) शीर्षकमा अनुवाद भई मञ्चन भए ।

ङ) बालसाहित्यको अनुवाद

संवत् १९६० को दशकबाट आरम्भ भएको अङ्ग्रेजी बालसाहित्यको अनुवाद आधुनिक कालमा निकै उँभो लाग्यो । हाल आएर बालसाहित्य सबैभन्दा बढी अनुवाद हुने क्षेत्र बनेको छ । विद्यालय शिक्षाको विस्तारसँगै बालसाहित्यको अनुवादमा पनि सक्रियता बढ्दै गएको छ । बालबालिका लागि आवश्यक पठनसामग्रीका रूपमा अनूदित साहित्यले महत्त्वपूर्ण योगदान पुऱ्याएको छ ।

साठीको दशकभन्दा अघि अनुवाद भएका बालसाहित्यको सूची निकै लामो छ । तीमध्ये केहीको नाम यस प्रकार छन्– लुइस क्यारोलको **एलिस एड्भेन्चर इन वन्डरल्यान्डलाई चूडामणि बन्धुले अनौठो देशमा एलिस** र विजय चालिसेले **अनौठो भूमिमा एलिस** गरी दुई फरक शीर्षकमा अनुवाद गरे । अन्य बालकृतिहरूमा **अपूर्व ग्रहको कथा** (अनु. क्षेत्रप्रताप अधिकारी), **अरबका दुई फूल** (अनु. प्रकाश कोविद), **एकैसाथ हाँसौं** (अनु. किशोर पहाडी), **विदेशी बगँचाका चार थुँगा फूल, विदेशी बगँचाका पाँच थुँगा फूल, विदेशी बगँचाका छ थुँगा फूल** (अनु. गोविन्दराज भट्टराई), **खुसी राजकुमार र अरू कथाहरू** (अनु. खग्रेन्द्र सङ्ग्रौला) आदि । साझा प्रकाशनबाट विश्वम्भर चञ्चल अनुवादक रहेको **टमको बहादुरी** र क्षेत्रप्रताप अधिकारीको **अपूर्व ग्रहको कथाको** पनि प्रकाशन भयो । अङ्ग्रेजी बालसाहित्य नेपालीमा भित्र्याउने अन्य अनुवादकहरूमा दुर्गालाल श्रेष्ठ, रमेश विकल, वसन्त थापा, सपना, कमलमणि दीक्षित आदिलाई सम्झिनुपर्ने हुन्छ । सङ्ख्याका हिसाबले प्रकाश कोविद सबैभन्दा सक्रिय बालसाहित्य अनुवादकका रूपमा देखिए । उपन्यासकारका रूपमा स्थापित दार्जिलिङका यी अनुवादकका अनूदित कृतिहरू **अरबका दुई फूल, अल्लाउदीनको बत्ती, गाडधनको खोजी, गुलिभरको यात्रा, पिनोकियो** शीर्षकमा प्रकाशित छन् ।

साठीको दशकदेखि यता अङ्ग्रेजी बालसाहित्यको अनुवादमा प्रकाशन गृहहरू योजनाबद्ध ढङ्गले लागेका छन् । रुम टु रिड, कथालय, बालसाहित्य प्रतिष्ठान, विवेक सिर्जनशील प्रकाशन प्रा.लि., एजुकेसनल पब्लिकेसन हाउस, रातो बङ्गला किताब जस्ता प्रकाशकहरूबाट ठुलो सङ्ख्यामा अनूदित बालसाहित्यका पुस्तकहरू प्रकाशन भइरहेका छन् । त्यसैले बालसाहित्यको सूची र विश्लेषणका लागि अलग्गै अनुसन्धान र कार्यपत्रको खाँचो देखिन्छ ।

च) निबन्ध र समालोचनाको अनुवाद

निबन्ध अनुवादको थालनी भाषानुवाद परिषद्ले गरेको हो । लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा र नरेन्द्रमणि आदी ती सुरुका दिनका अनुवादकहरू थिए । यी विद्वान्द्वयको अनुवादकीय कर्मलाई २००७ सालपछिका विद्वान्हरूले पनि निरन्तरता दिए । यद्यपि निबन्ध विधाको अनुवाद त्यति उत्साहजनक ढङ्गले अघि बढ्न सकेको छैन । संवत् २०५८ सम्मको अवधिमा नेपालीमा मुस्किलले एक दर्जन निबन्धसङ्ग्रह अनुवाद भए । यी मध्ये ९ सङ्ग्रह अङ्ग्रेजीबाट आएका हुन् । बेलायती चिन्तक बर्ट्रान्ड रसेल विचारपरक निबन्ध **अन एजुकेसन** (शिक्षा, अनु. पद्मनाथ ढुङ्गना, २०३०) कविताको **सम्बन्धमा** (अनु. सञ्जीवदास श्रेष्ठ), **बहुभाषी देशहरूमा पुस्तक** (अनु. इन्द्रविलास अधिकारी), **मैले अध्ययन कसरी गरें** (अनु. शान्तादास श्रेष्ठ) नेपालीमा अनूदित केही सङ्ग्रहहरू हुन् ।

साहित्य समालोचनाका निकै कम कृति भित्रिए । आइ. ए.रिचार्ड्सको **समालोचनाको सिद्धान्त** (अनु.माधवलाल कर्माचार्य र लीलाप्रसाद शर्मा), **एरिस्टोटलको काव्यशास्त्र, जर्ज लुकासको साहित्यिक सिद्धान्त** र सर फिलिप सिड्नीको **काव्य सिद्धान्त : कविको वाणीमा** (अनु. लीलाप्रसाद शर्मा) नेपालीमा अनूदित समालोचना साहित्यका अध्ययनीय कृतिहरू हुन् । यी सबै कृतिहरू २०३० र ३१ का बिचमा अनुवाद भई प्रकाशित भए । नेपाली भाषामा पाश्चात्य समालोचना भित्र्याउनमा अनुवादक लीलाप्रसाद शर्माको योगदान निकै उल्लेखनीय रह्यो । घटराज भट्टराईले यी अनुवादकलाई यसरी चिनाएका छन्, "अङ्ग्रेजी विषयमा उच्चशिक्षा लिई प्राध्यापन पेसा लिने लीलाप्रसाद शर्मा नेपाली विषयका लेखक पनि हुन् । पश्चिमी साहित्य चिन्तनलाई नेपालीमा भित्र्याउनु उनको विशेषता हो ।" (२०५६, पृ.५८०) ।

६) अनूदित पुस्तकको सरदर सङ्ख्या

झन्डै दुई शताब्दीमा अनुवाद भई नेपालीमा भित्रिएका अङ्ग्रेजी साहित्यिक पुस्तकको सङ्ख्या तोक्न निकै कठिन छ। यसका पछाडि तीनवटा कारण छन्। पहिलो, *अङ्ग्रेजी साहित्य*को अवधारणा नै धूमिल बन्दै गएको छ । सैद्धान्तिक रूपले यसको स्पष्ट सीमा तोक्न जटिल छ। बृहत् रूपमा अङ्ग्रेजी साहित्य भन्नाले अङ्ग्रेजी भाषामा उपलब्ध सम्पूर्ण साहित्य भन्ने बुझाइ रहेको छ। त्यसैले विश्वविद्यालयका अङ्ग्रेजी साहित्यका कोर्समा अङ्ग्रेजी साहित्यअन्तर्गत मौलिक र अनुवाद दुवैको अध्ययन-अध्यापन हुने गरेको छ। सीमित अर्थमा भने यसले अङ्ग्रेजी भाषाका मौलिक सृजनालाई मात्र बुझाउँछ। अनूदित ग्रन्थसूचीको अद्यावधिक नहुनु तेस्रो कारण हो। सुरुका दिनदेखि २०५८ सम्म अनुवाद भएका पुस्तकको सूची नेपाल प्रज्ञा-प्रतिष्ठानको अनुवाद ग्रन्थसूचीमा उपलब्ध छ। तथापि यस ग्रन्थसूची पनि आफैँमा पूर्ण भने छैन। प्रतिष्ठानले २०५९ मा प्रकाशित गरेको यस पुस्तकलाई अद्यावधिक गर्नुपर्ने समय आएको छ।

वि. सं. २०५८ देखि यताका अनूदित पुस्तकहरू प्रज्ञा-प्रतिष्ठानको अप्रकाशित अनुसन्धानात्मक पुस्तक **अनुवाद सिद्धान्त, अनुवाद सिद्धान्त र प्रयोग** (२०७२) र जगदम्बा प्रकाशनबाट आउँदै गरेको **नेपाली साहित्य अनुवादको इतिहासमा** समेटिएको छ। यद्यपि यी अनुसन्धानहरूले अनूदित पुस्तकहरूको अलग्गै सूची भने दिएका छैनन्। सरकारी र निजी क्षेत्र दुवैबाट प्रकाशित अनुवादहरूको सामान्य सर्वेक्षणका आधारमा भने विधागत रूपमा *सामान्य आँकडा* दिन सकिन्छ।

उपन्यास : ५२, आत्मकथा तथा जीवनी : ६१, कथा , लोककथा : ४६, नाटक : ३५, निबन्ध : १२, साहित्यशास्त्र : ६, बालसाहित्य : १००, काव्य : ३५

जम्मा : ३४७

माथिको यो आँकडा सामान्य सर्वेक्षणमा आधारित छ। अनूदित पुस्तकहरूको अद्यावधिक अध्ययनबिना यति नै साहित्यिक पुस्तक अङ्ग्रेजीबाट नेपालीमा भित्रिएका छन् भन्न सकिने अवस्था छैन।

७) अङ्ग्रेजी साहित्यको नेपाली अनुवादका केही समसामयिक प्रवृत्ति र समस्या

प्रवृत्ति

- नेपाली अनुवादकहरू अङ्ग्रेजी केन्द्रित हुँदै गएका छन्। अघिला चरणहरूमा संस्कृत, बङ्गला, हिन्दी भाषाबाट हुने गरेको अनुवाद हाल आएर अङ्ग्रेजीतर्फ साँघुरिदै गएको छ। नेपाली अनुवादमा स्रोत र लक्ष्य दुवैतर्फ अङ्ग्रेजी भाषाको प्रभुत्व रहेको देखिन्छ।
- निजी प्रकाशनगृहहरू अङ्ग्रेजी साहित्यको अनुवादमा सक्रिय भएका छन्। यसले नेपालीतर्फको अनुवादमा निकै वृद्धि भएको छ। प्रकाशनगृहहरूले अनुवादलाई व्यावसायिक प्रयोजनका लागि उपयोग गर्न थालेका छन्। यस्ता संस्थाहरूले अङ्ग्रेजी भाषाका बहुचर्चित पुस्तकहरूको नेपाली अनुवादमा लगानी गरेका छन् जसले गर्दा आख्यान तथा जीवनीपरक कृतिहरूको अनुवादमा उल्लेख्य वृद्धि भएको छ।
- अङ्ग्रेजी नाटकको अनुवाद पठनका लागि भन्दा पनि मञ्चनका लागि हुने गरेका छन्। त्यसैले अधिकांश मञ्चित नाटकहरू अप्रकाशित छन्। त्यस्तै, धेरैजसो यस्ता नाटकहरूलाई अनुवादक र निर्देशकले आवश्यकतानुरूप नेपाली परिवेशमा अनुकूलन गरेका छन्।

समस्या

- अनुवादको सङ्ख्यात्मक वृद्धिले व्यावसायिकताको सङ्केत गर्दछ तर व्यावसायिकताका लागि सङ्ख्याका साथै गुणात्मकतामा पनि वृद्धि हुनुपर्दछ। नाफा आर्जनबाट अभिप्रेरित भएका कारण नेपालीमा अनूदित अधिकांश पुस्तकहरू स्तरीय छैनन्। सम्बन्धित व्यक्ति या निकायबाट स्वीकृति नलिनु, अनुवादको मर्म नबुझेका व्यक्तिले अनुवाद गर्नु, अनुवादकको भाषा सबल नहुनु, एकै अनुवादकले छोटो समयमा धेरै पुस्तकको अनुवाद गर्नु र अनुवादको सम्पादन नगराउनुले अनुवादको गुणात्मकतामा ह्रास आएको छ।
- लेखक या कुनै निकयसँग प्रतिलिपि अधिकार सुरक्षित भएको पुस्तकको अनुवाद गर्न स्वीकृति लिनुपर्दछ। तर केही प्रकाशनगृहहरूले अनुमतिबेगर नै अङ्ग्रेजीका पुस्तकहरूको अनुवाद गरी प्रकाशन गरेका छन्। यसरी अनुवाद हुनेमा विश्वबजारमा

श्रेष्ठ कहलिएका पुस्तकहरू रहेका छन् । अनधिकृत अनुवाद समसामयिक नेपाली अनुवादका क्षेत्रमा समस्याका रूपमा देखिएको छ ।

- अनुवादका लागि स्वीकृति लिनुपर्ने र लेखस्व पनि तिर्नुपर्ने कारणले समकालीन अङ्ग्रेजी साहित्यका कृतिहरूलाई नेपालीमा सहज रूपमा भित्र्याउन सकिरहेको छैन । सामान्यतः प्रकाशनगृहहरूले व्यक्तिलाई भन्दा पनि संस्थालाई अनुवादको अनुमति दिन रुचाउँछन् । अतः अनुवादकले भन्दा पनि प्रकाशनगृहहरूले नै अनुवादको पहल गर्नुपर्ने देखिन्छ । अर्कातर्फ, विश्वसाहित्यमा आफ्नो स्थान बनाइसकेका लेखकका कृतिको अनुवादका लागि सम्बन्धित निकायले न्यूनतम रकमको माग गर्दछन् । म आफैं पनि केही समययता अङ्ग्रेजी पुस्तकहरूको अनुवादका निम्ति स्वीकृति लिने पहल गरिरहेको छु । यसमा अमेरिकाको प्रकाशन कम्पनीमा कार्यरत रामचन्द्र केसीले संयोजनकारी भूमिका निर्वाह गरिरहेका छन् । सामान्य पुस्तकका लागि पनि न्यूनतम ५०० डलर र चलेका पुस्तकका लागि २००० डलरसम्म माग गरेको देखियो । यता नेपाली प्रकाशनगृहहरू अनुवादको अनुमतिका लागि मात्रै यत्रो रकम लगानी गर्न सक्ने अवस्थामा छैनन् । अनुवाद, सम्पादन र प्रकाशनको खर्च अझ योभन्दा निकै माथि रहन्छ । त्यसैले गर्दा बजारमा दुई प्रकारका अनुवाद छरिएको छ । पहिलो अनधिकृत छन् तर समकालीन छन् । दोस्रो प्रतिलिपि अधिकारबाट मुक्त छन् तर पुराना छन् ।

सन्दर्भसामग्री

अधिकारी, बलराम (२०७०) अनुवाद सिद्धान्त. नेपाल प्रज्ञाप्रतिष्ठानमा पेस अप्रकाशित अनुसन्धान प्रतिवेदन ।

अधिकारी, बलराम (२०७१) अनुवाद सिद्धान्त र प्रयोग. काठमाडौं : त्रिपिटक प्रकाशन

कर्माचार्य, माधवलाल र रन्जितकार, इश्वरमान (२०५९) *अनुवाद ग्रन्थसूची*. कमलादी : नेपाल राजकीय प्रज्ञा-प्रतिष्ठान ।

दीक्षित, नरेन्द्रमणि आचार्य (अनु.) (१९९५). *युरोपीय साहित्यको नमुना* . नेपाल : नेपाली भाषा प्रकाशनी समिति ।

पोखरेल, बालकृष्ण (२०६२). *पाँच सय वर्ष* (दोस्रो. संस्क.). काठमाडौं : साझा प्रकाशन ।

भट्टराई, गोविन्दराज (२०५८) नेपालीमा अनूदित प्रथम अङ्ग्रेजी उपन्यास शी : एक विश्लेषण, जीवनचन्द्र कोइराला (सम्पा.) पुष्करशमशेर स्मृतिग्रन्थ, काठमाडौं : कुलचन्द्र कोइराला स्मृतिप्रतिष्ठान, पृ ११७ -१२४ ।

भट्टराई, घटराज, *नेपाली लेखक कोश* काठमाडौं: लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा प्रतिष्ठान, २०५६ ।

श्रेष्ठ, दयाराम (२०६५). *साहित्यको इतिहास : सिद्धान्त र सन्दर्भ* (तृ.सं). काठमाडौं : पालुवा प्रकाशन ।

शर्मा, सुकुम (२०५९) . *नेपाली भाषामा टर्नरको योगदान* . कीर्तिपुर : न्यु हीरा बुक्स इन्टरप्राइजेज ।

अनुवादका क्षेत्रमा प्रयुक्त नवीन सिद्धान्तहरू : संक्षिप्त सर्वेक्षण

डा. नवराज न्यौपाने

सार

बिसौं शताब्दीको मध्यबाट चलेका विभिन्न आन्दोलनहरूले अनुवादका सिद्धान्तहरू स्थापित गरायो र यसको औचित्य र सार्थकता स्पष्ट पाऱ्यो । पश्चिमी जगत्मा विभिन्न दृष्टिकोणहरू स्थापित भई अनुवाद अध्ययनले मूर्त रूप लिइसकेको परिवेशमा, विकसित अनुवादका सिद्धान्तहरूको सर्वेक्षण औचित्यपूर्ण, सान्दर्भिक र समयसापेक्ष देखिन्छ । यसै परिप्रेक्ष्यमा प्रस्तुत कार्यपत्र पश्चिमा अनुवाद सिद्धान्तको विमर्शमा केन्द्रित छ । समग्र सिद्धान्त विचरण यस सानो कार्यपत्रमा सम्भव प्रायः नभएको र आवश्यक पनि नभएकाले, यसका नवीन सिद्धान्तहरू मात्र संक्षिप्त सर्वेक्षणमा परेका छन्, जुन १९७० को दशकदेखि हालसम्म विकास भएका छन् । यसर्थ यसको सैद्धान्तिक खाकाअन्तर्गत निम्न पाँचवटा आधारहरू परेका छन् : प्रयोजनपरक, प्रणाली, विनिर्माणवादी, उत्तरऔपनिवेशिक र स्रोत संस्कृतिकेन्द्री । यीमध्ये कुनै पनि सिद्धान्त आफैँमा पूर्ण र सीमारहित नदेखिएकाले यस कार्यपत्रले बोधगम्य, व्यावहारिक र उपयुक्त सिद्धान्तको अपेक्षा गर्दछ ।

शब्दकुञ्जिका : अनुवाद, तेस्रो साहित्य, लक्ष्य भाषा, सिद्धान्त, स्रोत भाषा ।

१. परिचय

'अनुवाद' प्रयोग र अभ्यासका दृष्टिले पुरानै भए तापनि छुट्टै विधाका रूपमा सन् १९७० बाट स्थापित भएको हो । विधाकै रूपमा स्थापित भएपश्चात् अनुवादका नयाँ सैद्धान्तिक मोडहरू र सिद्धान्तविद्हरू देखा पर्न थाले । यस समयमा अनुवादको महत्त्व सही रूपमा पहिचान पनि हुन थाल्यो । यसै परिप्रेक्ष्यमा दाहाल (२०१३) ले अनुवाद गरिनुका निम्न तीन कारण र प्रयोजन दर्साएकी छन् : (क) पाठकको आवश्यकता (ख) अनुवादकको रुचि र स्वान्तसुखाय (ग) व्यावसायिक दृष्टिकोण । यसको महत्त्वलाई विभिन्न रूपमा दर्साउन सकिन्छ, जस्तै : सांस्कृतिक सम्पदाको हस्तान्तरण, साहित्य ढुकुटीको प्रवर्द्धन, सञ्चारको असल माध्यम, भाषा र संस्कृतिको पुनर्जागरणको साधन, शिक्षाको माध्यम, आदि ।

विश्व परिवेशमा २० औँ शताब्दीको पछिल्ला वर्षहरूमा 'अनुवाद अध्ययन' घनीभूत रूपमा विकास भएको पाइन्छ भने नेपालको सन्दर्भमा विश्वविद्यालयका पाठ्यक्रमका साथै अनुवादकका स्वान्तसुखाय र व्यक्तिगत अभिरुचिका साथै व्यावसायिक प्रयोजनका रूपमा पनि अनुवादको प्रयोग भएको देखिन्छ । नेपालमा सर्वप्रथम वि.सं. २०५५ (१९९८) मा त्रिविअन्तर्गत भाषाविज्ञान विभागको पाठ्यक्रममा अनुवाद विषयले प्रवेश पाएको हो । त्यसपछि शिक्षाशास्त्र सङ्काय, अङ्ग्रेजी शिक्षा विभागमा २०५६ (१९९९) मा, मानविकी सङ्कायअन्तर्गत नेपाली विभागको पाठ्यक्रम २०५६ (१९९९) मा र मानविकी सङ्कायको अङ्ग्रेजी विभागको एमफिल कार्यक्रम २०६८ (२०११) मा अनुवाद विषय समाविष्ट छ । यसका साथै स्नातक मानविकी र शिक्षा सङ्काय, त्रिवि र काठमाडौँ विश्वविद्यालयका विभिन्न तह र विभागमा समेत यो विषय अध्ययनको क्षेत्र बनेको छ । साथै विभिन्न सङ्घसंस्था जस्तै : नेप्रप्र, साझा प्रकाशन, रत्न पुस्तक भण्डार आदिका साथै अन्य व्यक्तिगत अभिरुचिका कारण पनि अनुवाद प्राज्ञिक, व्यावसायिक तथा अनुसन्धानको अभ्यास क्षेत्र बनेको छ । तथापि अनुवादको मौलिक र परिवेश अनुकूलको सिद्धान्त हालसम्म बन्न सकेको छैन । अतः पाश्चात्य जगत्मा विकसित भएका र प्रयोगमा आएका नवीनतम सिद्धान्तहरूको पर्यावलोकन र सुपरिवेक्षण औचित्यपूर्ण

र सान्दर्भिक रहेको छ ।यस पत्रको मुख्य उद्देश्य अनुवादको क्षेत्रमा प्रयुक्त नवीन सिद्धान्तहरूको सिंहावलोकन गर्नु रहेको छ र यसले प्रजोजनपरक सिद्धान्तदेखि हालसम्म पश्चिमी जगत्मा देखा परेका र विकास भएका अनुवादका विविध सिद्धान्तहरूका विशेषताहरू, प्रवृत्तिहरू र सीमाहरूको परिचर्चा गर्दछ ।

२. विधि

यस कार्यपत्रको उद्देश्य परिपूर्तिका निमित्त, पुस्तकालयीय विधि प्रयोग भएको छ । सन् १९७१ देखि प्रयुक्त अनुवाद सिद्धान्तहरूको सर्वेक्षणका निमित्त विविध पुस्तक, जस्तै गेन्जलर (२०१०), मुन्डे (२००८), भेनुती (२००८ र २०११), भट्टराई (२००७) आदि र लेखहरू जस्तै : निडा (१९९१), भेनुती (२००४) आदि प्रयोग गरिएको छ । यी द्वितीय स्रोतहरूको छनोट सुविधाजनक छनोट विधिका आधारमा गरिएको छ । साथै व्याख्या र विश्लेषणका निम्ति पाँच आंधारस्तम्भ (कालक्रमिक रूपमा) निर्धारण गरी निष्कर्षमा पुगिएको छ ।

३. सिद्धान्त विमर्श

अनुवाद सिद्धान्तको सुरुवात रोमका विद्वान् सिसेरो (४६ बी.सी.) र होरिस (२० बी.सी.) बाटै भएको मानिन्छ । उनीहरूको अनुवाद सिद्धान्तलाई सेन्ट जेरोम (३९५) ले स्पष्ट शब्दमा शब्दानुवाद र भावानुवादबिचको विवादका रूपमा लिएका छन् । यी दुईमध्ये, भावानुवाद नै अनुवादकका रोजाइमा परेको थियो । चिनियाँ साहित्यको इतिहास पर्यावलोकन गर्दा पनि यो तथ्य स्पष्ट हुन्छ । बुद्धका सूत्रहरू संस्कृतबाट चिनियाँ भाषामा अनुवाद गर्दा भावानुवाद नै प्रयोग भएको देखिन्छ ।

व्यवस्थित र वैज्ञानिक सिद्धान्तहरू विसौँ शताब्दीको मध्य (१९५० औँ र ६० औँ) बाट सुरु भए । यिनीहरूलाई भाषावैज्ञानिक सिद्धान्तहरूको कोटीमा राखिन्छ । यी सिद्धान्तहरू रोमन याकोब्सन (याकोब्सन, १९५९/२००४) को भाषिक अर्थ र समतुल्यताको वरिपरि विकास भएका देखिन्छन् । करिब दुई दशकको अवधिमा विकास भएका व्यवस्थित सिद्धान्तहरूमा, वेकर (२०११) र मुन्डे (२००८) का शब्दमा, विनय र डावेल्नेट (१९५८/२००४), निडा (१९६४), क्याटफोर्ड (१९६५), लेभी (१९७६/२००४), कोलर (१९७९), न्युमार्क (१९८१, १९८८), चेस्टरम्यान (१९८९), गट (१९९१/२००४), व्यास्नेट (२००२), मुन्डे (२००८), बेकर (२०११) आदिको उल्लेखनीय योगदान रहेको छ । यी सिद्धान्तहरूले अनुवाद प्रक्रियालाई भाषावैज्ञानिक क्रियाकलापका रूपमा र अनुवादलाई विज्ञान तथा सीपका रूपमा हेर्दछन् । यसका साथै अनुवादलाई प्रक्रिया र उत्पादनका रूपमा हेर्दै अनुवाद अध्ययनका प्रक्रियाको अनुसन्धान गर्ने विविध संज्ञानात्मक प्रक्रिया जस्तै : स्वतःफूर्त विचार, तुरुन्त पश्चावलोकन आदिको आगमनले अनुवादलाई मनोभाषाविज्ञानको क्षेत्रका रूपमा पनि प्रस्तुत गरेका छन् ।

अनुवादका भाषिक सिद्धान्तहरूमध्ये सन् १९७० को दशकमा चलेको प्रयोगार्थक आन्दोलनले अनुवाद अध्ययनलाई छुट्टै विधाको रूपमा स्थापित गऱ्यो । तत्पश्चात् चलेको सांस्कृतिक आन्दोलनले यो विधाको आधारशिला तयार पाऱ्यो । यो पछिल्लो आन्दोलन विशेषतः जर्मनी, वेलायत, इजरायल, फिनल्यान्ड र ब्राजिलमा चलेको थियो । वेलायतलगायत अङ्ग्रेजीभाषी देशहरूमा चलेको आन्दोलनले प्रणालीहरूको सिद्धान्तको उदय गरायो, जसमा इतामर इभान जोहार, गिडियन टोरी र थिओ हर्मन्जंको नाम अग्रपङ्क्तिमा आउँछ । अर्कातिर जर्मनीलगायत जर्मनभाषी देशहरूमा चलेको आन्दोलनले प्रयोजनपरक सिद्धान्तहरूको उदय गरायो । यी दुवै संस्कृतिकेन्द्री सिद्धान्तहरूको व्याख्या र विश्लेषण तलका खण्ड र परिच्छेदहरूमा गरिएको छ ।

३.१. प्रयोजनपरक सिद्धान्त

यी सिद्धान्तहरू लक्ष्य भाषाकेन्द्रित छन् र भाषिक तथा सांस्कृतिक दुवैको समावेशीमा आधारित छन् (गेन्जलर, २०१०) । यसका सिद्धान्तविद्हरूमा कथरिना रेइस, मेरी स्नेल-हर्नबी, हान्स भरमीर, होल्ज मान्टारी र क्रिस्टियन नोर्ड प्रमुख हुन् ।

पाठ प्रकारको सिद्धान्त कथरिना रेइसले सन् १९७० को दशकमा जर्मनीमा प्रतिपादन गरेकी हुन् । यो सिद्धान्त समतुल्यताको अवधारणा, अनुवादको प्रयोगार्थक आन्दोलन र कार्ल बुहलरको भाषाका तीन कार्य (सूचनात्मक, अभिव्यञ्जक र क्रियात्मक) मा

आधारित छ (गेन्जलर, २०१० र मुन्डे, २००८)। समतुल्यता भाषिक सिद्धान्तविद्ले जस्तो शब्द र वाक्यमा नभई पाठमा खोजिन्छ। पाठको प्रकारअनुसार अनुवाद विधि निर्धारण गरिन्छ। पाठ प्रकारको सिद्धान्तका सीमितताहरूमा (क) तीनवटा मात्रै पाठका प्रकार निर्धारण गरिनु र सामाजिक सम्बन्धको समावेश नगरिनु, (ख) विशेष पाठमा विशेष विधि प्रयोगसम्बन्धी स्पष्ट मार्गचित्र प्रदान गर्न नसक्नु र (ग) विधि छनोटमा अनुवादकको भूमिका, उद्देश्य र सामाजिक-सांस्कृतिक आवश्यकताहरूमा मौन रहनु छन् (मुन्डे, २००८)।

अनुवादको एकीकृत सिद्धान्तका प्रणेता भियनाकी विदुषी मेरी स्नेल-हर्नबीले सन् १९८८ मा विभिन्न किसिमका पाठका प्रकारलाई एउटै विश्लेषणात्मक खाकामा प्रस्तुत गरिन्। उनको एकीकृत खाकाले तीन विस्तृत किसिमका अनुवादहरू (साहित्यिक, सामान्य भाषिक र विशेष भाषिक) लाई प्रस्तुत गर्दछ। यसरी वर्गीकरण गर्दा पाठहरूबिचको सीमाङ्कन स्पष्ट नभएको र अनुवादको उद्देश्य पनि किटान नगरिएकोमा यो सिद्धान्तको सीमा पूर्ति गर्नका खातिर गैरसाहित्यिक पाठहरूको उद्देश्यमा आधारित स्कोपस सिद्धान्त अघि सारिएको छ।

जर्मन सिद्धान्तविद् हान्स भरमिर (१९७८, १९८७) मा प्रतिपादित उद्देश्यपरक सिद्धान्तमा प्रयुक्त मूल शब्द स्कोपस ग्रीक शब्द हो जसको अर्थ उद्देश्य, प्रयोजन, लक्ष्य आदि हुन्छ। यो सिद्धान्तको विस्तृत रूप रेइस र भरमिरको संयुक्त लेखनमा सन् १९८४ मा देख्न सकिन्छ (मुन्डे, २००८)। यो सिद्धान्त कार्यात्मक सिद्धान्तमा आधारित छ। अतः यसले अनुवादलाई मानवको विशेष कार्य मान्दछ र यो कार्य उद्देश्यद्वारा निर्देशित र निर्धारित हुन्छ (साफनर, २०११)। अन्य सिद्धान्तहरू जस्तै यो सिद्धान्त पनि यसरी आलोचित हुन पुग्यो : (क) सबै कार्यको उद्देश्य हुँदैन (ख) सबै अनुवादमा उद्देश्य निर्धारण गर्न सकिँदैन। यी आलोचनाको खण्डन गरिए तापनि अनुवादको प्रमुख पक्ष अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषणात्मकतालाई ध्यान दिन नसक्नु यस सिद्धान्तको प्रमुख सीमा हो।

उद्देश्यमूलक सिद्धान्तले समेट्न नसकेको सम्प्रेषणात्मकतालाई परिपूर्ति गर्नाका लागि होल्ज मान्टारीले सन् १९८४ मा कार्यात्मक र सम्प्रेषणात्मक सिद्धान्तका आधारमा अनुवादकीय कार्य सिद्धान्तको प्रतिपादन गरेकी हुन्। उनका अनुसार अनुवाद उद्देश्यद्वारा निर्दिष्ट र उत्पादन उन्मुख मानवीय प्रतिक्रिया हो र यो अन्तर्सांस्कृतिक सम्प्रेषण गर्ने एउटा प्रक्रिया पनि हो (मुन्डे, २००८)। यस सिद्धान्तले अनुवादलाई एउटा व्यावसायिक कार्य मान्दछ, जसमा विभिन्न विशेषज्ञहरू, सहभागीहरू र पाठकहरूको सहभागिता हुन्छ। तथापि यसमा प्रयुक्त शब्दहरू क्लिष्ट हुनु र सांस्कृतिक विविधताहरूलाई समेट्न नसक्नु यो सिद्धान्तका प्रमुख कमजोरीहरू हुन्।

प्रयोजनपरक सिद्धान्तले लक्ष्य पाठका विशेषतामा जोड दिन्छन् भने क्रिस्टियन नोर्ड (१९८८, १९९७ र २००५) को अनुवादकेन्द्रित पाठ विश्लेषण सिद्धान्तले स्रोत पाठका विशेषताहरूको विश्लेषणमा जोड दिन्छ। यो सिद्धान्तमा प्रयोजनका आधारमा अनुवादलाई दुई प्रकारमा विभाजन गरिएको छ। विवरणात्मक अनुवादले साहित्यानुवाद, शब्दानुवादको छनोटमा जोड दिन्छ भने उपकरणात्मक अनुवादले सम्प्रेषणात्मक विधिको छनोटमा जोड दिन्छ। अतः यो सिद्धान्तले स्रोत-भाषा-केन्द्री साहित्यानुवाद तथा लक्ष्य-भाषा-केन्द्री सम्प्रेषणात्मक अनुवाद दुवैको पक्षपोषण गर्दछ।

उपर्युक्त प्रयोजनपरक सिद्धान्तहरूको विश्लेषणवाट के देखिन्छ भने यिनीहरू प्रयोगार्थक पाठहरूको अनुवादमा सफल छन् तर साहित्यानुवादमा यिनीहरूको उपादेयता नभएको समालोचकहरूको विचार रहेको बुझिन्छ।

३.२. प्रणाली सिद्धान्त

प्रयोजनपरक सिद्धान्त जस्तै यी सिद्धान्तहरू पनि सन् १९७० को दशकमा स्थिर र आदेशात्मक भाषिक सिद्धान्तहरूको प्रतिक्रिया स्वरूप देखा परेका हुन्। यी सिद्धान्तहरूका मुख्यतः दुईवटा (बहुप्रणाली र अनुकूलन) प्रकारहरू छन्।

इजरायली विद्वान् इतामर इभान जोहारद्वारा सन् १९७० को दशकमा प्रतिपादित बहुप्रणाली सिद्धान्त रसियन भाषाविद्हरूको जगमा उभ्याइएको हो। यसले साहित्यलाई सामाजिक, सांस्कृतिक एवम् ऐतिहासिक सन्दर्भहरूमा अभिन्न रूपले संलग्न भएको मान्दछ। अतः साहित्यिक प्रणाली अन्य उपप्रणालीहरूको समग्र रूप हो र अनुवाद साहित्य यी उपप्रणालीभित्रै पर्दछ। इभान जोहारका विचारमा अनुवादले प्राथमिक स्थान

पाउने निम्न तीन अवस्था पर्दछन् : (क) नवोदित साहित्य (ख) अविकसित साहित्य (ग) परम्परागत लेखनप्रति असन्तुष्टि । यसरी विकसित बहुप्रणाली सिद्धान्तलाई अर्का विद्वान् गिडिअन टोरीले परीक्षण गरे र चेस्टरम्यान (१९९७) तथा जीज ल्याम्वर्ट र हेन्ड्रिक भान गोर्प (१९८५/२००६) ले प्रयोगमा ल्याए जसलाई अनुकूलन सिद्धान्त पनि भनिन्छ ।

बहुप्रणाली सिद्धान्तको प्रभावमा परेर बेल्जियम, इजरायल र नेदरल्यान्डमा धेरै मिटिङहरू र सम्मेलनहरू भए । परिणामस्वरूप सन् १९८५ मा थिओ हर्मन्जको सम्पादकत्वमा एउटा पुस्तक प्रकाशित भयो, जसमा यो स्कुलको ग्रुपको अनुवाद साहित्यसम्बन्धी अवधारणा सार्वजनिक भयो । यो अनुकूलन समूहले साहित्यलाई गतिशील र जटिल प्रणालीको रूपमा ग्रहण गर्दै साहित्यिक अनुवादलाई वर्णनात्मक, लक्ष्य पाठकेन्द्रित, प्रयोजनपरक र व्यवस्थित रूपमा विकास गऱ्यो । तसर्थ यसमा अनुवादकले स्रोत पाठलाई अनुकूलन गरी लक्षित पाठकको सामाजिक स्वीकृति खोज्नुपर्दछ । भाषिक सिद्धान्तको केन्द्रीय पद 'समतुल्यता' 'अनुकूलन' मा परिवर्तित भयो र अनुवादलाई विज्ञान वा सीपबाट कला मान्न थालियो । अतः अनुवादकलाई पुनर्लेखकका रूपमा लिन थालियो र अनुवाद विधिका रूपमा प्रस्ट पार्नु, सामान्यीकरण गर्नु, थप्नु, परिवर्तन गर्नु र हटाउनु जस्ता प्रयोगहरू अनुकूलनका निम्ति प्रयोगमा ल्याउन जोड दिइयो ।

उपर्युक्त विश्लेषणका आधारमा प्रणालीहरूको सिद्धान्त साहित्यिक पाठको अनुवाद र व्याख्यामा केन्द्रित रहेको बुझिन्छ । अतः यसले गैरसाहित्यिक पाठको अनुवाद र व्याख्यामा कुनै योगदान दिन सकेन । अनूदित पाठलाई लक्षित समुदायमा स्वीकार्य बनाउन स्रोत पाठको अर्थ गुम्ने खतरा पनि उत्तिकै विद्यमान हुन्छ । यी र यस्ता कमजोरीहरूको परिपूर्ति गर्न क्रान्तिकारी 'विनिर्माण' सिद्धान्तको अभ्युदय भयो जसले हजारौँ वर्षदेखि चलिआएका द्विआधारी (द्विविभाजक) वर्गीकरण र शब्दकेन्द्रित मान्यताका पर्खालहरू भत्काइदियो र अनुवादलाई दोस्रो दर्जाबाट प्राथमिक कार्यका रूपमा स्थापित गरिदियो ।

३.३. विर्निमाणवादी सिद्धान्त

विर्निमाणवादी सिद्धान्तको जग वेन्जामिन (१९२३), पाउन्ड (१९२९) र स्टेनर (१९७५) का दार्शनिक विचारधारामा अडेको छ (मुन्डे, २००८) । यिनीहरूका शब्दमा अनुवाद पारदर्शी हुन्छ; यसले स्रोत पाठका गुणहरूलाई छोप्दैन; बरु शुद्ध आफ्नै भाषाको निर्माण गर्दछ । जसलाई अनुवाद साहित्यको भाषामा तेस्रो स्थान भनिन्छ । अतः प्रथम साहित्य लक्ष्य भाषाको, द्वितीय साहित्य स्रोतभाषाको र अनूदित साहित्य तेस्रो, मौलिक र छुट्टै पहिचानको रहेको वकालत गर्दछ । यी आधारमा टेकेर उभिएको यस सिद्धान्तका स्तम्भहरूमा हेडेगर, फुको डिम्यान र डेरिडा पर्दछन् । यिनीहरूले दोस्रो दर्जाको स्थानबाट अनुवादलाई माथि उठाई पहिलो दर्जामा नै रहेको ठहर गरे । यिनीहरूका शब्दमा कुनै पनि पाठ आफैँमा मौलिक हुँदैन । अनुवाद जस्तै तथाकथित स्रोत पाठ पनि कुनै अर्को स्रोत (जस्तै : अशाब्दिक,) बाट अनूदित भएको हुन्छ । अतः विनिर्माणवादी दृष्टिकोणमा अनुवाद पुनर्व्याख्या हो, पुनर्लेखन र पुनः निर्माण अथवा एक विशाल विनिर्माण प्रक्रिया (भट्टराई, २००७) । यसर्थ स्रोत पाठ जति पटक पढिन्छ त्यति नै नयाँ किसिमका अर्थ र अनुवादहरू भेटिन्छ । अतः कुनै पनि अनुवाद अन्तिम होइन; यसमा त असीमित पुनर्लेखनका सम्भावनाहरू रहन्छन् । प्रत्येक पठनले/अनुवादले पुराना अर्थहरूको सिमाना भत्काउँछ र नयाँ अर्थको पुनर्निर्माण गर्दछ । डेरिडा (१९८२, १९८५) का शब्दमा अनुवाद विलम्बित हुने प्रक्रिया (डिफराँस) हो जसमा पुरानो पठनको स्थगन र नयाँ पाठको भिन्न अर्थ निर्माण हुन्छ (गेन्जलर, २०१०) । यसरी विनिर्माणवादीहरूले अनुवादलाई परम्परागत शब्दकेन्द्री र द्विविभाजक अवधारणाका माखेसाङ्लाहरूबाट मुक्ति गराई आफ्नै भौतिक अस्तित्वको स्थान वरण गराए ।

३.४. उत्तरऔपनिवेशिक सिद्धान्त

उत्तरआधुनिकताको विनिर्माणवादी सिद्धान्तको जगमा टेकेर उत्तरऔपनिवेशिक सिद्धान्तले राजनीतिक र सांस्कृतिक प्रक्षेपण गऱ्यो । मुख्यतः यस सिद्धान्तले पूर्वउपनिवेशहरूको इतिहास, शक्तिशाली युरोपियन शासकहरू, औपनिवेशिक शक्तिहरूको प्रतिरोधका साथै विद्यमान असन्तुलित शक्ति सम्बन्धहरूको असन्तुलनको असर आदिको अध्ययन गर्दछ (मुन्डे, २००८) । यस सिद्धान्तले अनुवाद अध्ययनलाई संस्कृति र इतिहाससँगै

राखेर विश्लेषण गर्ने पद्धतिको अनुसरण गर्दछ। यसअन्तर्गत ब्राजिलमा चलेको स्वजातिभक्षण, भारतीय भूमिको आन्दोलन र युरोपभित्रैको आन्तरिक द्वन्द्व पर्दछन्।

यिनीहरूमध्ये ब्राजिलमा चलेको स्वजातिभक्षण आन्दोलन देशको औपनिवेशिक इतिहाससँग सम्बन्धित छ र अनुवादलाई विगतका युरोपिय सांस्कृतिक मूल्य र मान्यताहरूका जन्जिरहरूलाई हल्लाउने माध्यमको रूपमा लिइन्छ (स्नेल-हर्नबी, २००६)। यस आन्दोलनको सुरुवात ब्राजिलमा सन् १९२० को दशकमा आदिवासीहरूको अस्तित्व मूलधारमा ल्याउनका लागि र औपनिवेशिक शक्तिको राजनीतिक प्रतिरोध गर्नका निमित्त भएको मानवशास्त्रीय आन्दोलन हो। यसले औपनिवेशिक शक्तिको भक्षण गरी आदिवासी ब्राजिलवासीहरूको संस्कृति विकास गर्ने उद्देश्य राखेको थियो। पछि आएर सन् १९६० को दशकमा अगस्तो र हरोल्डो डि क्याम्पोसले 'स्वजातिभक्षण' अलङ्कारलाई प्रयोग गरी तेस्रो विश्वको अनुवादको मोडल विकास गरे। यसरी यस सिद्धान्तले अनुवादलाई स्रोत पाठको पुनः सृजना वा समानान्तर सृजनाको रूपमा हेर्दछ। अतः यसमा अनुवादक अनूदित पाठमा पारदर्शी हुन्छ।

ब्राजिलमा जस्तै गैरयुरोपकेन्द्रित आन्दोलन भारतवर्षमा पनि चल्यो। यसका अभियन्ताहरूमा निरञ्जना (१९९२), स्पिभाक (१९९२), भावा (१९९४), डिङ्वाने (१९९५) प्रमुख रूपमा पर्दछन्। निरञ्जनाले भारतवर्षको औपनिवेश कालमा पश्चिमी विद्वान्हरूले गरेका पूर्वीय साहित्यको अनुवाद गरी आफ्नो कार्य सिद्ध गर्न सफल भए तर यसले पूर्वको समृद्ध संस्कृतिको गलत प्रचार भयो। यस कालमा अनूदित *शाकुन्तल, धर्मशास्त्र, गीतगोविन्द* आदिमा गलत अनुवादका कारण पूर्वीय सभ्यताको मिथ्या प्रचार भयो। अतः निरञ्जनाले यी कृतिहरूको पूर्वीय विद्वान्बाट पुनः अनुवाद गरिनुपर्ने आवाज बुलन्द गरेकी छन्। त्यस्तै गायत्री चक्रवर्ती स्पिभाकले आफ्नो विचार 'अनुवादको राजनीति' (१९९३/२००४) शीर्षकमा व्यक्त गरेकी छन् जसमा नारीवादी, उत्तरऔपनिवेशिक र उत्तरसंरचनावादी, त्रिकोणात्मक पक्षहरू समाहित छन् (मुन्डे, २००८)। यसरी यी दुई विदुषीहरूले शक्ति सम्बन्धका रूपमा अनुवादको पुनः व्याख्या गरेका छन्। त्यसै गरी भावाको 'तेस्रो स्थान' र डिङ्वानेको 'तेस्रो संसारको साहित्य संवाहक' जस्ता अलङ्कारहरूले के मार्ग निर्देशन गर्दछन् भने अनुवादमा सांस्कृतिक वर्णसङ्कर (कल्चरल हाइब्रिडिटी) को निर्माण हुन्छ जसले आफ्नै मौलिक स्थान बनाउँछ।

त्यसै गरी युरोपभित्रै पनि उपनिवेशको विरुद्ध आवाज उठाइएको थियो। यस्तो आवाज उठाउनेमध्ये क्रोनिन (१९९६) प्रमुख हुन्। अनुवादको भूमिका भाषिक र साहित्यिक सङ्घर्षमा (आइरिस र अङ्ग्रेजी भाषाबिच चल्ने) हुने र हुनुपर्ने यथार्थमा जोड दिन्छन्, जसले 'आइरिस' को अस्तित्व स्थापित गराओस्।

३.५. स्रोत संस्कृतिकेन्द्री सिद्धान्त

विनिर्माणवादी सिद्धान्त र उत्तरऔपनिवेशिक सिद्धान्तको परिधिवरिपरि रहेर साम्राज्यवादी शक्तिको प्रभुत्वको प्रतिरोध गर्दै अमेरिकी अनुवादक लोरेन्स भेनुतीले विदेशिकृत अनुवाद विधिको पक्षपोषण गरेका छन्। उनका दुई प्रमुख कृतिहरू *अनुवादको अदृश्यता (द ट्रान्सलेटर्स इन्भिजिबिलिटी, २००८)* र *अनुवादका बदनामीहरू (द स्क्यान्डल्ज अव् ट्रान्सलेसन, २०११)* मार्फत उनले स्रोत संस्कृतिको बहुलता र मौलिकताको संरक्षण अनुवादकले गर्नुपर्ने तथ्य उजागर पारेका छन्। उनको यो सिद्धान्त फ्रिडरिक स्लेयरमाकर (१८१३) को स्पष्टोक्ति हो जसमा स्वदेशीकृत (डोमिस्टिकेटेड) र विदेशीकृत (फरेनाइज्ड) दुई विधिमध्ये पछिल्लोलाई रोजिएको छ। भेनुतिका विचारमा स्रोत पाठ र अनूदित पाठ दुवै व्युत्पादित (डेरिभेटिभ) हुन जुन विनिर्माणवादीसँगको सन्निकटमा छ। पूर्ववर्ती अनुवादमा स्रोत संस्कृतिको लक्ष्य संस्कृतिमा विलयन भएको प्रति आक्रोश व्यक्त गर्दै उनले अनुवाद प्रक्रियाको विपर्याय (रिभर्सल) हुनुपर्ने कुरा अगाडि सारेका छन्। यसै सन्दर्भमा भेनुती (२००४) अनुवादकका साथै अनुदित पाठका पाठक स्रोत संस्कृतिप्रति सचेत हुनुपर्छ भन्दै अनुवाद पठनका नियमहरू (२००४) अघि सारेका छन्। उपर्युक्त नियम वा सिद्धान्तहरू साहित्यको अनुवादका निम्ति बढी तर सूचनात्मक पाठ अनुवादका निम्ति कम उपयोगी देखिन्छन्। यिनीहरू अनुवाद साहित्यको सौन्दर्यपरक व्याख्यानका लागि उपयुक्त देखिन्छन् जसले भाषिक र सांस्कृतिक विविधताहरूलाई उजागर गर्दछन्। यसका साथै किनारीकृत अविकसित भाषा र साहित्य उत्थानका दृष्टिकोणले यी नियमहरू

उपयोगी देखिन्छन् । तथापि यी नियमहरूले विदेशिकृत विधिको अवलम्बन गर्ने हुनाले अनूदित पाठ प्रवाहरहित, अबोधगम्य र दुर्बोध्य पनि हुन सक्छ ।

४. निष्कर्ष

अनुवाद अभ्यास पुरानै प्रक्रिया भए तापनि यसको विधागत अध्ययन सन् १९७० देखि मात्रै सुरु भएको मानिन्छ । अनुवाद अध्ययन विधाको रूपमा विकास भइसकेपछि विभिन्न व्यक्ति र संस्थाहरूले यसमा विभिन्न विचारहरू तथा सिद्धान्तहरूको योगदान दिएका छन् । विश्वविद्यालयका विभिन्न तहमा अनुवाद अध्ययनले प्रविष्टि पाएको र बहुभाषिक साथै बहुसांस्कृतिक सूचनाको आदानप्रदानको माध्यम अनुवाद भएकाले, नेपालको परिप्रेक्ष्यमा अनुवाद विमर्श समयको माग भइसकेको छ । यसमा पनि आफ्नै परिवेशसुहाउँदो सिद्धान्त बनिनसकेको र अनुवाद अध्ययनले सही मार्ग पहिल्याइ नसकेको यस सन्दर्भमा प्रचलित नवीन सिद्धान्तहरूको विमर्श औचित्यपूर्ण र आवश्यक छ । अतः यस पत्रमा प्रस्तुत सिसेरोदेखि हालसम्मका सिद्धान्तहरूको संक्षिप्त सर्वेक्षणबाट निम्नलिखित उपसंहार प्रस्तुत गर्न सकिन्छ :

क. अनुवादक र अनूदित पाठका पाठकहरू स्रोत र लक्ष्य, भाषा, साहित्य, संस्कृति, इतिहास र सन्दर्भप्रति सजग र जागरूक हुनुपर्दछ,

ख. कुनै पनि अनुवादलाई अन्तिम अनुवादको रूपमा ग्रहण गर्नु हुँदैन किनकि प्रत्येक पठनले फरक बुझाइको अपेक्षा राख्न सक्दछ,

ग. अनुवाद अभ्यास र सिद्धान्तका बिच तालमेल हुनुपर्दछ । अभ्यास, सिद्धान्त निर्माण गर्न सहायक हुन्छ भने सिद्धान्तले अभ्यासलाई मार्गनिर्देशन गर्दछ,

घ. अनूदित पाठ बोधगम्य र प्रवाहमय दुवै हुनु आवश्यक छ,

ङ. अनुवादलाई तेस्रो साहित्यका रूपमा स्थापित गर्नका लागि मौलिक सिद्धान्तहरूको विकास, संरक्षण र संवर्द्धन आवश्यक छ । नेपालको परिप्रेक्ष्यमा अनुवादको आफ्नै अनुकूलको सिद्धान्त विकास गरिनुपर्दछ । तसर्थ यस दिशामा सम्बन्धित सबैको ध्यान जानु जरुरी छ ।

References

Gentzler, E. (2010). *Contemporary translation theories* (2nd ed.). New Delhi: Viva Books.

Holmes, J. S. (1972/2004). The name and nature of translation studies. In L. Venuti (Ed.), *The translation studies reader* (pp. 172-85). London & New York: Routledge.

Jakobson, R. (1959/2004). On linguistic aspects of translation. In L. Venuti (Ed.), *The translation studies reader* (pp. 113-118). London & New York: Routledge.

Munday, J. (2008). *Introducing translation studies: Theories and applications* (2nd ed.). London & New York: Routledge.

Nida, E. (1991). Theories of translation. *TTR*, 4(1), 19-32.

Schäffner, C. (2011). Functionalist approaches. In M. Baker, & G. Saldanha (Eds.), *Routledge encyclopedia of translation studies* (2nd ed.) (pp. 115-121). London & New York: Routledge.

Snell-Hornby, M. (2006). *The turns of translation studies: New paradigms or shifting viewpoints.* Amsterdam/Philadelphia: John Benjamins Publishing.

Venuti, L. (2004). How to read a translation. *Words without borders: The online magazine for international writing.* July 2004. Retrieved from http://www.wordswithoutborders.org.

Venuti, L. (2008). *The translator's invisibility: A history of translation* (2nd ed.). London & New York: Routledge.

Venuti, L. (2011). *The scandals of translation: Towards an ethics of difference* (Sp. Ind. Ed.). London & New York: Routledge.

दाहाल, राजकुमारी (२०१३), *अनुवाद विमर्श* (दो.सं.), दार्जिलिङ : प्रतिभा प्रकाशन ।

भट्टराई, गोविन्दराज (२००७), *अनुवाद अध्ययन परिचय* (अनु.बलराम अधिकारी), काठमाडौं : रत्न पुस्तक भण्डार ।

अवधी तथा थारू भाषाका अनूदित कृतिहरू र यी दुवै साहित्यमा अनुवादको दशा र दिशा

विक्रममणि त्रिपाठी

हाम्रो देश नेपाल बहुभाषिक तथा बहुसांस्कृतिक देश हो । वि.सं.२०६८ सालको जनगणनाको तथ्याङ्कअनुसार यहाँ १२३ वटा भाषा बोलिन्छन । यीमध्ये नेपालीबाहेकका अधिकांश भाषाहरुमा साहित्यका हरेक विधाहरुमा आवश्यकताअनुसारका साहित्यहरूको अभाव रहेको पाइन्छ । यसका आपूर्तिका साथै एक भाषामा रहेका साहित्यहरूलाई अर्को भाषाभाषीका बिचमा पुऱ्यायन पनि अनुवादको महत्त्वपूर्ण योगदान रहेको पाइन्छ ।

नेपाल अधिराज्यको संविधान २०४७ ले नेपालमा बोलिने सबै मातृभाषाहरूलाई राष्ट्रिय भाषाको मान्यता प्रदान गरेपछि तथा बहुभाषिक राष्ट्रको रूपमा व्यवस्थित गरिएपछि अवधी तथा थारू भाषा सार्वजनिक स्थानहरुमा प्रयोग गर्न सकिने भयो । यी भाषाहरूले सञ्चार (२०५१) र शिक्षा (२०५४) क्षेत्रमा पनि प्रवेश पाए । यसै गरी नेपालको अन्तरिम संविधान २०६३ ले नेपालका सबै भाषालाई राष्ट्र भाषाको मान्यता प्रदान गरेर भाषिक समानताको हक प्रदान गरेको छ ।

नेपालमा एकसाथ २०५१ साल भदौ १ गते देखि रेडियो नेपालबाट अवधी तथा थारू भाषामा समाचार आरम्भ भयो तथा सोही ठाउँबाट २५ मिनेटको साप्ताहिक रूपमा अवधी तथा थारू भाषाको कार्यक्रम बज्न थालेको छ । रेडियो नेपालका साथै नारायणीदेखि पश्चिम तराई मधेस क्षेत्रमा रहेका एफ.एम.हरुमा अवधी तथा थारू एवं पूर्वी भूभागको तराई मधेस क्षेत्रमा थारू भाषाका कार्यक्रमहरू सञ्चालित भइरहेका छन् ।

जनमत सङ्ग्रह पछि रेडियो नेपालको साप्ताहिक कार्यक्रम फूलबारीबाट फाटफुट रूपमा अवधी तथा थारू गीत बज्न थालेकोमा वि.सं. २०४६ सालपछि यी भाषामा एलबम तथा फाटफुट रूपमा टेलिभिजन कार्यक्रमहरू निर्माण भई प्रसारित हुन थालेका थिए, यसै क्रममा वि. सं. २०५८ सालदेखि नेपाल टेलिभिजनको कोहलपुर प्रसारण केन्द्रबाट अवधी भाषामा साप्ताहिक रूपमा यथार्थ टेलिफिल्म तथा वि.सं. २०६७ सालदेखि साप्ताहिक रूपमा नेपाल टेलिभिजनको पहिला प्लस च्यानलबाट एवं २०६९ सालदेखि यसैको नेसनल च्यानलबाट अवधी तथा थारू भाषामा कार्यक्रम निर्माण भई प्रसारित भइरहेको छ । यसका साथै थारू भाषामा वि.सं. २०४६ साल पछि फिल्महरू निर्माण भई प्रदर्शित हुने गरेका छन् ।

वि.सं.२०५४ सालदेखि प्राथमिक तहमा (कक्षा १ देखि ५ सम्म) विषयका रूपमा अवधी तथा थारू भाषामा पठनपाठन आरम्भ भएको हो । यसै क्रममा २०६८ सालदेखि अवधी तथा थारू भाषामा बहुभाषिक कार्यक्रमअन्तर्गत पूर्वप्राथमिकदेखि कक्षा ३ सम्म माध्यमका रूपमा शिक्षणको कार्य आरम्भ भएको छ । यसै किसिमले नि.मा.वि. तहमा अवधी तथा थारू एवं माध्यमिक तहमा अवधी भाषाको पाठ्यक्रम स्वीकृत भई माध्यमिक तहको पाठ्यपुस्तक निर्माण कार्य पनि सम्पन्न भइसकेको छ । यसै किसिमले उच्च माध्यमिक तहमा त्रिभुवन विश्वविद्यालयले अवधी भाषामा पठनपाठन सञ्चालनका लागि स्वीकृति प्रदान गरिसकेको छ । यसै किसिमले भारतको उत्तरप्रदेश राज्यअन्तर्गतका लखनउ तथा अवध विश्वविद्यालयमा विषयका रूपमा १०० नं.को अवधी भाषामा पठनपाठन हुने गरेको छ । अनौपचारिक शिक्षाको दुवै तहहरुमा अवधी तथा थारू भाषामा पठनपाठन हुनुका साथै अवधी भाषामा स्वाध्ययन सामग्रीसमेत तयार भई पठनपाठन भइरहेको छ ।

अवधी भाषामा पुस्तक प्रकाशनको आरम्भ वि.सं.८४० देखि 'योग भावनोपदेश तथा श्रवपरिच्छेदन' नामक कुक्कुरीपादको पुस्तकको प्रकाशनदेखि आरम्भ भएको पाइन्छ । यसै किसिमले थारू भाषामा साहित्यिक कृतिको प्रकाशनको सुरुवात वि.सं.२००७ सालको जनक्रान्तिपश्चात् वढ्वा थारूवाट लिखित 'वढक्क जोर्नी' नामक गीतवाट भएको मानिन्छ । वर्तमानमा अवधी तथा थारू भाषाका हरेक विधामा साहित्यहरूको रचना प्रकाशित हुन थालेका छन् ।

तर यी सवैका वावजुद अवधी तथा थारू भाषामा शिक्षण कार्यका लागि आवश्यक साहित्यहरूको विकास आवश्यकताअनुसार उपलब्ध हुन नसकिरहेको सन्दर्भमा अन्य भाषाका त्यस्ता साहित्यहरूलाई यी भाषामा एवं यी भाषाका महत्त्वपूर्ण साहित्यहरूलाई विश्वस्तरमा पुऱ्याउनका लागि एक मात्र माध्यम अनुवाद नै हो ।

अनुवाद निकै कठिन तथा श्रमसाध्य कार्य हो । सामान्यतया हरेक साहित्यकार अनुवाद कार्यमा आफूलाई संलग्न गराउन चाहँदैन । यसरी सामान्य स्वरूपमा लेखनमा रमाउने मन अनुवादमा नरमाउनुको कारण यसको आफ्नै प्राविधिक पक्षहरू रहेका छन । अनुवाद गर्दा पनि यस कार्यमा यश पाउनुको सट्टा अपयश पाउनुको खतरा वढी हुन्छ । अनुवाद कार्य केकस्तो भएको छ भन्ने जान्नका लागि धेरै कलाकौशल तथा अध्ययनको आवाश्यकता हुन्छ ।

अनुवाद शब्द 'वद' धातुवाट निष्पन्न भएको मानिन्छ, जसको अर्थ 'वचन' वा कथन हुन्छ । 'वद' धातुमा 'धअ' प्रत्यय मिलेर 'वाद' शब्दको निर्माण भएको हो । त्यसपछि 'वाद' मा 'अनु' उपसर्ग मिलेर 'अनुवाद' शब्दको निर्माण भएको हो । "अनु' शब्दको अर्थ 'पछि' वा अनुवर्तिता आदि हो । आज अनुवादको मूल अर्थ पुनःकथन वा कसैको भनाइपछिको कथन हो । सामान्य भाषामा उल्था गर्नुलाई अनुवाद भनिन्छ । एक भाषामा लेखिएको पाठलाई अर्को भाषामा उतार्ने कार्यलाई उल्था भनिन्छ । यसलाई शिष्ट र पारिभाषिक तवरमा अनुवाद भनिएको हो । अनुवाद गर्दा मुख्य दुई तरिकावाट अनुवाद कार्य गर्ने गरिन्छ, एक शब्दानुवाद र अर्को भावानुवाद । यी दुवै विधि प्रयोग गरेर साहित्यहरूको एक भाषावाट अर्को भाषामा अनुवाद गर्ने गरिन्छ ।

यसै क्रममा म अवधी तथा थारू भाषामा अनुवाद साहित्यको अवस्थाका वारेमा केही चर्चा अगाडि वढाउन चाहन्छु ।

अवधी भाषामा अनूदित कृतिहरू तथा साहित्यमा अनुवादको दशा

अवधी भाषा भाषापरिवारको शतम शाखाको आर्य इरानेली उपशाखाअन्तर्गत पर्दछ । यो भाषा देवनागरी तथा कैथी लिपिमा लेख्ने परम्परा रहे तापनि वर्तमानमा यसलाई देवनागिरी लिपिमा मात्रै लेख्ने गरिएको पाइन्छ । हाम्रो देशको नवलपरासी, रूपन्देही, कपिलवस्तु, दाङ देउखुरी, वाव्के, वर्दिया, कैलाली तथा कञ्चनपुरमा यो भाषा वोलिने गरिन्छ । वि.सं. २०६८ सालको जनगणनाअनुसार नेपालमा कुल अवधी भाषाभाषीहरूको जनसङ्ख्या ५,०१,७५२ रहेको छ । यसका साथै भारतको उत्तरप्रदेश राज्यअन्तर्गतको विशाल भूखण्डमा यस समाजको वसोवास रहेको पाइन्छ । वर्तमानमा भारतमा उपलब्ध जनगणनाको तथ्याङ्कअनुसार कुल अवधी भाषाभाषीहरूको जनसङ्ख्या लगभग आठ करोड रहेको छ ।

नामकरणको प्रसङ्गमा अवधी शब्द हिंसार्थक 'वध' धातुद्वारा पाणिनीय व्याकरणको आधारमा 'अच' प्रत्यय जोडिएर वनेको छ । 'नवधः' 'अवधः' यस प्रकारको यसको व्युत्पत्ति रहेको छ । यति मात्रै होइन, अयोध्या शब्दको व्युत्पत्ति यस प्रकारले पनि हेर्न सकिन्छ । हिंसार्थक युध धातुद्वारा योध्यः युध्या हुन्छ, यसको अगाडि न जोडेपछि नयुध्या अर्थात् अयोध्या वन्छ । यी दुवै व्युत्पत्तिका आधारमा अयोध्या तथा अवध दुवै अहिंसा अर्थात् वैष्णव क्षेत्रको अर्थ प्रदान गर्ने गर्छन् ।

क्र.सं.	मूल पुस्तकको नाम	मूल भाषा	मूल लेखक	अनूदित भाषा	अनूदित लेखक	अनूदित पुस्तकको नाम	प्रकाशन वर्ष	प्रकाशन संस्था
१.	भवानी भिक्षुका विभिन्न कथासङ्ग्रहमा प्रकाशित २० वटा कथाहरू	नेपाली	भवानी भिक्षु	अवधी	सम्पादकहरू डा. विष्णुराज आत्रेय, सनत रेग्मी तथा विक्रममणि त्रिपाठी	भवानी भिक्षुकै प्रतिनिधि कथा	वि.सं.२०६९	भवानी भिक्षु स्मृति प्रतिष्ठान, काठमाडौं
२.	नेपाली तथा हिन्दी भाषाका २५ वटा निबन्धकारहरूका प्रतिनिधि निबन्ध	नेपाली तथा हिन्दी	नेपाली तथा हिन्दी भाषाका निबन्धकारहरू	अवधी	अनुवाद तथा सम्पादन विक्रममणि त्रिपाठी	अवधी निबन्ध	वि.सं.२०६९	नेपाल प्रज्ञा-प्रतिष्ठान, कमलादी काठमाडौं
३.	उलार	नेपाली	नयनराज पाण्डे	अवधी	सच्चिदानन्द चौबे	उलार	वि.सं. २०६६	मध्यपश्चिम सप्टा समाज बाँके
४.	मुनामदन	नेपाली	लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा	अवधी	लोकनाथ वर्मा	मुनामदन	वि.सं. २०६६	यथार्थ प्रकाशन
५.	भानुभक्तीय रामायण	नेपाली	आदिकवि भानुभक्त	अवधी	सच्चिदानन्द चौबे	अवधी रामायन	वि.सं. २०६६	मध्यपश्चिम सप्टा समाज बाँके
६.	नेपाली तथा हिन्दी भाषाका २५ वटा कथाकारहरूका प्रतिनिधि कथा	नेपाली तथा हिन्दी	नेपाली तथा हिन्दी भाषाका कथाकारहरू	अवधी	अनुवाद तथा सम्पादन विक्रममणि त्रिपाठी	अवधी कथा	प्रकाशाधीन	नेपाल प्रज्ञा-प्रतिष्ठान, कमलादी काठमाडौं
७.	रुद्र सहिता	संस्कृत	वेदव्यास	अवधी	सच्चिदानन्द चौबे	हरितालिका व्रतकथा	वि.सं.२०६३	सच्चिदानन्द चौबे
८.	सत्यनारायण व्रत कथा(स्कन्ध पुराण)	संस्कृत	वेदव्यास	अवधी	सच्चिदानन्द चौबे	सत्यनारायण व्रतकथा	वि.सं.२०६७	लेखक स्वयं
९.	श्रीमदभगवद्गीता	संस्कृत	वेदव्यास	अवधी	सच्चिदानन्द चौबे	भवतारिणी गीता	वि.सं.२०६७	प्रतिभा रानी प्रकाशन
१०.	रामचरित मानस, सुन्दरकाण्ड	अवधी	गोस्वामी तुलसीदास	अवधी	सच्चिदानन्द चौबे	रामदूत हनुमान्	वि.सं.२०७०	प्रतिभा रानी प्रकाशन
११.	तुलसीदास का जीवन चरित्र	हिन्दी	हनुमानप्रसाद पोद्दार	अवधी	सच्चिदानन्द चौबे	तुलसीदास कै जीवनी	वि.सं.२०७०	प्रतिभा रानी प्रकाशन
१२.	ब्रह्मपुराण	संस्कृत	वेदव्यास	अवधी	सच्चिदानन्द चौबे	गुरु वृहस्पति कै कथा	वि.सं.२०७१	प्रतिभा रानी प्रकाशन
१३.	हाम्रो जिन्दगी हाम्रो विश्लेपण	नेपाली	संस्थागत	अवधी	भगवानदास यादव तथा हंसावती कुर्मी	हमरेन कै जिन्दगी, हमही सब कै विश्लेपण	वि.सं.२०६९	दिदी बहिनी प्रकाशन

यसका साथै कथालयबाट विभिन्न समयमा प्रकाशित बालसाहित्यहरू सय रुपियाँको नोट, अब के गर्ने, आफ्नो काम आफैँ, आहा ! रोटी, आकाशमा के छ होला ?, आँसुको वर्षा, अघिअघि पानी, पछिपछि नानी, अजङ्गको जन्तु, वरपीपल विवाह, बाटैमा थैली, बुनुको झोला, चटपटे, चितुवाको दाँत, चकचकेको सङ्घर्ष, चकचके छाउरो, धेरै धेरै प्रश्न, दुध, एक दिन सहरमा, ग्रहहरू, गुफाभित्र, हाम्रो घर हाम्रो परिवार, हाम्रो राम्रो घर, हराएको सियो, हर्के हात्ती, जोगी, जुनु गङ्गा, खाजा चना भटमास, कैंची बाबु, खेलौं खेलौं, लखनको भइसी, लौन नि, लौजा, म एक्लै जान सक्छु, म र मेरो कोठा, म ठुलो भएँ, मह बेच्ने भालु, मलाई मलाई, मेरा धेरै साथी, मेरी सानी पुतली, मेरो घर खोइ, मेरो साथी खोइ, मेरो भोटो खोइ, मितेरी मनकी दुम्सी, नयाँ पाहुना, नयाँ सफा घरको खोजी, पौडी, पुरस्कार, रातो रुमाल, सब भए खुसी, सानी परीको कथा तथा तीन एक्कम तीनलाई

विक्रममणि त्रिपाठीद्वारा अवधी भाषामा अनुवाद भई प्रकाशनको क्रममा रहेको छ।

अवधी भाषाबाट अन्य भाषामा अनुवाद

क्र.सं.	मूल पुस्तकको नाम	मूल भाषा	मूल लेखक	अनूदित भाषा	अनूदित लेखक	अनूदित पुस्तकको नाम	प्रकाशन वर्ष	प्रकाशन संस्था
१.	रामचरितमानस	अवधी	गोस्वामी तुलसीदास	नेपालीलगायत १०८ भाषामा	नेपालीका अनुवादक शिव जङ्गम कर्की	श्री तुलसीकृत रामायण	वि.स. २०६०	नेसनल बुक सेन्टर, भोटाहिटी, काठमाडौं
२.	कबीर ग्रन्थावली	अवधी	कबीरदास	भारतमा बोलिने भाषाहरुमा	-	कबीर ग्रन्थावली	-	-
३.	सयपत्रीमा प्रकाशित अवधी(पुर्णाङ्क १)	अवधी	विश्वनाथ पाठक	नेपाली	विश्वनाथ पाठक	अवधी	वि.सं. २०५२	नेपाल प्रज्ञा-प्रतिष्ठान
४.	सयपत्रीमा प्रकाशित मोची कै लरिका (पूर्णाङ्क १०)	अवधी	विक्रममणि त्रिपाठी	नेपाली	विक्रममणि त्रिपाठी	सार्कीको छोरा	वि.सं. २०५६	नेपाल प्रज्ञा-प्रतिष्ठान
५.	सयपत्रीमा प्रकाशित हमारगांव(पूर्णाङ्क १८)	अवधी	विक्रममणि त्रिपाठी	नेपाली	विक्रममणि त्रिपाठी	मेरो गाउँ	वि.सं. २०६०	नेपाल प्रज्ञा-प्रतिष्ठान
६.	सयपत्री अवधी लोककथा विशेषाङ्क (पूर्णाङ्क १७)	अवधी	अवधी भाषाका कथा सङ्कलक	नेपाली	अतिथि सम्पादक विक्रममणि त्रिपाठी	सयपत्री अवधी लोककथा विशेषाङ्क	वि.स. २०६०	नेपाल प्रज्ञा-प्रतिष्ठान, कमलादी काठमाडौं
७.	सयपत्रीमा प्रकाशित पानी(पूणाङ्क २०)	अवधी	-	नेपाली	-	पानी	-	सच्चिदानन्द चौबे

यसै प्रकारले युनेस्को काठमाडौँद्वारा तयार गरिएको बालसाहित्यका पुस्तकहरू भागो आसमान गिरत है, जेस करनी तेस भोगहु ताता, सडहति कै नतीजा, मेल मे बहुत बल होत है, सबसे बड़ा धर्मात्मा, ढोडी सियार, सब चमकदार वस्तु सोना नाही, स्वार्थीपना, दान, मेहनत कै फल, गुरुदक्षिणा, पुरूषार्थ कै कमाई, जइसै के तइसा, शेर औ चुहिया, कछुवा औ खरगोश, लालची कुत्ता, पियासा कउवा, कपटी मित्र, विश्वासघात तथा बुद्धि बड़ा कि बललाई नेपाली तथा अङ्ग्रेजी भाषामा समेत अनुवाद गरी प्रकाशनका क्रममा रहेको छ। यसको संयोजन विक्रममणि त्रिपाठीले तथा सङ्कलन पशुपतिमणि त्रिपाठी एवं सच्चिदानन्द चौबेले गरेका हुन्।

थारू भाषामा अनूदित कृतिहरू तथा साहित्यमा अनुवादको दशा

थारू भाषा भाषा परिवारको शतम शाखाको आर्य इरानेली उपशाखाअन्तर्गत पर्दछ। यो भाषा देवनागरी लिपिमा लेख्ने गरिएको पाइन्छ। हाम्रो देशको पूर्व मेचीदेखि पश्चिम कञ्चनपुरसम्मको भूभागमा यो भाषा बोलिने गरिन्छ। वि.सं. २०६८ सालको जनगणनाअनुसार नेपालमा कुल थारू भाषाभाषीहरूको जनसङ्ख्या १५,२९,८७५ रहेको छ। यसका साथै भारतको उत्तरप्रदेश राज्यअन्तर्गतको विशाल भूखण्डमा यस समाजको बसोवास रहेको पाइन्छ।

थारू भाषामा अन्य भाषाबाट थारू भाषामा तथा थारू भाषाबाट अन्य भाषामा अनुवाद भएको देखिन्छ। यस भाषाको साहित्यमा अनुवाद कार्य व्यक्ति तथा संस्था दुवैबाट भएको पाइन्छ।

अन्य भाषाबाट थारू भाषामा अनुवाद साहित्यको वर्तमान स्थिति

क्र.सं.	मूल पुस्तकको नाम	विधा	मूल भाषा	मूल लेखक	अनूदित भाषा	अनूदित लेखक	अनूदित पुस्तकको नाम	प्रकाशन वर्ष	प्रकाशन संस्था
१.	गौतम बुद्धको जीवनी	निबन्ध	नेपाली	-	थारू	तेज नारायण पञ्जियार	शाक्यमुनि बुद्ध	वि.सं.२०४९	-
२.	दङ्गीशरणको भूमिका	कथा	नेपाली	-	थारू	-	दङ्गीशरण	वि.सं.२०१६	-
३.	बडकीमारको भूमिका	थारू महाभारत	नेपाली	-	थारू	-	बडकीमार	वि.सं.२०१६	-
४.	गुरुवावाकि जन्मौतीको भूमिका	-	नेपाली	-	थारू	-	गुरुवावाकि जन्मौती	वि.सं.२०१६	-
५.	भगवतगीताको सारसंक्षेप	खण्ड काव्य	संस्कृत	-	थारू	रामानन्दप्रसाद सिंह	थारू गीता	वि.सं.२०५४	-
६.	बसाइँ	उपन्यास	नेपाली	लीलबहादुर क्षेत्री	थारू	कृष्णराज सर्वहारी	छारा	वि.सं.२०६०	साझा प्रकाशन
७.	ललित विस्तर	महाकाव्य	हिन्दी	-	थारू	हृदयनारायण चौधरी	ललित विस्तर	वि.सं.२०६८	-
८.	सत्तलसिंहको कथा	कथा	नेपाली	-	थारू	कृष्णराज सर्वहारी	-	वि.सं.२०६६	रुम टु रिड
९.	तुलारामको चर्तिकला	कथा	नेपाली	-	थारू	कृष्णराज सर्वहारी	-	वि.सं.२०६६	रुम टु रिड
१०.	हलो जोत्ने माछा	कथा	नेपाली	-	थारू	कृष्णराज सर्वहारी	-	वि.सं.२०६६	रुम टु रिड
११.	अनारकलीको अन्तर्कथा	कथा	नेपाली	-	थारू	कृष्णराज सर्वहारी	-	वि.सं.२०६६	रुम टु रिड
१२.	सुनको रुख	कथा	नेपाली	-	थारू	कृष्णराज सर्वहारी	-	वि.सं.२०६६	रुम टु रिड
१३.	विहानीको घामसँगै	कथा	नेपाली	-	थारू	कृष्णराज सर्वहारी	-	वि.सं.२०६६	रुम टु रिड
१४.	मिलनको बाटो	चित्रकथा	नेपाली	विजयराज आचार्य	थारू	कृष्णराज सर्वहारी	मिलन के डगर	वि.सं.२०६७	-
१५.	शान्तिको आत्मकथा	आत्मकथा	नेपाली		थारू	कृष्णराज सर्वहारी	-	-	-

युनाइटेड मिसन टु नेपालको प्रकाशन पिपल पुस्तकको सहयोग समाज, तुलसीपुर, दाङको संयोजनमा अनौपचारिक शिक्षामा आधारित ६७ थान पुस्तिका प्रकाशित छन । यसै किसिमले विश्वसाहित्यलाई थारू भाषामा अनुवाद कार्य प्रारम्भ गर्ने श्रेय रामानन्दप्रसाद सिंहलाई जान्छ । सिंहले वि.सं.२०३३ सालबाट प्रकाशित भइरहेको 'थारू संस्कृति' पत्रिकाका विभिन्न अरूकहरूमा प्रेमचन्दलगायतका कथाकारहरूको कथा थारू भाषामा अनुवाद गरी प्रकाशित भएको पाइन्छ । सिंहले अरू रचना पनि अनुवाद गरेका हुन सक्छन् । थारू संस्कृतिमा आधा दर्जनजति कथाहरू प्रकाशित छन् । नेपाल प्रज्ञा-प्रतिष्ठानको कविता तथा आदिवासी जनजाति उत्थान राष्ट्रिय प्रतिष्ठानको थुँगालगायतमा केही कविता नेपालीबाट थारू भाषामा अनुवादसहित प्रकाशित छन् ।

थारू भाषावाट अन्य भाषामा अनुवाद साहित्यको वर्तमान स्थिति

क्र.सं.	मूल पुस्तकको नाम	विधा	मूल भाषा	मूल लेखक	अनूदित भाषा	अनूदित लेखक	अनूदित पुस्तकको नाम	प्रकाशन वर्ष	प्रकाशन संस्था
१.	वर्कीमार	थारू महाभारत	थारू	-	अङ्ग्रेजी	कुर्ट मेयर, पामेला ड्यल	-	-	-
२.	भौगर	गजल	थारू	छविलाल कोपिला	नेपाली	छविलाल कोपिला	भुङ्गो	वि.स. २०६१	-
३.	कहिया फूली ऊ	गजल	थारू	छविलाल कोपिला	नेपाली	छविलाल कोपिला	कैले फुल्छ ऊ	वि.स. २०६३	-
४.	अन्तर्भाव	गजल	थारू	लक्की चौधरी	नेपाली	लक्की चौधरी	अन्तर्भाव	-	-
५.	समय्क पइला	मुक्तक	थारू	छविलाल कोपिला, राम प्रकाश चौधरी तथा गुरू प्रसाद कुमाल	नेपाली	छविलाल कोपिला, रामप्रकाश चौधरी तथा गुरुप्रसाद कुमाल	समयका डोबहरू	वि.स. २०७१	-
६.	बिरहुल बसिया	कविता	थारू	सुशील चौधरी	नेपाली	सुशील चौधरी	विरही बाँसुरी	वि.स. २०७२	-
७.	कमैया वस्ती में भगनवा	लघुकथा	थारू	कृष्णराज सर्वहारी	नेपाली	कृष्णराज सर्वहारी	कमैया बस्तीमा भगवान्	वि.स. २०७२	-
१०.	चुरिनिया	उपन्यास	थारू	छविलाल कोपिला	नेपाली	छविलाल कोपिला	किचकन्या	वि.स. २०६८	-
११.	परगोहनी	-	थारू	सीता थारू	नेपाली	सीता थारू	-	वि.स. २०७२	

यसै क्रममा समकालिन साहित्य(२०५०, पूर्णाङ्क ११)मा सियाराम चौधरीले जयप्रकाश चौधरी तथा त्रिभुवन चौधरीको कथा नेपालीमा अनुवाद गरेका छन । सोही अङ्कमा ललितकुमार थारू, आर के परिवर्तन तथा सियाराम चौधरीको पनि नेपालीमा अनुवाद गरी छापिएका छन् । अनुवादसहित प्रकाशित हुने सयपत्री पत्रिकामा थारू भाषामा समालोचनात्मक लेखको संगालो थारू विशेषाङ्कका रूपमा प्रकाशित छन् । बिहान तथा सरासर वार्षिक पत्रिकाको केही अङ्कमा थारू भाषाको कथाका अनुवादसहित प्रकाशित छन् ।

अवधी र थारू साहित्यमा अनुवादको दिशा

अवधी तथा थारू भाषामा अनुवादको आरम्भ धार्मिक साहित्यवाट नै भएको छ तथा यसको लामो इतिहास पनि छ । तर यसका बावजुद अनुवाद साहित्यले हालसम्म पनि दुवै भाषामा गति लिन सकेको देखिँदैन । यसको अवस्था ढुङ्गाले थिचिएको त्यो दूबो जस्तो छ, जुन प्रकाशको अभावमा पहेलिएर थिचिएको अवस्थामा छ । यी दुवै भाषाका अनूदित कृतिहरूमा अहिले नै गहनताको खोज गर्नु हतार हुन सक्छ । तर यी दुवै भाषामा अनुवाद साहित्यको अवस्था शून्य स्वरूपमा पटक्कै छैन । कथा, निबन्ध, नाटक तथा कविता विधामा नेपाली तथा हिन्दी भाषावाट अवधी र थारूमा तथा थारू र अवधी भाषावाट नेपाली, अङ्ग्रेजी एवं हिन्दी भाषामा अनुवाद कार्य सम्पन्न भएका छन् ।

यसलाई निरन्तरता र व्यापकता दिँदै यसका माध्यमवाट अवधी तथा थारू भाषाका भाषा, साहित्य र शास्त्रलाई समृद्ध बनाउँदै ज्ञानको स्रोतमा सर्वसाधारणहरूको पहुँच विस्तार गर्न सकिन्छ । अवधी तथा थारू भाषालाई बलियो बनाउन, ज्ञानलाई समृद्धि प्रदान गर्न तथा यी जनसमाजको सूचनामा पहुँच अभिवृद्धिका लागि अनुवादको विशेष आवश्यकता छ । समय द्रुत गतिमा अगाडि बढेका छन् । राजनीतिक घटनाक्रमले कोल्टे फेरेका छन् । गणतन्त्र स्थापना

भएको पनि दस वर्ष पुगिसकेको छ। अब हामीले अर्का माथि दोष थोपरेर मात्रै पुग्दैन। यस विषयमा गम्भीर भएर सोच्नुपर्ने अवस्था छ। त्यसैले यसका लागि अनुवाद कार्यलाई संस्थागत गर्दै अन्य भाषामा रहेका ज्ञानभण्डारलाई अवधी र थारू भाषामार्फत अनुवाद गरेर अवधी र थारू साहित्य एवं समाजलाई समृद्ध बनाउन अवधी र थारू भाषाका मौलिक कृतिहरूलाई अन्य भाषामा अनुवाद गरेर अवधी तर थारू भाषासाहित्यको पहिचान अभिवृद्धि गर्न आवश्यक छ। यसका लागि निम्न सुझाव प्रस्तुत गर्न चाहन्छु :

- अलग अलग भाषामा रहेका प्रख्यात साहित्यिक तथा अनुसन्धानात्मक कृतिहरूको सूची तयार गरेर आवश्यकताअनुसार योजनाबद्ध ढङ्गले अनुवाद कार्य सुरु गर्नुपर्छ।
- अवधी तथा थारू भाषामा रहेका महत्त्वपूर्ण कृतिहरूलाई नेपाली अङ्ग्रेजीलगायतका भाषाहरुमा योजनाबद्ध ढङ्गले अनुवाद गर्नु वा गर्न प्रोत्साहित गर्नुपर्छ।
- अनुवादका लागि विविध विषय - शिक्षा, कृषि, स्वास्थ्य, दर्शन, लोकविज्ञान, पारम्परिक प्रविधि, सञ्चार, प्रशासन, कानुन, प्रविधि तथा राजनीति आदि क्षेत्रका शब्दावली सङ्कलन गरेर लक्ष्य भाषाको रूपमा अवधी वा थारू राखेर प्राविधिक शब्दकोश तयार गर्नुपर्छ।
- लोकजीवनमा लोकसाहित्यको विशेष महत्त्व हुने हुनाले अवधी तथा थारू भाषामा रहेका लोकसाहित्यसम्बन्धी पुस्तकहरूको सूचीकृत गरी योजनाबद्ध ढङ्गले अन्य भाषामा अनुवादका लागि प्रोत्साहित गर्नुपर्छ।
- देशका जिम्मेवार सरकारी निकायहरूको पहिचान गरी ती निकायहरूमा अनुवाद डेस्क, केन्द्र वा शाखा स्थापनाका लागि पहल गर्नुपर्छ।

सन्दर्भ सामग्री

- सर्वहारी, कृष्णराज, २०६२, थारू भाषामें अनुवाद साहित्यके अभाव समकालीन साहित्य, २(१), ६ कुवार-चैत, पृ. ६-७।
- सर्वहारी, कृष्णराज, २०६७, थारू भाषा साहित्यको रूपरेखा, सयपत्री, पूर्णाङ्क २१, जेठ-कात्तिक, पृ. ४४-६५।
- थारू, फनिश्याम, २०५५, थारू साहित्यके ऐतिहासिक विकासक्रम, समकालीन साहित्य३(३)११,असोज।
- सांकृत्यायन, पं. राहुल : हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास(खण्ड-२) नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (बनारस) भारत।
- रोहतगी, डा. सरोजनी : अवधी का लोक साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३- दरियागंज दिल्ली-६, भारत
- डा. ताराकान्त मिश्र : मैथिली लोकसाहित्य का अध्ययन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३- दरियागंज दिल्ली-६, भारत।
- त्रिपाठी,विक्रममणि त्रिपाठी : अवधी लोककथा (प्रकाशाधीन), नेपाल प्रज्ञा-प्रतिष्ठान,कमलादी काठमाडौं।
- त्रिपाठी, विक्रममणि त्रिपाठी : अवधी लोकनाटक संकलन र विश्लेषण (प्रकाशाधीन), नेपाल प्रज्ञा-प्रतिष्ठान,कमलादी काठमाडौं।
- त्रिपाठी, विक्रममणि त्रिपाठी : अवधी भाषा कै समाज भाषा वैज्ञानिक अध्ययन (लघु अनुसन्धान परियोजना), नेपाल प्रज्ञा-प्रतिष्ठान,कमलादी काठमाडौं।
- सिंह, डा. विद्याविन्दु : अवधी लोकगीत समिक्षात्मक अध्ययन, परिमल प्रकाशन, १७-एम.आई.जी., बाघम्बरी आवास योजना, अल्लापुर, इलाहाबाद, भारत।
- दीक्षित, त्रिलोकी नारायण : अवधी और उसका साहित्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, भारत।
- गुप्ता, माताप्रसाद : जायसी ग्रन्थावली, हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद, भारत।
- चर्तुवेदी, परशुराम : सूफी काव्य सङ्ग्रह, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, भारत।
- भारती, डा. धर्मवीर : सिद्ध साहित्य, किताब महल, इलाहाबाद, भारत।

नेपालीय मैथिली र भोजपुरी अनुवाद साहित्यको वर्तमान अवस्था र सम्भावना

आनन्द अस्तित्व

१. भूमिका (Introduction)

नेपाल एउटा वहुभाषिक, वहुसांस्कृतिक र वहुधार्मिक राष्ट्र हो । यहाँ विभिन्न भाषाभाषी, धर्म तथा समुदायका व्यक्तिहरूको वसोवास रहेको छ । नेपलमा सयभन्दा वढी भाषाहरू बोलिन्छन् र तीमध्ये केही भाषाहरूमा साहित्यको सृजना पनि गर्ने गरिन्छ जसअन्तर्गत मैथिली, भोजपुरी, अवधी, थारू, नेवारी, तमाङ,राई, उर्दू, हिन्दीआदि प्रमुख रहेका छन् । नेपालको बदलिँदो राजनीतिक तथा सामाजिक परिवेशमा विभिन्न भाषामा रचिएका साहित्यवारे बुझ्ने तथा अन्तर्क्रिया आदि गर्ने प्रयास गर्नु सामाजिक सद्भावको प्रवर्द्धनमा गरिने एउटा वाञ्छित प्राज्ञिक कार्य हो । संविधानमा नेपालीलाई सरकारी कामकाजको भाषा तथा नेपालमा वोलिने अन्य भाषाहरूलाई राष्ट्रभाषा भनी उल्लेख गरिएको छ । भाषाभाषीको सङ्ख्याको दृष्टिकोणले नेपालीपछि दोस्रो भाषाको रूपमा मैथिली र तेस्रो भाषाको रूपमा भोजपुरी स्थापित रहेको छ । यस कार्यपत्रमा मैथिली र भोजपुरीमा अनुवादसाहित्यको केकस्तो स्थिति रहेको छ भन्नेवारे अति संक्षिप्त रूपमा चर्चा गर्ने जमर्को गरिएको छ । नेपालीय मैथिली र भोजपुरी भाषामा अनुवादसाहित्यको स्थितिवारे केही भन्नुपूर्व अनुवादवारे नै केही भन्न उचित भएकाले केही भन्नु उचित ठानेको छु ।

अनुवाद शब्द 'वद्' धातुवाट निष्पन्न भएको हो , जसको अर्थ 'वचन' हुन्छ । 'वद्' धातुमा 'घञ' प्रत्यय लागेर 'वाद' शब्दको निर्माण हुन्छ । फेरि 'वाद'मा 'अनु' उपसर्गको योगवाट 'अनुवाद' शब्दको निर्माण भएको हुन्छ । 'अनु' शब्दको अर्थ 'पछि' वा 'अनुवर्तिता' आदि हो । यसरी 'अनुवाद'को मूल अर्थ 'पुनर्कथन' या कसैले भनेपछिको कथन' हो । 'शब्दार्थ-चिन्तामणिकोश' मा अनुवादलाई 'प्राप्तस्य पुनःकथने' वा 'ज्ञातार्थस्य प्रतिपादने' को रूपमा अर्थयाएको छ । अनुवाद शब्द भिन्न-भिन्न अर्थमा प्रयुक्त भएको पाइन्छ । सामान्य रूपमा गुरुका कुराहरूलाई शिष्यहरूद्वारा दोहोऱ्याउनु, 'पश्चात्-कथन', पुनःकथन, भन्नु, आवृत्ति आदिका रूपमा यसको प्रयोग भएको हुन्छ । तर वास्तविकता के हो भने उपर्युक्त कुनै पनि अर्थले अनुवादको अर्थलाई त्यस रूपमा व्यञ्जित गर्दैन, जुन रूपमा आज हामी यसको प्रयोग गरिरहेका छौँ । आज अनुवादको स्पष्ट अर्थ पुनःकथनको रूपमा स्थापित छ र यसलाई 'आवृत्ति' या 'दोहोऱ्याउन' भन्न सकिन्छ । यस्तो अनुवादलाई भाषान्तरण, उल्था र तर्जुमा पनि भनिन्छ ।

अनुवादलाई परिभाषित गर्न त्यति सरल छैन किनभने कुनै पनि परिभाषा सर्वमान्य हुँदैन । यसका अतिरिक्त अनुवादलाई परिभाषित गर्ने परम्परा उहिलेदेखि चलिआएको छ । पाश्चात्य तथा पूर्वीय विद्वान्हरूले यसलाई परिभाषित गर्ने कार्य गरेका छन् । पाश्चात्य विद्वान्हरूका भनाइअनुसार **Translation is the transference of the content of a text from one language into another , bearing in mind that we cannot always dissociate the content from the from. (Foresten)** भने पूर्वीय विद्वान्हरूका भनाइअनुसार अनुवाद एक प्रतीक (वा प्रतीक वर्ग) द्वारा व्यक्त विचारहरूको अर्को प्रतीक (वा प्रतीक वर्ग) द्वारा व्यक्त प्रतीकान्तर हो । (भोलानाथ तिवारी) 'अनुवादमा स्रोतको अर्थ लक्ष्य भाषामा प्रतिस्थापित हुन्छ, अन्तरण हुँदैन । (कैटफर्ड) अनुवाद गर्दा 'प्रतिस्थापन' र 'अन्तरण' लाई ध्यानमा राख्नुपर्ने प्रमुख कारण पनि यही हो । उखान-टुक्का, सांस्कृतिक शब्द र सामाजिक अभिव्यक्तिहरूको अनुवादमा अन्तरण

प्रक्रियाको अपेक्षा प्रतिस्थापन प्रक्रिया निकै उपयोगी ठहरिन्छ। यसरी विभिन्न विद्वान्हरूको परिभाषाको अध्ययनोपरान्त के भन्न सकिन्छ भने अनुवाद एउटा अनुसृजन हो, कला हो र विज्ञान हो।

अनुवादका चार प्रकार मानिएको छ–शब्दानुवाद, भावानुवाद, छायानुवाद र सारानुवाद। साहित्यिक विधाअनुसार यसलाई काव्यानुवाद, नाटकानुवाद, कथानुवाद आदिमा समेत विभाजित गर्ने गरिन्छ। काव्यानुवादले काव्यिक रचनाहरूको अनुवाद, नाटकानुवादले नाटकका रूपमा अनुवाद, कथानुवादले कथासाहित्य (उपन्यास र कथा) को रूपमा अनुवादलाई जनाउँछ। यसअतिरिक्त गद्यानुवाद र पद्यानुवाद पनि यसअन्तर्गत नै पर्दछन्। पद्यानुवादलाई छन्दानुवाद पनि भनिन्छ। अतएव अनुवाद शिल्प हो, कला हो र विज्ञान हो।

आजको वर्तमान युगमा अनुवादको निकै ठुलो महत्त्व रहेको छ। अनुवादको माध्यमले एकअर्काको भाषिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक अवस्थावारे जान्न-बुझ्न सकिन्छ। प्राचीन कालमा कथा सरित्सागर र पञ्चतन्त्रका कहानीहरू अनुवादका माध्यमबाट सुदूर देशहरूमा लोकप्रिय हुन पुगे। त्यसै गरी अनुवादकै कारणले गर्दा विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोरको कृति गीताञ्जलिको माधुर्यबाट परिचित हुन सकियो। भारतीय ग्रन्थहरूका अनुवादहरूले पूर्वीय एसियाका चीन, जापान, स्याम, मलाया, कम्बोडिया आदि देशहरूमा भारतीय संस्कृतिलाई रेखाङ्कन गरे। अनुवादकै सहायताबाट नेपाल, पाकिस्तान, तिब्बत, बङ्गलादेश, श्रीलङ्का आदि देशका सांस्कृतिक, सामाजिक तथा साहित्यिक माधुर्य र सौन्दर्य चेतको बोध भइरहेको अवस्था रहेको छ। यति मात्र होइन, अनुवादले सामाजिक सद्भावको प्रवर्द्धन गर्नमा समेत मदत पुऱ्याउँछ।

२. नेपालीय मैथिली अनुवादसाहित्यको वर्तमान अवस्था (Present Position of Nepalese Maithili Literary Translation)

नेपालीय मैथिली साहित्यको वर्तमान अवस्था संतोषजनक रहेको छ। मैथिली भाषामा साहित्यसृजना निरन्तर रूपमा भइरहेको छ। यसका साथसाथै मैथिली साहित्यसम्बन्धी शोध तथा अनुसन्धानका कार्य पनि भइरहेको छ। मैथिली साहित्यमा केही उल्लेख्यपूर्ण अनुवाद कार्य सम्पन्न भएको छ जसबारे यहाँ संक्षिप्त चर्चा गरिँदै छ।

(क) नेपाली तथा अन्य भाषाका रचना/कृतिहरूको मैथिली अनुवाद : नेपाली तथा अन्य भाषाका रचना तथा कृतिहरूको मैथिली भाषामा अनुवाद गरी मैथिली साहित्यको भण्डारलाई समृद्ध तुल्याउने कार्य गरिएको छ। यसअन्तर्गत महाकवि लक्ष्मीप्रसाद देवकोटाको मुनामदनको मैथिली अनुवाद पं. सुन्दर झा शास्त्री, लेखनाथ पौड्यालको सत्यकलि संवादको मैथिली अनुवाद प्रो.कृष्ण प्र.उपाध्याय, विश्वेश्वरप्रसाद कोइरालाको उपन्यास मोदिआइन र पारिजातको शिरीषको फूलको मैथिली अनुवाद डा. रामदयाल राकेश (२०५०), भानुभक्तीय रामायणको मैथिली अनुवाद बद्रीनारायण झा (२०५४) चाँदनी शाहको गीतको मैथिली अनुवाद लोकेश्वर व्यथितलाई लिन सकिन्छ। यसै गरी भूपी शेरचनको घुम्ने मेचमाथि अन्धो मान्छेको मैथिली अनुवाद घुमैत कुर्सी पर आन्हर मनुख शीर्षकले गरिएको पाइन्छ। यसका साथसाथै संस्कृतका केही चर्चित कृतिहरूको पनि मैथिलीमा अनुवाद भएको पाइन्छ। यसअन्तर्गत श्रीमदभगवत् गीताको मैथिली अनुवाद पं. सुरेश झा, मार्कडेय पुराणको मैथिली अनुवाद डा. हरिदेव मिश्र तथा मेघदूतको मैथिली अनुवाद सूर्यकान्त झाले गरेको पाइन्छ। हिन्दीमा लेखिएको महाकवि विद्यापतिमाथिको लेख र डा. बुचरू पासवानद्वारा लिखित सलहेमाथिको लेखको विनीत ठाकुरले अनुवाद गरेका छन् जुन आँगन (ने.प्र.प्र.) को विद्यापति तथा सलहेस विशेषाङ्कमा प्रकाशित भएको छ।

(ख) मैथिली रचना/कृतिहरूको अन्य भाषामा अनुवाद : मैथिली रचना कृतिहरूको नेपाली, हिन्दी र भोजपुरी आदि भाषामा अनुवाद भएको देखिन्छ। यसअन्तर्गत रामभरोस कापड़ि भ्रमरको दीर्घ कविता नहि आब नहिको हिन्दी अनुवाद बस आ नहीं (गोपाल अश्क) र नेपाली अनुवाद होइन अब होइन (मनु ब्राजाकी), मैथिली उपन्यास घरमुहाँको भोजपुरी अनुवाद घरमुँहा (उमाशङ्कर द्विवेदी) र भ्रमरक उत्कृष्ट नाटक सबको मैथिली अनुवाद भ्रमरका उत्कृष्ट नाटकहरू (धर्मेन्द्र विह्वल, जनकपुर ललित कला प्रतिष्ठान), भरत जङ्गमको उपन्यास कालो सूर्यको मैथिली अनुवाद कारी सुरुज (डा. गङ्गाप्रसाद अकेला) प्रकाशित देखा पर्दछन्। मैथिली सोमली र सोहागिनको मैथिली अनुवाद

(राजेश्वर नेपाली) पाइन्छ । विनीत ठाकुरले आफ्ना मैथिली कथाहरूलाई नेपालीमा अनुवाद गरी विभिन्न पत्र-पत्रिकामा प्रकशित गराएका छन् जसअन्तर्गत धानो (मिर्मिरे),बिहे (मिर्मिरे), जालो, सुनको बाला (अनलाइन पत्रिका) प्रमुख रहेका छन् । यिनको गाउँ नै जल्दा शीर्षक (अनुवादक लेखक स्वयं) मिर्मिरे (साहित्यिक पत्रिका) मा प्रकाशित रहेको देखिन्छ । यिनले छठिको एउटा गीतलाई (भक्त सबकें पार लगाऊ हे छठि मैया) नेपालीमा अनुवाद गरी कान्तिपुर टेलिभिजनबाट प्रसारण / छायाङ्कनसमेत गराएको पाइन्छ । यसरी के भन्न सकिन्छ भने नेपालीय मैथिलीमा अनुवाद साहित्यको अवस्था उत्साहपूर्ण एवं सन्तोषजनक तथा अझै राम्रो हुने सम्भावना प्रवल रहेको छ ।

३. नेपालीय भोजपुरी अनुवाद साहित्यको वर्तमान अवस्था (Present Position of Nepalese Bhojpuri Literary Translation) :

नेपालीय भोजपुरी साहित्यको वर्तमान अवस्था सन्तोषजनक देखिन्छ । केही दशक यतादेखि नेपालको भोजपुरी साहित्यमा विभिन्न विधाका कृतिहरूको प्रकाशन भइरहेको देखिन्छ । साहित्यका विभिन्न विधामा शोध तथा अनुसन्धानका कार्यहरू सम्पन्न भइरहेका छन् । यसै क्रममा नेपालीय भोजपुरी साहित्यमा अनुवादका कार्यहरू पनि भएका छन् जसबारे यहाँ अति संक्षिप्त रूपमा चर्चा गरिँदै छ ।

(क) नेपाली तथा अन्य भाषाका रचना/कृतिहरूको भोजपुरी अनुवाद : नेपाली पद्य तथा गद्यका रचना एवं कृतिहरूको भोजपुरी भाषामा अनुवाद गरिएको पाइन्छ । यसअन्तर्गत आदिकवि भानुभक्त आचार्यद्वारा लिखित रामायणको **भोजपुरी रामायण** (मुकुन्द आचार्य, २०६३), कथाकार सनत रेग्मीका कथासङ्ग्रह लछमनियाको गौनाको **लछमनिया के गौना** (गोपाल अश्क,२०७०), कथाकार विश्वेश्वरप्रसाद कोइरालाको उपन्यास मोदिआइनको **मोदिआइन** (डा.श्वेता दीप्ति,२०७०), भरत जङ्गमको उपन्यास कालो सूर्यको **करिआ सुरुज** (डा.गङ्गाप्रसाद अकेला, २०६४), मानवाधिकार गीत घोषणापत्रको **घोषणा-पतर** (पुरुषोत्तम शर्मा, २०५२), श्यामप्रसाद शर्माका कृतिहरू धर्मका बारेमा केही कुराको **धर्म के बारे में कुछेक बात** तथा जात जातका कुराको **जात जात के बा** (रेणु गुप्ता, २०५७) र बालकृष्ण समको एकाङ्की बुहार्तनको **बहुरिया** (डा.केशवप्रसाद उपाध्याय) प्रमुख रहेका छन् । यसका साथसाथै उपन्यासकार डा. ध्रुवचन्द्र गौतमद्वारा लिखित अलिखितको **अलिखित** (गोपाल अश्क), फूलको आतङ्कको फूल के आतङ्क (दिनेश गुप्ता), लक्ष्मीप्रसाद देवकोटाको मुनामदनको **मुनामदन** (विनोदकुमार तिमिल्सना), बालकृष्ण समद्वारा लिखित एकाङ्कीसङ्ग्रह समका प्रमुख एकाङ्कीको **सम के प्रमुख एकांकी** (डा. केशवप्रसाद उपाध्याय, गोपाल अश्क,ने.प्र.प्र.) तथा **नेपालीका २० कथाहरूको भोजपुरी अनुवाद** (डा.विश्वम्भरकुमार शर्मा, ने.प्र.प्र.) उल्लेख्य रहेका छन् । यसका साथसाथै रामभरोस कापड़ि भ्रमरको उपन्यास घरमुहाँको **घरमुँहा** (उमाशङ्कर द्विवेदी 'दधीचि') र **नेपालीका प्रतिनिधि कथाहरूको भोजपुरी अनुवाद** (उमाशङ्कर द्विवेदी) एकाङ्की आ बैजू बाज उठलको आ **बैजू बोल पडल** (गोपाल अश्क) देखा परेका छन् ।

(ख) भोजपुरी रचना/कृतिहरूको अन्य भाषामा अनुवाद : केही भोजपुरी रचना कृतिहरूको अन्य भाषामा पनि अनुवाद गरिएको पाइन्छ । यसअन्तर्गत गोपाल अश्कको कविता शहीद के विधवाको **सहिदकी विधवा** (डा.ध्रुवचन्द्र गौतम), दिनेश गुप्ताको कथा कैंसर के साठ दिनको **क्यान्सरको साठी दिन** (गोपाल अश्क) **१७ वटा भोजपुरी कथाहरूको नेपाली अनुवाद** (गोपाल अश्क तथा अन्य, सयपत्री १४ औं अङ्क, ने.प्र.प्र.), पं. दीपनारायण मिश्रको कविता नीति-सारको **नीति-सार** (गोपाल अश्क), शिवनाथ साहको गजल, बूँद रानाको गजल, पुरुषोत्तम शर्माको कविता भीम विरागको गजल, डा. शशिभूषण बरनवालको कविता, रामबाबु प्रसाद यादव, रामप्रसाद साहको गजल, को नेपाली अनुवाद (गोपाल अश्क, मधुपर्क असार २०७२), माधवप्रसाद गौतमको कथा **मेघिया** (गोपाल ठाकुर,जगदीशप्रसाद पंकजको **कागको आत्मकथा** (गोपाल ठाकुर), चन्द्रकिशोर झाको कथा समय के पहियाको **समयको पाङ्ग्रो** (गोपाल ठाकुर) वीणा सिन्हाको **नारी अस्मिता** (स्वयं लेखिका) र जमुनाकुमारी क्षत्रीको निबन्ध जीवन आ साहित्यको **जीवन र साहित्य** (लेखक स्वयं) (सबै प्रकाशित मधुपर्क, असार २०७२) रहेका छन् । भोजपुरीका केही रचनाहरू, नेपाली, हिन्दी मैथिली र अङ्ग्रेजीमा पनि अनूदित रहेका छन् जसअन्तर्गत

गोपाल अश्कको राम पियारी उढ़ड़ गइलको नेपाली अनुवाद **राम पियारी पोइल गई**, अनु. लेखक स्वयं, (उपलब्धि साहित्यिक त्रैमासिक), नइहर के चुनरीको मैथिली अनुवाद **नैहर कँ चुनरी** (अनु.विनीत ठाकुर, आँगन) र खोइँछाको अङ्ग्रेजी अनुवाद **Khoiechha** (ने.प्र.प्र.सम्पादक बलराम अधिकारी) देखा पर्दछन्। यसै गरी रामप्रसाद राय थारूको भोजपुरी उपन्यास थरुहट के बउआ और बहुरियाको नेपाली अनुवाद (भउचप्रसाद यादव) पाइन्छ।

४. सम्भावना : (Expectation) र उपसंहार (Conclusion)

आशा र सम्भावनालाई जीवन जिउने आधारका रूपमा चित्राङ्किता गर्ने गरिन्छ। निश्चित रूपमा यी दुई शब्दले प्राणवायुको काम गरेको हुन्छ। नेपालीय मैथिली र भोजपुरीमा अनुवाद साहित्यको निकै ठुलो सम्भावना रहेको छ। तर त्यसका लागि निम्नलिखित समस्याहरूको समाधान गर्न आवश्यक देखिन्छ :

- भाषागत समस्याअन्तर्गत ध्वनिविज्ञान, रूपविज्ञान, अर्थविज्ञान तथा वाक्यविज्ञानसम्बन्धी समस्याहरू विद्यमान रहेका हुन्छन् जसको समय निराकरण गरी अनुवाद साहित्यको सम्भावनालाई जीवन्तता प्रदान गर्न सकिन्छ। यसका लागि सम्बधित निकायहरू- नेपाल प्रज्ञा-प्रतिष्ठान, नेपाल अनुवाद सङ्घ, त्रिभुवन विश्वविद्यालय जस्ताले समय समयमा अनुवादसम्बन्धी गोष्ठी, कार्यशाला, वा शोध गर्न/गराउन आवश्यक देखिन्छ।
- स्वर्तस्फूर्तमा अनुवाद भइरहेको वर्तमान अवस्थालाई संस्थागत रूप प्रदान गरी अवसर उपलब्ध गराइएमा अनुवाद साहित्यको स्थिति अझै राम्रो हुने भएकाले त्यसतर्फ सम्बंधित निकायहरूको ध्यान केन्द्रित हुन आवश्यक देखिन्छ।
- अनुवादकमा अनुवाद गर्ने शिल्प, कला र ज्ञानको अभावले गर्दा राम्रो र सही अनुवादको कमी देखिने गरिन्छ। यसको निराकरण गर्ने हो भने हाम्रो देशका साहित्यको राम्रो अनुवाद गरेर विदेशमा त्यसमार्फत हाम्रो देशको कला, संस्कृति, साहित्य, सामाजिक रूपान्तरण आदिवारे यथेष्ट जानकारी गराउन सकिन्छ।
- अनुवाद साहित्यको संवर्द्धन र प्रवर्द्धनका लागि यस विधालाई एउटा पृथक् विधाको रूपमा स्थापित गराउनतिर सम्वन्धित सरोकारवालाहरू जागरूक हुन आवश्यक देखिन्छ।
- अनुवाद भनेको अनुसृजन हो , कला हो एवं विज्ञान हो। यसो भएको हुनाले अनुवादकको महत्त्व सर्जक जस्तै हुन्छ। त्यसैले अनुवादलाई सर्जक जस्तै मानप्रतिष्ठा तथा अवसरको उपलब्धता प्रदान गरिनु आवश्यक छ।
- अनुवादको माध्यमले सरकारी तथा प्राज्ञिक योजनाहरूलाई सरोकारवालाबीच पुऱ्याउँदा सम्बन्धित सवै पक्षलाई फाइदा हुने भएकाले सरकारी तथा वित्तीय संस्थाहरूमा एउटा अनुवाद विभागको स्थापना गरी अनुवादकको नियुक्ति गर्नु आवश्यक देखिन्छ।

सन्दर्भ सूची

१. आलोक कुमार रस्तोगी : हिन्दी में व्यावहारिक अनुवाद,संस्करण,१९९०,प्रकाशन:सुमीत पव्लिकेशन:दिल्ली
२. एन.इ.विश्वनाथ अय्यर :अनुवाद भाषाएँ-समस्याएँ, संस्करण २००७,प्रकाशन : ज्ञान गंगा, दिल्ली३.डा.कैलाशचन्द्र भाटिया : अनुवाद कला सिद्धान्त और प्रयोग,संस्करण १९९१,प्रकाशन : तक्षशिला प्रकाशन,नई दिल्ली
४. डा.पुरनचन्द टण्डन, हरिश कुमार सेठी,अनुवाद के विविध आयाम,सं.२००५,प्र.तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
५. भोलानाथ तिवारी,अनुवाद विज्ञान, संस्करण १९९९, प्र.प्रतिमा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली
६. मधुपर्क (सं.श्रीओम श्रेष्ठ,वर्ष४८,अङ्क २ : पूर्णाङ्क ५५३, असार २०७२)
७. सयपत्री (सं. माधवलाल कर्माचार्य, १४ औं अङ्क, ने.प्र.प्र.)
८. उपर्युक्त कार्यपत्रमा उल्लिखित सारा रचना तथा कृतिहरू

Translating Poetry: The Art of Preserving Essence

Willa Schneberg (U.S.A.)

The formation of different languages has caused difficultiesin communication between countries, but the need to communicate is universal. Because human beings must interact, express themselves and emote, there is translation.

I am grateful that you in the audience understand English, since I cannot speak Nepali, Hindi or Nepal Bhasa; and for many of your fellow writers, or non-writers, who do not have a familiarity with the English language, unless this talk is translated, they will be unable to access the information I wish to share.

According to American poet and translator Willis Barnstone, "Poetry translation is an art of revelation. It makes the unknown known."The translator must have the desire and skill to recognize, re-create, and reveal the work of the originator. Translation is an art that dwells between languages, the new work lives somewhere between the original and the re-envisioned.

Let's begin with the basics. First, there is the original text in the language of origin. Then, the translator must bring all of his or her life experience, knowledge of literature and poetry, fluency in the connotations, ambiguities and symbolism of the language in which he or she is translating from and/ or into, a language that is usually not his or her first language. The poem must be entered again and again, to make absorption of the poem possible, and a literal translation not viable or desired. The translator's subjectivity is perfect for illumination or re-creation, and also ripe for missing important nuances: cultural, spiritual, political, gender, race, class, and so on.

I would go one step further and say that once a poem is translated from Nepali into English, it becomes an English poem, (but is it American, British, Irish, South African or South Asian English?) and when a poem is translated into Nepali, Hindi or Nepal Bhasa, it becomes a Nepali, Hindi or Nepal Bhasa poem.

A translator needs to find the key to the poet's inspiration to fully immerse and embrace the work. This is as demanding and stimulating as the craft and toil that went into creating the poet's product.

Can a translation ever be truly faithful? If the translation is literal, I believe, there are no fine distinctions, no heart, no soul. A translation can never be an exact replica. Translation must live in the realm of the imperfect and always be in exile. The translator is given a precious gift, but the original will never be his or hers to own. The translator has another more essential role. He or she may be the only conduit to bringing that poem into the consciousness of readers who would not be exposed otherwise. Because of this, as many of you know, the translator bears a special, almost sacred responsibility. He or she gives the curious and worldly reader a passport to poets and poems from across the globe. Chinese translator, Shu Cai, known for her translations from the French, has stated that the quality of a translated poem must be measured by the poetic standards of the language it has been translated into. I opine,

that a translation's merit should be assessed by readers, writers and literary scholars who value, and are consumed with, the art and craft of poetics.

The poet Jane Hirshfield, former chancellor of the Academy of American Poets, has written that," To translate a poem you love from another language is a way to keep your relationship to word-shaping awake."

American poet and translator Martha Collins, has asked, and I am paraphrasing, "Where, on a continuum, from the most literal to the most free, does a particular translation lie?" I will continue with some additional questions: How loyal must a translation be to its "source" form? "What is accomplished by tackling replication of rhyme or meter and, what is lost?" What is the style of translation? For example, is it formal or colloquial? If a poem is from the 18th century, will it benefit to make it more modern and contemporary? Collins also riffs on syntax, how words are arranged in sentences, and how they differ considerably from language to language, and cautions the translator to finesse that issue. There is also a point when a translation moves so far away from the original that it is an "imitation," rather than a work of translation. That also must be reckoned with.

I would like to address how *Elliot Weinberger's 19 Ways of looking at Wang Wei* reveals how translations of the same poem into English has changed over time with each unique iteration.

This will be the audience participation part of the program. A number of you may be able to read the poem in the original classical Chinese, but most of us only have the translations, so we can't discuss how literally accurate each poem is to the original, but you do know what speaks to you, what makes the poem fresh, or as Ezra Pound said, "the news that stays news." Pound tried to capture that essence in *Cathy*, a book of his own translations published in 1915, based on the work of the literal translations of the Orientalist Ernest Fenollosa and a Japanese associate. T.S. Eliot felt that Pound invented "Chinese poetry in our time." But these are Eliot's words, not mine, and they smack of colonialism. Pound's achievement was that he birthed a new poetry drawn from the core and spirit of Classical Chinese verse.

Before I read the translations, a little about the poet Wang Wei. Wang Wei lived from 700 -761CE. He was known as a Buddhist painter and calligrapher in his time, and to later generations, as a master poet of the Tang Dynasty.

In Chinese, as you may know, each character is an ideogram and represents the single syllable word, comprehensible only in the context of a phrase. As Eliot Weinberg, so deftly explains in *19 Ways of looking at Wang Wei*, the same word can be translated as a verb, adjective or noun and or have opposing meanings, like "bright" or "shadow," as in the poem of Wang Wei's that we will be discussing.

He continues to elucidate, that even the title of the poem is problematic, "The Form of the Deer," "Deer Park Hermitage," "Deer Fence," or no title at all, to name a few, and that the general consensus is that the title probably alludes to the Deer Park in Sarnath, India, where the Buddha offered his first sermon. Weinberger believes, as do other translators, that translating Chinese poems into the Western canon makes rhyme inevitable and meter impossible. Another difference between English and Chinese is that the first person singular rarely is used, probably because of the Buddhist belief in the "no-self."

Now I would like to hear your thoughts. You may feel without being fluent in Classical Chinese how can we judge? But isn't that what every reader does, when he or she finds they are turned-off or awed by Baudelaire or Neruda, or Akhmatova, reading them for the

first time in their native language?

Which translation or elements of a translation, do you feel preserves the essence of the poem? Is it the use of traditional form, or free verse, rhyme, music, imagery, the addition of an "I" or an observer? Is it also elements like alliteration, changing the number of lines, title choice, capturing a certain sensibility, or something I haven't thought of?

Again I believe, the success of a translation can only be assessed by you –the readers, writers, literary scholars and critics, who value and are consumed with the art and craft of poetry.

REFERENCES

References for this talk have been culled from many books and articles, including the following:

· --*Poems, Translations, Commentaries* edited by Martha Collins and Kevin Prufer

· *Nineteen Ways of Looking at Wang Wei* by Elliott Weinberger

· "What We Can Learn From Multiple Translation of the Same Poem and How it BringsUs Closer to the Experience of Reading the Original" by Martha Collins, (*Lit Hub*)

· "The Art of Losing, Polish Poetry in Translation" by Clare Cavanagh, (*Partisan Review*)

· "The Possibility of the Impossible: On the Translation of Poetry" by Shu Cai, *(Chinese Literature Today)*

· "An ABC of Translating Poetry," Willis Barnstone, (Academy of American Poets)

· "Reconnecting After a Silence by Jane Hirshfield," (*Poets & Writers*)

Willa Schneberg is an American poet, ceramic sculptor, interdisciplinary artist, photographer and curator. She is the author of five collections, and received the Oregon Book Award for In the Margins of the World. Storytelling in Cambodia was inspired by her time working for the United Nations Transitional Authority in Cambodia in the early 90's. Rending the Garment is her most recent collection.

willaschneberg.org; https://en.wikipedia.org/wiki/Willa_Schneberg

A Survey of Nepali Literature in English: Translated and Original

Mahesh Paudyal

Abstract

One of the basic motifs of writing in English from Nepal is to internationalize Nepali literature. Two types of attempts have been apparently made in this direction so far, both of which have their bearing with writing in English. First, there has been a boom of writers writing in English, and second, there have been translations from original Nepali source. The cumulative outputs of the two have been staggering, and the number is on the rise every day. However, the collective dream of the practices to internationalize Nepal through literature has always been thwarted. One of the probable solutions for this might come, if conscious efforts are made to root Nepali literature in unique Nepali experiences and knowledge so that beside delighting as all literatures do, they might open a gateway into a new epistemological territory, which might draw the attention of the world.

Disclaimers

- Since this paper is based more on Translations, the original works in English by Nepalese authors have not been mentioned in detail. They have just been refereed to.
- The works listed herewith do not make up the exhaustive list.
- Children's literature has been kept outside the purview of this paper.

THIS WORK PAPER sets for itself three motifs. First, it shall make a brief summary of literature by Nepali authors, written directly in English. Second, it shall attempt a quantitative summary of works that have been translated into English from Nepali. Lastly, it shall make a comparison of Nepali literature in English with similar counterparts in non-Western world, with the underlying thesis that we need to turn towards promoting unique Nepaliness and local color, rooted in original Nepali epistemology and furnished with typically Nepali metaphors.

Since the British set foot in Virginia in 1660 with a colonial design, English language has been expanding, and today, it is inevitably the global language. As Terry Eagleton contends, it is also a language of power devised to carry "an ideological burden"—to weld a turbulent class-society, both in England and abroad—from Victorian period onwards, since religion "progressively ceased to provide the social cement, effective values and basic mythologies (36)[16]. Though English is to many non-Western countries an 'oppressor's language', it cannot be done away with. Strategically therefore, the global pervasion of English can be used to communicate our own

16 Eagleton, Terry. "Literature and the Rise of English Language." *Literatures in the Modern Word: Critical Essays and Documents*. Ed. Dennis Walder. Oxford: Oxford University Press, 2004.

minds. For the same, we in Nepal have two options: either translate the best ever thought of and written in our language, (as the Russians, French and the Germans did), or encourage and promote writers originally writing in English (as the Blacks, Indians and the Caribbean did, and earned for themselves a permanently secure name in world literature.)

In Nepal, it has been more than a century since English education started in 1881[17]. Today, the number of Nepali writers with access to proficient literary English has become significantly high, comprising of scholars with education at home or abroad. With this, Nepali literature originally written in English, or the one translated from original Nepali has increased dramatically over the past few decades.

Literature originally written in English

Documented information shows, Laxmi Prasad Devkota was the first Nepali author to write originally in English. His own *Shakuntal* was written in 1949, followed by *Bapu and Other Sonnets*, 59 essays and a play *The Windows* (Padma 2013)[18]. The trend did not find a good continuity, and there was sparingly any substantial works that came for two decades hence. With the onset of the nineties, the rise of novelists like Mani Dixit, and writers like Padma Devkota, Abhi Subedi, DB Gurung, Tek Bahadur Karki, Laxmi Devi Raj Bhandari, Dilip Rana and others[19] took the number quite high. The trend continued with a boom, successfully spearheaded by writers like Ammaraj Joshi, Manju Kachuli, Greta Rana, Yuyutsu RD Sharma, Rameshwar Baral, Mohan Bahadur Kayastha, and others. A promising younger generation of writers including Khem Aryal, Haris Adhikary, Prakash Subedi, Bal Ram Adhikari, Archana Thapa, Dipesh Parajuli, Mahesh Paudyal, Eda Upadhyaya, Sushma Joshi, Rabi Thapaliya, Prakash Gurung, Richa Bhattarai, Ganesh Aagam Dhungana, Ishwar Kandel is active till this day. Some children prodigy like Oscar Sapkota, Victor Sapkota, Jwala Dhakal, Anurag Lamichhane, Himamshu Nibha Kuwar and Anukrit Lamichhane are published authors and are working with new deliveries.

Outside Nepal, the past one decade has seen a great rise in the number of writers. The trend that began with Samrat Upadhyaya's *Arresting Gods in Kathmandu* in 2001, and has continued without a break. With more works of Upadhyaya, novels of Manjushree Thapa have appeared, followed by works of Ammaraj Joshi, Rabi Thapa, DB Gurung and others, published either from India or abroad.

Nepali Literature in English Translation

Like original writing, English translation of Nepali literature also began with Laxmi Prasad Devkota. Besides rendering his own works, he also translated verses of Siddhi Charan Shrestha, Shyam Das Vaishnav and

17 "*Education in Nepal: Report of the Nepal National Education Planning Commission.* Kathmandu: College of Education, 1956.

18 Devkota, Padma. "English in Nepal: Education and Literary Expressions." *Of Nepalese Clay* 20 (October 2013) : 129- 144.

19 Works that can be named here are Bandana Shrestha's *Dawn* Volumes I and II (1980s) *Empty Text, Eclectic Poems* (Pradip Rana, 1991), *Whispers* (DB Gurung 1992), *An Intellectual Burden and Other Essays* (Tek Bahadur Kari, 1993), *Potato, Butter and Coffee* (Sanjeev Upreti, 1993), *Chasing Dreams* (Abhi Subedi 1996), *Until the Ocean Bled* (Laxmi Devi Rajbhandari, 1997), *To the Battlefield on the Elephant* (Taranath Sharma 1999) *Madness of a Sort* (Padma Devkota, 1999), *Sleepwalk* (DB Gurung, 2003), *Zero Passion* (Nabin Chhetri, 2003), *A Pond of Swans and Other Essays* (Padma Devkota, 2004), *All Mothers are Working Mothers* (Sangeeta Raymajhi, 2005), *Harassment and Other Poems* (Raju Maharjan),) *Dawn* (Bandana Shrestha), *Death of a Nurse* (Gopal Tegi), *Anonymous Father and Other Poems* (Tek Bahadur Karki 1997), *A Rose for Mamma* (Arati Dahal 1997), *Echo of the Himalayas* (DB Gurung 1999), *Kathmandu Saga and Other Poems* (Khem Aryal, 2004), *Harishchandra with Dawn Cycle and Other Poems* (Padma Devkota, 2006), *In Love of America and Other Observations* (Hrishikesh Upadhayaya 2006), Arati Dahal's *A Rose for Mama* (1997) Tek B. Karki *Sweet Steeple* (1966) and *Anonymous Fathers and Other Poems* (1998) Laxmi's Home (Raj Sesh Darji, 2009), Void (Basanta Lohani, 2009), *Flight of Fantasy* (Jaiswal and Tuladhar), *Stars and Fireflies* (Prakash Subedi, 2009), all works of Manjushree Thapa and Samrat Upadhyay, etc.

others. Though translated quite early, his *The Lunatic and Other Poems* was compiled and launched only in 2009. Among collections that qualify to the rank of 'representative' works, mention may be *Nepali Visions, Nepali Dreams* (David Ruben, 1980), *An Anthology of Short Stories of Nepal* (Kesar Lall and Tej R. Kansakar, 1998), *The Himalayan Voices* (Michael Hutt, 1993), *Selected Nepali Poems* (Taranath Sharma 1999), *Selected Nepali Essays* (Govinda Raj Bhattarai, 2003) *Contemporary Nepali Poems* (Padma Devkota, 2000), *Manao Secret Places* (Manjushree Thapa and Samrat Upadhyay 2001), *Selected Stories from Nepal* (Govinda Raj Bhattarai, 2004) *Stories of Conflict and War* (Govinda Raj Bhattarai, 2007) *Rebel: Stories of Conflict and War from Nepal* (Ramchandra KC, 2011), *Dancing Soul of Mountain Everest* (poems, Mahesh Paudyal, 2011), *Representative Anthology of Contemporary Nepali Poetry* (Govinda Raj Bhattarai, 2014), *The Himalayan Bard* (poems, Mahesh Paudyal, 2015), *Sangam: Contemporary Nepali Poetry in Translation* (poems, Haris Adhikari, 2018) etc.

Major individual works translated into English are Bharat Jangam's *Black Sun* (novel, Saroj Kumar Sakya, 1979), Diamond Shamsher's *The Wake of the White Tiger* (novel, Greta Rana, 1984), Devkota's *Muna Madan* (epic, Anand Shrestha 1987), Koirala's *Khaireni Ghat* (novel, Larry Hartsell, 1996), BP Koirala's *Faulty Glasses* (stories, Keshar Lall 1997), Madhav Ghimire's *Aswatthama* (epic, Padma Prasad Devkota, 1998) Siddhicharan Shrestha's *A Handbook of Siddhicharan's Verse* (poems, Madhav Lal Karmacharya, 1998), Govinda Gothale's *Window of the House Opposite* (novel, Larry Hartsell 1998), Rudra Raj Pandey's *Roopmati* (novel, Shanti Mishra 1999), Durga Lal Shrestha's *Twists and Turns* (Tirtha Tuladhar, 2000), BP Koirala's *Atmabritanta* (Kanak Mani Dixit, 2001), Siddhicharan Shrestha's *Memoir's of Jail* (Laxmi Raj Bhandari, 2002), *Sumina* (novel, Tara Nath Sharma, 2005), Dhruva Chandra Gautam's *Terror of Flower* (novel, Philip Pears, 2005), Gopal Prasad Rimal's *Masan* (play, Sangeeta Raymajhi 2006), Chittadhar Hridaya's *Sugat Saurav* (novel, Todd T. Lewis and Subarna Man Tuladhar, 2007), Bijay Malla's *Anuradha* (novel, Larry Hartsell, 2007), Parijat's *Under the Sleepless Sun* (novel, Nara Pallav, 2007), Lil Bahadur Chhetri's *Mountain Painted with Turmeric* (novel, Michael Hutt, 2008), Pradeep Nepal's *Twenty-first Century Sumina* (novel, Subas Ghimire, 2008), Dinesh Adhikari's *Mode of Life* (poems, Robin Sharma, 2009),Govinda Raj Bhattarai's *Socrates' Footsteps* (novel, Balaram Adhikari, 2010), BP Koirala's *Modi Aain*, (novel, Jay Raj Acharya, 2010), *Sun Showers* (zen poems, Manu Manjil and Mahesh Paudyal, 2010), Momila's *An Outsider in the Court of God* (essays, Kumar Nagarkoti, 2010), Rajeshwar Devkota's *The Journey's End* (novel, Hrishikesh Upadhyay, 2011), Rajeshwar Karki's *Last Page of My Poems* (poems, Mahesh Paudyal, 2011), Bishwambhar Chanchal's *The War is Breaking* (stories, Mahesh Paudyal, 2011), Bhisma Upreti's *Beyond the Holy Border* (essays, many translators, 2011), Srilaxmi Shrestha's *Cry in the Wilderness and Other Short Stories* (Kesar Lall and Tej R. Kansakar, 2011), Padmavati Singh's *Parallel Sky* (novel, Anuradha Sharma, 2011), Parijat's *The Blue Mimosa* (novel, Tanka Vilas Varya, 2012), Govinda Raj Bhattarai's *Muglan* (novel, Lekh Nath Pathak, 2012), and BP Koirala's *Narendra Dai* (novel, Jayraj Acharya 2013), Niraj Bhattarai's *Threads of Smoke* (poems, Bal Ram Adhikari, 2013), Bhisma Upreti's *Kathmandu Kaleidoscope* (poems, Mahesh Paudyal, 2014), Momila's *Selected Poems* (many translators, 2014), Maya Thakuri's *Of a Lesser God* (stories, Damodar Sharma,

2017), Sanjeev Upreti's *Another Cultivation of Maize* (play, Sajeev Upreti, 2017), Kavita Ram Shrestha's *Light of the Himalayas* (novel, Mahesh Paudyal, 2017), Lakpa Phuti Sherpa's *Forty Years in the Mountain* (memoirs, Mahesh Paudyal, 2017) Nabin Prachin's *Standing Alone* (poems, Bal Ram Adhikari, 2017) Krishna Dharabasi's *Radha* (novel, Mahesh Paudyal, 2018), Krishna Prasai's *Never Say Goodbye* (poems, Mahesh Paudyal, 2018), SP Koirala's *Songs of Swallows* (poems, many translators, 2018) are major one, while there are many other authors, whose works have been translated into English[20].

Critical Analysis

The number here, which is far less than the actual (I confess the limitation of my knowledge and time for research) shows, a huge body of Nepali literature is now available in English. However, for the global literary community, Nepal literature, as, Theodore Riccardi says, has remained by and large "unknown" [21] There are ample evidences of the same. Most of the major university curricula for literature do without a mention of Nepali literature. Barring a few individual writers accommodated for an individual piece of work, no major body of Nepali literature finds representation in major anthologies and journals. Books like *Master Works of Asian Literature in Comparative Perspective* (Barbara Stoller Millar, 1994), *Dislocating Culture* (Uma Narayanan 1997), *Modern South Asian Literature* (Paul Brian 2003), Modern East Asian Literature (Jesua S. Misto 2003), *How Poets See the World* (Willard Spigilman, 2005), *Inter Asia Cultural Studies* (Kuan Sing-Chen and Chuwa Weng 2007), *Asian Poets* (Rosemary M. Kenfield Remesmann 2012), *Encyclopedia of Children's Literature* (Peter Hunt, 1996) do not make even a mention of Nepal. This summarily means, we have not been able to draw the attention of the world.

My observations are twofold. First, modern world literature is overtly not about the universals; it is about the local, the indigenous, the ethic, the vernacular and the 'different'. Much of the Caribbean Literature, that found space in the world through masters like Derek Walcott and Valerie Bloom is about their local myths and unique Caribbean experiences. Similarly, modern African Literature, that bloomed in the hands of Master writer like Wolé Soyinka, and China Achebe is, according to Tanure Ojaide, "highly visible in the way gods and priest effect the course of things in the society," and this is basically because, "ritual, with its accompanying solemn music and chants has been an asset to African drama and poetry in particular and literature in General" (7).[22] The African-American literature, with exponents like Melvin Tolson, Robert Hayden and Tita Dove stands, according to Laurie Ramey, on the fact that that literature "often incorporated documents and cultural information from African American lives and history as a mechanism to convey useful knowledge for the guidance of future generation." (41-42)[23] Latin American literature, that reaches its peak with Marquez and Octavio Paz, according to Juan E De Casto

20 Due to constraint of space, let me mention only names of some authors whose works have been translated. They are: Unnati Bohora 'Sheela', Gopal Parajuli, Ani Chhoing Dolma, Narayan Wagle, Jhamak Ghimire, Indira Prasai, Krishna Prasai, Bhisma Upreti, Momila, Krishna Bhusan Bal, Rajeshwar Karki, Laxmi Shrestha, Kama Sakya, Dinesh Adhikari, Bishwambhar Chanchal, Pawan Alok etc. In children's literature, the number is quite high. The number of authors whose works in scraps have been rendered cannot possibly be ascertained, perhaps.

21 Riccardi, Theodore. "Himalayan Voice: An Introduction to Modern Nepali Literature." Rev. of Michael Hutt's *Himalayan Voice*. In *Bulletin of the School of Oriental and African Studies* 56.1. London: University of London, 1993. 157-158.

22 Ojaide, Tanure. "Modern African Literature and Cultural Identity." *African Studies Review* 35. 3 (Dec., 1992), 43-57.

23 Ramey, Lauri. *Slave Songs and the Birth of African American Poetry*. New York: Palgrave McMillan, 2008.

was an interaction between the "Western tsunami and the local tree" (xx)[24] Contemporary Chinese Literature that is drawing a lot of attention of the world with worthy attractions like Mo Yan at hand is rooted, by and large, in Chinese mythology and history.

Our literature so far, both in English or Nepali, has either been about the universals (which no more attract the Google generation), or has been overtly critical of the past. Consequently, our past, with so much of knowledge and glory, has always been sidelined from our mainstream literature. As a result, our mythology, cultural glory, scriptural and philosophical poignancy, folk and rural experiences and indigenous Nepali epistemology, has not found adequate entry into our literature.

Anything stale, strewn with overused and anemic metaphors will not be palatable anymore. Nepali literature, in order to draw world's attention should turn towards its own cultural, mythological, indigenous space. We probably can do so by reinventing our past glory—by launching a 'romantic renaissance' of Nepali version, or by directing ourselves towards exploring anything which will showcase a '*Nepalipan*' as Samrat Upadhyay says[25].

Like the colonies, we don't have 'colonial' experience. Our criticism should theorize this magical experience of remaining free even in the rife of colonization, and our literature should play this uniquely Nepali peculiarity of diplomacy–which, I believe, is provided by our culturally given power to negotiate with the empire and keep it at bay. Second, unlike the Western experience of crusades when any of the Semitic religions came face-to-face, Nepal, in spite of being home to three major religions of the world, namely Hinduism, Buddhism and Kirat religion, have never faced a crusade or a religious war, and our literature should theorize this, which, I believe, hinges on the absence of conversion drives in our religions.

Given that the content has the *Nepalipan* we foreground here, writers writing originally in English should attempt to find publishers abroad. For works to be translated, a body like NRNA can make a team of experts who first select the touchstones of Nepali literature on pure merit basis without a bias, and hire professional and capable translators to do the translations. Such works, if promoted abroad, can secure us a big and respectable space in the global literary firmament.

24 Castro, E.De. *The Spaces of Latin American Literature: Tradition, Globalization and Cultural Production*. New York: Palgrave McMillan, 2008.

25 Upadhyay, Samrat. "Nepali Writing in English: Home and Abroad." *Of Nepalese Clay* 20 (October 2013): 123-28.

नेपाल प्रज्ञा-प्रतिष्ठान
कमलादी, काठमाडौँ । फोन : ०१-४२२१२४२, ४२२१२८३
Website : www.nepalacademy.org.np